
Printed by Vinayak Balkrishna Paranjpe at the Native Opinion
Press, Angria's Wadi, Girgaum, Bombay and published by
Ramchandra Ragho for the Proprietor at the
Laxmi Vyankateshwar Press, Kalyan.



समस्त सज्जनोंको विदित हो कि यह साम्बत्सरीपद्धति इस कारण प्रकाशित करी है कि हमारे पुस्तकालयमें प्रायः पंडितलोग साम्बत्सरी तक्की खोज करते थे, तब हमने विचार किया कि साम्बत्सरी पुस्तक आज तक किसी यंत्रालयमें नहीं छपी है, यह विचार कर प्राचीन साम्बत्सरी पद्धतिको हमने खोजना प्रारंभ किया तो तीन पुस्तकें हस्तलिखित हमको मिल गईं परंतु लेखकद्रोपसे तीनों प्रति अशुद्ध थीं, उनको देखकर यह साम्बत्सरीपद्धति यथामति शुद्ध करते हुये हमने लिखकर प्रकाशित करी, संवत्सरीका फल जो गद्यरूपसे इसमें लिखा है वह तीनों प्रतियोंमें मिला था, यह फल निरे ज्योतिषीका बनाया हुआ जान पड़ता है, कि इसको व्याकरणमें बोध कमती था, हमने उस गद्यात्मक फलमें हस्ताक्षेप करना उचित नहीं समझा जैसा था वैसाही लिखकर भाषानुवाद कर दिया है, और जो उपयोगी बातें इसमें नहीं थीं उनको सम्मिलित करके इसको पूर्ण करनेमें परिश्रम किया है। इस ग्रन्थमें पांच अध्याय हैं।

- १ प्रथम अध्यायमें चतुर्युगीवर्णन है ।
- २ द्वितीय अध्यायमें ६० संवत्सरीका फल कथन किया है ।
- ३ तृतीय अध्यायमें राजा मंत्री, सस्याधिप आदिका फल कहा है ।
- ४ चतुर्थ अध्यायमें रोहिणी व संवत्सरवास फलसहित तथा आर्द्रा-शफल और अधिकमास, गुरुराशि, शनिराशि, लाभव्ययफल तथा शनि-हनादिफल वर्णित हैं ।

(२)

५ पंचमअध्यायमें अन्न आदि वस्तुओंका समर्घ महर्घ तथा वृष्टिका विचार भली भांति वर्णन किया है ।

इस प्रकार पांच अध्यायोंसे विभूषित यह ग्रन्थ वर्णन किया गया है ॥

रामऋत्वङ्मन्त्रेऽब्दे पौषे मास्यसिते दले ॥

द्वादश्यां गुरुवारे च भाषारम्भः कृतो मया ॥ १ ॥

इस पुस्तकका सर्वाधिकार सेठ

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीको दिया है इत्यलम् ।

सत्कृपामाजन—

ज्योतिर्वित्पाण्डित नारायणप्रसादमिश्र पुस्तकालय,

लखीमपुर (खीरोअवध.)



अथ सांवत्सरीपद्धतिकी अनुक्रमाणिका.

विवरण	पृष्ठ	विवरण	पृष्ठ
मयमाध्यायः १ ।		सम्बत्सरीनामानि ...	२१
मङ्गलाचरणम् ...	१	१ मभवसंवत्सरफलम् ...	२४
ग्रन्थारम्भः चतुर्गुणी- ...	१	२ विभवसम्बत्सरफलम् ...	२५
घमादीनां दिनादिमानानि ...	२	३ शुभसंवत्सरफलम् ...	२६
कृतयुगव्यवस्था ...	४	४ ममोदसंवत्सरफलम् ...	२७
मत्स्यावनारसमय ...	५	५ मजापतिसंवत्सरफलम् ...	२८
षूर्मावनारसमयः ...	११	६ अंगिरासंवत्सरफलम् ...	२९
वाराहावनारसमयः ...	११	७ श्रीमुखसंवत्सरफलम् ...	३०
नृसिंहावनारसमयः ...	११	८ भावसंवत्सरफलम् ...	३१
वैतायुगव्यवस्था ...	८	९ युवसंवत्सरफलम् ...	३१
वामनावारसमयः ...	११	१० धानासंवत्सरफलम् ...	३१
परशुरामावनारसमयः ...	९	११ ईश्वरसंवत्सरफलम् ...	३४
रामचंद्रावनारसमयः ...	११	१२ वदुषान्यसंवत्सरफलम् ...	३५
द्वापरयुगव्यवस्था ...	११	१३ ममायीसंवत्सरफलम् ...	३६
कृष्णावनारसमयः ...	११	१४ विक्रमसं० ...	३७
षोडाशवनारसमयः ...	१२	१५ वृषसं० ...	३८
कलियुगव्यवस्था ...	११	१६ विप्रभानुसं० ...	३९
गंगाकालः ...	१४	१७ सुभानुसं० ...	४०
चतुराशीतिलक्षयोनिप्रमाणम् ...	१६	१८ तारणसं० ...	४१
मनुष्यादीनामायुः ...	११	१९ पार्थिवसं० ...	४२
कालमध्ये पञ्चवर्तारो नृपाः ...	१८	२० व्यपसं० ...	४३
इति चतुर्गुणवर्णनम् ...	२१	२१ सर्वजिन्सं० ...	४४
संवत्सराध्यायः २		२२ सर्वधारीसं० ...	४५
शकानयनम् ...	११	२३ विरोधीसं० ...	४६
सम्बत्सरायनम् ...	११	२४ विद्वत्सं० ...	४७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
संश्लेषविधाविचारः ...	१११	प्रतिमासेदर्शकम् ...	११
वर्णादिविधानपदनम् ...	१११	ग्रहचारवृत्तान्महर्ष्यमर्षज्ञानम्	११०
नवमेपरानयनम् ...	११२	एकस्मिन् पंचवारपत्रम् ...	१११
नवमेपरानयनम् ...	११२	संज्ञातिवृत्तान्महर्ष्यमर्षज्ञानम्	१११
चतुर्मेपरानयनम्-एकम् ...	११३	ग्रन्थसारद्वयान्महर्ष्यमर्षज्ञानम्	१११
द्वादशनामाः । फलम् ...	११४	महर्ष्ययोगः ...	११८
अधिकांशपरकम् ...	११५	निधि धार-नाराय-योग रानि	
गुह्यतानिफलम् ...	११७	धुर्वाचाः ...	११५
दानितानिफलम् ...	११८	जलकप्रानि	११६
श्राद्धपयविचारः ...	११९	सूर्यचन्द्रनक्षत्रांश	११८
श्राद्धपयपत्रम् ...	११९	सर्वनामकम् ...	११९
दानिवाहनादिविचारः ...	१२०	बृहत्संहिताम्	१२०
परणादिविचारः ..	१२५	सद्योबृहत्संहिताम् ...	१२१
दानिवाहनम् ...	१२५	सर्वपद्विज्ञानम् ...	१२१
अथसप्तममहर्षेनयावर्णाविचारोनामपंच-		बृहत्संहिताम्	१२१
श्रेष्ठायः ॥ ५ ॥	१२७	आह्वयमाणम्	१२५
शक्रानुभित्तिविज्ञानम् ...	१२८	शक्तिशक्त्याहनम् ...	१२५
सर्वतत्त्वानुभित्तिविज्ञानम्	१२८	सत्तादीपकम्	१२५
व्येष्टमन्त्रिद्वययोगः ...	१२९	टीकाकारमार्थना- ..	१२८
भाषाद्वितीयानवमीयोगः ...	१२९	सप्तमोऽपि ग्रन्थः ।	

श्रीयुत बाबूजगन्नाथप्रसादजी (भानुकवि) कृत.

छपके तैयार!] काव्यप्रभाकर सटीक. [छपके तैयार!

(भाषाकाव्यका परिपूर्ण एवं अत्यन्त अनूठा ग्रंथ)

पृष्ठसंख्या ९००. कीमत ७ रुपिया. (महसूल ८ आना)

कमिशनकाटकर ५ रु० देंगे.

❧ रामगुलामशब्दकोष. ❧

(हिंदीकोष)

इसमें अक्षरादि क्रमसे संस्कृत, हिंदीभाषा तथा सदाके व्यवहारमें आनेवाले
भंगरेली फारसी आदि शब्दोंका आचार्य धातु, धातुर्थ सीलिंग पुडिंग नपुंसककारिगारि-
काशन भनकर्योंमें उत्तम रूपसे दर्शाया गया है. दाम २ रुपिया.

संस्कृत धातुकोष.

भाषार्थसहित.

इसमें सब संस्कृत धातुओंका अर्थ सगळ हिंदीभाषामें लिखा है. प्रत्येक धातुके
अंगे लगकोट भेद, पदबोधक अक्षर तथा वर्तमानकालिक मृतीपुष्पका एकरवनी
रूप लिखके उनके आगे आनेवाले उग धातुके निगने अर्थ मगिद हैं. वे सब अंग
हैं, कीमत ११ रुपिया.

शब्दोच्चारणमहित.

इंग्लिश हिंदी कोष (डिक्शनरी)

यह इंग्लिशमहित इंग्लिश हिंदी कोष (डिक्शनरी) बहुत परिधमसे तैयार
किता है इस कोषमें अंग्रेजी शब्दोंका उच्चारण देखाया. अंगरेजों दिया है और जो
हउ अंग्रेजी शब्दोंके उच्चारण हिंदीभाषामें नहीं है उनके अंग्रेजी मनेन बरके उनके (उच्चारण)
हमनेकी इंग्लिश डिक्शनरी है. कीमत २॥॥ रुपिया.

सांवत्सरीपद्धतिः ।

भाषाटीकासहिता ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा ब्रह्म सनातनं सुविमलं धाम श्रुतीनां परं ।
 यस्याऽनुस्मरणाच्चतुर्मुखमुखाः सृष्टेर्विताने क्षमाः ॥
 ज्योतिःशास्त्रविचारणे शुभमतिः श्रीमिश्रनारायण-
 स्तेनेयं च समादरेण सहिता सांवत्सरी लिख्यते ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः । तत्रादौ चतुर्युगी ।

अचिन्त्याऽव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥
 समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अचिन्त्य (चिन्तन योग्य नहीं), अव्यक्त (अ-
 ज्ञ, निर्गुण, और गुणोंकी आत्मा, समस्तजगदाधार ऐसे मूर्तिमान
 र्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वारात्तथायुः
 नक्षत्रं कृतपापतापशमनं योगो वियोगापहः ॥
 सर्वाभीष्टकरं तथैव करणं पंचांगमेवं स्फुटं ।
 श्रोतव्यं गणकाननात्प्रतिदिनं श्रेयस्करं सिद्धिदम् ॥

पार्थ—तिथिको श्रवण कियेते अचला लक्ष्मी प्राप्त होवे है,
 श्रवण कियेते बहुत आयु होवे है, नक्षत्रको सुनेने मनुष्य

हुये पापोंके तापसे छूट जावे है, योगको श्रवण कियेते वियोगका दुःख दूर होजावे है, तथा करणको श्रवण कियेते मनकी कामना पूर्ण होती है, इस प्रकार पंचांगको प्रतिदिन पंडितके मुखसे श्रवण कियेते कल्याण करे, और सिद्धिको देवे है ॥ २ ॥

तिथिवारं च नक्षत्रं योगः करणमेव च ॥

पंचाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गंगास्नानफलं लभेत् ॥ ३ ॥

भावार्थ—तिथि, वार, नक्षत्र, योग, एवं करण इस पंचांगके फल श्रवण कियेते गंगास्नानका फल प्राप्त होवे है ॥ ३ ॥

ब्रह्मादीनां दिनादिमानानि ॥

भावार्थ—अब ब्रह्मा आदिकोंके दिन आदिका प्रमाण कहते हैं ॥

चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥

निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चारों युग सहस्र (हजार) बार घटीत होनेपर ब्रह्माका एक दिन कहा है, इसी अपने वर्ष-प्रमाणसे मैं वर्षकी आयु ब्रह्माकी कही है ॥ ४ ॥

तत्पराख्यं तद्वर्द्धं तु परार्थमभिधीयते ॥

पितामहमहर्षेण विष्णोश्च वटिका स्मृता ॥ ५ ॥

भावार्थ—ब्रह्माकी आयु (५० वर्षकी) आयु घटीत होजाने पर त्रेता (५० वर्षकी) आयुकी परामेक्षा कही है, विष्णु (ब्रह्माकी) के हजार दिन घटीत होनेपर शिव (हरिनामा-न) की एक बार कही है ॥ ५ ॥

मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमः कलियुगः प्रथमचरणः ।
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ८ ॥

भाषार्थ—तहां व्यासजीके कहे अनुसार ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदा मनु, तिन मनुओंके नाम इस प्रकार हैं । १ स्वायंभुव, २ स्वरोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णि, ९ दक्षसावर्णि, १० व्रक्षसावर्णि, ११ धर्मसावर्णि, १२ रुद्रसावर्णि, १३ देवसावर्णि, १४ इन्द्रसावर्णि । वर्तमान सातवें वैवस्वतमन्वन्तरमें अठ्ठाईसवें कलियुगका पहला चरण है । इकहत्तर चतुर्युगियोंका एक मन्वन्तर कहा है ॥ ८ ॥

कृतयुगादीनामादौ कृतयुगव्यवस्था ।

भाषार्थ—अब सतयुग आदि चारों युगोंमें पहले सतयुगकी व्यवस्था करने हैं ॥

कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां ज्ञे च विष्णुभे ॥
धृतिर्यामं च मध्याह्ने कृतांत्रिः स्यात्प्रवर्तनम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—कार्तिकमास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, बुधवार, श्रवणनक्षत्र, और धृतियोगमें मध्याह्नमय मनुयुगके चरणकी प्रवृत्ति भई अर्धांश सतयुगका प्रवर्तन भया ॥ ९ ॥

कृतयुगप्रमाणम् १७२८००० । तत्र मत्स्यकर्म-
वगद्वन्द्वमिदं इति विष्णोरवतारचतुष्टयम् ॥ १० ॥

भाषार्थ—कृतयुगका प्रमाण सत्तर लाख अठ्ठाईस हजार वर्षका । मही (मत्स्यकर्म) १ मत्स्य, २ कूर्म (कण्ठज), ३ वाराह, ४ नागदीह ये चतुष्टय विष्णु (हरिनामसूत्र) के भवे ॥ १० ॥

मत्स्यावतारसमयः ।

प्रभवाऽब्दे चैत्रकृष्णे पंचम्यां ज्ञे च मूलमे ॥
सिद्धियोगे च सन्ध्यायां भगवान्मत्स्यरूपधृक् ॥
शंखासुरवधार्थाय वेदस्योद्धारणाय च ॥ ११ ॥

भाषार्थ—प्रभयनामसंवत्सर, चैत्रमास, कृष्णपक्ष, पंचमीतिथि, बुधवार, मूलनक्षत्र और सिद्धियोगमें सन्ध्यासमय भगवान्ने शंखासुरके वधके अर्थ और वेदोंके उद्धार निमित्त मत्स्यअवतार धारण करा ॥ ११ ॥

कूर्मावतारसमयः ।

विभवे वत्सरे ज्येष्ठे कृष्णेऽर्के द्वादशीतिथी ॥
धातृमे धृतियोगे च सायं कूर्मोऽभवद्भरिः ॥ १२ ॥
भृभारहरणार्थाय शेषसौख्याय नाटकी ॥ १३ ॥

भाषार्थ—विभयनाम संवत्सर, ज्येष्ठमास, कृष्णपक्ष, रविवार, द्वादशी तिथि, रोहिणीनक्षत्र, धृतियोगमें सायंकाल (सन्ध्यासमय) हर्षिगगनाका भूमिका भार उतारिये और शेषके सुखके अर्थ कूर्म (कच्छप) अवतार .या ॥ १२ ॥ १३ ॥

वराहावतारसमयः ।

शुक्लाऽब्दे चैत्रकृष्णे च त्रिदश्यां वसुमे रवौ ॥
ब्रह्मयोगे पराङ्गे च हरिवाराहरूपधृक् ॥
जलमध्ये गतां पृथ्वा दंष्ट्रयोद्धतकाम्यया ॥ १४ ॥

भाषार्थ—शुक्लनामसंवत्सर, चैत्रमास, कृष्णपक्ष, त्रयोदशीतिथि, धनि-
त्र, रविवार, ब्रह्मयोगमें दिनके सितले पहर हरिभगवान्ने जन्मके

मध्य गई पृथिवीको अपनी डाढ़से उठायके लायवेके अर्थ बाराह रूप धारण किया ॥ १४ ॥

नृसिंहावतारसमयः ।

अंगिराऽब्दे च वैशाखे शुक्ले शंभुतिथौ रवौ ॥

द्वीशर्क्षे वरियाने च सायं स्यान्वृहतिर्हरिः ॥ १५ ॥

हिरण्यकशिपुं हन्तुं भक्तानां च सुखाय वै ॥ १६ ॥

भाषार्थ—अंगिरासम्बत्सर, वैशाखमास, शुक्लपक्ष, चतुर्दशीतिथि, रवि-
वार, विशाखानक्षत्र वरियानयोगमें सायंकाल अर्थात् संध्यासमय हरिमग-
धान्ने हिरण्यकशिपु (दैत्य) के वध करिवेको और भक्तजनोंके सुखके
अर्थ नरसिंह रूप धारण किया ॥ १५ ॥ १६ ॥

तत्र पापं नास्ति पुण्यं विंशविश्वात्मकम्, मनु-
ष्यायुर्वर्षसंख्या १००००० शरीरहस्तप्रमाणम्
२१ पात्रं सौवर्णमयम्, रत्नमयं द्रव्यम्,
ब्रह्माण्डगतप्राणाः, तीर्थं पुष्करम्, स्त्रियः पद्मि-
न्यः पतिधर्मपरायणाः, सूर्यपर्व ३२००० चन्द्र-
पर्व ५००० सर्वे वर्णा धर्मनिरताः ॥ १७ ॥

भाषार्थ—तहाँ (सतयुगमें) पाप नहीं, पुण्य बीस विश्वा, मनुष्यकी
आयु एक लाख वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई इक्कीस हाथ प्रमाण, सुवर्णमय पात्र
और रत्नमय द्रव्यका व्यवहार, मनुष्योंके प्राण ब्रह्माण्डगत, तीर्थ पुष्करजी,
स्त्रियां पद्मिनी पतिव्रतधर्मपरायण, सूर्यग्रहणमंग्या बत्तीस हजार, चन्द्र-
ग्रहणमंग्या पांच हजार, सब वर्ग अपने धर्ममें निग्त ॥ १७ ॥

भाषार्थ—भाद्रमास, कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि, बुधवार, रोहिणीनक्षत्र, वृद्धियोगमें आधी रातके समय कंस आदि राक्षसोंके हननके निमित्त और गोपियोंके सुखके अर्थ कृष्णभगवान्ने जन्म धारण करा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

बौद्धाश्वतारसमयः ।

आश्विने शुक्लपक्षे च दशम्यां गुरुवासरे ॥

अभूद्धरिवौद्धरूपो दैत्यानां मोहनाय च ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—आश्विनमास, शुक्लपक्ष, दशमीतिथि, गुरुवारमें हरिभगवान्ने दैत्योंके संमोहन निमित्त बौद्धरूप धारण किया ॥ ३४ ॥

तत्र पापं १०, पुण्यं १०, मनुष्यायुर्वर्षसंख्या
१०००, शरीरहस्तप्रमाणम् ७ । पात्रं ताम्रम-
यम्, राण्यमयं द्रव्यम्, तीर्थं कुरुक्षेत्रम्, त्वचा-
गतप्राणाः, स्त्रियः शंखिन्यः, सूर्यपर्व ३२०, च-
न्द्रपर्व ५०, सर्वे वर्णाः स्वस्वधर्मकर्मनिरताः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—द्वारायुगमें पाप १० विश्वा, पुण्य १० विश्वा, मनुष्या-
युग एक हजार वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई मान एकहत्ती, ताम्रके पात्र और
रौप्यमय घनमे व्यवहार, तीर्थ कुरुक्षेत्र, मनुष्योंके प्राण त्वचागत, स्त्रियां
शंखिनी, सूर्यप्रदहनमंग्या ३२०, चन्द्रप्रदहनमंग्या ५०, सब वर्ण अपने
अपने धर्मकर्ममें लगे ॥ ३५ ॥

तत्र चन्द्रवंशीयराजानः । मोमः, बृधः, पुरुग्वाः,
नन्दः, अनन्दः, नट्टपः, शन्तनुः, चित्रवीर्यः, विचि-
त्रवीर्यः, पाण्डुः, मृधिमृगः, अधिमन्तुः, परीक्षि-
तः, जन्मेजयः । एतेषां मृमेरुपर्यन्तगमनम्,

दिव्यान्नभक्षणम्, दिव्यवस्त्रपरिधानम्, एकश्चे-
त्कुरुते पापं कुलं तस्य विनश्यति ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—छापरमें चन्द्रवंशी राजा भये १ सोम, २ बुध, ३ पुरुषा,
४ नल, ५ अनल, ६ नहुष, ७ शन्तनु, ८ चित्रवीर्य, ९ त्रिचित्रवीर्य,
१० पांडु, ११ युधिष्ठिर, १२ अभिमन्यु, १३ परीक्षित, १४ जनमेजय, इ.
नकी गति सुमेरुपर्यंत पर्यन्त, दिव्य (देवताओंके योग्य) अन्नभोजन
करने हारे, और निर्मल वस्त्र धारण करिवेवारे । एक यदि पाप करे तो उ-
सका कुल विनाश हो जावे है ॥ ३६ ॥

अत्र युगे ब्राह्मणा द्विवेदपाठिनः, सत्यासत्पर-
ताः, तपोमयाः, लोभालोभयुक्ताः, शापाऽनुग्रहे-
समर्थाः, ईश्वराराधनेतत्पराः, गावः द्विकाले दु-
ग्धपूर्णाः, नद्यो मध्यजलाः सर्वसम्ययुता पृथ्वी
रौप्यद्रव्यसमन्विता ॥ वापनं चैकवारं संग्राह्यं
तत्र पंचधा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—छापरयुगमें ब्राह्मण दो वेद पढ़े भये, सत्य और सत्य
संभाषण करिवेवारे, तपस्वी, लोभ और निर्लोभते युक्त, शापके देने और
अनुग्रह करिवेमें समर्थ, ईश्वरकी आराधना करिवेमें तत्परा, गाँवों प्रातः
सायंकालसमय दुग्धसे परिपूर्ण, नदियोंमें मध्यम जल, सब प्रकारके धा-
न्योंसे युक्त पृथ्वी, रौप्यमय धनसे भरपूर, एक बार दोन देनेमें पंच
बार फाट लेवे ॥ ३७ ॥

कलियुगव्यवस्था ।

अब कलियुगकीव्यवस्था करने हैं ।

भाद्रकृष्णत्रयोदश्यां रविवारे च सापंभे ॥

व्यतीपातेऽर्धरात्रौ च कलेः पादप्रवर्तनम् ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—भाद्रमास, कृष्णपक्ष, त्रयोदशीतिथि, गविचार, आश्वेयानवम
व्यतीपातयोगमें आधी रातसमय कलियुगका प्रारंभ भया ॥ ३८ ॥

कलियुगप्रमाणम् ४३२०००, तत्रावतार एकः,
सम्मलदेशे गौडब्राह्मणविष्णुगृहे कल्क्यवतारो
भविष्यति ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—कलियुगका प्रमाण चार लाख बत्तीस हजार वर्ष, तह
(कलियुगमें) अवतार एक, सम्मल देशमें गौडब्राह्मण विष्णुनामके घर
हरिभगवानका कल्कि अवतार होवेगा ॥ ३९ ॥

तत्र पापं १५ पुण्यं ५ मनुष्यायुर्वर्षसंख्या
१००, शरीरहस्तप्रमाणं सार्द्धत्रयम्, पात्रं मृण्म-
यम्, ताम्रमयं द्रव्यम्, तीर्थं गंगा, अन्नमयाः
प्राणाः ॥ ४० ॥

भाषार्थ—कलियुगमें पाप पन्द्रह विश्वा, पुण्य पांच विश्वा, मनुष्यकी
आयु सौ वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई साढ़े तीन हाथकी, पात्र प्रायः मृत्तिका-
के, ताम्रमय द्रव्यका व्यवहार, तीर्थ गंगाजी, मनुष्योंके प्राण अन्नमें ॥ ४० ॥

गंगायुः उक्तं च सनत्कुमारसंहितायाम् ।

पृथिवी गंगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ ॥
तदा त्यक्ष्यति विष्णुश्च मेदिनीं नरपुंगव ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—अब गंगाजीकी आयु सनत्कुमारसंहितामें कहे अनुसार
वर्णन करते हैं । पृथिवी गंगाके हीन वर्तमान वैवस्वतमनुके अन्तवाले
कलियुगमें होवेगी । हे नरोत्तम, उसी समय विष्णुभगवानभी पृथिवीको प-
रित्याग करेंगे ॥ ४१ ॥

अत्र युगे ब्राह्मणाः स्ववेदहीनाः, तपोहीनाः, असत्यवादिनो नराः, सर्वे वर्णाः स्वस्वधर्मकर्मरहिताः, गावो दुग्धहीनाः, नद्यो जलहीनाः, स्त्रियो हस्तिन्यः, सूर्यचन्द्रपर्वसंख्या नास्ति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—इस युगमें ब्राह्मण अपने वेदसे हीन, तपसे रहित, मनुष्य असत्यवादी, सब वर्ण अपने अपने धर्मकर्मसे रहित, गौयें दुग्धसे हीन, नदियां जलसे हीन, स्त्रियां हस्तिनी, सूर्य और चन्द्रग्रहणकी संख्या नहीं अर्थात् कलियुगमें असंख्य ग्रहण होवे ॥ ४२ ॥

कस्यचिदचनम् ।

निर्वोर्या पृथिवी निरौषधिरसा नीचा महत्वं गताः । भूपाला निजकर्मधर्मरहिता विप्राः कुमार्गे रताः ॥ भार्या भर्तृविरोधिनी पररता पुत्रः पितुर्दूषिता । हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या मृता ये नराः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—किसी पंडितका वचन है, कि—पृथिवी बीजसे हीन भई, औषधियोंमें रस नहीं रहा, नीचजन महत्त्व पदवीको प्राप्त भये, राजालोग अपने कर्मधर्मसे रहित भये, ब्राह्मण कुमार्गगामी भये, स्त्री अपने पतिसे विरोध करके पर पुरुषसे प्रीति करिबेवागी भई, पुत्र पिताको दुःख देने लगे, हा बड़े खेदकी बात है कि, कलियुगमें सब और कष्टही कष्ट है, जो मनुष्य मार गये वे धन्य हैं ॥ ४३ ॥

तथाच ।

गीतापुस्तक हाथ साथ विधवा माला विशाला गले । गोपीचन्दनचर्चितं मुललितं भाले च वक्षः

स्थले ॥ वैरागी पटवा कुह्लार नटवा कोरी धुना
धीमरो । हा संन्यास कुतो गतः कलियुगे वार्ता-
ऽपि न श्रूयते ॥ ४४ ॥

भावार्थ—आधुनिक साधुओंकी यह गति है, कि—जीवांकी पुस्तक हा
 उँगर मूक विधवा साथ, बडीसी माला गलेमें पडी है, मस्तक और छाती
 पर चट्टनसा गोरीचन्दन चर्चित है, बैरागी, पट्टवा, कुत्तार, नटवा, कोरी,
 गुना, धीमर, ये प्रसन्नतापूर्वक उत्तर देना कहाँ रहा. हे संन्यास तुम क
 गले नेगी घागभी नहीं मुने ॥ ४४ ॥

ननुग्धातिरुक्षयोनिप्रमाणम् ।

जलज्जा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः ॥ कृ-
मयो मदलक्षाणि पक्षिणां दशलक्षकाः । त्रिशल्ल
क्षाणि पञ्चवश्चतुर्लक्षाणि मानवाः ॥ ४८ ॥

अथर्व—अथ भोग्यी त्याग योगियोंका प्रमाण कहते हैं । जन्म
 तंत्र में त्याग, कृतादि व्याख्य जीव श्रीम त्याग, परिमंजक जीव व्याख्य
 त्याग, तंत्र, ब्रह्म त्याग प्रमाण, नीम त्याग प्रकारके पशु और श्वर प्राण
 प्रमाणों का उल्लेख है ॥ ४७ ॥

मनुष्यादीनामागुः ।

अनुनासिकमन्त्र्याणां वृक्षाणां च महत्प्रकम् ॥ द्वात्रिं-
शन्मन्त्र्याणां गजानां विंशतिः शतम् ॥ ४६ ॥

[illegible]

व्याघ्रोष्ट्राणां चतुःषष्टिः काकव्यालसहस्रकम् ॥
भङ्गूनां वानराणां च मङ्गूनां सप्तविंशतिः ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—व्याघ्र और ऊंटोंकी आयु चौंसठि वर्षकी, कौबों व सपोंकी आयु एक हजार वर्षकी, गीठ, वानर और मेढुकोंकी सताईस वर्षकी आयु जाने ॥ ४७ ॥

सहस्रं गृध्रासिंहानां शूकराणां शताब्दकम् ॥ सार्ध-
शतं च कूर्माणां मकराणां तथा स्मृतम् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—गीध्रपक्षी और सिंहकी आयु एक हजार वर्षकी, शूकरोंकी आयु पचास वर्षकी, कलुवों, और मकरोंकी डेढ़ सौ वर्षकी आयु कही है ॥ ४८ ॥

वर्षविंश विहंगानां वर्षमेकं पिपीलिका ॥ चतुर्विं-
शत् खराणां च मृगाणां पंचविंशतिः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—बीस वर्षकी आयु अन्य पक्षियोंकी, एक वर्षकी आयु चींटियोंकी, चौबीस वर्षकी आयु गर्दभोंकी, और पचीस वर्षकी आयु हिरणोंकी कही है ॥ ४९ ॥

मूपकः पंचवर्षाणि वसुवर्षाणि कुक्कुटः ॥ श्वान-
शृगालमार्जारी वर्षद्वादशकं स्मृतम् ॥ ५० ॥

भाषार्थ—पांच वर्षकी आयु मूपकोंकी, आठ वर्षकी मुरगोंकी, और श्वान, (कुत्ता), शृगाल (जंघुक), मार्जार (बिछी), इनकी आयु बारहवर्षकी कही है ॥ ५० ॥

कोई बिछी, सियारी और कुत्तीकी चासठि वर्षकी आयु कहते हैं, ॥ ॥

चतुःसप्त चकोराणां पिंगलानां शतत्रयम् ॥ प्रा-
सादकूपवापीषु सरसीपत्तनेषु च ॥ ५१ ॥

सहस्रैकं च वर्षाणि तदर्थं गृहग्रामयोः ॥ एकत्रिंशद्दिनं प्रोक्तं मक्षिकास्वेदजादिषु ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—चकोरोंकी आयु चौहत्तर वर्षकी, पिंगलापर्क्षकी आयु तीसौ वर्षकी, मन्दिर, कुवां, बावली, तडाग, नगर इनकी आयु एक हजार वर्षकी, तथा पांचसौ वर्षकी आयु घर और छोटे गांवोंकी । और मक्षिका व स्वेदज (जुवां) इनकी आयु इकतीस दिनकी कही है ॥ ५२ ॥

कलिमध्ये पद्मशककर्तारो नृपाः

युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ तथा च राजा विजयाभिनन्दनः । ततश्च नागार्जुनकल्किभूपतिः कलौ पडते शकवन्धिनो नृपाः ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—अथ कलियुगमें जो छः शकवंशी राजा भये सो कहें १ युधिष्ठिर, २ विक्रमादित्य, ३ शालिवाहन, ४ विजयाभिनन्दन, ५ नागार्जुन, ६ कल्कि, कलियुगमें ये छः शकवन्धी राजा कहे गये हैं ॥ ५३ ॥

कलेरारभ्य युधिष्ठिरशक ३०४४ तदन्तर्गतास्तावत्सोमवंशीयराजानः, १ अर्जुनः २ अभिमन्युः, ३ परीक्षितः, ४ जन्मेजयः, ५ वत्सराजः, ६ युवनाश्वः, १ ततस्सूर्यवंशिनो राजानः १ अश्वपतिः, २ गजपतिः, ३ नरपतिः, ४ महीपतिः, ५ महीपालः, ६ महेन्द्रपालः, ७ गन्धर्वसेनिः ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—कलियुगके आरंभमें महााजा युधिष्ठिरजीके शाके तत्पश्चात् चवत्सीन, उमीके अन्तर्गत प्रथम चन्द्रवंशी राजाओंने राज्य किया तदन्तर्गत नाम इस प्रकार हैं कि १ अर्जुन, २ अभिमन्यु, ३ परीक्षित,

जन्मेजय, ५ वत्सराज, ६ युवनाश्व । फिर सूर्यवंशी राजा भये, १ अश्वपति, २ गजपति, ३ नरपति, ४ महीपति, ५ महीपाल, ६ महेन्द्रपाल, ७ गन्धर्वसेनि, ॥ ५४ ॥

तदग्रे उज्जयिन्यां विक्रमादित्यशकः १३५ तन्मध्ये नृपाः १ विक्रमादित्यः, २ भर्तृहरिः, ३ सेनिः, ४ मुंजः ५ भोजः, ६ रामदेवः ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—महाराजा युधिष्ठिरजीके ३०४४ वर्षके उपरांत उज्जयिनी नगरीमें शकचन्धी महाराजा विक्रमादित्यजी भये, तिनके शाके एवसी पैंतीस, उसीके मध्य १ विक्रमादित्य २ भर्तृहरि, ३ सेनि, ४ मुंज, ५ भोज, रामदेव ये राजा भये ॥ ५५ ॥

ततः नर्मदादक्षिणे तीरे शालिवाहनशकः १८००० तन्मध्ये नृपाः १ शालिवाहनः, २ शालिकुमारः, ३ क्षत्रकः, ४ इन्द्रकिरीटी, ५ ब्रह्मादिवाकरः, ६ मल्लीमदत्तः, ७ गांडवकः, ८ जयदेवः, ८ श्रीमदेवः, १० नरेन्द्रशाहः । ततः यवनवंशिनो नृपाः, तेषां नामानि कृतराज्यवर्षाणि च, तिमिलिगशाह राज्यवर्ष ६०, वावरशाहः ५३, हिमायूः ४८, अकवरशाहः ५१, जहांगीरः २२, शाहजहां ३२, औरंगजेबः ५१, बहादुरशाहः ५, फर्रुखशाहः ७, मुहम्मदशाहः ३०, अहमदशाहः ६, आलमगीरशाहः ६, शाहआलम राज्यवर्ष ३६, अनन्तरमहाराणीकिनविक्रुतोरियाराज्य ६३, राजराजेश्वर सप्तयडवर्ड वर्ष १०, वर्तमान राजराजेश्वर, पंचमजार्ज इति ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—महाराजा विक्रमादित्यजीके एक सौ पैंतीस वर्ष उपरान्त नर्मदानदीके दक्षिणतीर शालिवाहननाम राजा प्रगट भया, शाके अठारह हजार, उसके मध्य १ शालिवाहन, २ शक्तिकुमार, ३ क्षत्रक, इन्द्रकिरीटी, ५ ब्रह्मादिवाकर, ६ मलीमदच, ७ गौडवंक, ८ जयदेव, ९ श्रीमदेव, १० नरेन्द्रशाह. ये दश राजा भये । फिर यवनोंने आकर दिल्लीका सिंहासन (तख्त) छीनकर अपने आधीन करके राज्य किया, तिन बादशाहोंके नाम और राज्यवर्षसंख्या वर्णन करते हैं. तिमिलिङ्गशाहने साठवर्ष बाबरशाहने पचपनवर्ष, हिमायूँशाहने अड़तालीस वर्ष, अकबरशाहने इक्यावन वर्ष, जहांगीरशाहने बाईस वर्ष, शाहजहांबादशाहने बत्तीस वर्ष, औरंगजेबने इक्यावन वर्ष, बहादुरशाहने पांच वर्ष, फर्रुखशाहने सात वर्ष, मुहमदशाहने तीस वर्ष, अहमदशाहने तीस वर्ष, आलमगीरशाहने छः वर्ष, शाहआलमने छत्तीस वर्ष । फिर अंगरेजी राज्य भया, तहां महाराणी क्वीन-विक्टोरियाने त्रेसठ वर्ष राज्य किया, सातवें यडवर्ड दश वर्ष राज किया, वर्तमान राजराजेश्वर पंचमजार्ज इंग्लैंडके सिंहासनपर विराजमान होके निष्कण्टक राज्य इस भारतवर्षमें कर रहे हैं ॥ ५५ ॥

ततः सिन्धुसमीपे विजयाभिनन्दनो भविष्य-
ति तस्य शकः १००००, ततः धारातीर्थे नागा-
र्जुनस्तस्य शकः ४००००० तदेव शेषकलिः
८२१ तस्मिन्नेव समये कल्क्यवतारो भविष्य-
ति तस्यशकः ८२१ ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—महाराजा शालिवाहनजीके सिंहासनाधिरुद्धसमयसे अठारह हजार वर्ष (शाके) व्यतीत होजाने उपरान्त सिन्धुके समीप विजयाभिनन्दन नाम राजा होंवेगा, उसके दश हजार अर्थात् विजयाभिनन्दनजीके दश हजार वर्ष व्यतीत हुये उपरान्त धारतीर्थमें नागार्जुननाम राजा प्रगट होवे

शाके चार लाख अर्थात् नागार्जुनके चार लाख वर्ष व्यतीत हुये उप-
भगवानका कल्कि अवतार होवेगा, उस समय कलियुगके आठ सौ
त वर्ष शेष रहेंगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदयोध्यामण्डलान्तर्वर्ति लखीमपुरखीरीनिवामि
प्योतिर्वित्पण्डितनारायणप्रसादमिश्रविलिखितसंवत्सरीभा-
षाऽनुवादे चतुर्गुणवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ संवत्सराध्यायः ॥ २ ॥

तत्रादौ शकानयनम् ।

विक्रमादित्यराज्यस्य पंचत्रिंशोत्तरं शतम् ॥
पातयित्त्वा भवेच्छाकं चैत्रार्द्धात्तिथयः स्मृताः ॥१॥

भाषार्थ—अथ संवत्सराध्याय लिखते हैं, तहां पहले शालिवाहनशा-
सनेका प्रकार कहते हैं, श्रीमन्महाराजा विक्रमादित्यजीके एक सौ
वर्षपर शालिवाहनजीका शाका प्रवृत्त भया, इसीसे विक्रमीय संवत्
में एक सौ पैंतीस घटाय देनेसे शालिवाहन शाके निकल आये हैं,
इससे अर्थात् चैत्रशुक्लपक्षसे शाकेकी प्रवृत्ति जानना ॥ १ ॥

प्रभवादिसंवत्सरानयनम् ।

शकेन्द्रकालः पृथगाकृतिघ्नः शशाङ्कनन्दाश्वियु-
गेः ४२९१ समेतः ॥ शराद्रिवस्विदु १८७५ हतः
सलब्धः पष्ट्याप्तशेषे प्रभवादयोऽच्छदाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—अथ प्रभवा आदि संवत्सरोके लाशनेकी गीति करते हैं,
शालिवाहन शाकेके अंकोंको दो स्थानमें घटे, एक स्थानके अंकोंको पाँच-
गुणा करे, उन अंकोंमें घटाविस सौ इक्क्यानवे ४२९१ जोड़ देवे, और

अठारह सौ पचहत्तरका भाग देवे, लब्धांकको परिवर्ति कहते हैं, दूसरे स्थानवाले शाकांकसंख्यामें मिलाय देवे और एक अंक और कि से प्रभव आदि संवत्सरसंख्या जाने, शेष अंक जो पहले रहे थे उन कोंको चारहसे गुणकर अठारह सौ पचहत्तरका भाग देनेसे लब्ध मासजानना, शेषांकको तीससे गुणकर पूर्वोक्तांकानुसार भाग देनेसे कको दिन जानना, फिर शेषांकोंको साठसे गुणाकर पूर्वोक्त लब्धांकको घटी जानना, शेषांकोंको साठीसे गुणाकर पूर्वोक्त भाग लब्धांकको पल, फिर शेषांकोंको साठसे गुणाकर पूर्वोक्त भाग दे लब्धांकको विपल जानना ॥ २ ॥

उदाहरण ।

शालिवाहनशाके १८२८ को २२ से गुणा किया तो ४०२१५ इसमें ४२९१ मिलाये तो ४४५०७ भये, इसमें १८७५ का भाग तो लब्धांक २३ को शाके १८२८ में मिलानेसे १८५१ भये, उस जोड़ दिया तो १८५२ भये, साठोंका भाग दिया तो शेष ५२ भये आदिमे गणना करनेसे कालयुक्त नाम संवत्सर भया । पूर्वकथना १८७५ के भागसे शेषांक १३८२ को चारहसे गुणा किया तो १९ भये १८७५ का भागदेनेसे लब्धांक ८ मास हुये, शेष १५८४ को गुणा तो ४६५२० भये और १८७५ के भाग देनेसे लब्धांक २४ भये, शेष १५२० को ६० से गुणा तो ९१२०० भये १८७५ का दिया तो लब्धांक ४८ घटी जानना, शेष १२०० को ६० से गु ७२००० इसमें १८७५ का भाग दिया तो लब्धांक ३८ पल भये ७५० को ६० से गुणा तो ४५००० भये इसमें १८७५ का भाग तो लब्ध २४ विपल भये, शेष कुछ नहीं रहा । इस प्रकार संवत्सर शाके १८२८ में कालयुक्तसंख्यादि मागादि ८।२४।४८।३८।२४ से ३३३३ ॥ २ ॥

तथाच ।

शाके वेदाक्षि २४ संयोज्य पट्टिभागेन हर्यते ॥

शेषं संवत्सरं ज्ञेयं लब्धं तत्परिवर्तकम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—शाकेमें २४ मिलाय साठका भाग देनेपर शेषांशको प्रभव
दि संवत्सर जानना, उदाहरण शाके १८२८ में २४ मिलाये तो १८५२
में इसमें ६० का भाग दिया तो शेष ५२ प्रभवादिगणनासे कालयुक्त
वत्सर भया ॥ ३ ॥

पट्टिसंवत्सरनामानि ।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ॥

अङ्गिरा श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥ ४ ॥

ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः ॥ चि-

त्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ॥ ५ ॥

सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः ॥

नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुरवौ ॥ ६ ॥

हेमलंबो विलंबश्च विकारी शार्वरी पुवः ॥ शु-

भकृच्छोभनः क्रोधो विश्वावसुपराभवौ ॥ ७ ॥

पुवंगः कीलकः सौम्यः साधारणो विरोधकृत् ॥

परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसो नलः ॥ ८ ॥

पिंगलः कालयुक्तश्च मिद्वार्थो रौद्रदुर्मतीः ॥

दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—अब साठ संवत्सरोंके नाम वर्णन करते हैं । १ प्रभव, २
विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापति, ६ अंगिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव,
९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम
१५ वृष, १६ चित्रभानु, १७ सुभानु, १८ तारण, १९ पार्थिव, २० व्यय,

२१ सर्वजित, २२ सर्वघारी, २३ विरोधी, २४ विकृति, २५ खा, २६
 नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब,
 ३२ विलम्ब, ३३ विकारी, ३४ शार्वरी, ३५ प्लव, ३६ शुभकृत, ३७ शो
 भन, ३८ क्रोध, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवंग, ४२ कीलक,
 ४३ सौम्य, ४४ साधारण, ४५ विरोधकृत, ४६ परिधात्री, ४७ प्रमादी,
 ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० नल, ५१ पिंगल, ५२ कालयुक्त, ५३
 सिद्धार्थ, ५४ सैद्र, ५५ दुर्मति, ५६ दुन्दुभी, ५७ रुधिराद्वारी, ५८ रक्त
 क्ष, ५९ क्रोधन, ६० क्षय, ये संवत्सर बीस बीस क्रमसे ग्रहा, विष्णु और
 शङ्करजीके नामसे कहे हैं ॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥

अथ संवत्सराणां फलान्युच्यन्ते

भाषार्थ—अब विस्तारपूर्वक साठ संवत्सरोंका फल पूर्वाचार्योंके वचनानुसार गद्यरीतिसे ठीक ठीक प्रकाशित किया जावे है, ॥ ११ ॥

प्रभवः १, ब्रह्मा स्वमी चैत्रवैशाखौ श्रेष्ठौ, समस्त वस्तुसमर्धता, ज्येष्ठादौ मासत्रये सर्वधान्यं महर्धं, गोधूममुद्गादीनां युगन्धराणां च विशेषतो महर्धता, भाद्रपदोपि शुभः, आश्विने च कचिन्महर्धता, पश्चाद्रोगपीडा महती, शेषमासाः मध्यमाः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—प्रभवनाम संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा, इस संवत्सरमें चैत्र, वैशाख श्रेष्ठ, सब वस्तु सस्ती, ज्येष्ठ आपढ़ आश्विन ये तीन मास महंगे, अर्थात् इन तीनों महीनोंमें सब अन्न महंगा बिके, गोहूँ, मूँग आदि (उद, मटर, चना, रौंसा) और विशेष करके जुन्हरी महंगी हो जावे, भाद्रमास शुभ और आश्विन (कुंवार) मासमें कुछ महंगा अन्न बिके, पश्चात् रोगपीडा बहुत होवे, शेष (कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, पञ्चगुण) मास सामान्य हैं ॥ १२ ॥

विभव २ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं प्रशांताश्च नरेश्वराः ॥
हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे विभवे परिकीर्तिताः ॥ १३ ॥

भाषार्थ—विभवनाम संवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, राजाओंमें शान्ति हो, तथा सम्पूर्ण मनुष्य हृष्टपुष्ट रहें ऐसा करा है, ॥ १३ ॥

तथाच ।

विभवः २, विष्णुः स्वामी, रोगव्याप्तिः, पृथिव्यां नागपुरादिषु भंगः, तैलंगमगधचीनदेशे महर्धता,

उच्चमुलतानस्थले महाविग्रहः, अन्यत्र समता,
चैत्रादिमासत्रये महर्घता, आपाढादित्रये मेघ-
घृष्टिः, आश्विने सर्वरसमहर्घता, ततो बाहुल्यं,
कार्तिकादिमासेषु सर्ववस्तुसमर्घता, गोधूमाः
समाः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—विभवनाम संवत्सरका विष्णु स्वामी, इस संवत्सरमें
फैले, पृथिवीपर नागपुर आदिकोंमें भंग होवे, तैलंग, बहार और चीनमें
भाव महंगा होवे, ऊंचे मुलतान स्थलमें बहुत विग्रह (झगडा
मनुष्योंको पीडा) होवे. और देशमें सम होवे, चैत्र आदि तीन महि-
नमें सत्र रस महंगे होवे, अनन्तर आपाढादि तीन महिनोमें मेघ अधिक
करें. आश्वीनमें सत्र रस महंगे होवे पिछे सस्ते, कार्तिक आदि तीन महि-
नोंमें अन्नकी सस्ताई होवे, गेहूँका भाव सम जानना ॥ १४ ॥

शुक्र ३ संवत्सरफलम् ।

रोगा बहुविधाः प्रोक्ता मानवाश्चापि कुंजराः ॥
सर्वे चैव प्रणश्यन्ति शुक्राब्दे च वरान्जने ॥ १५ ॥

भाषार्थ—अब शुक्र संवत्सरका फल कहते हैं, शिवजी पार्वती
वर्णन करें हैं कि, हे पार्वती । शुक्रनाम संवत्सरमें अनेक प्रकारके
रोग, मनुष्य और हाथी सम्पूर्ण नाशको प्राप्त होंगे. ॥ १५ ॥

तथाच ।

शुक्रः, ३ रुद्रः स्वामी, छत्रभंगो म्लेच्छदेशेषु म-
न्त्रिणां गज्यं, चैत्रादिमासत्रये समता । आपाढा-
दिमासत्रये महामेघाः, आश्विने जनरोगः, घृता-
नां समर्घत्वम्, अन्यत्सर्वं महर्घं, कार्तिकादिच

तुष्टये सर्वं धान्यं समर्घं, फाल्गुणमासे सर्वत्र वि-
ग्रहः, लोकग्रामपीडा, देशेषु आकुलता शून्य-
त्वं ग्रामेषु ॥ १६ ॥

भाषार्थ—शुक्रनाम संवत्सरके स्वामी रुद्रजी, म्लेच्छदेशमें छत्रभंग हो,
वैरा राज्य हो, धैर्य आदि तीन महीने सम रहें, आपाठ आदि तीन
नोंमें मेघ यादुत वर्षे, आश्विन (कुंवार) में मनुष्योंको रोग हो, धी
ता होवे, अन्य सब यन्त्रुओंका भाव महंगा होवे, कार्तिक आदि चार
तपर्यन्त सब धान्य सस्ते भावसे बिके, फाल्गुन मासमें सर्वत्र (सब
जगह) विग्रह (युद्धदिपीडा) होवे, गांवोंमें मनुष्योंको पीडा, देशोंमें
कुलता, गांवोंमें शून्यता होवे ॥ १६ ॥

प्रमोद ४ संवत्सरफलम् ।

उन्मत्तं च जगत्सर्वं धनधान्यसमाकुलम् ॥
नित्योत्सवप्रवृद्धिं च प्रमोदे जायते प्रिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—अब प्रमोदनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्व-
तीसे कहते हैं कि हे प्रिये ! प्रमोदनाम संवत्सरमें सब जगत्
समृद्ध हो, पृथिवी धन और धान्यसे पूर्ण होवे, और नित्य उत्सवोंकी
रूढ़ होवे ॥ १७ ॥

तथाच ।

प्रमोदः ४, रविः स्वामी, मध्यमं वर्षं, अल्पवृ-
ष्टिः, मंडले मेघपाटपीडा, देशोद्वासः, म्लेच्छव-
र्णक्षयः छत्रभंगः, पर्वततटे स्वल्पा प्रजा, तैलं-
गे राजविह्वरं, त्रैत्रे वैशाखे च महर्घता, ज्येष्ठे
रोगपीडा, आपाठादिमासत्रये अल्पमेघः, आ-

श्विने किंचिद्वर्षा, धान्यस्य त्रयोदशफदिया,
कलशिका १, कार्तिकादिमासचतुष्टये सर्वरसम-
हर्घता, फाल्गुनो मध्यमः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—प्रमोदनाम संवत्सरके स्वामी सूर्यनारायणजी हैं, इस सं-
त्सरमें मध्यमता होवे, वर्षा थोड़ी होवे, मंडलमें मेढ़पाट पीडा हो, देह
उद्धास हो अर्थात् मनुष्योंका चित्त उचाट हो जावे, स्लेच्छवर्णका
हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, पर्वतके तटमें थोड़ी प्रजा रहे, तैलमें
शमें राजा और वैद्योंका वैर हो, चैत्रवैशाखमें महंगा भावहो, ज्येष्ठमासमें
रोगपीडा हो, आपाट, श्रावण, भाद्रमासमें थोड़ी वर्षा हो, कुँवारके महान्
कुछ वर्षा होवे, अन्नकी तेरह फदिया को कलशिका एक, कार्तिक आदि
चार मास (कार्तिक, मार्गशिर, पौष, माघ) में सब रस महान् वि-
फाल्गुणमास मध्यम जानना ॥ १८ ॥

प्रजापति ५ संवत्सरफल ।

नीरोगाश्च जनाः सर्वे निरावाधा गतद्विषः ॥ बहु
क्षीरास्तथा गावो प्रजापत्यो वरानने ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अथ प्रजापति संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वती
कहते हैं कि हे वरानने. प्रजापतिनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण मनुष्य नि-
होवें. शत्रुगणवाधाराहित होवें. तथा गौर्वे दूध बहुत देवें ॥ १९ ॥

तथाच ।

प्रजापतिः ५, चन्द्रः स्वामी; द्वादशैव मासाः
शुभाः, अल्पमेघः, आश्विने रोगवाहुल्यम्, धा-
न्यस्य कलशिका त्रिंशत् फदिया नाणकः, का-

तिंकादिमासद्वयं मन्दं, पौषादिमासत्रयेऽरिष्टम्;
कचिदुत्पातदर्शनेऽपि पीडा ॥ २० ॥

भाषार्थ—प्रजापतिनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, चारहों मास का संवत्सरमें शुभ जानना, थोड़ी वर्षा हो, आश्विनमासमें रोग घटे, अन्न फलशिका तीस फदिया नाणा, कार्तिक आदि दो महीनेमन्द और पौष आदि तीन महीने अरिष्ट, कुछ उत्पातभी दीख पड़े और पीडाभी होवे ॥ २० ॥

अंगिरा ६ संवत्सरफलम् ।

निरातंकं जगत्सर्वं धनधान्यसमन्वितम् ॥ अं-
गिराऽब्दे जनः सर्वो नित्योत्साहः सदा सुखी ॥ २१ ॥

भाषार्थ—अब अंगिरानाम संवत्सरका फल कहते हैं । अंगिराना संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् आतंक (रोग) रहित होवे, पृथिवी धन धान्यसे युक्त हो और सम्पूर्ण मनुष्य नित्य उत्साहयुक्त सदा सुखी रहें ॥ २१ ॥

तथाच ।

अंगिरा ६, मंगलः स्वामी, चैत्रो वैशाखश्च मन्दः,
ज्येष्ठे वायुः प्रबलः, आपादे मेघवाहुल्यं, श्राव-
णादिमासत्रये रोगपीडा, कार्तिके सर्वान्निष्प-
त्तिः, पौषादिमासत्रये समता ॥ २२ ॥

भाषार्थ—अंगिरा संवत्सरका स्वामी मंगलः, इस संवत्सरमें चैत्र, वैशाखमासमें भाव मंदा, ज्येष्ठमासमें पवनवी प्रबलता, आपादमासमें मेघ बहुत पड़े, श्रावण, भाद्र, आश्विन इन तीन महीनोंमें रोग पीडा, कार्तिक मासमें सब अन्नोदी उपज होवे. पौष, माघ, फाल्गुण इन तीन महीनों में समभाव होवे ॥ २२ ॥

श्विने किञ्चिद्वर्षा, धान्यस्य त्रयोदशफदिया,
कलशिका १, कार्तिकादिमासचतुष्टये सर्वरसम-
हर्षता, फाल्गुनो मध्यमः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—प्रमोदनाम संवत्सरके स्वामी सूर्यनारायणजी हैं, इस सं-
वत्सरमें मध्यमता होवे, वर्षा थोड़ी होवे, मंडलमें मेघपाट पीडा हो, देशमें
उद्वास हो अर्थात् मनुष्योंका चित्त उचाट हो जावे, स्लेच्छवर्णका हो
हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, पर्वतके तटमें थोड़ी प्रजा रहे, तैलमें
शमें राजा और वैश्योंका घैर हो, चैत्रवैशाखमें महंगा भावहो, ज्येष्ठमासमें
रोगपीडा हो, आपाठ, श्रावण, भाद्रमासमें थोड़ी वर्षा हो, कुंवारेकी महीने
कुछ वर्षा होवे, अन्नकी तेरह फदिया को कलशिका एक, कार्तिक और
चार मास (कार्तिक, मार्गशिर, पौष, माघ) में सब रस महंगे हों
फाल्गुणमास मध्यम जानना ॥ १८ ॥

प्रजापति ५ संवत्सरफल ।

नीरंगाश्च जनाः सर्वे निरावाधा गतद्विपः ॥ बहु
क्षीरास्तथा गावो प्रजापत्यो वरानने ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अथ प्रजापति संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वती
कहते हैं कि हे वरानने. प्रजापतिनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण मनुष्य नि-
रंग हों. शत्रुगणवाचाहित हों. तथा गाँवें दुध बहुत दें ॥ १९ ॥

तथाच ।

प्रजापतिः ५, चन्द्रः स्वामी, द्वादशैव मामाः
शुभाः, अन्नमैद्यः, आश्विने रोगवाहुल्यम, धा-
न्यस्य कलशिका त्रिंशत् फदिया नाणकः, का-

तिंकादिमासद्वयं मन्दं, पौषादिमासत्रयेऽरिष्टम्;
कचिदुत्पातदर्शनेऽपि पीडा ॥ २० ॥

भाषार्थ—प्रजापतिनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, चारहों मास इस
वत्सरमें शुभ जानना, थोड़ी वर्षा हो, आश्विनमासमें रोग बढे, अन्नकी
लशिका तीस फदिया नाणा, कार्तिक आदि दो महीनेमन्द और पौष
आदि तीन महीने अरिष्ट, कुछ उत्पातभी दीख पड़े और पीडाभी होवे ॥२०॥

अंगिरा ६ संवत्सरफलम् ।

निरातंकं जगत्सर्वं धनधान्यसमन्वितम् ॥ अं-
गिराऽब्दे जनः सर्वो नित्योत्साहः सदा सुखी ॥ २१ ॥

भाषार्थ—अथ अंगिरानाम संवत्सरका फल कहते हैं । अंगिरानाम
वत्सरमें सम्पूर्ण जगत् आतंक (रोग) रहित होवे, पृथिवी
न धान्यसे युक्त हो और सम्पूर्ण मनुष्य नित्य उत्साहयुक्त सदा सुखी
हों ॥ २१ ॥

तथाच ।

अंगिरा ६, मंगलः स्वामी, चैत्रो वैशाखश्च मन्दः,
ज्येष्ठे वायुः प्रबलः, आपादे मेघबाहुल्यं, श्राव-
णादिमासत्रये रोगपीडा, कार्तिके सर्वान्निष्प-
त्तिः, पौषादिमासत्रये समता ॥ २२ ॥

भाषार्थ—अंगिरा संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें चैत्र, वै-
शाखमासमें भाव मंदा, ज्येष्ठमासमें पवनकी प्रबलता, आपादमासमें मेघ
हुत वर्षे, श्रावण, भाद्र, आश्विन इन तीन महीनोंमें रोग पीडा, कार्तिक
मासमें सब अन्नोकी उपज होवे, पौष मास में समता ॥ २२ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुमिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षा काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुखान्दिते ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अब श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं । श्रीमुखमें
स्वर्गमें सुमिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि, हे सु-
खान्दिते पावेंगी ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चैत्रे सर्वधान्यं महर्घ-
म, आपादकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे
गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः,
वणिकलोकापीडा, पश्चिमायां रौरवम्, पूर्वस्यां
पञ्चकम्, उच्चमुल्लतानस्थले प्रजापीडा, माद्र-
पदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रसादः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरके बीजमास
चैत्र धान्य महर्घ, आपादमास कृष्णमासमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमासमें
गोधूमा महर्घ, घृते धान्यमें दुगुणा लाभ होवे, वणिगें लोगोंसे पीडा
होवे, पश्चिमदिशमें रौरव (अफाक) होवे, पूर्वदिशमें पञ्चक आग
होवे, उच्चमुल्लतान स्थलमें प्रजाको पीडा होवे, माद्र-
पदमें वर्षा होवे, अश्विन, वसिष्ठ, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुन
इत्यादि मासोंमें प्रजा प्रसाद हो ॥ २४ ॥

माद्र ८ संवत्सरफलम् ।

वृद्धीगन्धवा गावां मथा बहुजनप्रदाः ॥

नन्दने सर्वमन्दाणि भावाब्धे न वगनने ॥ २५ ॥

भाषार्थ—अथ भावनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वती-
जीके प्रति वर्णन करें हैं कि, हे वरानने ! भावनाम संवत्सरमें गौर्वमें
दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल धरें और सब धान्य उत्पन्न होवें ॥ २५

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहु-
ला विशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुलतान
अयोध्यासु राजविद्वैरं, लोकपीडा, घृतगुडअ-
हिफेन पूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता,
चैत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः,
आषाढे श्रावणे किञ्चिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आ-
श्विने रोगबाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षा-
दिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी बृहस्पति, गौर्वें बहुत दूध देवें,
वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी बिकै, ऊंचे मुलतान और अयो-
ध्याके विषे राजा और वैश्योमें वैर हो, लोकपीडा हो, घी, गुड, अफीम,
सुपारी, मंजीठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुयें महंगी हो, चैत्रमासमें भाव सम
हो, वैशाखमास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आषाढ और श्रावणमासमें
कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ धरें, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे,
कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुण, ये चार मास
मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥

तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रिये ॥ २७ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षा काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुरवन्दिते ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अत्र श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं । श्रीमुखसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि, हे सुवन्दिते पार्वती ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चित्रे सर्वधान्यं महर्घ-
म्, आपादकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे
गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः,
वणिकूलोकपीडा, पश्चिमायां रौरवम्, पूर्वस्यां
परचक्रम्, उच्चमुलतानस्थले प्रजापीडा, भाद्र-
पदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रसादः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरके चित्रमासमें नय धान्य महँगे, आपादमास कृष्णपक्षमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमासमें गेहूँ महँगे होंगे, घी और धान्यमें दुगुना लाभ होवे, यनिये लोगोंको पीडा होवे, पश्चिमदिशामें रौरव (अकाल) होवे, पूर्वदिशामें परचक्र अर्थात् दानुनेनाका चढ़ाव हो । ऊँचे मुलतान स्थलमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा होवे, आश्विन, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनामें प्रजा प्रसन्न रहे ॥ २४ ॥

भाव = संवत्सरफलम् ।

बहुक्षीरास्तथा गावो मेघा बहुजलप्रदाः ॥
जायन्ते सर्वमस्यानि भावाऽब्दं च वरानने ॥ २५ ॥

भाषार्थ—अब भावनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीजीके प्रति वर्णन करें हैं कि, हे वरानने ! भावनाम संवत्सरमें गौशौमें दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल धरें और सब धान्य उत्पन्न होवें ॥ २५ ॥

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहु-
ला विशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुलतान
अयोध्यासु राजाविद्वेरं, लोकपीडा, घृतगुडअ-
हिफेन पूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता,
चैत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः,
आषाढे श्रावणे किञ्चिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आ-
श्विने रोगबाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षा-
दिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी गृहस्पति, गौशौ बहुत दूध दें, वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी बिके, ऊँचे मुलतान और अयोध्याके विषे राजा और वैश्योंमें वैर हो, लोकपीडा हो, घी, गुड, अफीम, सुपारी, मर्जाठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुयें महंगी हो, चैत्रमासमें भाव सम हो, वैशाखमास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आषाढ और श्रावणमासमें कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ धरें, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे, कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुण, ये चार मास मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥

तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रिये ॥ २७ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षां काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुखवन्दिते ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अथ श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं । श्रीमुखमें
स्वर्गमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि, हे सु-
खवन्दिते पार्वती ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चैत्रे सर्वधान्यं महर्घ-
म, आपाढकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे
गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः,
वणिकलोकर्पाडा, पश्चिमायां रौरवम्, पूर्वस्यां
पर्यक्रम, उच्चमुलतानम्भले प्रजापीडा, भाद्र-
पदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रसादः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरमें चैत्रमास
में सर्व धान्य महर्घ, आपाढमास कृष्णपक्षमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमास
में गोधूमा महर्घ होवे, घृत धान्यमें द्विगुणा लाभ होवे, वणिक लोगोंको पीडा
होवे, पश्चिमदिशामें रौरव (अफाक) होवे, पूर्वदिशामें पर्यक्रम आगे
वृद्धिमान होवे । उच्च मुलतान स्थलमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्र-
पदमासमें वर्षा होवे, आश्विन, कार्तिक, मार्ग, चैत्र, मघा, पश्चिम
दिशामें प्रजा प्रसाद रहे ॥ २४ ॥

भाद्र ८ संवत्सरफलम् ।

चतुर्दशमासा मायो मेघा वृद्धजन्मप्रदाः ॥

सर्वमन्त्रानि मावाच्य च वगनने ॥ २५ ॥

भाषार्थ—अत्र भावनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वती-
जोके प्रति वर्णन करें हैं कि, हे वरानने ! भावनाम संवत्सरमें गौशमें
दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल वर्षे और सब धान्य उत्पन्न होवे ॥ २५

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहु-
ला विशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुल्लतान
अयोध्यासु राजविह्वेरं, लोकपीडा, घृतगुडअ-
हिफेन मूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता,
चेत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः,
आपाटे श्रावणे किञ्चिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आ-
श्विने रोगबाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षा-
दिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी गृहस्वामि, गौमें बहुत दूध देवे,
वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी बिके, ऊंचे मुल्लतान और अयो-
ध्याके सिधे राजा और वैश्योंमें धर हो, लोकपीडा हो, पी. गुड, अहिम,
सुपारी, मजीठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुमें महंगी हो, वैशाखासमें भाव सम
हो, वैशाखास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आपाट और श्रावणमासमें
कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ वर्षे, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे.
कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, चैत्रमास. ये चार मस
मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥

तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रियं ॥ २७ ॥

भाषार्थ—अब युवानाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वती कहें हैं, हे प्रिये ! युवासंवत्सरमें सब जगत्में हाहाकार हो, सब बातें महंगे हो, तेल और घीका भाव एक हो जावे ॥ २७ ॥

तथाच ।

युवा ९, शुक्रः स्वामी, भूकंपः, उल्काभयं बहुलं, चैत्रादिमासद्वये उत्पातः ज्येष्ठे रोगः, आपाद-
शुक्लपक्षे महामेघः, श्रावणे वायुर्वाति, अन्नं
महर्घम्, भाद्रपदे चतुर्दशदिनेषु, महावृष्टिः, व्या-
कुलता. राजविग्रहः, उत्तरदेशे रौरवं दुर्भिक्षं, पृ-
र्वस्यां निष्फला कृषिर्दक्षिणस्यां वैरं विरोधः,
मार्गे विषमता, पश्चिमायां लोकपीडा, पश्चात्
दुर्भिक्षं, सर्वरसेषु समता, कार्तिकादिमासद्वयं
उत्तमं, पौषमाघौ मध्यमौ, फाल्गुणमासे किञ्चित्
क्लेशः ॥ २८ ॥

भाषार्थ—युवानाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें भूकंप उल्कापातका भय बहुत हो, चैत्र, वैशाखमासमें उत्पात हो, ज्येष्ठमासमें रोग हो, आपादशुक्लपक्षमें मेघ बहुत हो, श्रावणमासमें वायु बहुत घबराव अन्न महंगा हो, भाद्रमासमें चौदह दिन बहुत वर्षा हो, व्याकुलता अराजविग्रह हो, उत्तरदेशमें अकाल पड़े, पूर्वदिशामें खेती निष्फल दक्षिणादिशामें पस्यार बैर और विरोध होवे, मार्गमें विषमता हो, पश्चिम दिशामें मनुष्योंकी पीडा हो, पीछेमें अकाल पड़े, सब रसोंका भाव सम कार्तिक मार्ग ये दो मास उत्तम, पौष माघ मध्यम, फाल्गुणमासमें कुछ क्लेश होवे ॥ २८ ॥

धाता १० संवत्सरफलम् ।

निष्पत्तिः सर्वसस्यानां मध्यं वारि प्रकीर्तितम्
वृक्षं क्षीरगुडादीनां धाताऽद्वे च वरानने ॥ २८ ॥

भाषार्थ—अब धातानाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीसे
हे हैं, हे वरानने ! धातानामसंवत्सरमें सब धान्योंकी उपज हो, वर्षा
व्यस होवे, वृक्षोंमें फल, दूध, गुड़, आदि सामान्य उपजे, २८ ॥

तथाच ।

धाता १०, शनिः स्वामी, चैत्रवैशाखयोः सर्व-
धान्यमहर्घता, ज्येष्ठे मासे समता, आपादे अ-
ल्पमेघः, घृततैलयुगन्धरीकर्पासमंजिष्टमरिच-
पूगफलमहर्घता, श्रावणे सर्वधान्यमहर्घता, भाद्र-
पदे पुरुषा नपुंसकाः, पश्चिमायां महती मेघवर्षा,
सर्वधान्यमहर्घं, उत्तरदक्षिणयोर्मध्ये महामेघः,
परलोकपीडा, आश्विने रसकधातुमहर्घता, का-
र्तिके सर्वमन्नं समर्घम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ—धातानाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरके चैत्र वै-
शाखमासमें सब अन्न महंगे बिके, ज्येष्ठमासमें सब भाव होवे, आपाटमा-
समें थोड़ा जल वर्षे, शी, तेल, जुन्हरी, फणस, मजीठ, मिर्च, सुपारी ये
स्तुयें महंगी होवें, श्रावणमासमें सब अन्न महंगे बिके, भाद्रमासमें पुरुष
पुंसकभावकी प्राप्ति होवें, पश्चिमदेशमें बहुत मेघ वर्षें, सब अन्न महंगे हों,
उत्तर और दक्षिणमें मेघ घटत घृष्टि करें, परलोकपीडा हो, आश्विनमासमें
रसक धातु महंगे होवे, कार्तिकमासमें सब अन्न समने होवें ॥ ३० ॥

ईश्वर ११ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं कार्पासस्य महर्घता ॥
लवणं मधु गव्यं च त्वीश्वरे दुर्लभं प्रिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—अत्र ईश्वरसंवत्सरका फल कहें हैं। शिवजी पार्वतीसे
है कि, हे प्रिये ! ईश्वरनाम संवत्सरमें सुभिक्ष (सस्ता) हो, क्षेम
आरोग्यता हो, कपासका भाव महंगा हो जावे, लवण, शहत, ११५५१६
दुर्लभ होवें ॥ ३१ ॥

तथाच ।

ईश्वरः ११, राहुः स्वामी, उत्तरस्यां दुर्भिक्षं पूर्व-
स्यां सुभिक्षं, पश्चिमायां परस्परविरोधः, चैत्र-
वैशाखे अन्नमहर्घता, ज्येष्ठापादयोः अल्पमेघः,
परं सर्वत्र मेघः, परं सर्वधान्यमहर्घता, धान्ये द्वि-
गुणो लाभः, भाद्रपदे महान् मेघः, परं सर्ववस्त्र-
धान्यमहर्घता, आश्विने घृतमहर्घता, कार्तिके
रौरवं दुर्भिक्षं, मंजिष्टमरिचलवणएलापृगीफलै-
तद्वस्तुमहर्घता, मार्गशीर्षादिमासचतुष्टये अ-
तिदुर्भिक्षम्, धान्यं महर्घं मनुष्याणां रुंडामुंडा
दि भूमौ पतति ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—ईश्वरनाम संवत्सरका स्वामी राहु, उत्तरदिशामें दुर्भिक्ष
पूर्वदिशामें सुभिक्ष हो, पश्चिमदिशामें परस्पर विरोध हो, चैत्र वै-
शाखमें अन्नका भाव महंगा होवे, ज्येष्ठ और आषाढमासमें थोड़ी वर्षा
पाँछे सर्वत्र मेघ वर्षे पीछेको सब अन्न महंगा होवे, अन्नमें दुगुना लाभ

तदनन्तरमें घटुग घरी होवे, आश्विनमासमें घी महंगा होवे, कार्तिकासमें
हलअकाल पड़े और मजीठ, मिर्च, लवंग, इलायची, सुगरी ये वस्तुयें
हंगी होवे, मार्ग, पीप, माघ, फाल्गुण ये चारमास बहुत अन्न महंगा
होवे, मनुष्योंके गड मुंड आदि पृथिवीपर गिरें ॥ ६२ ॥

बहुधान्य १२. संवत्सरफलम् ।

अनीतिरतुला दृष्टिर्बहुधान्ये तु वत्सरे ॥

समृद्धिर्धान्याविविधैः सपुराणंऽखिलाधरे ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—अथ बहुधान्यसंवत्सरका फल कहे हैं । बहुधान्य नाम संव-
त्सरमें पृथिवीपर अनीति हो, वर्षा बहुत हो, विविध प्रकारके धान्यही
बढ़ि हों तथा सम्पूर्ण पृथिवीपर सुख होवे ॥ ६३ ॥

तथाच ।

बहुधान्यः १२, केतुः स्वामी, पुरुषा निर्वीर्याः, प-
श्चिमायां सुभिक्षं, परं सौख्यं सर्वदेशमध्ये दक्षि-
णस्यां विग्रहः, परं महाभयं, उत्तरपथे, सर्वदेशेषु
पीडा, पूर्वस्यां दुर्भिक्षं, अन्नसंग्रहः कार्यः, चैत्र-
वैशाखयोः अन्नं किञ्चिन्महर्घता, ज्येष्ठमासे च-
तुर्गुणो लाभः, श्रावणापादयोर्मघः अन्नं सर्वं मह-
र्घं, पङ्गुणो लाभः, भाद्रपदे अत्यन्तमेघाः, सर्व-
धान्यसमर्घता, आश्विने मेघः कनकधाराभिः,
कार्तिकादिमासचतुष्टये समता ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—बहुधान्य संवत्सरका स्वामी केतु, इस संवत्सरमें पुरुषनिर्वीर्य
(हीनवीर्य) होवें, पश्चिमदिशामें भाव सस्ता होवे, और सब देशोंमें
सुख होवे, दक्षिणदिशामें विग्रह होवे, उत्तरदेशोंमें महाभय होवे, सब

देशोंमें पीडा, पूर्वमें दुर्भिक्ष (अकाल), अन्न संग्रह करै, चैत्र वेशाखमें अन्न कुछ महंगा होवे, ज्येष्ठमासमें चौगुना लाभ होवे, श्रावण और आषाढमासमें मेघ वर्षा करै, अन्नका भाव महंगा होवे, छ गुना लाभ होवे, भाद्रपदमासमें बहुत वर्षा होवे, सब धान्य सस्ते होवें, आश्विनमासमें कनकधाराओंसे मेघ वृष्टि करै अर्थात् उत्तम वर्षा होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, इन चार महीनोंमें भाव सम होवे ॥ ६४ ॥

प्रमाथी १३ संवत्सरफलम् ।

राज्यनाशोऽथ दुर्भिक्षं तथा तस्करतो भयम् ॥

क्वचित्सौख्यं क्वचिदुःखं प्रवृत्तेऽब्दे प्रमाथिनि ॥६५॥

भाषार्थ—अब प्रमाथीसंवत्सरका फल कहते हैं । प्रमाथीनाम संवत्सर प्रवृत्त होनेमें राज्यनाश, दुर्भिक्ष, तथा चोरोसे भय होवे, कहीं सुख, और कहीं दुःख होवे ॥ ६५ ॥

तथाच ।

प्रमाथी १३, रविः स्वामी, आषाढे श्रावणे च अल्पमेघः, भाद्रपदे पंचम्यां किञ्चिन्मेघः, चैत्रे गोधूमयुगन्धरीमहर्घता, वेशाखे ज्येष्ठे वा सर्वत्र धान्यमहर्घता, परं कृष्णसप्तम्याममायां च महामेघः, परं अतीवारिष्टं, कार्तिके दिन २१ मास ५ सर्वान्नमहर्घता, सर्वरसमहर्घता, मंजिष्टपृगी-फलहिंगुलकाश्मीरजन्मअगरूपट्टसूत्रनारिकेल एतद्वस्तुमहर्घता, ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—प्रमाथीमंजुनगरका स्वामी रवि, आषाढ और श्रावणमासमें वर्षा होती होवे, भाद्रपदमासमें पंचमीके दिन कुछ वर्षा होवे, प्रमासमें

गेहूं जुन्हरीका भाव महंगा होवे, वैशाख अथवा ज्येष्ठमासमें मर्चत्र अन्न महंगा हो जावे, कृष्णपक्षकी सप्तमी और अमावसमें बहुत वर्षा होवे, उपरान्त बहुतही अरिष्ट जानना, कार्तिकमासमें इष्टीम दिन मास पांच पर्यन्त सब धान्योंका भाव महंगा होवे, और सब प्रकारके रस महंगे होंगे, मजीठ, सुपारी, हिंगुल, केशर, अगर, कपडा, सूत, नारियल, ये वस्तुयें महंगी होवे ॥ ६६ ॥

विक्रम १४ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥

हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे विक्रमाब्दे वरानने ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—अथ विक्रमनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीजीसे वर्णन करें हैं कि, हे वरानने ! विक्रमसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, समस्त व्याधियोंसे रहित सब मनुष्य हृष्टपुष्टशरीर होंगे ॥ ६७ ॥

विक्रमः १४, चन्द्रः स्वामी, राजाप्रजासौख्यं, अतिमेघः, चैत्रवैशाखे महधम्म, अन्ने द्विगुणलाभः, परं वैशाखे म्लेच्छभयात् नगरं उद्वस्तम्, अरण्ये वासः, वैशाखे दिन १० महान् वायुः, भूमिकंपः, प्रजापीडा, ज्येष्ठमासे दुर्भिक्षं, आपादे प्रलयः, श्रावणभाद्रपदे महामेघः, प्रजासुखं, सर्वधान्यं समधम्म, सर्ववस्तुसमता, आश्विने रोगः, सर्वरससमता, कार्तिकादि ५ मासेषु सर्वत्रान्नसमता ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—विक्रमनाम संवत्सरका राजा चन्द्रना, इस संवत्सरमें राजा सुखी होंगे, वर्षा बहुत होंगे, चैत्र वैशाखमासमें अरिष्ट भाव

महंगा होवे, जिससे दूना लाम होवे, परन्तु पीछेसे वैशाखमासमें म्लेच्छों
 मयसे नगर उजाड होवे, वनमें जाकर मनुष्य वसें, वैशाखमें दश दि
 बहुत वायु चले, भूकम्प होवे, प्रजाको पीडा होवे, ज्येष्ठमा
 दुर्भिक्ष होवे अर्थात् अन्न महंगा विके, आपादमासमें प्रलयसमान हो
 होवे, श्रावण और भाद्रपदमासमें बहुत वर्षा होवे, प्रजाको सुख हो, स
 धान्योंका भाव सस्ता होवे, सब वस्तुयें समान भावसे प्राप्त होवे, अ
 नमासमें रोग होवे, सब रस समभावसे विकें, कार्तिक, मार्ग, पौष, म
 फाल्गुण ये पांच मास अन्न समभावसे विके ॥ ६८ ॥

वृष १५ संवत्सरफलम् ।

कौट्रवाः शालिमुद्गाश्च यवाश्च द्विदलं तथा ॥

मुभिक्षं वरधान्यं च वृषाब्दे शुभलोचने ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—अथ वृषनाम संवत्सरका फल कहने हैं । शिवजी पा
 ने वरदान करें हैं कि, हे शुभलोचने ! (मुनयने) वृषनाम संवत्सर
 में दाली, धान, मूंग, जौ, तथा दाल और उत्तम अन्न (गेहूँ चावल आदि)
 ये सब उपलब्ध होंगे ॥ ६९ ॥

तथाच ।

वृषः १५, भासः म्यामी, वर्षा बहुला, परं नृपाणां
 पीडा, छत्रभंगः, ज्येष्ठे अन्नममर्चता, धान्ये त्रि-
 गुणो लामः, आपादे अन्नमद्वर्धता, श्रावणे म-
 दान मेघः, आश्विने सर्वधान्यममता, घृतमद्वर्ध-
 ना, पश्चिमैर्द्ध मर्द्ध, देशा उद्दामाः, पश्चिमाया
 किञ्चित् दुर्भिक्षं, आश्विने मेघः, सर्ववस्तुसमर्ध-
 ता, कार्तिके किञ्चिदग्निः, मार्गशीर्षे दीःस्थः, पौ-
 षादिमासत्रये मर्द्ध, परं मध्यमः समयः ॥ ७० ॥

भाषार्थ—वृषनाम संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें वर्षा बहुत होवे, परंतु राजाओंको पीडा हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, ज्येष्ठमासमें अन्न सस्ता बिके, धान्यमें तिगुना लाभ होवे, आषाढमासमें अन्न महंगा बिके, श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें सब अन्न समभाव रहे, धी महंगा हो जावे, पीछेका अन्न (रघ्वी) महंगे भावसे बिके, देशमें मनुष्य उजाड़ जावें, पश्चिमदिशामें कुछ दुर्भिक्ष होवे आश्विनमासमें भेष वर्षा करें, सब वस्तु सस्ते भावसे बिके, कार्तिकमासमें कुछ अरिष्ट फल होवे, मार्गशीर्षमासमें मनुष्योंमें असावधानता होवे, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन इन तीन महिनोंमें अन्न महंगा होवे, पीछेसे समय सध्यम होवे ॥ ७० ॥

चित्रभानु १६ संवत्सरफलम् ॥

चणका मुद्गमापाश्च कंगुन्यश्च तथैव च ॥

विचित्रा जायते वृष्टिश्चित्रभानो न संशयः ॥७१॥

भाषार्थ—अब चित्रभानु संवत्सरका फल कहे हैं । चित्रभानुनाम संवत्सरमें चणा, मुंग, उडद, कंगुनी, ये बहुत उपजें, और निस्सन्देह वर्षाभी बहुत होवे ॥ ७१ ॥

तथाच ।

चित्रभानुः १६, बुधः स्वामी, लोकः सुखी, पूर्वे अल्पमेघः, पश्चात् महती वर्षा, धान्यघृतसमता, वैशाखे अन्नं समभावेन, ज्येष्ठादित्रये महान् मेघः, सर्वधान्यमहर्घता, भाद्रादिमासद्वये रोगार्तिः, कार्तिके महामारीभयम्, मार्गशीर्षद्वयेऽरिष्टं, माघद्वये सारोगप्रजा, परं सर्वान्नरससमर्घता, वैशाखज्येष्ठयोः रोगपीडा, अन्नं महर्घं, क्रयाणक सर्ववस्तुमहर्घता ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—चित्रभानुनाम संवत्सरका स्वामी बुध, । लोक मुर्खी हो
 पहले थोड़ी वर्षा हो, पीछेसे बहुत वर्षा होवे, अन्न और धीका भाव
 होवे, वैशाखमासमें अन्न समभावसे विके, ज्येष्ठ, आपाठ, श्रावणमासमें
 बहुत वर्षा होवे, सब धान्य महंगे होवे, भाद्र और आश्विनमासमें गेहूँ
 डा हो, कार्तिकमासमें महामारीसे भय होवे, मार्गशिर, पौषमासमें
 रिष्ट जानना, माघ फाल्गुणमासमें प्रजारोगसे पीडित होवे, पशु
 अन्न और रसभावमें सस्ते होवें, वैशाख और ज्येष्ठ इन दोनों महीनों
 रोगपीडा हो, अन्न महंगा विकें, खरीद करनेवाली सब वस्तुओं
 (किराणाका) भाव महंगा होवे ॥ ७२ ॥

सुभानु १७ संवत्सरफलम्

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं स्वस्थं च निरुपद्रवम् ॥
 व्यवहारे भवेच्छ्रेष्ठः सुभानौ च वरानने ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—अब सुभानुसंवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीजी
 प्रति वर्णन करें हैं, कि हे वरानने ! सुभानुनाम संवत्सरमें सुभिक्ष (मंगल)
 क्षेम, आरोग्यता, स्वास्थ्यता, निरुपद्रव होवे, अर्थात् समय सुकाल, म
 प्योको सुख और किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होवे, तथा पृथिवीपर
 बहार उत्तम होवे, ॥ ७३ ॥

सुभानुः १७, गुरुः स्वामी, पूर्वस्यां दुर्भिक्षं, लोकः
 मुखी, चेत्रे महर्घता, वैशाखज्येष्ठयोः रोगपी-
 डा, गोधूमसमता, युगन्धरी च, सर्ववस्तुम-
 हर्घ घृतसमता, कार्तिकादिमासद्वयं मध्यमम्,
 राजपीडिता लोकाः पौषादिमासत्रये रोगपीडा
 भयंकरा, परस्परं विरोधः ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—सुभानुनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें पूर्व और
 भैक्ष होवे, लोक सुखी हो, चैत्रमासमें महंगा भाव हो, वैशाख
 १२ ज्येष्ठमासमें रोगपीडा हो, गेहूँका भाव सम हो, जुन्हरीका भावभी
 १ हो, सब वस्तु महंगी हो, धौका भाव सम हो, कार्तिक मार्ग
 दो महीना सम हो, राजपीडासे लोक युक्त हो, पौष, माघ, फाल्गु-
 में रोगपीडा भयंकर हो और परस्पर विरोध होवे ॥ ७४ ॥

तारण १८ संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं जायते घोरं चोरोपद्रवसंकुलम् ॥

अनावृष्टिः समाख्याता तारणे वरवर्णिनि ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—अब तारणसंवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीसे कहें
 , कि हे वरवर्णिनि ! तारणनाम संवत्सरमें घोर दुर्भिक्ष हो अर्थात् बड़ा
 काल पड़े, चोरोंसे बहुत भय हो और उपद्रव हो, तथा वर्षा नहीं
 पड़े ॥ ७५ ॥

तथाच ।

तारणः १८, शुक्रः स्वामी, अतिवायुः परस्परं
 युद्धं बहुलं, चैत्रे रोगः, वैशाखे सर्ववस्तुसमर्धं,
 ज्येष्ठे महान् वायुः, आपादे अल्पवृष्टिः, श्रावणे
 सप्तमीतो नवमीतो वा वर्षा, भाद्रपदे एकाद-
 श्यां अत्यन्तमेघः, आश्विने अन्नं महर्धं, सर्व-
 रससंग्रहः कार्यः, कार्तिके महर्धता, मार्गे विग्रहः,
 धान्यं महर्धं, योगिनीपुरे महाभयं, राज्ञां विरोधः,
 म्लेच्छभयम्, पौषे युद्धं, पश्चिमायां धान्यं महर्धं,
 उत्तरपथे महादुर्भिक्षं, फाल्गुणमासो मध्यमः,

तस्करभयं, अन्नं महर्घं, विग्रहः, राजविराधात्
महत्पातकं, पूर्वस्यां दक्षिणस्यां वा वने वासः, प-
श्चिमायां महादुर्द्धं, परं चान्यवस्तुसमर्घम् ॥७३॥

भाषार्थ—तारणसंवत्सरका शुक्र स्वामी, इस संवत्सरमें वायु
चलै, परस्पर बहुत युद्ध होवे, चैत्र मासमें रोग हो, वैशाखमें सब
सस्ती हो, ज्येष्ठमासमें वायु बहुत बहे, आषाढमासमें थोड़ा बर-
शावणमासमें सप्तमीसे वा नवमीसे वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें
दिन बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें अन्न महंगा हो, सत्र सत्संका
करै, कार्तिकमासमें अन्न महंगा होवे, मार्गमासमें विग्रह (युद्ध)
अन्न महंगा होवे, योगिनीपुरमें महामय हो, राजाओंसे विरोध हो,
भय हो, पौषमास में युद्ध हो, पश्चिमदिशामें अन्न महंगा हो, उषा
महादुर्निक्षहो अर्थात् अकाल पड़ै, फाल्गुणमासमें मध्यम भाव हो,
भय हो, अन्न महंगा हो, राजाओंके विरोधसे विग्रह हो, मह
हो, पूर्व और दक्षिणदिशामें मनुष्य वनवासी हो, पश्चिममें बड़ा युद्ध
उपगन्त सब वस्तु सस्ती होवे, ॥ ७६ ॥

पार्थिव १९ संवत्सरफलम् ।

बहुमस्यानि जायन्ते सर्वदेशेषु सुन्दरि ! ॥

सौराष्ट्रे त्याटदेशेषु पार्थिवे वत्सरे तथा ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—अब पार्थिवनाम संवत्सरका फल कहे हैं । शिवजी प
जीने कहे-हैं कि हे सुन्दरि ! पार्थिवसंवत्सरमें मग्यगान्य सब प्राप्ति
होवे, और सौराष्ट्र व त्याटदेशमेंभी धान्यकी उपज अच्छी हो ।

तथा च ।

पार्थिवः १९, शनिः स्वामी, उत्पाता बहुलाः
चैत्रे वैशाखे च महर्घता, सर्वता विग्रहः, ज्येष्ठ

रोगपीडा, यद्वा नृपयुद्धं, आपादे अल्पमेघः धान्यं महर्घं, महावायुः, श्रावणे खंडटाप्टेः, भाद्रपदे नैर्ऋतवायुः, अन्नमहर्घता, आश्विने वृष्टिः, गोधूमयुगन्धरीमुद्गादिमहर्घता, कार्तिकादिद्वये रोगपीडा, पौषमाघयोर्महर्घता, फाल्गुणे समता ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—पार्थिवनाम संवत्सरका स्वामी शनि है, इस संवत्सरमें बहुत सात होवे, चैत्र और वैशाखमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, सत्र ओ-
 विग्रह (लड़ाई झगडा) होवे, ज्येष्ठमासमें रोगपीडा हो, अथवा
 जाजोंमें युद्ध हो, आपादमासमें वर्षा थोड़ी हो, अन्नका भाव महंगा हो,
 पु बहुत बहे, श्रावणमासमें वर्षा खंडित होवे, भाद्रपदमासमें नैर्ऋतदि-
 की वायु बहे, अन्नका भाव महंगा होवे, आश्विनमासमें वर्षा होवे और
 हूँ, जुन्हरी, मूंग आदिका भाव महंगा हो, कार्तिक मार्ग इन दो महिनोमें
 गसे पीडा होवे, पौष और माघमें भाव महंगा होवे, फाल्गुणमासमें
 व सम रहे ॥ ७८ ॥

व्यय २० संवत्सरफलम् ।

अल्पा च जायते वृष्टिर्धान्यमौषधिपीडितम् ॥

सस्यं भवति सामान्यं व्यये संवत्सरे प्रिये ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—अथ व्ययसंवत्सरका फल कहे हैं । शिरजी पार्वतीजीसे
 हैं है कि हे प्रिये ! व्ययनाम संवत्सरमें वर्षा थोड़ी होवे, धान्य जलरूप
 औषधिसे पीडित हो, और सस्य (वृणधान्य) की उपज सामान्य होवे ॥ ७९ ॥

तथा च ।

व्ययः २०, राहुः १५, अनावृष्टिः, दुर्भिक्षं रौ-
 खम्, चैत्रो मध्यमः, वैशाखद्वये महर्घता, देश-

विग्रहः, आपादे अल्पमेघः, परं महर्घता, श्रावणे
 दुर्भिक्षं, मध्यदेशे विग्रहः, दक्षिणस्यां प्रजापीडा,
 भाद्रपदे खंडवृष्टिः, अन्नमहर्घता, आश्विने रोग-
 पीडा, पूर्वस्यां विग्रहः, गोधूममहर्घता, मध्यमः
 समयः, कार्तिके रोगपीडा, मार्गमासे अन्नमह-
 र्घता, परं युद्धं किंचित्, पौषादिमासद्वयं अति-
 महर्घता, फाल्गुणे समता ॥ ८० ॥

भावार्थ—व्ययनाम संवत्सरमें राहु स्वामी, अनावृष्टि और दोरु
 हो अर्थात् महा अकाल पड़े, चैत्रमास मध्यम होवे, वैशाख, ज्येष्ठ
 तथा भाव महंगा हो, देशमें विग्रह फैले, आपादमासमें वर्षा घंटी
 पीछे अन्न महंगा हो, श्रावणमासमें दुर्भिक्ष हो, मध्य देशमें विग्रह (
 लतादि) होवे, दक्षिणमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्रमासमें वर्षा
 होवे, अन्न महंगा होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, पूर्वदिशामें विग्रह
 भंडुका भाव महंगा होवे, समय मध्यम होवे, कार्तिकमासमें रोग
 हो, मार्गमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, पीछे कुछ युद्ध होवे
 पौष इन दो महीनोंमें बहुत महंगा भाव हो जावे, और फाल्गुण
 सम होवे ॥ ८० ॥

यदि मन्मथजीकी उपास श्रीगुरु गणान हई । अब विष्णुजी श्रीगुरु प्रिये ॥

मन्मथजी २१ संवत्सराफलम् ।

तोयपूणां भवेद्वात्री मन्मथान्यैः प्रपूरिता ॥

दुर्मिथं मन्मथ मन्मथ मन्मथजिह्वाम् प्रिये ॥ ८१ ॥

भावार्थ—अब मन्मथजीकी उपास श्रीगुरु गणान हई । अब विष्णुजी श्रीगुरु प्रिये ॥
 तोयपूणां भवेद्वात्री मन्मथान्यैः प्रपूरिता ॥ ८१ ॥
 दुर्मिथं मन्मथ मन्मथ मन्मथजिह्वाम् प्रिये ॥ ८१ ॥

तथाच ।

सर्वजित् २१, ब्रह्मास्वामी, चैत्रादिमासत्रयं सम-
 र्धम्, आपादे अल्पमेघः, श्रावणे महामेघः सर्व-
 धान्यरसवस्तुसमर्धता, नवीनमुद्रोदयः, राजवि-
 ग्रहः परस्परं, अन्नमहर्धता, भाद्रपदे दिन ५ पश्चा-
 न्मद्वती वृष्टिः, आश्विने रोगार्तिः, सर्वधान्यसम-
 र्धता, कार्तिके प्रजासुखं, अन्नसमर्धता, मार्गशी-
 र्षमासे उत्तमौ, सर्वलोकसुखम्, माघमासे मेघः
 दिन ३, मंजिष्टामुहरामरिचशुंठीपिप्पलीपूगी-
 फलादिमहर्धता, फाल्गुणे सर्ववस्तुरससमता,
 उत्तमः समयः ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—सर्वजित्संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, इन
 हीनोंमें अन्नका भाव सस्ता हो, आपादमासमें वर्षा थोड़ी होवे, श्रावणमा-
 समें बहुत वृष्टि होवे, सब प्रकारके अन्न और रसवस्तुओंका भाव सस्ता
 हो, नवीन मुद्रा प्रचलित होवे, राजाओंमें परस्पर विग्रह होवे, अन्न महं-
 गा हो, भाद्रपदमासमें पांच दिन पीछे बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें
 रोगपीडा हो, सब अन्न सस्ते हो, कार्तिकमासमें प्रजाको सुख हो,
 अन्न सस्ता होवे, मार्गशीर्ष और पौषमास उत्तम हो, सब लोकको सुख
 हो, माघमासमें मेघ दिन तीन वर्षों, और मजीठ, मुहरा, मिर्च, सोंठ,
 पेरि, सुपारी आदिका भाव महंगा होवे, फाल्गुणमासमें सब वस्तु और
 सोंका भाव सम हो, समय उत्तम होवे ॥ ८२ ॥

सर्वधारी २२ संवत्सरकाफलम् ।

ज्वरोग्निः प्रवलः प्रोक्तो धान्यमौषधिपीडितम् ॥
 सर्वधारीवत्सरे च कष्टं लोके प्रजायते ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—अब विकृतसंवत्सरका फल कहें हैं, श्रीशिवजी कहें हैं, कि हे सुशोभने ! विकृतनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् डेरे डित हो, सर्वदा टीढ़ी आदिसे हानि होवे, वर्षासमयमें वर्षा थोड़ी होवे।

तथाच ।

विकृतः २४, रविः स्वामी, अकाले वर्षा, राजवि-
ग्रहः, देशोद्वासः, मरुधरायां दुर्भिक्षं, चैत्रादिमास
४ महर्घता, श्रावणे मासद्वये मेघवृष्टिर्नास्ति,
रौरवं दुर्भिक्षं, आश्विने उत्पाता भूमिकम्पः,
कार्तिके छत्रभंगः, सुवर्णरूप्यताम्रकांस्यसं-
घातुसमघंता ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—विकृतनाम संवत्सरका स्वामी रवि, इस संवत्सरमें वर्षा होवे, राजाओंसे विग्रह हो, देशस्थजनोंका उद्वास हो, मरु-
दुर्भिक्ष (अकाल) होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ इन चार मासोंमें
अस मरगा होवे, श्रावण भाद्र इन दो महीनोंमें मेघ नहीं बरे और
दुर्भिक्ष होवे, आश्विनमासमें उत्पात और भूमिकम्प होवे, कार्तिकमें
छत्रभंग होवे, सुवर्ण, चांदी, तांबा, कांसा सब प्रकारके धातुओंका
घटका होवे, ॥ ८८ ॥

अथ २५ मंत्रमण्डलम् ।

अन्त्योदकास्तथा मेघा वर्षन्ते खंडमंडले ॥

निष्पानिः सर्वमस्यानां सर्वं मंत्रमंत्रे प्रिये ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—अब अन्त्योदक संवत्सरका फल कहें हैं, । शिवजी कहें हैं, कि हे प्रिये ! अन्त्योदक संवत्सरमें वर्षा थोड़ी होवे, मेघमें मेघ नहीं बरे, सब प्रकारके धातुओंकी उत्पात होवे, ॥ ८९ ॥

तथाच ।

त्वरः २६, चन्द्रः स्वामी चैत्रादिमासपंचके मह-
ती वर्षा, सुभिक्षं, प्रजासुखं, सर्वलोकं गुरूणां-
महत्वं, पश्चिमायां सुभिक्षं, आश्विने अन्नसमता,
रसमहर्घता, मंजिष्ठासुहागादिवस्तुतो मरुधरायां
त्रिगुणो लाभः, म्लेच्छक्षयः, परं रोगपीडा,
सर्वधान्यनिष्पत्तिः प्रजासुखम्, कार्तिकादिमास
पंचकं मध्यं, सर्वधान्यमर्घता ॥ ९० ॥

भाषार्थ—खरनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा । इस संवत्सरमें चैत्र
दिशाख, ज्येष्ठ, आशाढ, श्रावण इन महीनोंमें बहुत वर्षा होवे, अन्नका
भाव सस्ता होवे, प्रजाको सुख होवे, सब लोकमें गुरुओंका महत्त्व हो, पश्चि
म दिशामें अन्नका भाव सस्ता होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सम
होवे, रसका भाव महंगा होवे, मंजीठ, सुहागा इन वस्तुओंसे मरुभूमिमें
तेजुना लाभ होवे, म्लेच्छोंका क्षय होवे, उपरान्त रोगपीडा होवे, सर्व धा-
न्योंकी उत्पात्ति होवे, प्रजाको सुखहो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण
इस पांच महीनोंमें भाव मध्यम होवे, सर्व धान्य सस्त भावसे बिके ॥ ९० ॥

नन्दन २६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सौख्यं भवति शोभनम् ॥

बहुक्षीरघृता गावो नन्दने नन्दिताः प्रजाः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—अब नन्दन नामसंवत्सरका फल कहें हैं । नन्दन संवत्सरमें
सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, और सुन्दर सुख होताहै, तथा गौओंमें बहुत दूध
और घी होवे, तथा प्रजा आनन्दित रहे, ॥ ९१ ॥

तथाच ।

नन्दनः २६, भौमः स्वामी, प्रजासुखं, सर्वधान्यसमता, चैत्रे वैशाखे च धान्यं महर्घं, प्रचंडवायुः ज्येष्ठेऽपि तथैव महर्घं, आपादे महामेघः, श्रावणे अल्पवर्षा, भाद्रपदे महाघृष्टिः, आश्विने सुभिक्षं, राजा प्रजा च सुखी, कार्तिके सुभिक्षं, अन्नसमता, मार्गशीर्षादिमास ४ महर्घता, मंजिष्ठलवणमहर्घता ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—नन्दननाम संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें प्रजा सुखी रहे, सब धान्योंका भाव सम होवे, चैत्र वैशाखमें अन्नका भाव महंगा, प्रचलतासे वायु बहे, ज्येष्ठमेंभी उसी प्रकार अन्न महंगा रहे, आपादमें वर्षा बहुत होवे, श्रावणमें थोड़ी वर्षा होवे, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सरता होवे, राजा प्रजा सुखी रहे, कार्तिकमासमें अन्न सरता होकर मध्यम भाव हो जावे. मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनोंमें अन्न महंगा होवे, मंजीठ लवणभी महंगा बिके ॥ ९२ ॥

विजय २७ संवत्सरफलम् ।

क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः शूद्राश्च नटनर्तकाः ॥

पीड्यन्ते प्रचुरं रोगं विजयाब्दे तु सुन्दरि ! ॥ ९३ ॥

भाषार्थ—अयं विजयनाम संवत्सरका फल कहें हैं, । शिवजी पारंगत जीमें कहे हैं कि हे सुन्दरि ! विजयनाम संवत्सरमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नट, नर्तक ये सब बहुत रोगोंमें पीड़ित होंगे ॥ ९३ ॥

तथाच ।

विजयः २७, स्वामी बुधः, मवंदेशेषु महापीडा, राज्ञां परस्परविरोधः, अन्नं महर्घं, तुच्छजलम्,

मही लोहितपायिनी, विप्रपीडा, गोमहिषाश्व-
हस्तिपीडा, चैत्रमध्ये महती वर्षा, वैशाखे ज्ये-
ष्ठे च अन्नमहर्घता, आपादे श्रावणे अल्पमेघः,
भाद्रपदे वर्षा वर्षन्ति, आश्विनमध्ये वणिज्जन-
पीडा, अन्नमहर्घता, फाल्गुणे समता ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—विजयनाम संवत्सरमें स्वामी शुभ, इस संवत्सरमें मघ देशों-
में महापीडा, राजाओंमें परस्पर विरोध, असका भाव महंगा, बहुत थोड़ी
वृष्टि हो, पृथिवी पर लड़ाईमें लोहगिर जावे, व्याघ्रोंको पीडा, गौ,
भैंसे, घोडा, हाथी इनको पीडा हो, चैत्रमासमें बहुतही वर्षा होवे, वैशाख
और ज्येष्ठमासमें असका भाव महंगा होवे, आपाद श्रावणमें थोडा जल
हो, भाद्रमासमें वर्षा होवे, आश्विनमासमें वणिकजनोंको पीडा होवे,
नमका भाव महंगा होवे और फाल्गुणमासमें सम रहे ॥ ९४ ॥

जय २८ संवत्सरफलम् ।

मानुषा दुःखसंकष्टे जगद्वन्द्वसमाकुलम् ॥

सुभिक्षं स्वस्थता राष्ट्रे जये चैव वराननं ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—अब जयनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिरजी पार्वतीने
कहे हैं, कि हे वरानने ! जयनाम संवत्सरमें मनुष्य बचने दुःखी होवे,
राज्यमें लड़ाईका उपद्रव हो, सुभिक्ष हो, राष्ट्रमें स्वास्थ्यता होवे ॥ ९६ ॥

तथाच ।

जयः २८, एरु स्वामी, महामुभिक्षं, चैत्र मह-
र्घता, वैशाखज्येष्ठयोः समर्घता, आपादे मेघ-
वर्षा, अन्नं महर्घं, श्रावणे दिन २४ महामेघः,
भाद्रपदे दिन ७ मेघवृष्टिः, आश्विने अन्नं स-

मर्धम्, स्वर्णादिधातुसमता, कार्तिकादिमासैः
चक्रमुत्तमम्, अन्नसमता, अन्यवस्तुमर्धता,
परं मोक्तिकादिप्रवालकमर्धता, मार्गशीर्षे
रोगबहुलता, वणिक्पीडा, उच्चमुलतानदेशे
रोगपीडा, छत्रभंगः, लोका दुःखिताः ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—जयनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें अक्षरका भाव
बहुत सस्ता होवे, चैत्रमें महंगा भाव हो, वैशाख ज्येष्ठमें सस्ता भाव हो,
आश्विमासमें वृष्टि होवे, अन्न महंगा होवे, श्रावणमासमें २४ दिन बुरा
वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें सात दिन मेघवृष्टि होवे, आश्विनमासमें अन्न
सस्ता माला होवे, मृगश आदि गानुका भाव सम हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ
कागुन ये पांच महीने उत्तम होवे, अक्षरका भाव सम हो, अन्य वर्षा
महीने हो, मोरी, भूंगा आदिकोंका भाव महंगा हो, मार्गमासमें रोग
बहुलता होवे, वणिक्जनोंको पीडा होवे, उच्च मुलतानदेशमें रोगपीडा हो
दिगी, छत्रभंग होवे, लोक दुःखित होवे ॥ ९६ ॥

मन्मथ २९ मंत्रमरफलयम् ।

तृप्तधान्यं क्षयं याति कोद्रवानां महर्धना ॥

व्यवदां तु जायन्ते मन्मथे दुःखिताः प्रजाः ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—अथ मन्मथनाम संवत्सरका कष्ट कहते हैं, मन्मथसंवत्सर
संवत्सर (३१ भाव अर्ध) क्षय होवे, कोद्रोंका भाव महंगा होवे, व्यवदा
संवत्सर संवत्सर दुःखित होवे ॥ ९७ ॥

नभाव ।

मन्मथः २९, गुरुः स्वामी, राजविरोधः, पूर्वदेश
कोद्रोंका, परं अनिवृष्टिः, रोगबहुल्यम्, धान्य-

संग्रहः कार्यः, चैत्रे वर्षा, भूमिकंपः, वैशाखे सम-
 र्घता, ज्येष्ठापाढयोर्महर्घता, धान्ये पङ्गुणो लाभः,
 श्रावणे अल्पमेघाः, भाद्रे महामेघाः दिन २४,
 आश्विने रोगपीडा, अन्नं महर्घं, कार्तिके सुभि-
 क्षं, अन्नसमता, मार्गशीर्षादिमासत्रये अन्नं सम-
 र्घं, लोके सुखम्, राज्ञां सुखम्, सर्वधातुसमर्घता,
 वस्त्रमहर्घता ॥ ९८ ॥

भाषार्थ—मन्मथनाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें राजविरो-
 ध होवे, पूर्वदेशमें लोकोंको पीडा हो, पीछेसे बहुत वर्षा होवे, रोग बढ
 जावे, अन्नका संग्रह करे, चैत्रमें वर्षा हो, भूकंप होवे, वैशाखमें अन्नका
 भाव सस्ता हो, ज्येष्ठ और आपादमासमें सब वस्तुओंका भाव महंगा हो,
 अन्नमें छःगुना लाभ होवे, श्रावणमें थोड़ी वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें चौ-
 बीस दिन बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, अन्न महंगा हो-
 कार्तिकमासमें भाव मदा होवे, मार्ग, पौष, माघ इन तीन महीनोंमें अन्न-
 का भाव सस्ता होवे, लोक सुखी हो, राजाको सुख हो, सब प्रकारकी
 धातुओंका भाव सस्ता, और वस्त्र महंगे हो जावे ॥ ९८ ॥

दुर्मुख ३० संवत्सरफलम् ।

पीड्यन्ते सर्वधान्यानि वृष्टिर्नैव प्रजायते ॥

दुर्भिक्षं दुर्मुखे नित्यं मयाऽऽख्यातं सुलोचने ॥९९॥

भाषार्थ—अब दुर्मुखनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीजीसे
 कहें हैं कि हे सुलोचने ! दुर्मुखनाम संवत्सरमें प्रजागण सम्पूर्ण धान्योंके
 तथा वृष्टिके न होनेसे पीडाको प्राप्त होवे और सदा दुर्भिक्ष (अन्न
 गा) रहे ॥ ९९ ॥

तथाच ।

दुर्मुखः ३०, शनिः स्वामी, अल्पमेघाः, महती
 लोकानां पीडा, सरोगाकुलं, उत्तरापथे दुष्का-
 लः, पश्चिमायां महापीडा, पूर्वदेशे सुभिक्षं, अ-
 न्यत्र महर्घम्, क्षत्रियेषु नकुलसर्पवद्वृषो गृह्यते,
 चैत्रादिमासत्रये महर्घता, आपादे अल्पमेघः,
 श्रावणे प्रचंडवायुः, सर्वधान्यमहर्घता, भाद्रपदे
 खंडवृष्टिः, आश्विने रोगपीडा, सर्वे धातवः सम-
 र्घाः, कार्तिकादिमासेषु ४ रौरवं दुर्भिक्षम्, फा-
 ल्गुणे रोगपीडा, राज्ञां परस्परं विरोधः, लो-
 कपीडा ॥ १०० ॥

भाषार्थ—दुर्मुखा नाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें वर्षा होवे, लोकोंको बहुत पीडा हो, रोगसे प्रजा पीडित होवे, उत्तर अप-
 अकाल पड़ जावे, पश्चिममें बहुत पीडा होवे, पूर्वदेशमें भाद्र सत्ता होवे,
 अन्यथा भाव महंगा होवे, क्षत्रियोंमें न्याले और सांपके समान द्वेषमय
 पड़ जावे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन तीन महीनोंमें भाव महंगा होवे,
 आपाटमें वर्षा थोड़ी होवे, श्रावणमें वायु बहुत बहे, सब धान्य महंगा होवे,
 भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा होवे, सब प्रकारके
 धातुओंका भाव समान होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, भाद्र इन चार महीनोंमें
 घोर दुर्भिक्ष होवे, फाल्गुणमें रोगपीडा होवे, राजाओंका विरोध परमा घटे
 लोकमें पीडा होवे ॥ १० ॥

हेमलंघ ३१ संवत्सरफलम् ।

तन्करेः पार्थिवेदं विद्वाभिभूतमिदं जगत् ॥

अथ भवति मामान्यं हेमलंघे महोदये ॥ १०१ ॥

भाषार्थ—अब हेमलम्बनाम संवत्सरका फल कहें हैं । श्रीशिवजी
वर्तनीजीके प्रति घर्णन करें हैं कि हे देवि ! हेमलम्बसंवत्सरमें चोरोसे
जाओसे जगतको भय हो, अज्ञादिका भाव सम होवे ॥ १०१ ॥

तथाच ।

हेमलंबः ३१, राहुः स्वामी, अतिरौरवम्, सरोगा
लोकाः, भूकम्पादयः उत्पाताः, वणिकपीडा,
चैत्रवेशाखमासयोः पीडा, धान्यादिमंजिष्ठादी-
नामन्दभावः, परचक्रागमः, ज्येष्ठादिमासत्रयेषु
धान्यं महर्घं, चतुर्गुणो लाभः, भाद्रपदे महामेघः,
अन्नसमता, मंजिष्ठामरिचलवंगदंतमहावस्तुमह-
र्घता, कार्तिके छत्रभंगः, लोकपीडा, सर्वधातु-
समर्घता, चतुष्पदानां पीडा, मार्गशीर्षादिमास
४ ये राज्ञां स्वस्थता, लोकाः सुखिनः ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—हेमलम्बनाम संवत्सरका स्वामी राहु, इस संवत्सरमें घोर
काल पड़े, लोक रोगसे पीडित होवें, भूकम्प आदि उत्पात होवे, वणि
कजनोंको पीडा हो, चैत्र वेशाखमासमें पीडा हो, धान्य आदि मंजीठका
भाव मन्द हो, शत्रुसेनाकी चढ़ाई हो, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण इन तीन
महीनोंमें अन्न महंगा हो, चौगुना लाभ होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा बहुत
होवे, अन्नका भाव सम हो, मंजीठ, मिर्च, लौंग, हथी दंत और बटी वस्तुयें
महंगी होवे, कार्तिकमासमें किसी राजाका छत्रभंग हो, लोकमें पीडा
हो, सब धातुओंका भाव सस्ता होवे, चौपायोंको पीडा हो, मार्ग, पौष,
भाद्र, फाल्गुण इन चार महीनोंमें राजाओंको स्वास्थ्यता हो, मनुष्य
सुखी रहें ॥ १०२ ॥

विलम्ब ३२ संवत्सरकालम् ।

विपमस्थं जगत्सर्वं विविधोपद्रव्ययुतम् ॥

मूपकेश्च प्रपीड्यन्ते विलम्बे च सुरेश्वरि ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—अब विलम्बनाम संवत्सरका फल कहें हैं । श्रीशिवजी तीसरे वर्णन करें हैं कि हे सुरेश्वरि ! विलम्बनाम संवत्सरमें सतत अनेक प्रकारका उपद्रव होवे, और मूपक आदि जीवोंमें मृत्यु होवे ॥ १०३ ॥

तथाच ।

विलम्बः ३२, रविः स्वामी, चैत्रवेशाखयोर्धान्य-
समर्धता, आपादे मेघ अल्पः, श्रावणे महामे-
घः, सुभिक्षम्, भाद्रपदे दिन २१ वर्षा बहुत,
गोधूमानां महर्धता, पश्चिमायां सुभिक्षम्, राज-
विग्रहः, पूर्वदेशे अन्नं महर्धं दुष्प्राप्यं च, दक्षिण-
देशे राज्ञामन्योन्यविरोधः, आश्विने अन्नमहर्धता
रोगपीडा, सर्वक्रयाणवस्तु महर्धम्, कार्तिकादि-
मासपंचके धान्यं महर्धम् ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—विलम्बनाम संवत्सरका स्वामी रवि, चैत्र, वैशाखमें सस्ता, आपादमें वर्षा थोड़ी, श्रावणमासमें वर्षा बहुत, भाव सस्ता, पदमासमें इक्कीस दिन बहुत वर्षा होवे, गेहूंका भाव महंगा होवे, पश्चिम दिशामें अन्नका भाव सस्ता होवे, राजओंमें विग्रह होवे, पूर्वदेशमें महंगा होवे, अन्न कठिनतासे मिले, दक्षिणदेशमें राजाओंमें परस्पर होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, रोगसे प्रजा पीडित सब खरीदकी वस्तुयें महंगे भावसे विकें, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, शुणमासमें अन्नका भाव महंगा होवे ॥ १०४ ॥

विकारी ३३ संवत्सरफलम् ।

अल्पोदको भवेन्मेघो धान्यमौषधिपीडितम् ॥

दुर्भिक्षं जायते सर्वं विकारीवत्सरे भुवि ॥ १०५ ॥

भाषार्थ—अथ विकारीनाम संवत्सरका फल कहें हैं । विकारीसंवत्सरमें वर्षा थोड़ी होवे, धान्य जलरूप औषधिसे पीडित होवे, तथा सम्पूर्ण पृथिवी दुर्भिक्ष होवे, ॥ १०५ ॥

तथाच ।

विकारी ३३, चन्द्रः स्वामी । अन्नं सर्वं महर्घं,
सर्ववस्तुमहर्घता, द्विजाः सुखिनः, चैत्रादिमास-
त्रये धान्यमहर्घता, आपाढे श्रावणे महान्मेघः,
सुभिक्षम्, भाद्रपदे स्वल्पमेघः, आश्विने रोगभयं,
केतूदयः, सर्ववस्तुमहर्घता, कार्तिकादिमासद्वये
धान्यं समर्घम्, पौषे रोगपीडा, लोकः सुखी,
फाल्गुणे धान्यमहर्घता ॥ १०६ ॥

भाषार्थ—विकारीनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, इस संवत्सरमें अन्न सब महर्घी भावसे विकें, सब वस्तुओंका भाव महंगा होवे, ब्राह्मणोंको सुख होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, आपाढ श्रावण-मासमें वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा थोड़ी होवे, आश्विनमासमें रोगसे भय हो, केतुका उदय हो, सब वस्तु महंगी हो जावे, कार्तिक मार्गमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, पौषमासमें रोगपीडा हो, लोक सुखी रहे, फाल्गुणमें धान्यका भाव महंगा होवे ॥ १०६ ॥

शार्वरी ३४ संवत्सरफलम् ।

मेदिनी शुष्यते सर्वा धनधान्यप्रपीडनम् ॥

शार्वर्यां वर्षते कापि पीड्यन्ते मानवा भुवि ॥ १०७ ॥

भाषार्थ—अब शार्वरीनाम संवत्सरका फल कहे हैं । शार्वरीनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण पृथिवी सूख जावे, धनधान्यसे पीडा हो, कहीं सूखे होवे और पृथिवीपर अकाल और रोगसे मनुष्य पीडित होवे ॥ १०९ ॥

तथाच ।

शार्वरी ३४, भौमः स्वामी, वर्षा अल्पा, प्रजाप्रलयः, राज्ञां विरोधः, चेत्रादिमासत्रये अन्नसमता, आपाढद्वये महामेघः, परं खंडवृष्टिः, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे वर्षा नास्ति, राजपीडा लोकेषु, आश्विने रोगपीडा, पश्चिमायां दुर्भिक्षं, पूर्वस्यां सुभिक्षम्, कार्तिकादिमासद्वये अन्नं महघम, पाषादिमासत्रये अन्नं समर्घम् ॥ १०८ ॥

भाषार्थ—शार्वरी संवत्सरका स्वामी भौम । इस संवत्सरमें वर्षा कम होवे, प्रजाका विनाश होवे, राजाओंमें विरोध होवे, चैत्र, वैशाख, इन तीन महीनोंमें अन्नका भाव सम रहे, आपाढ श्रावणमें वर्षा बहुत होवे, वर्षा नहीं हो जावे, अन्नका भाव समता हो, भाद्रपदमासमें वर्षा न होवे, लोकोंमें गन्तव्य होवे, आश्विनमासमें रोग फैले, पश्चिम अक्षर पडे, पूर्वदिशामें भाव समता रहे, कार्तिक मार्गमासमें अन्न मह घन होवे, वैश, ज्य, काशुण इन तीन महीनोंमें अन्न समता होवे ॥ १०९ ॥

अथ ३५ नाममंवन्माहृतम् ।

धनधान्यममायुक्तं जगन्मयं चगनरम् ॥

मेवाथ प्रवन्ता ज्ञेयाः सुवमंरन्मरे प्रिये ॥ १०९ ॥

भाषार्थ—अब सुवन्मम नाममाहृतम् कहते हैं, जगत् जगत् जगत् ! सुवन्मम नाममाहृतम् कहते हैं, जगत् जगत् जगत् ! सुवन्मम नाममाहृतम् कहते हैं, जगत् जगत् जगत् ॥ १०९ ॥

तथाच ।

प्लवः ३६, बुधः स्वामी, वर्षाकाले वर्षा बहुला,
उत्तमः समयः, चैत्रे धान्यमन्दता, वैशाखे भू-
मिः भयंकरी, ज्येष्ठे अन्नसमर्धता, तैलंगे पूर्व-
देशे पीडा, आपादे महावायुः, उत्पाताः, लोकाः
सरोगाः, श्रावणे महान्मेघो दिन २७ वर्षति, भा-
द्रपदे घनो घनागमः, धान्यं समर्ध, आश्विने
सर्ववस्तुसर्वधातुसमर्धता, गोधूमानां महर्धता,
कार्तिके अन्नं समर्धम्, लोकः सुखी, पौषादि-
मासत्रये अतिसुभिक्षम् ॥ ११० ॥

भाषार्थ—प्लवनाम संवत्सरका स्वामी बुध । इस संवत्सरमें वर्षासम-
य बहुत वर्षा होवे, समय अच्छा होवे, वैशाखासमें धान्यका भाव कम
वैशाखासमें भूमि भयंकारी हो जावे, ज्येष्ठासमें अन्नका भाव सन्ना
तैलंग और पूर्वदेशमें पीडा होवे. आपादमासमें वायु बहुत बहे,
उत्पात हो, रोग फैले, श्रावणमासमें गन्नाईस २७ दिन बहुत
होवे, भाद्रपदमासमें मेघ बहुत घनहों, धान्यका भाव सन्ना होवे,
और भाव महंगा होवे, कार्तिकमासमें अन्नका भाव सन्ना होवे, लो-
क सुखी होवे, पौष, माघ, फाल्गुन ये तीन महीने भाव बहुत सन्ना
॥ ११० ॥

शुभहृत ३६ संवत्सरफल्गु ।

सुभिक्षं सर्वदेशेषु क्षत्रगोव्राह्मणेषु च ॥
लभन्ते च प्रजाः सौख्यं शुभहृदत्सरे प्रिये ॥ १११ ॥

भाषार्थ—अब शुभकृत्नाम संवत्सरका फल कहें हैं, शिवजी कहें हैं कि हे प्रिये ! शुभकृत् संवत्सरमें सब देशमें क्षत्री आदि प्रजामें सुख होवे और अन्नका भाव सस्ता रहे ॥ १११ ॥

तथाच ।

शुभकृत् ३६, गुरुः स्वामी, अतिवर्षा राजा प्रजाश्च सुखेन वर्तन्ते, उत्तरापथे वह्निभयम्, चैत्रे वैशाखे समर्घता, श्रावणे नवमीतिथितो वर्षा, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे महान्मेघः, घृततैलं समर्घम्, राज्ञां परस्परविरोधः, कार्तिकादिमासत्रये युगन्धरीगोधूमचणकतिलमुद्गतंदुलेत्यादि अन्नं समर्घम्, फाल्गुणे किंचिदुत्पातः, मरुदेशे रोगः परं सुभिक्षम् ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—शुभकृत्नाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें बहुत होवे, राजा प्रजा सुखसे रहे, उत्तर और अग्निभय होवे, चैत्र वैशाखमासमें भाव सस्ता होवे, श्रावणमासमें नवमीतिथिसे वर्षा होवे, भाव सस्ता होवे, भाद्रमासमें बहुत वर्षा होवे, धी और तेलका सस्ता होवे, राजाओंमें परस्पर विरोध होवे, कार्तिक आदि तीन मास (कार्तिक, मार्ग, पौष) जुन्हरी, गेहूं, चना, तिल, मूंग, चावल इत्यादि अन्न सस्ते भावसे बिके, फाल्गुणमासमें कुछ उत्पात होवे, मरुदेशमें रोग परन्तु अन्न सस्ता रहे ॥ ११२ ॥

शोभन ३७ संवत्सरफलम् ।

शुभिक्षं क्षेममारोग्यं सौख्यवृन्दसमाकुलम् ॥
नन्दन्ते ब्राह्मणा गावो शोभने च वरानने ॥ ११३ ॥

भाषार्थ—अब शोभननाम संवत्सरका फल कहते हैं शिवजी पार्वतीसे हे हैं हे धरानने ! शोभननाम संवत्सरमें सुभिक्ष (मदा) क्षेम, आरोग्यता हो और जगत्में सुखसमूहकी वृद्धि हो, तथा ब्राह्मण और गौ आनन्दयुक्त होवे ॥ १११ ॥

तथाच ।

शोभनः ३७, शुक्रः स्वामी, राज्ञां प्रजानां च सुखम्, अतिवर्षा, चैत्रादिमासत्रये धान्यं सम-
र्घम्, राजविग्रहः, किञ्चिदुत्पातः, आपादे अल्प-
मेघः, श्रावणे अतिवर्षा, लोकपीडा च, भाद्रपदे
महान्मेघः, आश्विने सुभिक्षम्, ततोपि किञ्चि-
द्विग्रहः ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—शोभनसंवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें राजा प्रजा सुखी, वर्षा बहुत होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें धान्य भाव सस्ता, राजाओंमें विग्रह, कुछ उत्पात होवे, आपादमें वर्षा थोड़ी हो, श्रावणमें वर्षा बहुत होवे, लोकमें पीडा हो, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, तदनंतर कुछ विग्रह होवे ॥ ११२ ॥

क्रोध ३८ संवत्सरफलम्

विषमस्थं जगत्सर्वं व्याधिवृन्दसमाकुलम् ॥
अल्पा वृष्टिश्च विज्ञेया क्रोधे क्रोधः प्रजायते ॥ ११५ ॥

भाषार्थ—अब क्रोधसंवत्सरका फल कहते हैं, क्रोधनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् संकटमें पड़े, रोगपीडासे युक्त होवे, वर्षा थोड़ी होवे और क्रोधकी उत्पत्ति होवे ॥ ११५ ॥

तथाच ।

क्रोधः ३८, शनिः स्वामी, द्वादशमासात् अन्नं
महर्घम्, मध्यमः समयः, राज्ञां परस्परविरोधः,
प्रजायाः परलोको, निर्धना व्यापारीणः, चैत्रवेशा-
खयोः करकापातः, रोगमारीभयं, ज्येष्ठे धान्यं
महर्घम्, आपादे समता, अल्पो मेघः, श्रावणे
रौक्मम्, भाद्रपदे खंडवृष्टिः अन्नं महर्घम्, आ-
श्विने मेघवर्षा, सर्वत्र रसकसवस्तुसमता, अन्न-
वस्तुसर्वं समर्घम्, कार्तिके समता, ॥ ११६ ॥

भाषार्थ—क्रोधनाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें भाद्रपद
अन्न महंगा रहे, समय मध्यम होवे, राजाओंमें परस्पर विरोध होवे, प्रजा
विनाश होवे, व्यापारीलोग धनहीन होजावे, चैत्र और वैशाखमासमें
पाणी थराले सेजी हो जावे, मारीरोगका भय होवे, ज्येष्ठमासमें अन्न महंगा
हो जावे, आपादमें भाव सम होवे, वर्षा थोड़ी, श्रावणमासमें
अवृष्ट पड़े, भाद्रपदमासमें वर्षा खंडित होवे, अन्न महंगा होवे, आ-
श्विनमासमें वर्षा होवे और रस आदि वस्तुओंका भाव सर्वत्र सम जा-
वे, अन्न वस्तु सब सम भाव होंगे, कार्तिकमासमें भाव सम होवे ॥ ११६ ॥

विश्वावसु ३१. संवत्सरफलम् ।

मवेत्र जायते मांश्वयं वृष्टिरेव सुरेश्वरि ! ॥

विश्वावसां महोदेवि ! कापांमम्य महर्घता ॥ ११७ ॥

भाषार्थ—अब विश्वावसुनाम संवत्सरका फल कहें ॥ विश्वती वर्षा
कहे हैं वृष्टि के सुरेश्वरि ! हे महादेवि ! विश्वावसुनाम संवत्सरमें मांश्वय
होवे और कापांमम्य महर्घता होजावे ॥ ११७ ॥

तथाच ।

विश्वावसुः ३९, राहुः स्वामी, वर्षा समता, अन्न-
महर्घता, चैत्रे राज्ञां विरोधः, धान्यं महर्घं, वे-
शाखे विग्रहः, मरुदेशे दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां अन्नं
महर्घम्, ज्येष्ठे विग्रहः, आपादे अल्पमेघः, श्रा-
वणे भाद्रपदे दुर्भिक्षम्, अन्यत्र सुभिक्षम्, आ-
श्विने रोगपीडा, गोमहिषीघोटकआजामहर्घता,
सुवर्णादिधातुसमर्घता, कार्तिकादिमासत्रये स-
मर्घता, ११८ ॥

भाषार्थ—विश्वावसुनाम संवत्सरका स्वामी राहु, इस संवत्सरमें वर्षा
अल्प होवे, अन्नका भाव महंगा होवे, चैत्रमासमें राजाओंका विरोध हो,
अन्नका भाव महंगा हो जावे, वैशाखमासमें विग्रह होवे, मरुदेशमें दु-
र्भिक्ष होवे, पश्चिमदेशमें अन्न महंगा हो, ज्येष्ठमासमें विग्रह हो, आपाद-
मासमें वर्षा थोड़ी होवे, श्रावण और भाद्रमासमें अरुण पड़े, अन्यत्र
सुभिक्ष होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, गौ, भैरव, घोडा, बरणी ये
महंगे भाव बिके, सुवर्ण आदि धातुओंका भाव सस्ता होवे. कार्तिक,
मार्ग, पौषमें भाव सस्ता होवे ॥ ११८ ॥

पराभव ४० संवत्सरफलम् ।

पार्थिवर्माण्डलीकेश्व सामन्तर्दण्डनायकः ॥

पीडयन्ते वै प्रजाः सर्वा क्षुधार्ताश्च पराभवे ॥ ११९ ॥

भाषार्थ—अथ पराभवा नाम संवत्सरका फल यह है । पराभवनाम सं-
वत्सरमें माण्डलीक राजा, सामन्त (सेनापति) और दण्डनायक (गवर्नर-

कारी) इनकी सम्पूर्ण प्रजागणको पीडा होवे और क्षुधासे पीडा होवे. भावार्थ यह कि घोर अकाल पड़े ॥ ११९ ॥

यथाच ।

पराभवः ४०, केतुः स्वामी, द्वादशमासा वर्षा,
मध्यमावृष्टिः, चैत्रवैशाखे चान्नं महर्घं, मेघग-
र्जिते विद्युतो वायवः, ज्येष्ठे धान्यसंग्रहः, उद-
डवायुः, आपादे अल्पमेघः अन्ने द्विगुणलाभः,
श्रावणे महती वर्षा, अन्नसमता, भाद्रपदे खंड-
वृष्टिः, परं दुर्भिक्षम् आश्विने किंचिल्लोकसु-
खम् धान्यरसवस्तुमहर्घता, धातुसमर्घता, का-
र्तिकादिमासपंचके समता, पश्चिमायां अन्नस-
मता, सिन्धुदेशान्धान्यागमः,
इति विष्णो [मध्यम] विंशति फलम् ॥ १२० ॥

भाषार्थ—पराभवसंवत्सरका स्वामी केतु, इस संवत्सरमें बारहो मास
वर्षा मध्यम होवे, चैत्र वैशाखमें अन्न महंगा, मेघ गर्जे, बिजली
वायु प्रचल वहे, ज्येष्ठमासमें अन्नका संग्रह करे, वायु बहुत प्रचल व है,
पादमें वर्षा थोड़ी होवे, अन्नमें दुगुना लाभ होवे, श्रावणमासमें बहुत
होवे, अन्नका भाव मध्यम होवे, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे और दु-
र्घ होवे, आश्विनमासमें कुछ लोकको सुख होवे. धान्य रस ये वस्तु
में भाव विकें, धातु सस्ते भाव होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गु-
में भाव मध्यम होवे, पश्चिमदिशामें अन्नका भाव सम हो, सिन्धु
प्रस आवे । यह विष्णुजीकी बीसी मध्यम फल देनेवाली कही गई ॥ १२० ॥

पुवंग ४१ संवत्सरफलम् ।

तुषधान्यानि पीड्यन्ते ग्रीष्मे वर्षाति माधवे ॥

पुवंगे पीडिताः सर्वे सर्वद्वीपं सुमंडलम् ॥ १२१ ॥

भाषार्थ—अब पुवंगनाम संवत्सरका फल कहें हैं, पुवंगनामसंवत्सरमें सम्पूर्ण द्वीप पृथिवीमंडलके पीडित होवे, और तुषधान्यको पीडा हो, और ग्रीष्मऋतुमें मेघ वर्षा करें, ॥ १२१ ॥

तथात्र ।

पुवंगः ४१, ब्रह्मा स्वामी. चैत्रवेशाखे च महर्घ-
ता, ज्येष्ठमध्ये राजपीडा, आपाढे अल्पपंघः
भूमिकंपः, हस्तिपीडा, तुरंगमहर्घता, श्रावणे म-
हामेघः भाद्रपदे अष्टमीतो महामेघः आश्वि-
ने रोगः रसमहर्घता, फाल्गुणे लोकपीडा ॥ १२२ ॥

भाषार्थ—पुवंगनाम संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा, इस संवत्सरमें चैत्र द्वै-
शाखमासमें धान्यभाव महंगा, ज्येष्ठमासमें राजपीडा, आपाढमासमें थोड़ी
वर्षा, भूकंपयोग, हाथियोंको पीडा हो, घोड़ोंका भाव महंगा होवे, श्रावण-
मासमें घर्षा बहुत होवे, भाद्रपदमासमें अष्टमीसे बहुत वर्षा होवे, आश्विन-
मासमें रोगसे पीडा हो, रस वस्तुये महंगी होवे, फाल्गुणमासमें लोक पीडि-
त हो ॥ १२२ ॥

कीलक ४२ संवत्सरफलम् ।

तौषपृणो भवेन्मेघो वर्षते च धरातले ॥

उपद्रवस्तु राज्ञां वै कीलके सर्वदा प्रिये ॥ १२३ ॥

भाषार्थ—अब कीलकनाम संवत्सरका फल कहें हैं, तौषपृणी वर्ष-
तीसे कहें हैं कि हे प्रिये ! कीलकसंवत्सरमें मेघ जलने पूर्ण होवे और
पृथिवीपर बहुत वर्षा करें और राजाओंमें उपद्रव होवे ॥ १२३ ॥

तथाच ।

कीलकः ४२, विष्णुः स्वामी, वर्षा मध्यमा, चेत्रे
धान्यं महर्घम्, वैशाखे रोगः, मरुदेशे दुर्भिक्षम्,
पश्चिमायां समर्घता, ज्येष्ठे धान्यसंग्रहः, आ-
षाढे श्रावणे अल्पमेघः, अन्नं समर्घम्, धान्ये
द्विगुणो लाभः, भाद्रपदे अष्टम्यां मेघः, आश्वि-
ने वर्षा, अन्नं महर्घम्, कार्तिकादिमासत्रये सम-
रसाः, माघमासे अन्नमहर्घता, रोगपीडा महती,
फाल्गुणे राजा प्रजा सुखी अन्नसमता ॥ १२४ ॥

भाषार्थ—कीलकसंवत्सरका स्वामी विष्णु, इस संवत्सरमें वर्षा मध्यमा,
चैत्रमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, वैशाखमासमें रोग हो, मरुदेशमें दु-
र्भिक्ष हो, पश्चिमदिशामें अन्नादिका भाव सस्ता होवे, ज्येष्ठमासमें धान्यसंग्र-
ह करे, आषाढश्रावणमें वर्षा थोड़ी होवे, अन्न सस्ता हो, धान्यमें दु-
गुणो लाभ हो, भाद्रमासमें अष्टमीको मेघ वर्षे, आश्विनमासमें वर्षा होवे, अन्न
महंगा हो, कार्तिक, मार्ग, पौषमें अन्नका भाव सस्ता होवे, माघमासमें
अन्न महंगा हो, रोग बहुत फैले, फाल्गुणमें राजा प्रजा सुखी हो, अन्न
का भाव सम रहे ॥ १२४ ॥

सौम्य ४३ संवत्सरफलम् ।

जायन्ते सर्वधान्यानि स्वस्थं च निरुपद्रवम् ॥
सौम्यवृष्टि वरारोहे सौम्ये सौम्यं प्रजायते ॥ १२५ ॥

भाषार्थ—अब सौम्यसंवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी कहे हैं ।
हे वरारोहे ! सौम्यनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण धान्य उपजें, उपद्रव कुछ न
होवे, उत्तम वर्षा व उत्तम समय होवे ॥ १२५ ॥

तथाच ।

सौम्येः ४३, रुद्रः स्वामी, अल्पमेघः, गावः अल्पक्षीराः, वृक्षे अल्पफलम्, चैत्रे महर्घता, वैशाखे उद्वंडवायुः, ज्येष्ठे विग्रहः, प्रजापीडा, आपादे अल्पमेघः, अन्नं महर्घम्, श्रावणे महामेघः, धान्ये द्विगुणो लाभः, सर्वधान्यसमता, रसमहर्घता, भाद्रे खंडवृष्टिः, अन्नदुर्भिक्षम्, आश्विने राजविरोधः, लोकपीडा, मार्गे विपमता, अन्नसंग्रहः, धान्ये द्विगुणो लाभः, सर्वरसवातुसमर्घता, कार्तिकादिमास ४ चतुष्टये समता, परं राजविरोधं, फाल्गुणे उद्वंडवायुः, पश्चिमायां मुभिक्षम्, सिन्धुदेशे राजविरोधः, अन्नसमर्घता ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—सौम्यनाम संवत्सरका स्वामी रुद्र, इस संवत्सरमें थोड़ी वर्षा हो, गौयें थोड़ा दूध दें, वृक्षांमें फल थोड़े होवे, चैत्रमासमें भाव महंगा हो, वैशाखमासमें वायु बहुत बहे, ज्येष्ठमासमें विग्रह हो, प्रजाको पीडा हो, आपादमासमें जल थोड़ा बरे, अन्न महंगा होवे, श्रावणमें वर्षा बहुत होवे, धान्यमें दूना लाभ हो, सब धान्य समभावसे बिके, रस महंगे हो, भाद्रमासमें वर्षा खंडित हो, अन्न महंगा हो, आश्विनमासमें राजाओंमें विरोध हो, लोकमें पीडा हो, मार्गमें कठिनता हो, अन्न संग्रह करे, धान्यमें दूना लाभ हो, सर्वरस और वातु भावमें सस्ते हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, इन महीनोंमें भाव सम हो, उपरांत राजा और वैद्योंमें वैर हो, फाल्गुणमें प्रचंड पवन चले, पश्चिममें भाव सस्ता हो, सिन्धुदेशमें राजविरोध हो, अन्नका भाव सस्ता होवे ॥ १२६ ॥

साधारण ४४ संवत्सरफलम् ।

जलपूर्णी भवेन्मेघो वर्षते च दिने दिने ॥

साधारणे समर्धे स्याद्भवेद्वै नाऽत्र संशयः ॥ १२७ ॥

भाषार्थ—अत्र साधारणनाम संवत्सरका फल कहते हैं । साधारण संवत्सरमें मेघ जलसे पूर्ण होवे, और दिन दिन जल वर्षे तथा सस्ता होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १२७ ॥

तथाच ।

साधारणः ४४, रविः स्वामी, चैत्रे धान्यमंदता,
वैशाखे ज्येष्ठे च उत्पातः, भूमिकंपः, रोगवृद्धिः,
राजविरोधः, धान्यमहर्घता, आपादे वायूदंडः,
रौरवम्, कचिदल्पवृष्टिः, श्रावणेमहती वर्षा, अ-
न्नसमता, भाद्रपदे अल्पमेघः, आश्विने अल्प-
धान्यनिष्पत्तिः, कार्तिकादिमासद्वयं मध्यमं, अ-
कस्माद्राजविग्रहः, अन्नमहर्घता ॥ १२८ ॥

भाषार्थ—साधारणनाम संवत्सरका स्वामी रवि, इस साधारणमें
भाव मन्दता, वैशाख ज्येष्ठमासमें उत्पात, भूमिकंप, रोगकी वृद्धि, राज-
विरोध होवे, अन्नका मात्र महंगा, आपादमासमें प्रचंड पान बंदे,
रौरव, कर्क, कर्क कुल वर्षा होवे, श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे,
भाद्रपद में अल्प मेघ, आश्विनमासमें धान्य निष्पत्ति मध्यम होवे,
कार्तिकादिमासों में धान्य मध्यम होवे, अकस्मात् राजविग्रह होवे, अन्न महर्घता
होवे ॥ १२८ ॥

विरोधकृत ४५ संवत्सरफलम् ।

माघवा वर्षते देवि देशे वै खंडमंडले ॥

अहिक्षेत्रे कान्यकुब्जे विरोधौ कृपिनाशकृत् ॥१२९॥

भाषार्थ—अयं विरोधकृतनाम संवत्सरका फल कहें हैं, श्रीशिवजी पार्व
जीसे कहें हैं कि हे देवि ! विरोधकृतनाम संवत्सरमें पृथ्वीमंडलके दे-
में मैघोंसे खंडयुटि होवे, अहिक्षेत्र (नागपूर) तथा कान्यकुब्जदेशमें
पिका विनाश होवे ॥ १२९ ॥

तथाच ।

विरोधकृत ४६, चन्द्रः स्वामी, कोंकणदेशे मेद-
पाटमंडले मध्यदेशे महारौरवम्, परस्परगज-
विग्रहः, चैत्रादिमासत्रये अन्नसमता, आपाढे
अल्पमेघः, श्रावणे महावर्षा, अन्नसमर्धता, भा-
द्रपदे मेघः, अन्नसमता. सर्वधातुमहर्धता, फा-
ल्गुणे देशविरोधः, मार्गे विपम्यम्, मंजिष्ठा
पूर्णाफलपट्टसूत्रदंतमहद्वस्तुतुरंगमादिमहर्धता १३०

भाषार्थ—विरोधकृतनाम संवत्सरमें चन्द्रमा स्वामी, कोंकणदेश, मेद-
पाटमंडल और मध्यदेशमें घोर काल पड़े, राजाओंमें परस्पर विगाड होवे
चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ मासमें अन्नका भाव सम, आपाढमासमें वर्षा थोड़ी,
श्रावणमासमें बहुत वर्षा, अन्न सस्ता, भाद्रमासमें मेघ वर्षे, अन्नका भाव
सम, सब धातु महंगे हो, फाल्गुणमासमें देशविरोध हो, मार्गमें विपमता हो
मंजिठ, सुपारी, यन्त्र, दंत, ये बड़ी वस्तुयें व घोडा आदि वस्तुओंका भाव
महंगा हो ॥ १३० ॥

परिधावी ४६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥
इष्टमित्रोपकारी च परिधावी वरानने ॥ १३१ ॥

भाषार्थ—अब परिधावीनाम संवत्सरका फल कहें हैं, श्रीशिवजी की प्रति वर्णन करें हैं कि हे वरानने ! परिधावीनाम संवत्सरमें सु-
क्षेम, आरोग्यता, तथा धनधान्यसे पृथिवी पूर्ण हो और इष्ट मित्रों की
कारकी श्रद्धा होवे ॥ १३१ ॥

तथाच ।

परिधावी ४६, भौमः स्वामी, चैत्रादिमास चतुष्के
अन्नसमता, तत्र संग्रहः कार्यः, लोके रोगभयं,
मरुदेशे मारीभयं, चतुष्पदमहिषीतुरंगहस्तीनां
पीडा, श्रावणे भाद्रपदे अल्पमेघः, खंडवृष्टिः,
अन्नमहर्घता, सर्वरसमहर्घता, सर्वे धातवः सम-
र्थाः, कार्तिकादिमासपंचके धान्यसमता, सिंधु-
देशान्धान्यागमः ॥ १३२ ॥

भाषार्थ—परिधावीनाम संवत्सरमें मंगल स्वामी, चैत्र आदि ४ मास
(चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आशाढ) में अन्नका भाव सम, अन्न संग्रह का
लोकमें रोगनय हो, मरुदेशमें मारीभय हो, चौपाये भैरव, घोड़ा, हाथी
इनको पीडा हो, श्रावण भाद्रपदमें थोड़ी वर्षा हो, वर्षा मंजिल और अ-
संगत हो, सब रस सबमें और सब धातु सम हो, कार्तिक, मार्ग, वै-
शाख, ज्येष्ठ, आशाढमें धान्यका भाव सम हो, सिंधुदेशमें धान्यका भाव
होवे ॥ १३२ ॥

प्रमादी ४७ संवत्सरफलम् ।

निष्पत्तिः सर्वसस्यानां रसानां च महर्घता ॥

सुभिक्षं च तथा सौख्यं प्रमादिनि न संशयः ॥१३३॥

भाषार्थ—अब प्रमादीनाम संवत्सरका फल कहें हैं । प्रमादीनाम संव-
त्सरमें सर्व प्रकारके सस्य (धान्य) की उत्पात्ति होवे, सब रस महंगे
हों, सुभिक्ष तथा सुख हो, इसमें संशय नहीं ॥ १३३ ॥

तथाच ।

प्रमादी ४७, बुधः स्वामी, चैत्रे धान्यसमता,
वैशाखज्येष्ठयोर्धान्यसंग्रहः, आपाढे अल्मेघः,
श्रावणस्याद्धे मेघवर्षा, अन्नं महर्घम् धान्ये त्रि-
गुणलाभः, भाद्रपदे महामेघः, अन्नं समर्घं, आ-
श्विनादिपण्मासेषु ६ सुभिक्षम्, सर्वरसमहर्घता,
लोकः सुखी ॥ १३४ ॥

भाषार्थ—प्रमादीनाम संवत्सरमें म्यामी बुध, इस संवत्सरमें चैत्रमासमें
धान्यसमता, वैशाखज्येष्ठमासमें धान्यका संग्रह करे, आपाढमासमें वर्षा
ही हो, आषे श्रावणमें मेघ वर्षा करें, अन्न महंगा होवे, धान्यमें तिगुना
लाभ होवे, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता हो, आश्विन,
कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनोंमें भाव सस्ता हो, सब
प्रकारके रस महंगे हो, लोकमें सुख होवे ॥ १३४ ॥

आनन्द ४८ संवत्सरफलम् ।

नश्यन्ति सर्वसस्यानि सर्वधान्यमहर्घता ॥

घृतमर्घं च तैलं च ह्यानन्दे नन्दिताः प्रजाः ॥१३५॥

भाषार्थ—अब आनन्दनाम संवत्सरका फल कहें हैं । जहाँ
संवत्सरमें सब सस्य (तृणधान्य) नाश होवे, और सब धान्य मही,
घी तेल आदि सस्ते हो, प्रजा आनन्दित होवे ॥ १३५ ॥

तथाच ।

आनन्दः ४८, गुरुः स्वामी, वर्षा बहुला, चैत्र-
वैशाखे अन्नं समर्धम्, ज्येष्ठापादयोर्मध्यमवृ-
ष्टिः, श्रावणे महामेघः, भाद्रे खंडवृष्टिः, गोवृ-
षा महर्घाः, आश्विने समर्घाः, धातुमहर्घता, का-
र्तिके अकस्माद्भयम्, मार्गशीर्षे लोकपीडा, पो-
षमाघयोर्मध्यवर्षा, अन्नसमर्धं, फाल्गुणे धान्यं
महर्धम् ॥ १३६ ॥

भाषार्थ—आनन्दनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें
घट्टत हो, भय वैशाखमें अन्नभाव सस्ता, ज्येष्ठ आषाढमें वर्षा
श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे. भाद्रमासमें खंडवृष्टि होवे, गोवृ-
षा महर्घा हो, आश्विनमासमें सस्ता भाव हो, धातुभाव महर्घा हो, क-
र्तिकमें अकस्मात् भय होवे, मार्गशीर्षमासमें लोक पीडित हो, पो-
षमासमें वर्षा होवे, अन्नका भाव सस्ता हो, फाल्गुणमें अन्न महर्घा होवे

राशम ४९, संवत्सरफलम् ।

कोट्याः शान्तिमुद्गादि पीडितंच वराननं ॥
मवंधान्यानि चार्धाणि राक्षसे पीडिताः प्रजाः

भाषार्थ—अब राक्षसनाम संवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी
कोट हैं कि वे वरानसि ! राक्षसनाम संवत्सरमें कोटी भाग भूमि
पीडित हो, अर्धभाग प्रजाको प्राप्त न हो, वे राक्षसों ! भ-
य प्रजा हो, कर्मों परते और प्रजा पीडित होवे ॥ १३७ ॥

तथाच ।

राक्षसः ४९, भृगुः स्वामी, धान्यसंग्रहः कार्यः,
चेत्रे वेशाखे ज्येष्ठे तेलं महर्घम्, ज्येष्ठे आपाढे
गुडशर्कराद्रव्यं महर्घं, श्रावणे अल्पमेघः, अन्न-
महर्घता, भाद्रपदे महान्मेघः, अन्नसमर्घता,
आश्विने समता, कार्तिके रोगार्तिः, मार्गादिमा-
स ४ चतुष्टये धान्यसमर्घता, राजा प्रजा सुखी,
फाल्गुणेषुभिक्षम् ॥ १३८ ॥

भाषार्थ—राक्षसनाम संवत्सरका स्वामी शुक, धान्यसंग्रह करे, चैत्र,
शाख, ज्येष्ठमें तेल महंगा होवे, ज्येष्ठ आपाढमें गुड, शर्करा, द्रव्यका
महंगा होवे, श्रावणमें धोड़ी वर्षा, अन्न तेज, भाद्रमासमें बहुत वर्षा
सस्ता, आसीजमें भाव सम, कार्तिकमें रोगपीडा, मार्ग, पौष, माघ,
फाल्गुणमें अन्नभाव सस्ता, राजा प्रजा सुखी, फाल्गुणमासमें अन्नादिभाव
सस्ता होवे ॥ १३८ ॥

नल ५० संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं जायते घोरं धान्यमौषधिपीडितम् ॥
नले च धनधान्यानि समाख्यातं वरानने ॥ १३९ ॥

भाषार्थ—अत्र नलनाम संवत्सरका फल कहें हैं । श्रीशिवजी पार्वती-
से कहें हैं कि हे वरानने ! नलसंवत्सरमें घोर अकाल पड़े, धान्य जल-
म औषधिसे पीडित होवे अर्थात् जल न मिलनेसे सूख जावे, धन धा-
न्य महंगा होवे ॥ १३९ ॥

तथाच ।

नलः ५०, शनिः स्वामी, चैत्रे रोगपीडा, वायुः प्रबलः, वैशाखे अन्नसंग्रहः कार्यः, ज्येष्ठे राज्ञां परस्परं विरोधः, लोकः सुखी, आपादे संग्रहः कार्यः, कार्तिके विक्रयः, मार्गादिमासत्रये अन्नसमता, फाल्गुणे बालानां रोगः, तस्करभयम्, उत्तरदेशे दुष्कालः, पूर्वस्यां दुर्भिक्षम् ॥ १४० ॥

भाषार्थ—नलनाम संवत्सरका स्वामी शनि, चैत्रमासमें रोगपीडा प्रबल रहे, वैशाखमें अन्न संग्रह करे, ज्येष्ठमासमें राजाओंका परस्पर विरोध होवे, लोक सुखी होवे, आपाडमें संग्रह करे, कार्तिकमें विक्रय मार्ग, पौष, माघमासमें अन्नका भाव सम होवे, फाल्गुणमासमें रोग होवे, चौरोंसे भय हो, उत्तरदेशमें दुर्भिक्ष होवे, पूर्वदिशामें होवे ॥ १४० ॥

पिंगल ५१ संवत्सरफलम् ।

गावो ह्या विनश्यन्ति चान्ये च नटनर्तकाः ॥
मेघो न वर्षते तत्र पिंगले नाऽत्र संशयः ॥ १४१ ॥

भाषार्थ—अब पिंगलनाम संवत्सरका फल कहें हैं. पिंगलनाम में गाँवों और घोटोंका विनाश होवे, और अन्य नट व नाचनेवालोंका नाश होवे, मेघ वर्षा न करें, इसमें संशय नहीं ॥ १४१ ॥

तथाच ।

पिंगलः ५१, राहुः स्वामी, उच्चमूलताननागपुरमन्दिर्लूरीमंडलेषु मथुरायां पूर्वदेशेषु च दुर्भिक्षम्, सर्वधातुममघम्, सर्वत्र विग्रहः, गुजरादेशे सम-

घर्घता, सिंधुदेशाद्धान्यागमः, चैत्रे धान्यमहर्घ-
ता, प्रजापीडा, वैशाखादिमासत्रये अन्नसमर्घ-
ता, आपादे श्रावणे अल्पमेघः, धान्ये चतुर्गुणो-
लाभः, भाद्रे खंडवृष्टिः, आश्विने समता, का-
र्तिकादिमास ५ पंचके अन्नमहर्घता ॥ १४२ ॥

भाषार्थ—पिंगलनाम संवत्सरका स्वामी राहु, उच्च मुल्लतान, नागदुर,
मरदेश, विह्वीमंडलमें, मथुराके पूर्वदिशोंमें दुर्भिक्ष होवे, मय धानु मन्ने
भावसे विकें, सर्वत्र विग्रह होवे, गुजरातदेशमें सस्ता भाव होवे, सिंधुदे-
शसे धान्यका आगम हो, चैत्रमासमें धान्यका भाव महंगा हो, प्रजापी-
डी हो, वैशाख, ज्येष्ठ, आपादमासमें अन्नादिका भाव सस्ता होवे, आपा-
द श्रावणमें मेघ थोड़ा जल देवे, धान्यमें चतुर्गुणा लाभ होवे, भाद्रमासमें
वर्षा खंडित होवे, आश्विनमासमें भाव मध्यम हो, कार्तिक, मार्ग, पौष,
माघ, फाल्गुणमासमें अन्नका भाव महंगा रहे ॥ १४२ ॥

कालयुक्त ५२ संवत्सरफलम् ।

प्रजानां जायते रोगः कालयुक्ते विशेषतः ॥

राजयुद्धं भवेद्घोरं प्रजानाशो वरानने ॥ १४३ ॥

भाषार्थ—अथ कालयुक्तनाम संवत्सरका फलबहें हैं । शिदजी पार्वती-
में कहें हैं कि हे वरानने ! कालयुक्तनाम संवत्सरमें विशेष करके प्रजामें रोग
होवे, राजाओंमें घोर युद्ध होवे और प्रजाका विनाश होवे ॥ १४३ ॥

तथाच ।

कालः ५२, केतुः स्वामी, अल्पमेघः, अल्पव्या-
पारः, चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे च धान्यमंग्रहः, धान्ये
द्विगुणो लाभः, आपादे अल्पमेघः, श्रावणे महा-

होवे, आपाढ श्रावणमें वर्षा थोड़ी हो वृष्टि खंडित हो जावे, ^{१४८}
 में वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता होवे, मजीठ, सुपाई, ^{१४९}
 का भाव महंगा होवे, लोक सुखी हो, चौपाये सस्ते हो ^{१५०}
 पीडा होवे ॥ १४८ ॥

दुर्मति ५५ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं भुवि सामान्यं व्यवहारं प्रवर्तते ॥
 भवेच्च मध्यमा वृष्टिर्दुर्मतीवत्सरे प्रिये ॥ १४९ ॥

भाषार्थ—अब दुर्मतिनाम संवत्सरका फल कहते हैं । ^{१५०}
 पार्वतीसे कहें हैं, कि हे प्रिये ! दुर्मतिनाम संवत्सरमें पृथिवी ^{१५१}
 रहे, अर्थात् अन्नादिका भाव सस्ता होवे, व्यवहार सामान्य होवे,
 वर्षा मध्यम होवे ॥ १४९ ॥

यथाच ।

दुर्मतिः ५५, भौमः स्वामी, चैत्रे वेशाखे च धा-
 न्यं समर्धम्, ज्येष्ठे अन्नसमता, आपाढे उद्दंड-
 वायुः, श्रावणे अल्पमेघः, आश्विने सर्वरससम-
 र्धता, धान्यसमता, कार्तिकादिमासद्वये यावत्
 सर्ववस्तुसमता, पीपादिमासद्वयं यावत् सर्वधातु
 समर्धता ॥ १५० ॥

भाषार्थ—दुर्मतिनाम संवत्सरका स्वामी भौम, चैत्र वेशाखमें धा-
 न्य समता होवे, ज्येष्ठमें अन्नका भाव मध्यम होवे, आपाढमासमें
 वायु, श्रावणमें अल्पमेघ, आश्विनीमें सर्वरससमता, धान्यसमता, कार्तिकादिमासमें
 यावत् सर्ववस्तुसमता, पीपादिमासमें यावत् सर्वधातुसमता ^{१५१}
 होवे ॥ १५० ॥

दुन्दुभी ५६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥

प्रजानां जायते सौख्यं दुन्दुभी च न संशयः ॥ १५१ ॥

भाषार्थ—अथ दुन्दुभीनाम संवत्सरका फल कहें हैं । दुन्दुभी नाम
त्सरमें सुभिक्ष हो, स्वास्थ्यता हो, सब प्रकारके उपद्रवोंमें युक्त पृथिवी
ह, परंतु प्रजाजनोको सुख होवे, इसमें संशय नहीं जानना ॥ १५१ ॥

तथाच ।

दुन्दुभिः ५६, बुधः स्वामी, वर्षा बहुला, अन्ना-
दिवस्तुसमर्घता, चैत्रादिमासत्रये अन्नसमर्घता,
आषाढे द्विगुणो लाभः, अल्पमेघः, श्रावणे दि-
न ११ महावृष्टिः, भाद्रपदे दिन ८ मेघो वर्षति
अन्नं समर्घम्, आश्विने अन्नं समर्घम्, रोगाः ब-
हुलाः, मंजिष्ठामरिचानां समर्घता, कार्तिके अन्नं
दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां शुभम्, मार्गशीर्षे सम-
र्घता, राज्ञां परस्परविरोधः, पौषादिमासत्रये
समता ॥ १५२ ॥

भाषार्थ—दुन्दुभिनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरमें वर्षा बहुत
हो अन्न आदि वस्तुओंका भार सस्ता हो, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें अन्न-
का भार सस्ता, आषाढमासमें दुना लाभ होवे, वर्षा थोड़ी होवे, श्रावणमासमें
आषाढ दिन बहुत वर्षा होवे, अन्न सस्ता हो, आश्विनमें अन्न सस्ता हो
और रोग बहुत हो, मंजिष्ठ, मिर्च सस्ते और दिबे, कार्तिकमासमें अन्न
महंगा हो, पश्चिम और अष्टा पक्ष होवे, मार्गशीर्षमासमें भार सस्ता होवे

राजाओंमें परस्पर विरोध हो, पौष. माघ फाल्गुणमासमें अन्न दिवस
सम रहे अर्थात् बराबर होवे ॥ १५२ ॥

रुधिरौद्गारि ५७ संवत्सरफलम् ।

परस्परं नरेन्द्राणां संग्रामो दारुणो भवेत् ॥

सर्वक्षयोविशेषेण रुधिरौद्गारिवत्सरे ॥ १५३ ॥

मापार्थ—अब रुधिरौद्गारिनाम संवत्सरका फल कहें हैं । रुधिरौद्गारि
नाम संवत्सरमें राजाओंका परस्पर घोर संग्राम होवे, विशेषकरके इन
त्सरमें सर्व क्षय होवे, अर्थात् बहुत वस्तुओं और मनुष्योंका विनाश
जावे ॥ १५३ ॥

तथाच ।

रुधिरौद्गारी ५७, गुरुः स्मामी, राज्ञां परस्परवि-
रोधः, लोका देशान्तरं याति, परदेशाद्धान्यमा-
याति, चैत्रादिमासत्रये समर्धता, धातवः सम-
र्धाः, उत्तरे दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां सुभिक्षम्, सि-
न्धुदेशं धान्यनिष्पत्तिः, आपादशुक्लपक्षे महा-
मेघः, श्रावणे दिन १५ महावर्षा, भाद्रपदे सं-
वत्सृष्टिः, धान्ये त्रिगुणो लाभः, आश्विने समता,
रोगः स्वल्पः, कार्तिकादिमासपंचके अन्नं सम-
र्थम्, लोकपीडा, ॥ १५४ ॥

मापार्थ—रुधिरौद्गारिनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इन संवत्सरमें राजा-
ओंका परस्पर विरोध होवे, राजाओंका देशान्तर गमन करें, परदेशमें अ-
न्न लाने, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन तीन महीनोंमें मध्य यमुना नदीमें बड़ा
विवेक, चैत्रमासका नवमी मन्ता होवे, उत्तरदिशामें दुर्भिक्ष और पश्चिम

में सुभिक्ष होवे, सिन्धुदेशमें धान्यकी उत्पत्ति होवे, आपादशुक्लपक्षमें वर्षा बहुत होवे, श्रावणमासमें पन्द्रह दिन बहुत वर्षा होवे, भाद्रप-
मासमें वर्षा खंडित हो जावे, धान्यमें तिगुना लाभ होवे, आश्विनमास
(कुंवार) में भाव सम हो, रोग थोडा होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ,
फाल्गुणमासमें अन्नका भाव सस्ता हो, और लोक पीडासे युक्त होवे ॥१५४

रक्ताक्ष ५८ संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं च महादेवि क्रूरचेष्टा नराधिपाः ॥

संग्रामं च करोत्युग्रं रक्ताक्षे नैव संशयः ॥ १५५ ॥

भाषार्थ—अथ रक्ताक्षनाम संवत्सरका फल कहें हैं. शिवजी पार्वतीसे
हैं हैं हे महादेवि ! रक्ताक्षनाम संवत्सरमें दुर्भिक्ष हो, क्रूरचेष्टावाले राजा-
ग घोर संग्राम करें, इसमें संशय नहीं. ॥ १५५ ॥

तथाच ।

रक्ताक्षः ५८, शुक्रः स्वामी, चैत्रादिमासत्रये
अन्नं समर्धम्, आपादे महती जलवृष्टिः, अन्नं
समर्धम्, श्रावणे अल्पमेघः, किञ्चिद्विग्रहः, भा-
द्रपदे अल्पवर्षा, रोगपीडा, आश्विने अन्नं स-
मर्धम्, कार्तिकादिमासपंचके धान्यं महर्धम् ॥१५६॥

भाषार्थ—रक्ताक्षनाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, । चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें
अन्नका भाव सस्ता, आपादमें बहुत वर्षा हो, अन्न सस्ता हो. श्रावणमा-
समें थोडी वर्षा हो, कुछ विग्रह होवे, भाद्रपदमें थोडी वर्षा हो, रोगों
पीडा होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सस्ता हो, कार्तिक, मार्ग, पौष,
माघ, फाल्गुणमें धान्यका भाव महंगा होवे, ॥ १५६ ॥

क्रोधन ५९ संवत्सरफलम् ।

रोगो मरणदुर्भिक्षं विविधोपद्रवैर्युतम् ॥

क्रोधने विपमं सर्वं मया ख्यातं सुलोचने ॥ १५७ ॥

भाषार्थ—अब क्रोधननाम संवत्सरका फल कहें हैं, । शिवजी से कहते हैं कि हे सुलोचने ! क्रोधननाम संवत्सरमें रोग, मरण, विविध प्रकारके उपद्रवोंसे युक्त पृथिवी होवे, तथा सब वस्तुओं में विपन्न हो, यह मैंने प्रगट किया है ॥ १५७ ॥

तथाच ।

क्रोधनः ५९, शनिः स्वामी, मन्दवृष्टिः, प्रजा-
पीडा, चैत्रवैशाखे अल्पमेघः, अन्नसमर्घता,
ज्येष्ठेमन्दरोगपीडा, अन्नसमता, आपादश्रावण-
योरल्पर्षा, धान्ये द्विगुणो लाभः, भाद्रपदे मेघः,
अन्नं समर्घम्, आश्विने रोगपीडा, कार्तिके वि-
ग्रहः, धान्यं समर्घम्, पौषे वणिकृपीडा, धान्ये
द्विगुणो लाभः ॥ १५८ ॥

भाषार्थ—क्रोधननाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें सब मध्यम हो, प्रजाको पीडा हो, चैत्र वैशाखमें कुछ वर्षा हो, अन्न सस्ता हो, ज्येष्ठमासमें मन्दरोगसे पीडा होवे, आपाद श्रावणमें थोड़ी वर्षा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, भाद्रमासमें मेघ वर्षें, अन्न सस्ता हो, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, कार्तिकमें विग्रह हो, अन्नका भाव सस्ता हो, पौषमासमें वणिकृजनोंको पीडा हो, धान्यमें दूना लाभ होवे ॥ १५८ ॥

क्षय ६० संवत्सरफलम् ।

मंडलं कुरुदेशं च कलिंजरसमान्वितम् ॥

क्षये क्षयन्ति सर्वत्र नान्यथा नगनान्दिनि ॥ १५९ ॥

भाषार्थ—अथ क्षयनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीसे
 र्णन करते हैं. कि हे नगनन्दिनि ! क्षयनाम संवत्सरमें कुरुदेश, कर्लिज-
 देशके मंडलमें सर्वत्र क्षय होवे इसमें अन्यथा बात नहीं जानना॥१५९॥

तथाच ।

क्षय ६०, राहुः स्वामी, चैत्रे करकापातः, वैशा-
 खे उत्पातः, ज्येष्ठापादयोः बालकरोगः, अल्प-
 मेघः, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे खंडवृष्टिः, आश्वि-
 ने रोगोत्पत्तिः, सर्वधातुसमता, मध्यमः समयः,
 राजविरोधः, पश्चिमायां सुभिक्षम्, पूर्वस्यामन्न-
 समता ॥ १६० ॥

भाषार्थ—क्षयनाम संवत्सर राहु स्वामी, चैत्रमें करकापात हो, वैशाख-
 में उत्पात हो, ज्येष्ठ आपादमासमें बालकरोग हो, वर्षा थोड़ी हो, अन्नका
 भाव सस्ता हो, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे, आसौजमें रोगकी उत्पत्ति
 हो, धातुयें सब समभावसे त्रिकें, समय मध्यम हो, राजाओंमें विरोध हो,
 पश्चिममें सुभिक्ष (मद्दा), पूर्वमें अन्न समभाव होवे, यह रुद्रजीकी बीसी
 लिखी, इस प्रकार यह साठि संवत्सरोंका फल लिखा ॥ १६० ॥

समयवाहनविचारः ।

चैत्रशुक्लप्रतिदाको जो वार हो वही संवत्सरका राजा होता है, चारानुसार
 वाहन होता है, संवत्सरका राजा यदि सूर्य हो तो अश्व वाहन समयका
 जानना, चन्द्र हो तो गृध्र, मंगल हो तो वृषभ, बुध हो तो सिंचानु,
 गुरु हो तो चातक, शुक्र हो तो दर्दुर, शनि हो तो महिड वाहन जान-
 ना । परन्तु विशेष करके नीचे लिखे अनुसार संवत्सरका वाहन संवत्सरफल
 सुनाते समय एतद्देशवासीय ज्योतिषी (पंडित) लोग सुनाते हैं. सो वाह-
 न प्रकार हम आगे लिखते हैं. ।

रविशुक्रे गजारूढे शनिसोमौ तुरंगमः ॥

भौमेज्यो नावकश्चैव बुधे दोला प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

भाषार्थ—रवि अथवा शुक्र संवत्सरका राजा हो तो संवत्सरका गज (हाथी) जानना, शनि वा चन्द्र हो तो घोडाका वाहन जानना, मंगल और गुरु यदि वर्षका राजा हो तो नौकाका वाहन ना, बुध हो तो संवत्सरका वाहन दोला (झूला अथवा डोला)

वाहनफलम् ।

गजारूढो वत्सरश्च सुमिक्षं च प्रजासुखम् ॥

वर्षाकाले सुवृष्टिश्च सुखिनः सर्वजंतवः ॥ २ ॥

भाषार्थ—गज (हाथी) के वाहन जो संवत्सरका हो तो सुमिक्ष (सुख) हो और प्रजाको सुखहो, वर्षाकालमें उत्तम वृष्टि हो, तथा सुखी रहें ॥ २ ॥

अश्वारूढो वत्सरश्च भूमिकंपो महाभयम् ॥

राजानो विग्रहं यांति वृष्टिनाशो महर्घता ॥ ३ ॥

भाषार्थ—घोडाके वाहन यदि संवत्सर हो तो भूमिकंप हो, विग्रह होवे, वर्षाका नाश हो, अश्वका भाव महंगा होवे ॥ ३ ॥

जनानां भ्रमिते सर्वे चतुष्पदाः प्रपीडिताः ॥

विफला सकला धात्री नौकावाहनवत्सरे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—संवत्सर यदि नौकावाहन हो तो सम्पूर्ण मनुष्य और जीवोंको पीडा हो, समस्त पृथिवी फलरहित होवे ॥ ४ ॥

यस्याऽङ्गे वाहनं दोला हाहाभृता च मेदिनी ॥

दुर्मिक्षं सर्वदेशेषु संग्रामं खंडखंडयोः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिस वर्षमें संवत्सरका वाहन बोला हो तो भूमिपर हाहा-
र हो और सब देशोंमें दुर्भिक्ष हो अर्थात् अकाल पड़े, तथा खंडखंडमें
ग्राम (युद्ध) होवे ॥ ५ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलान्तर्वर्तिलखीमपुरखीसीनिवासि-
उद्योतिर्वित्पंडितनारायणप्रसादमिश्रविलिखितसांवत्सरी-
भाषाश्रुवादे संवत्सरफलवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ राजमंत्र्यादिफलवर्णनं नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ १ ॥

चैत्रादिमेपादिकुलीरतौलीमृगादिवाराधिपतिक्र-
मेण ॥ राजा च मंत्री ह्यथ सस्यनाथो रसाधिपो
नीरसनायकश्च ॥ आर्द्रादिनाथो घननायकश्च
धान्याधिपश्चापदिनादिवारः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अथ राजा मंत्री आदियोंका फल वर्णन करनेके अर्थ परदे
के जाननेके अर्थ कहते हैं । चैत्रशुक्लपक्षप्रतिपदाको जो वार हो वही
सत्तारका राजा होता है, मेषसंक्रान्ति जिस दिन हो वही पार संवत्सरा-
धी होता है, कर्कसंक्रान्ति जिस दिन हो वह वार सस्यधिप कहिये, तुला-
संक्रान्ति जिस वारमें प्रवेश हो वही पार रसाधिप कहना, मकरसंक्रान्ति
जिस वारमें प्रवेश हो वही पार नीरसाधिप कहा है, जिन वारमें आर्द्रा-
संक्रान्ति हो वही पार मेषाधिप होता है, धनुर्य संक्रान्ति जिस वारमें हो वह
धान्याधिप कहिये, एवं निहसंक्रान्तिवा वार दुर्गा और कन्यसंक्रान्ति
वार धनेश तथा मीनसंक्रान्तिवा वार फलेश होता है ॥ १ ॥

राजफलम् ।

सूर्ये नृपे स्वल्पजलाश्च मेघाः स्वल्पं धान्यं
फलाश्चमल्पवृक्षाः ॥ स्वल्पं पयो गोषु जनेषु
पीडा चौराग्निबाधा निधनं नृपाणाम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा सूर्य हो तो मेघ थोड़ा जल बरे, अन्न हो, वृक्षोंमें फल थोड़े हो, गौवोंमें दूध थोड़ा हो, मनुष्योंमें चोर अग्निसे बाधा (भय) और राजाओंका निधन हो ॥ १ ॥

चन्द्रे नृपे मंगलशोभनानि प्रभूतवृष्टिः प्रचुरं च
धान्यम् ॥ सौख्यं जनानामुदयो नृपाणां प्रशा-
म्याति व्याधिजरा नराणाम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा चन्द्र हो तो सुंदर मंगल हो, वृष्टि बहुत तथा अन्न बहुत हो, मनुष्योंको सुख हो, राजाओंका उदय हो, व्याधी और जरा विनाश हो जावे ॥ २ ॥

भौमे बन्धिभयं नराणां चौराकुलं पार्थिवविग्रह-
श्च ॥ दुःखं प्रजाव्याधिवियोगपीडा स्वल्पं पयो
मुचति वारिवाहः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मंगल राजा हो तो मनुष्योंको अग्निमें भय हो, पीडा, राजाओंमें विग्रह, प्रजाको दुःख रोग और वियोगमें पीडा, मेघ थोड़ा जल बरे ॥ ३ ॥

बुधम्य गज्ये मंजलं महीतलं गृहे गृहे मृरि वि-
वाहमंगलम् ॥ प्रकुर्यते देवद्विजाचनं नराः स्वा-
म्यं सुमिश्रं धनधान्यमंकुलम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा धुध हो तो पृथ्वीपर जल बहुत हो, घर बहुतायतसे दिवाहमंगल हों, सम्पूर्ण मनुष्य देव ब्राह्मणोंका पूजन करें, ग्यता हो और अन्नादिका भाव सस्ता हो, पृथ्वी धन धान्यसे पूर्ण ॥ ४ ॥

गुरो नृपे वर्षति कामदं जलं महीतले कामदु-
घाश्च धेनवः ॥ यजन्ति विप्रा वहवोऽग्निहोत्रिणो
महोत्सवं सर्वजनेषु वर्तते ॥ ५ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा घृहस्पति हो तो समयपर उत्तम वर्षा हो, मंडलमें गौवें बहुत दूध दें, विप्रलोग अग्निहोत्रादिसे बहुत यजन सम्पूर्ण मनुष्योंमें महाउत्सव होवे ॥ ५ ॥

शुक्रस्य राज्ये बहुसस्यसंकुला प्रभूततोयाम्बु-
धरा धरित्री ॥ फलन्ति वृक्षा बहुगोप्रसूतिर्वसु-
न्धरा पार्थिवसौख्यसंयुता ॥ ६ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा शुक्र हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे पूर्ण हो, जल घरामंडलमें वर्षे, वृक्षोंमें फल बहुत हो, गौवें बहुत घ्यावें, राजसुखसे युक्त हो ॥ ६ ॥

शनैश्चरे भूमिपतो सकृज्जलं प्रभूतरोगैः परिपी-
डिता जनाः ॥ युद्धं नृपाणां बहु तस्कराद्भयं भ-
वन्ति लोकाः क्षुधया प्रपीडिताः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनैश्चर संवत्सरका राजा हो तो एक बार जलकी वर्षा बहुत रोगोंसे मनुष्य पीडित होवें, राजाओंका युद्ध हो, चोरोंसे भय हो, लोकजन क्षुधासे पीडित होवें ॥ ७ ॥

मंत्रिफलम् ।

नृपभयं गदतोऽपि हि . . . तत्प्रचुरधान्यः
महीतले ॥ रसचयं हि समर्घतमं तदा रविमाः
त्यपदं हि समागतः ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सूर्य मंत्रिपदको प्राप्त हो तो राजभय, रोगभय, भय होवे, बहुत धान्य व धन आदि पृथिवीपर होवे, सम्पूर्ण ॥ ११ ॥

शशिनि मंत्रिगते बहुसस्यवत्यपि धरा स्मते
सुखमंडिता ॥ वियति वारिधरा बहुवर्षिणो ज-
नपदा सुखराशिशुशोभिताः ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा संवत्सरका मंत्री हो तो बहुत सत्य हो, धीपर सुख हो, मेघ बहुत जल बर्यै, मनुष्य अनेक सुखोंसे सुशोभित हुंछे।

अवनिजो ननु मंत्रिपदं गतो भवति दस्युगद
दिजवेदना ॥ जनपदेषु जयं सुखसंचयं न व
गोषु पयो द्विजकर्म च ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मंगल यदि संवत्सरका मंत्री हो तो मनुष्योंको रोग आदिसे पीडा उत्पन्न हो, तथा प्राणियोंमें जयपूर्वक अनेक गायोंमें दूध बहुत न हो, ब्राह्मण अपना कर्म न करें ॥ ३ ॥

शशिमृते' शुभमंत्रिसमागते स्वपंतिना कु
मदनक्रियाम् ॥ बहुधनं बहुवारिसमन्वितं य
मुरिचणान्नमहर्षता ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि युध संवत्सरका मंत्री हो तो स्त्रियां अपने पतिसे पूर्वक भोगविलास करें, लोक बहुत धन और बहुत जलसे युक्त हो, समूर चना ये अन्न महंगे हो ॥ ४ ॥

विविधधान्ययुता खलु मेदिनी प्रचुरतोयघना
मुदिता भवेत् ॥ नृपतयो जनपालनतत्पराः सु-
रगुरो ननु मंत्रिसमागते ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि घृहस्पति संवत्सरका मंत्री हो तो पृथिवी नाना प्रकार-
धान्यसे युक्त हो और मेघ बहुत जल देंगे, राजाओं का भजापालनमें
र हो ॥ ५ ॥

भृगुमुते ननु मंत्रिपदं गते शलभमृषकञ्चर-
माहिपैः ॥ भवति धान्यसमर्घतया भयं जनप-
देषु जलं सरितोऽधिकम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका मंत्री यदि श्रुक हो तो टीली, मूषर, दूधर, गीरे
आदि के मनुष्यों के भय हो, धान्यगाय सस्ता हो, सरिताओंमें जल अ-
धिक होवे ॥ ६ ॥

रविमुते यदि मंत्रिणि पार्थिवा विनयसंरहिता
यहुदुःखदाः ॥ न जलदा जलदा जनतापदा जनप-
देषु सुखं धनजं क्वचित् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि संवत्सरका राजमंत्री शनिधर हो तो दिनकरिण राजा
आदि, मनुष्य को बहुत दुःख प्राप्त हो, भय जल नहीं देंगे, मनुष्यों को
धनसे कुछ थोड़ा प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥

मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १

भाषार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोड़ा जल दे
मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव धिकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥

वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवः ॥ २

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलने
सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित हों ।

गोधूमसर्पपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥

महर्घं जायते घोरं भोमे धान्याधिपे सति ॥ ३

भाषार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सामो, मूंग
उट्ट, मूंगा ये बहुत महंगे हो ॥ ३ ॥

बृहस्पत्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥

नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४

भाषार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सम्यक् पुत्र
गन्तुं गन्ध महंगे भाव धिकें, गजालोग सर्वदा नीतिने युक्त रहे ।

गोचूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोट्रवाः ॥

सुभिक्षं जायते देवि गुरो धान्याधिपे सति ॥ ५

भाषार्थ—हे देवि ! यदि वृहस्पति धान्याधिप हो तो गेहूं, धन,
कमला, उट्ट, बांदी ये सम्यक् भाव धिकें ॥ ५ ॥

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥

शुके धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६

वार्थ—यदि शुक धान्याविष हो तो सुभिन्न हो, स्वास्थ्य हो, स
न नाश हो, पीछेसे धान्यादि वस्तुओंका भाव महंगा होवे ॥ ६ ॥

दुर्भिक्षं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥
सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

वार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्भिक्ष हो, कलह हो,
वेग्रह हो और सौराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणो हि पूर्वं धान्यं समर्थं वह-
नोऽपि चोराः ॥ युद्धं नृपाणां जलदा जलाढ्याः
बलपं च सस्यं बहुभ्रुरुहाश्च ॥ १ ॥

वार्थ—यदि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य सस्ता हो,
यहुत हो, राजाओंसे युद्ध हो, मेघ जल बहुत वर्षे, सस्यधान्य थोडा
हो, वृक्षादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजासुखं मेघः पयो मुंचति
गोपगोधुक् ? ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा
वेद्धान्यधनौघपूर्णा ॥ २ ॥

वार्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजाको सुख हो, मेघ बहुत
धरे, देवता ब्राह्मण इनकी आराधना राजालोग करें और शिवेकी
न्यसमूहसे पूर्ण होवे ॥ २ ॥

धान्यपतौ धरणीमुते गजतुरंगखरोष्ट्रगवा-
ननु भवेद्दहुरोग घनोजलं न समसाख्य-
पधान्यदत् ॥ ३ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥

मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १

भाषार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोडा जल वें
मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव विकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥

वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवः ॥ २

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलसे
सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित हों ॥

गोधूमसर्पपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥

महर्घं जायते घोरं भौमे धान्याधिपे सति ॥ ३

भाषार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सरसों, मूंग,
उडद, मूंगा ये बहुत महंगे हो ॥ ३ ॥

बहुसस्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥

नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४

भाषार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे युक्त
रसवस्तु सदा महंगे भाव विकें, राजालोग सर्वदा नीतिसे युक्त रहें ॥

गोधूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोद्रवाः ॥

सुभिक्षं जायते देवि गुरो धान्याधिपे सति ॥ ५

भाषार्थ—हे देवि! यदि बृहस्पति धान्याधिप हो तो गेहूं, घान,
कागना, उडद, कोदीं ये सस्ते भाव विकें ॥ ५ ॥

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥

शुके धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६

भाषार्थ—यदि शुक धान्याधिप हो तो सुमिश्र हो, स्वास्थ्य हो, शत्रुओं का नाश हो, पीलेसे धान्यादि वस्तुओं का भाव महंगा होवे ॥ ६ ॥

दुर्मिश्रं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥
सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्मिश्र हो, घन्ट हो, विग्रह हो और सौराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणो हि पूर्वं धान्यं समर्घं वह-
वोऽपि चौराः ॥ युद्धं नृपाणां जलदा जलाढयाः
त्यल्पं च सस्यं बहुभूरुहाश्च ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य समर्घ हो, युद्ध हो, राजाओंमें युद्ध हो, मेघ जल बहुत वर्षे, सरसधान्य बांटा दूध्यादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजासुखं मेघः पयो मुंचति
गोपगोधुक् ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा
भवेज्जान्यधनोघपूर्णा ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजासुख हो, मेघ बहुत पयो दे, देवता आराधन इनकी आराधना राजात्वेन करे और दुष्टों की न्यायमूर्ति पूर्ण होवे ॥ २ ॥

सधान्यपतो धरणीमुते गजतुरंगस्त्ररोष्ट्रगवा-
॥ ननु भवेद्धुरंग घनो जलं न समसाख्य-
पधान्यहत् ॥ ३ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥

मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोड़ा जल वगे उड़
मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव धिकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥

वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवैः ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलसे पूर्ण हो
सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित हों ॥ २ ॥

गोधूमसर्पपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥

महर्घं जायते घोरं भौमे धान्याधिपे सति ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सरसों, मूंग, तिल
उड़द, मूंगा ये बहुत महंगे हो ॥ ३ ॥

बहुसस्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥

नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सरसमे युक्त हो
रसवर्धु सब महंगे भाव धिकें, गजालोग सर्वदा नीतिमे युक्त रहें ॥ ४ ॥

गोधूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोद्रवाः ॥

सुभिर्ज्ञं जायते देवि गुरो धान्याधिपे सति ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे देवि ! यदि बुध्गणनि धान्याधिप हो तो गेहूं, धान, मूंग,
काजल, उड़द, बांदा ये सब भाव धिकें ॥ ५ ॥

सुभिर्ज्ञं जायते स्वर्ग्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥

शुक्ले धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यदि शुरु धान्याविर हो तो सुभिन्न हो, स्वास्थ्य हो, सब द्रवोंका नाश हो, पीछेसे धान्यादि वस्तुओंका भाव महंगा होवे ॥ ६ ॥

दुर्भिक्षं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥

सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्भिक्ष हो, कलह हो, मैं विग्रह हो और सौराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणौ हि पूर्वं धान्यं समर्थं वह-
वोऽपि चोराः ॥ युद्धं नृपाणां जलदा जलाढ्याः
स्वलपं च सस्यं बहुभ्रूहाश्च ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य सस्ता हो, चोर बहुत हो, राजाओंसे युद्ध हो, मेघ जल बहुत वर्षे, सस्यधान्य थोड़ा उपजे, वृक्षादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजामुखं मेघः पयो मुंचति
गोपगोधुक् ? ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा
भवेद्धान्यधनोघपूर्णा ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजाको सुख हो, मेघ बहुत जलवृष्टि करें, देवता व्याखण इनकी आराधना राजालोग करें और श्रधिवी धन व धान्यसमूहसे पूर्ण होवे ॥ २ ॥

प्रथमधान्यपत्तौ धरणीमुते गजतुरंगखरोष्ट्रगवा-
मपि ॥ ननु भवेद्दहुरोग घनोजलं न समसाख्य-
करं नृपधान्यदत्त ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि सस्याधिप मंगल हो तो हाथी, घोडा, गर्दम, गौयें इनको रोग बहुत होवे, और बहुत जल नहीं वर्षे, नुस्का नहीं होवे तथा तुप (भूसीवाला) धान्य नहीं होवे ॥ ३ ॥

जलधरा जलराशिमुचो भृशं मुखसमृद्धियुतं नि-
रुपद्रवम् ॥ द्विजगणः स्तुतिपाठकरः सदा प्रथ-
मसस्यपतो सति बोधने ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि प्रथम सस्याधिप बुध हो तो मेघ उत्तम वृष्टि करें, सुखकी वृद्धि हो, उपद्रव कुछ नहीं होवे, ब्राह्मणलोग स्तुतिपाठ सदा करें ॥ ४ ॥

सस्यपतो सुरराजपुरोहिते सकलसौख्यकरः शु-
तिपूर्वकः ॥ जलधरा जलदा बहुसस्यदा रम्य-
यांसि बहूनि वसूनि वै ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति सस्यपति हो तो सकल सौख्य करे और मेघ बहुत जल वर्षे, रस, दुग्ध, घनादि पदार्थ बहुत हों ॥ ५ ॥

शुक्रो यदा धान्यपतिर्धरायां मेघो जलं वर्षति
शोभनं च ॥ गोधूमशालीक्षुघनाप्रियंगुवृक्षेषु पु-
ष्पाणि सुखप्रदानि ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शुक्र सस्याधिप हो तो पृथ्वीपर बहुत उत्तम वर्षा होवे, और गेहूं, धान, ऊख, नागरमोथा, कागनी, और वृक्षोंमें फल फूल सुखप्रद उत्पन्न हों ॥ ६ ॥

रविमुते यदि धान्यपतो जनो नृपतिभिः परि-
पीडितविग्रहः ॥ गदभयं तुपधान्यहरं सदा दुरि-
तवादविवादयुता नराः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनैश्चर सस्याधिप हो तो मनुष्य राजासे परिपीडित होवे और विग्रह हो, रोगभय होवे और भूखीवाले धान्य नहीं हों, सदा पाप वादविवादकरके मनुष्य युक्त हो ॥ ७ ॥

अथ मेघाधिपफलम् ।

रवौ मेघाधिपे जाते स्वल्पतोयप्रदा घनाः ॥

स्वल्पं धान्यं भवेत्लोके भयं च भृतले सदा ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सूर्य मेघाधिप हो तो मेघ थोड़ा जल वर्षे, लोकमें थोड़ा धान्य होवे और सदा पृथ्वीपर भय हो ॥ १ ॥

चन्द्रे मेघाधिपे जाते बहुतोयप्रदा घनाः ॥

नन्दन्ति पार्थिवाः सर्वे प्रजानां च सुखं सदा ॥ २ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा मेघाधिप होनेसे मेघ बहुत वर्षा करें, सब राजालोग आनन्दित होवे, प्रजा सदा सुखी रहे ॥ २ ॥

अवनिजे जलदस्य पतौ भुवि श्रुतिविचारविही-

नपराभवाः ॥ क्वचिदपि प्रचुरं जलमल्पकं क-

चिदपि प्रचुरं बहुतापदम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि मंगल मेघाधिप हो तो पृथ्वीपर ब्राह्मण वेदविचारसे विहीन होवे, कहीं वर्षा बहुत होवे, कहीं थोड़ी वृष्टि होवे, और बहुत ताप होवे, मनुष्य ये आपत्तिसे युक्त हों ॥ ३ ॥

अमृतरश्मिसृते यदि वारिपे बहु जलं तुपधान्य-

रसादिकम् ॥ द्विजवरां यजनोत्सुकचेतसो वि-

विधसौख्ययुता धरणी तदा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि मेघाधिप बुध हो तो बहुत जल वर्षे और तुषधान्य व रस आदिक वस्तुयें बहुत हों, ब्राह्मणलोग यजन पूजन करनेमें मन लगावें, और नाना प्रकारके सुखसे युक्त पृथिवी होवे ॥ ४ ॥

गुरुरधिप्रियष्टाष्टिकरः सदाऽखिलविलासवती धर-
णी तदा ॥ श्रुतिविचारपरा नरपालका रससमृ-
द्धियुताः किल मानवाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति मेघाधिप हो तो बहुत उत्तम अर्थात् समय-पर वर्षा होवे और सम्पूर्ण पृथिवीपर प्रजा सुखभोगयुक्त होवे, राजलोग वेदविचारमें तत्पर हों, तथा सम्पूर्ण मनुष्य रससमृद्धिसे युक्त होवें ॥ ५ ॥

भृगुमुतो जलदस्य पतिर्यदा जलयुता जलदा दि-
वि शोभिनः ॥ धननिधानयुता द्विजपालका-
नृपतयो जनतासुखदायकाः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मेघाधिप शुक हो तो मेघ आकाशमंडलमें जलमे युक्त होकर शोभाके प्राप्त होवें, द्विजपालक जन धनसंपन्न होवें, राजाओंसे प्रजाके मनुष्य सुखी होवें ॥ ६ ॥

रविमुते जलदस्य पतो भवेद्विरलशृष्टिवती वसु-
धा तदा ॥ मनसि तापकरो नृपतिः सदा विवि-
धरोगयुता जनता तदा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनैश्चर मेघाधिप हो तो पृथिवीपर वर्षा थोड़ीही होगी, राजाको मदा तथा मनमें रूढ़, मनुष्योंको नाना प्रकारके रोग आक्रमण हो ॥ ७ ॥

रसाधिपफलम् ।

रसपती तरणी धरणी तदा विरसभोगरताल्प
पयोधरा ॥ वसनतेलघृतप्रियमानवाः सुखरसं च
भुनाक्ति महीपतिः ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सूर्य रसाधिप हो तो जल थोडा घरे, वस्त्र तेन पी वे
परु मनुष्योंको प्रिय हों, राजालोग सुख भोग करें ॥ १ ॥

यदि विधो रसपे भुवि मानवो नवनवां युवतीं
बुभुजे प्रियाम् ॥ जलधरा बहुवारिविधायका र-
सवती धनधान्यवती मही ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा रसाधिप हो तो मनुष्य पृथिवीपर नूतन अपनी
प्यारी युवतीसे भोगविलास करे अर्थात् बियाह बहुत होंगे, मेघ बहुत वर्षा
करें, पृथिवी रसवस्तुओंसे व धनधान्यसे भरपूर होगे ॥ २ ॥

यदि धरातनयो रसपो भवेन्नरसराशियुता जन-
ता शुभा ॥ नरपतिर्विपमोजनतापदो न जल-
दो बहुलष्टिकरो भुवि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि धरातनय (भंगल) रसाधिप हो तो रस दम्पुर्न दान
नहीं होवे, राजालोग विपमता करें, जिससे मनुष्योंको झेरा हो ३०० पृथि
वीपर बहुत वर्षा नहीं होवे ॥ ३ ॥

रसपती द्विजराजमुते मही सुलभधान्यघृतादि-
युता जनाः ॥ प्रमृदिता वरनायकपालिता बहु-
जलाखिलदेशमुरक्षिताः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो द्विजराजसुत (बुध) रसाधिप हो तो पृथिवीपर मनुष्य-
धान्य और धी आदिसे युक्त हो, राजालोग सुखी रहे, बहु जल वषों मि-
ससे देश सुरक्षित होवे ॥ ४ ॥

यदि गुरौ रसपे जनसौख्यदे कमलवंति सरांसि-
तृणानि च ॥ जनपदा द्विजपूजनतत्परा गज-
वाजिरथोष्ट्रयुता नृपाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति रसाधिप हो तो मनुष्योंको सुख हो, सति-
ओंमें कमल बहुत उपजे, तृणपदार्थ बहुत उपजें, ब्राह्मणपूजनमें मनुष्य
तत्पर हो, हाथी, घोड़ा, रथ, ऊंट, इनकरके राजालोग युक्त हों ॥ ५ ॥

भृगुसुते रसनायकतां गते जनपदा जलतोपि-
तमानसाः ॥ सुखसुभिक्षप्रमोदवती धरा धर-
णिषा नरपालनतत्पराः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यदि शुक रसाधिप हो तो मनुष्योंके मन उत्तम वर्ण होने-
से प्रसन्न रहे, पृथिवी सुख और सस्ते भावके कारण प्रमोदवती हो, राजा
प्रजापालनमें तत्पर हों ॥ ६ ॥

रविसुते रसपे रससंक्षयो न जलदा गददाश्च पयो-
धराः ॥ अजगवां गजवाजिखरोष्ट्रहा जनपदेषु
नरा न रसर्युताः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनैश्चर रसाधिप हो तो मेघ वर्षा नहीं करें, बकरी,
गो, हाथी, घोड़ा, गर्दभ, ऊंट, इनका विनाश हो, रसोंका अभाव हो ॥ ७ ॥

नीरसाधिपतौ मूर्ये त्रपुचन्दनयोरपि ॥
रत्नमाणिवयमुक्तादेरघट्टद्धिः प्रजायते ॥ ९ ॥

भाषार्थ—यदि नीरसाधिप सूर्य हो तो शीशा, चन्दन, रत्न, माणिक, मोती आदिका भाव वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १ ॥

नीरसाधिपफलम् ।

शुक्लवर्णादिवस्तूनां मुक्तारजतवाससाम् ॥

अर्घवृद्धिः प्रजायेत शशांके नीरसाधिपे ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा नीरसाधिप हो तो सपेद रंगकी वस्तुयें मोती, चांदी, वस्त्र, इनके भावकी वृद्धि हो ॥ २ ॥

नीरसेशो यदा भौमः प्रवालं रक्तवाससम् ॥

रक्तचन्दनताम्राणामर्घवृद्धिर्दिने दिने ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो नीरसाधिप मंगल हो तो मूंगा, रक्त वस्त्र, लाल चन्दन इनका भाव दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

चित्रवस्त्रादिकं चैव शंखचन्दनपर्वकम् ॥

अर्घवृद्धिः प्रजायेत नीरसेशो बुधो यदि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि नीरसाधिप बुध हो तो चित्रवस्त्र आदिक और शंख, चन्दन आदि वस्तुओंके भावकी वृद्धि होवे ॥ ४ ॥

हरिद्रापीतवस्तूनां पीतवस्त्रादिकं च यत् ॥

नीरसेशो यदा जीवः सर्वेषां प्रीतिरुत्तमा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो नीरसाधिप बृहस्पति हो तो हरदी आदि पीत वस्तु और पीत वस्त्र आदि जो हैं उनमें सबकी प्रीति विशेष बरके होवे ॥ ५ ॥

कर्पूरागरुगन्धानां हेममौक्तिकवाससाम् ॥

अर्घवृद्धिः प्रजायेत नीरसेशो भृगुर्यदि ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यदि नीरसेश शुक हो तो कपूर, अमर, चन्दन, सुगन्ध, मोती, वस्त्र आदि वस्तुओंका भाव वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

त्रपुपिंडादिलोहानां कृष्णवस्त्रादिवस्तुनाम् ॥

अर्घवृद्धिः प्रजायेत मन्दे नीरसनायके ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो शनैश्चर नीरस वस्तुओंका स्वामी हो तो सीसा और पिंड आदि लोहाका, कृष्णवस्त्रादिक वस्तुओंका भाव वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

दुर्गेशफलम् ।

नयविशेषकरस्तरणिस्तदा गतभया नरराजपु-
रोगमाः ॥ समधिकेन तदा नृपतोन्यतः पथिपु-
संब्रजतां न भयं क्वचित् ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो सूर्य दुर्गेश (गढका स्वामी) हो तो राजालोग विशेष नीतिसम्पन्न हों और निर्भय रहे, तथा पथिकलोगोंको मार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं होवे ॥ १ ॥

गढपतिर्मृगलांछनको यदा नृपसुराज्यविलासित-
पौरजाः ॥ बहुधनेषुजगोरसभोगिनो नरवरा न-
रवर्णितविग्रहाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो चन्द्रमा गढपति हो तो मनुष्योंको राजासे सुख प्राप्त हो, अनेक धन और मधुर रस, गोरसके भोगसे युक्त हो, राजाओं मनुष्योंसे वर्णन किये जायगे ॥ २ ॥

अवनिजो गढनायकतां गतो विविधदुःखवियो-
गसमन्वितः ॥ जनपदेषु जनः क्रयविक्रये भय-
विशेषतया न फलं क्वचित् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि मंगल गढनायक हो तो मनुष्य नाना प्रकारके दुःख और वियोगसे युक्त होवे और खरीदने बेचनेके काममें भय विशेष हो, फल कुछ न हो ॥ ३ ॥

यसाम्यसुखं शशिजे प्रभौ भवति राशिगते
विशेषतः ॥ शशिसुते यदि कोटकपालके प-
पु द्रव्ययुजां न भयं क्वचित् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि बुध गढनायक हो तों विषयसुख समान भावसे प्राप्त
और अधिकजन लाभ सहित और निर्भय पूर्वक रहें अर्थात् धन
और किसी प्रकारका भय न होवे ॥ ४ ॥

सुरगुरौ गढपे नयशोभिता नरवरा नरपाः कर-
पालिताः ॥ गिरिषु वै नगरेषु समं सुखं सुखमे-
ति द्विजशस्त्रवतां विशाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति गढनायक हो तो राजालोग नीतिके पन्थायमे
शोभाको प्राप्त हो, पर्यतों और नगरोंमें समान सुख प्राप्त होवे, प्रादम
क्षत्रिय वैश्योंके अतिसुख प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

नरवरेभुविशेद्यपतिर्यदा भृगुसुतो बहुसौख्यकरो
मतः ॥ विनयवाणिजगेहसमः सुखो गतवनं नि-
कटेऽपि च दूरतः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शुक्र गढपति होतो राजा प्रजा सुखमे युक्त होवें, व्यापारमें
लाभ हो, गृहके समान वनमें जानें निकट व दूर एक समान सुख
प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

रविसुते गढपालिनि विग्रहो सकलदेशगताश्चलि-
ता जनाः ॥ विविधवरिविशेषितनागराः कृपिधनं
न लभेद्भुवि कश्चन ॥ ७ ॥

त्रपुपिंडादिलोहानां कृष्णवस्त्रादिवस्तुनाम् ॥

अर्घवृद्धिः प्रजायेत मन्दे नीरसनायके ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो शनैश्चर नीरस वस्तुओंका स्वामी हो तो सीसा और पिंड आदि लोहाका, कृष्णवस्त्रादिक वस्तुओंका मात्र वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

दुर्गेशफलम् ।

नयविशेषकरस्तरणिस्तदा गतमया नरराजपु-
रोगमाः ॥ समाधिकेन तदा नृपतोन्यतः पथिपु-
संत्रजतां न भयं क्वचित् ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो सूर्य दुर्गेश (गडका स्वामी) हो तो राजालोग विशेष नीतिसम्पन्न हों और निर्भय रहे, तथा पथिकलोगोंको मार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं होवे ॥ १ ॥

गढपतिर्मृगलांछनको यदा नृपसुराज्यविलासित-
पौरजाः ॥ बहुधनेश्वजगोरसभोगिनो नरवरा न-
रवर्णितविग्रहाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो चन्द्रमा गढपति हो तो मनुष्योंको राजासे सुख प्राप्त हो, अनेक धन और मधुर रस, गोरसके भोगसे युक्त हो, राजाओं मनुष्योंसे वर्णन किये जायगे ॥ २ ॥

अवनिजो गढनायकतां गतो विविधदुःखवियो-
गसमन्वितः ॥ जनपदेषु जनः क्रयविक्रये भय-
विशेषतया न फलं क्वचित् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि मंगल गढनायक हो तो मनुष्य नाना प्रकारके दुःख और वियोगसे युक्त होवे और खरीदने बेचनेके काममें भय विशेष हो, फल कुछ न हो ॥ ३ ॥

विषयसाम्यमुखं शशिजे प्रभौ भवति राशिगते
तु विशेषतः ॥ शशिसुते यदि कौटकपालके प-
थिषु द्रव्ययुजां न भयं कचित् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि धुध गढनायक हो तों विषयसुख समान भावसे प्राप्त हो, और पथिकजन लाभ सहित और निर्भय पूर्वक रहें अर्थात् धन मिले और किसी प्रकारका भय न होवे ॥ ४ ॥

सुरगुरौ गढपे नयशोभिता नरवरा नरपाः कर-
पालिताः ॥ गिरिषु वै नगरेषु समं सुखं सुखमे-
ति द्विजशस्त्रवतां विशाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि गृहस्पति गढनायक हो तो राजालोग नीतिके वर्तवसे शोभाको प्राप्त हो, पर्यतों और नगरोंमें समान सुख प्राप्त होवे, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके अतिसुख प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

नरवरेषुविशेद्यपतिर्यदा भृगुसुतो बहुसौख्यकरो
मतः ॥ विनयवाणिजगेहसमः सुखो गतवनं नि-
कटेऽपि च दूरतः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शुक्र गढपति होतो राजा प्रजा सुखसे युक्त होवें, व्यापारमें लाभ हो, गृहके समान घनमें जानें निकट व दूर एक समान सुख प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

रविसुते गढपालिनि विग्रहो सकलदेशगताश्चालि-
ता जनाः ॥ विविधवैरिविशेषितनागराः कृपिधनं
न लभेद्भवि कश्चन ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो रविसुत (शनैश्चर) गठनायक हो तो समस्त मनुष्योंमें विग्रह भाव होवे, नागरिकजन अनेक वैरियोंसे युक्त हों, खेतीसे कुछ धन पृथिवीपर प्राप्त न होवे ॥ ७ ॥

फलेशफलम् ।

द्रुमवती फलपुष्पवती धरा प्रमुदिता फलभोग-
विरोधतः ॥ बहुजलं जलदो भुवि मुंचति कचिद-
पि प्रमितं फलपो रविः, ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सूर्य फलपति हो तो पृथिवी वृक्ष फल फूलसे युक्त होवे, फलभोगसे प्रजा आनन्दित होवे, बहुत जल पृथिवीपर मेघ वरन्तु किसी भागमें वृष्टि विशेष होवे, किसी भागमें नहींभी होवे ॥ १ ॥

यदि विधुः फलपो द्रुमराशयः फलयुता व्रतिभिः-
कुसुमैर्युताः ॥ द्विजमुखा वरभोगसमन्विता नृप-
तयो नयनाटनतत्पराः ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा फलपति हो तो सम्पूर्ण वृक्ष फल फूल युक्त होवे, व्राह्मणादि सब भोग करके युक्त होवे और राजालोग नीचे पूर्वक परिधमण करें ॥ २ ॥

फलपतिर्यदि भूतनयो भवेत्सुबहुपुष्पफलान्वित-
मेदिनी ॥ गतभयानृतदेशजनास्तदा नृपतयो
बहुविग्रहकारकाः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि मंगल फलपति हो तो पृथिवी बहुतसे फल व फूल से युक्त होवे, आनर्तदेशके मनुष्य भयकरके रहित हों और राजालोग बहुतही युद्ध करें ॥ ३ ॥

यदि बुधे फलपे फलमुत्तमं जलधरा जलराशि-
मुचस्तदा ॥ बहुतृणं कुसुमं कमलैर्युतं जनप-
दा जनसौख्यमुदान्विताः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो बुध फलपति हो तो फलोंकी उपज अच्छी हो और
मेघ उत्तम वर्षा करें, तृणपदार्थ, फूल व कमल आदि बहुत हों, राजा
भजा सुख और आनन्दसे युक्त होवे ॥ ४ ॥

सुरगुरुः फलनायकतां गतो गतभया वनराशिम-
हाद्गुमाः ॥ यजनयाजनकोत्सवमंदिराः श्रुतिवि-
चारपरा द्विजपूर्वकाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि गुरुस्फुटि फलनायक हो तो वनमें सम्पूर्ण वृक्ष भली
भांति फलें फूलें, मन्दिरोंमें पूजन यज्ञका उत्सव होवे, ब्राह्मणादि सब
वेदविचार सम्पन्न होवे ॥ ५ ॥

यदि फलस्य पतौ भृगुजे धरा मृदुसुमामहीरु-
हराशयः ॥ बहुपथा नरनाथसुभोगदा द्विजवराः
श्रुतिपाठपरायणाः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो फलपति शुक्र हो तो सब वृक्ष फलें फूलें, राजालोग
सुखपूर्वक परिभ्रमण करते हुये प्रजापालन करें, ब्राह्मणलोग वेदपाठ कर-
नेमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥

यदि शनिः फलपः कल्हो मवेज्जनितपुष्पगणा-
स्तरवः सदा ॥ द्विजभयं नरतस्करजं तदा जन-
पदा जनराशिसमाकुला ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनैश्चर घनपति हो तो घनकी न्यूनता हो, व लोग सदा रोगसे युक्त हों, घनहीन वणिक् व्यापार करें, कृषि जीविका करनेवाले और द्विजवर (श्रेष्ठ ब्राह्मण) विन्तासे युक्त रहे।

इति श्रीमज्ज्योतिर्वित्पण्डितनागयणप्रसादमिश्रलिखित-
संवत्सरीपद्धतिभाषाश्रुवादे राजमंत्र्यादिफलविचारो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

**अथ रोहिणीसंवत्सरवासादिविचारफल-
वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥**

तत्रादौ रोहिणीवासफलम् ।

मेषसंक्रातिके समय नक्षत्रसे अभिजितसमेत १।२।६।९।१५।१६।२२।२३ ये नक्षत्र समुद्रमें, और ३।७।१०।१४।१७।२१।२४।२८ ये नक्षत्र तटमें और ४।६।११।१३।१८।२०।२५।२७ ये नक्षत्र संधिमें, और ५।१२।१९।२० ये नक्षत्र शृंगमें जानना । इनका फल आगे लिखते हैं।

समुद्रे तु महावृष्टिस्तटे वृष्टिः सुशोभना ॥

पर्वते विन्दुमात्रश्च खंडवृष्टिश्च सन्धिषु ॥ १ ॥

भाषार्थ—रोहिणीका वास जो समुद्रमें हो तो वर्षा बहुत होवे, तटमें रोहिणीका वास हो तो उत्तम वृष्टि होवे, और रोहिणीका वास पर्वत अर्थात् शृंगमें हो तो विन्दुमात्र वर्षा हो, अर्थात् बूंदें पड़ जाया करें और सन्धिमें रोहिणीका वास हो तो वर्षा खंडित हो जावे, अर्थात् कहीं वर्षे कहीं बहुत कमती वर्षा होवे ॥ १ ॥

संवत्सरवासफलम् ।

यदि रोहिणी वास समुद्रमें हो तो संवत्सरका वास मालीके घर जानना, और संधिमें रोहिणीका वास हो तो वैद्यके घर, पर्वतमें रोहिणी-

का वास हो तो कुम्हारके घर, और तटमें रोहिणीका वास हो तो रजक (धोबी) के घर संवत्सरका निवास जानना ।

सर्ववस्तुसमर्घं स्यान्मालाकारगृहेऽद्वके ॥

संवत्सरका वास यदि मालाकारके घर हो तो सब वस्तुओंका भाव सत्ता रहे ॥

सर्वधान्यं महर्घं स्याद्वणिग्वेश्मनि संस्थिते ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो संवत्सरका वास वैश्यके घर होवे तो सब प्रकारके धान्य महंगे भाव विकें ॥ २ ॥

कुम्भकारगृहे वासो तद्वर्षे मध्यमं फलम् ॥

यदि संवत्सरका वास कुम्भकारके घर हो तो उस वर्षमें मध्यम फल होवे ॥

वापीकूपतडागानि नदीनदवनानि च ॥

जलपूर्णानि दृश्यन्ते वासो रजकवेश्मनि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि संवत्सरका वास रजक (धोबी) के घर हो तो वापी (घायली), कूप (कुआं), तडाग (तलाब), नदी, नद, वन ये सब जलसे पूर्ण दीख पड़ें ॥ ३ ॥

संक्रान्तिके चारह मासके मुहूर्त इकट्ठा करनेसे समय मुहूर्त होता है । चारह मासकी तिथि इकट्ठी करके उसमें क्षयतिथि हीन करनेपर शेष समय दिन जानना ॥

आर्द्राप्रवेशे तिथ्यादिफलम् ।

तत्रादौ तिथिफलम् ।

प्रतिपद्यदि चार्द्रायाः प्रवेशे शुभदा रवेः ॥

द्वितीया सस्यवृद्धिः स्यात्तृतीया त्वान्निपादनम् । १ ।

भाषार्थ—प्रतिपदातिथिको यदि आर्द्राका सूर्य प्रवेश हो तो जानना, । द्वितीयाको आर्द्राके सूर्यप्रवेश होनेसे सस्यकी वृद्धि होवे, को प्रवेश होतो उपद्रव हो ॥ ४ ॥

चतुर्थ्यामशुभः प्रोक्तः पंचम्यामुत्तमोत्तमः ॥

षष्ठ्यां धनसमृद्धिः स्यात्सप्तम्यां क्षेममुत्तमम्

भाषार्थ—चतुर्थीमें प्रवेश हो तो अशुभ कहना, पंचमीमें प्रवेश हो तो उत्तमोत्तम जानना, षष्ठीमें प्रवेश हो तो धनकी समृद्धि होवे, ... आर्द्राके प्रवेश हो तो उत्तम क्षेम हो ॥ ५ ॥

अष्टम्यां सस्यवृद्धिः स्यान्नवम्यां त्वीतिवाधनम् ॥

दशम्यां शुभदः प्रोक्तएकादश्यां सुभिक्षकृतः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—अष्टमीमें आर्द्राके प्रवेश हो तो सस्यकी वृद्धि होवे, नवमी में हो तो उत्पात होवे, दशमीमें हो तो शुभफल होवे, एकादशीमें हो तो भाव सत्ता होवे ॥ ६ ॥

द्वादश्यांशुभदाः प्रोक्तस्त्रयोदश्यां जलप्लवम् ॥

भूते त्वर्घविनाशाय पूर्णा पूर्णफलप्रदा ॥ ७ ॥

अमायां सस्यनाशाय इत्युक्तं जगमोहने ॥ ८ ॥

भाषार्थ—द्वादशीमें आर्द्राके प्रवेश हो तो शुभ जानना, त्रयोदशीमें हो तो जल वृष्टि उत्तम हो, चतुर्दशीमें हो तो सस्ताईका विनाश हो, पूर्णिमा में हो तो पूर्ण फल होवे, अमावास्यामें होवे तो सस्यका विनाश होवे यह जगमोहन ग्रन्थमें कथन किया है ॥ ७ । ८ ॥

वारफलम् ।

रोद्रेऽर्के भानुवारे स्यात्प्रवेशे पशुनाशनम् ॥

सोमे सुभिक्षदः प्रोक्तो मीमे निधनमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

बुधे क्षेमं सुभिक्षं च गुरो चाद्रा समृद्धयः ॥

शुक्रेशान्तिकरं प्रोक्तं मन्दे मन्दफलं भवेत् ॥१०॥

भाषार्थ—रविवारके दिन यदि आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो पशुओंका विनाश होवे, सोमवारको आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो सुभिक्ष (मङ्गल) होवे, मंगलवारको हो तो भरण होवे, बुधवारको हो तो सुभिक्ष हो अर्थात् भाव सस्ता होवे, बृहस्पतिको आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो समृद्धि होवे, शुक्रवारको हो तो शान्तिकर जानना, शनैश्वरको हो तो मन्द फल होवे ॥ ९ ॥ १० ॥

नक्षत्रफलम् ।

प्रवेशे रौद्रनक्षत्रे अश्विन्यां तु भयं भवेत् ॥

भरण्यामशुभं प्रोक्तं कृत्तिकायामवर्षणम् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—यदि आर्द्रनक्षत्रके सूर्य अश्विनीनक्षत्रमें प्रवेश हो तो भय-दायक जानने. भरणीनक्षत्रमें अशुभ फल जानना, कृत्तिकामें आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो वर्षा नहीं होवे ॥ ११ ॥

धातृमृगे सुभिक्षं च रोद्रे रौद्रेफलं भवेत् ॥

पुण्ये जलाप्लुतो लोको अदितिश्चाभिवृद्धये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—रोहिणी और मृगशिरामें आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो सुभिक्ष होंगे, आर्द्रामें हो तो उत्तम फल नहीं होवे, पुण्यमें हो तो जलवृष्टि विशेष होवे, पुनर्वसुमें हो तो वृद्धि होवे ॥ १२ ॥

सार्पमे दारुणं प्रोक्तं सर्वसौख्यविनाशनम् ॥

मघायां स्वल्पवृष्टिः स्याद्भगे कीर्तिकरं भवेत् ॥१३॥

भाषार्थ—आश्लेषनक्षत्रमें आर्द्रर्षिप्रवेश हो तो अशुभ सर्व सौख्य विनाश होवे, मघामें हो तो थोड़ी वर्षा होवे, १३ ॥

उत्तरात्रितये वृद्धिः करे सर्वसुखावहम् ॥

चित्रायां चित्रधान्यानि यदा शुभफलं भवेत् ।

भाषार्थ—तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा) में जो आर्द्रार्कप्रवेश हो तो वृद्धि होवे, हस्तनक्षत्रमें यदि आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सर्व सुख प्राप्त हो, चित्रामें हो तो चित्रधान्य (अनेक प्रकारके अन्न) उपजें और शुभ फल होवे, ॥ १४ ॥

स्वातौ सस्याभिवृद्धिः स्याद्विशाखा रोगनाश-
नम् ॥ मैत्रे सर्वमहीपालाः सन्तुष्टाः सर्वज-
न्तवः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—स्वातिनक्षत्रमें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सस्यकी वृद्धि होवे, विशाखामें हो तो रोगकी वृद्धि होवे, अनुराधामें हो तो सब राजा और सम्पूर्ण प्राणी सन्तुष्ट रहें ॥ १५ ॥

ऐन्द्रे सर्पभयं कुर्यान्मूलं सर्वभयावहः ॥

जलर्क्षे चातिरुद्धः स्याच्छ्रवणक्षे शुभं भवेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—ज्येष्ठानक्षत्रमें यदि आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सर्पभय होवे, मूल-
नक्षत्रमें हो तो सब प्रकारका भय होवे, पूर्वाषाढामें हो तो मेघवृष्टि
घटित हो अथवा अतिरुद्ध (रुकावट) हो, श्रवणमें यदि आर्द्रार्कप्रवेश
हो तो शुभ फल जानना ॥ १६ ॥

वामवर्शे तु धरणी संपूर्णफलदायिनी ॥

शतमे जलमंकिणां पूर्वाभाद्रे न शोभनम् ॥ १७ ॥

भाषार्थ—वनिष्ठानक्षत्रमें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो धरणी सामर्थ्य प्राप्त
होवे, शतभिषामें हो तो जल बहुत बर्षे, पूर्वाभाद्रपदमें हो तो
शुभ नहीं जानना ॥ १७ ॥

नृपविध्वंसनादीनि पौष्णर्क्षे कुरुते फलम् ॥ १८ ॥

भाषार्थ—रेवतीनक्षत्रमें यदि आर्द्रार्क्षप्रवेश हो तो राजविध्वंस
आदि फल करे ॥ १८ ॥

योगफलम् ।

विष्कुम्भे पंचके चैव रौद्रर्क्षेप्रविशो यदि ॥

सुभिक्षं जलसंकीर्णं नृपाः स्वस्थाः शुभप्रदाः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—विष्कुम्भयोगमें पांच (विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य,
शोभन इन) योगोंमें यदि आर्द्रार्क्षप्रवेश हो तो सुभिक्ष हो, जल बहुत
वर्षे, राजालोग सुखी रहे और शुभ फल होवे ॥ १९ ॥

अतिगंडेऽतियुद्धं स्यादवृद्धियोगे सुभिक्षकृत् ॥

शूलगंडो दोषकरो वृद्धिश्चैवातिशोभनम् ॥ २० ॥

भाषार्थ—अतिगंडमें यदि आर्द्रार्क्षप्रवेश हो तो अतियुद्ध होवे, वृद्धि-
योगमें हो तो सुभिक्ष (सस्ता भाव) हो, शूल और गंडयोगमें हो तो दोष
जानने, वृद्धियोगमें यदि आर्द्रार्क्षप्रवेश हो तो बहुत शुभजानना ॥ २० ॥

व्याघाते जलनाशाय हर्षणे परितोषदः ॥

वज्रयोगे सर्वजनाः पीड्यन्ते वर्षणं क्वचित् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—व्याघातयोगमें हो तो जलका नाश होवे, हर्षणयोगमें
आर्द्रार्क्षप्रवेश हो तो परितोष (आनन्द) प्रद जानने, वज्रयोगमें हो
तो सब मनुष्य पीडित होवे और कहीं वर्षा होवे ॥ २१ ॥

सिद्धिः सर्वाभिवृद्धिः स्यादव्यतीपाते धनक्षयः ॥

अल्पवृष्टिवेरीयांस्तु परिघडार्थनाशकृत् ॥ २२ ॥

भाग्यार्थ—सिद्धियोगमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो सब प्रकारसे वृद्धि हो, व्यतीपातमें हो तो घनका क्षय होवे, वरियानयोगमें हो तो र्पां छोड़ी होवे, परिधयोगमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो अर्थ (घन अथवा धनना) का विनाश करें ॥ २२ ॥

शिवे शिवं स्यात्सस्यस्य सिद्धिसाध्यो सुभिक्षदा ॥
शुभशुक्लो वृद्धिकरो जनानन्दकराबुधो ॥ २३ ॥

भाग्यार्थ—शिवयोगमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो कल्याण होवे, सिद्धि साध्यमें हो तो सुभिक्ष (महा) होवे, शुभ और शुक्लयोगमें हो तो वृद्धि करें, मनुष्योंको शुभ होवे ॥ २३ ॥

ब्रह्मयोगे मध्यफलं ऐन्द्रे वृष्टिः प्रजायते ॥
वैधृतो चेन्महाराट्रे सूर्योर्ध्वं प्रविशेद्यदा ॥ २४ ॥
दुर्भिक्षं मरणं व्याधिं कुर्यादेतत्फलं स्फुटम् ॥ २५ ॥

भाग्यार्थ—ब्रह्मयोगमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो मध्यम फल जन्म, ऐन्द्रेयमें हो तो वृष्टि अच्छी होवे, वैधृतियोगमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो दुर्भिक्ष, मरण और व्याधि होवे, यह स्फुट फल कथन किया ॥ २४॥२५

वेलाफलम् ।

उपम्यकाले जगतां विपत्तिर्मध्यादिने स्वल्प-
पक्षे च पृथ्वी ॥ अस्तंगतार्द्रा बहुमस्यसम्पत्-
क्षेमं सुभिक्षं स्थिरं मध्यरात्रौ ॥ २६ ॥

भाग्यार्थ—यदि जगत्कालमें आर्द्रकिंप्रवेश हो तो जगत्में विपत्ति हो, अस्तंगतमें हो तो पृथ्वी पर फल होवे, अस्तंगतमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो बहुमस्य सम्पत् होवे, मध्यरात्रिमें यदि आर्द्रकिंप्रवेश हो तो सुभिक्ष (महा) होवे ॥ २६ ॥

एक मासोत्तरं वर्षं दिनानां दशकं तथा
प्रत्येकनक्षत्रमाक्रम्य शनिर्गच्छति सर्वतः ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—एक महीना एक वर्ष दश दिन तक शनैश्चर एक नक्षत्रपर
स्थित रहता है इस प्रकार शनिकी गति सर्वत्र जानना ॥ ७६ ॥

सार्द्धवर्षद्वयं राशिमेकं सकलसम्मतम् ॥
त्रिंशद्वर्षाण्यभिव्याप्य राशिचक्रे भवेच्छनिः ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—दो वर्ष शनि एक राशिपर रहता है ऐसा सबका सम्मत है
तीस वर्ष बारहों राशियोंको शनि ओगता है ॥ ७७ ॥

एवं सौरेर्गतिं ज्ञात्वा फलं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥
अभीष्टफललाभाय विनाशाय शुभस्य च ॥
शनेरिदं फलं प्रोक्तं स्वरशास्त्रादिसम्मतम् ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—इस प्रकार शनिकी गतिको जानकर पंडितजन फल बघन
करे, इच्छित फल लाभके अर्थ, तथा शुभफलविनाशनिमित्त यह शनिका
फल स्वरशास्त्र आदिके सम्मतसे बघन किया है ॥ ७८ ॥

रिष्क १२ रूप १ धन २ भेषु भास्करिः संस्थि-
तो भवति यस्य जन्मभात ॥ लोचनोदरपदेषु
संस्थितिः कथ्यते रविजलोकजर्जनेः ॥ ७९ ॥
स्थानमेषु पुनरुच्यते बुधैः सार्द्धभूधरसमासु
भास्करिः ॥ तत्र चक्रमनवद्यमुच्यते मानुजावृत्ति-
पदं मुनीरितम् ॥ ८० ॥

भाषार्थ—जिगमे जन्मगदिमे १२।१२ राशिमे शनि हो तो शनिर्द-
रिष्क, हृदय और धरणपर जानना, बारहों राशि हरिष्क, फल

भिक्ष (महंगा भाव), ४ शेषसे सुभिक्ष, ५ शेषसे महर्घ, ६ शेषसे
म, शून्य शेष रहे तो रौरव (अकाल पडे ऐसा) जानना ॥ १ ॥

उदाहरण शालिवाहनशाके १७८५ इनको ३ से गुणाकिया तो ५३५५
नमें ५ मिलाये तो ५३६० इनमें ७ का भाग दिया तो शेष ५ से
हर्घ (महंगा भाव) जानना ॥

संवत्सरात्सुभिक्षादिज्ञानम् ।

त्रिघ्ने संवत्सरे युक्ते शरैर्भक्तेऽथ सप्तभिः ॥

चतुर्द्विमिते शेषे सुभिक्षं विपुलं भवेत् ॥ २ ॥

त्रिपंचके च दुर्भिक्षं पद्मभूसंख्ये च मध्यमम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—अब संवत्सरसे सुभिक्ष आदिका ज्ञान कहते हैं, विक्रमीय
संवत्सरांकोंको तीनसे गुणाकर पांच मिलाय सातका भाग देवे, जो ४१२
प रहें तो बहुत सुभिक्ष (सस्ता भाव) रहे, और ३१५ शेषसे दुर्भि
५, ९११ शेषसे मध्यम, शून्य शेष रहे तो रौरव (अकाल) जानना
सा फल संवत्सरमें पंडितोंने कहा है ॥ २ ॥ ३ ॥

तथाच ।

द्विघ्नः संवत्सरो रामयुतो भक्तो नर्गस्तथा ॥

शेषे वाणामिते युग्मे सुभिक्षं हायनं भवेत् ॥ ४ ॥

वन्दचन्द्रामिते द्वेयं दुर्भिक्षं रौरवं तु खे ॥ रसानः

लमिते मध्यमेतदर्थं फलं बुधैः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विक्रमीय संवत्सरांकोंको दोसे गुणाकर तीन मिलाय सातका
भाग देवे जो ५१२ शेष रहे तो उस वर्षमें सुभिक्ष होवे, और और एक शेष
रहे तो दुर्भिक्ष, और शून्य रहे तो रौरव (अकाल) जानना । और छः
शेष रहनेमें मध्यम भाव जानना, ऐसा फल पंडितोंने कहा है ॥ ४ ॥ ५ ॥

(१२९)

ज्येष्ठप्रतिपदादियोगः ।

शुक्लतिथावाद्ये चन्द्रेज्ये भृगुवासरे ॥
भक्षं शोभना वृष्टिर्दुर्भिक्षं पापवासरे ॥ ६ ॥

भाष्य—ज्येष्ठमास शुक्लपक्ष प्रतिपदातिथिको यदि चन्द्र, गुरु, शुक्र-
हो तो शुभिक्ष और उत्तम वृष्टि होवे और पापवार (मंगल शनि
हो तो दुर्भिक्ष जानना ॥ ६ ॥

आषाढद्वितीयानवमीयोगः ।

आषाढे शुक्लपक्षे च द्वितीया नवमी दिने ॥
चन्द्रेज्यभृगुवारे स्यात्सुवृष्टिश्च समर्घता ॥ ७ ॥
बुधे साम्यं रवौ तापः कुजे वृष्टिर्न जायते ॥
शनिवारे प्रजापीडा दुर्भिक्षं रौरवं तदा ॥ ८ ॥

भाष्य—आषाढमास शुक्लपक्ष द्वितीया और नवमीतिथि तापः न-
शुक्र, बुधवारके दिन हो तो उत्तम वृष्टि हो और गरमा भाव रहे, बुधवार
हो तो सम भाव जानना, शनिवार हो तो ताप हो, मंगलवार
पर्यो नहीं होवे, शनिवार हो तो प्रजाको पीडा हो और रौरव दुर्भिक्ष
होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ प्रतिमासदर्शफलम् ।

शुभवारान्विते दृशं शुभिक्षं च प्रजासुखम् ॥
पापवारान्विते दुःखं तदा धान्यमहर्घता ॥ ९ ॥

भाष्य—यदि अमावास्या दिन शुभवार
हो तो शुभिक्ष और प्रजाको सुख
हो और धान्य महर्घता

अथ ग्रहचारुवशात्सर्ववस्तूनां महर्घताज्ञानम् ।

यदा तिष्ठति भौमस्य क्षेत्रे कोऽपि गृहस्तदा ॥

पण्मासं तुपधान्यानां जायते च महर्घता ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मंगलके घर (मेष वृश्चिक) में कोईभी ग्रह होवे तो छः महीने तुपधान्य महंगे होवे ॥ १० ॥

शुक्रक्षेत्रे कुजे मासद्वयं सर्वमहर्घता ॥

चन्द्रे च दिननाथे च सर्वरोगोऽशुभं तदा ॥ ११ ॥

शनी राहौ सर्वधान्यं महर्घं राजविग्रहः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—शुक्रके घर (वृष तुलाराशि) में मंगल हो तो दो महीने सब धान्य महंगे बिकें, शनि राहु हो तो सब धान्य महंगे हों और राजाओंमें विग्रह हो ॥ ११ ॥ १२ ॥

शुक्रक्षेत्रे च चन्द्रे च चन्द्रक्षेत्रे भृगोः सुते ॥

पाखंडानां भवेद्बृद्धिर्धान्यानां च महर्घता ॥ १३ ॥

भाषार्थ—शुक्रक्षेत्रमें चन्द्रमा हो, चन्द्रमाके क्षेत्रमें शुक्र हो तो पाखंडोंकी वृद्धि हो और सर्व धान्योंका भाव महंगा होवे ॥ १३ ॥

रविक्षेत्रे भृगोः पुत्रे पशूनां च महर्घता ॥

बुधक्षेत्रे शनी चन्द्रे सर्वधान्यमहर्घता ॥ १४ ॥

भाषार्थ—सूर्यके क्षेत्रमें शुक्र हो तो पशुओंका भाव महंगा हो जावे, बुधके क्षेत्रमें शनि चन्द्र हो तो सर्व धान्य महंगे हो जावे ॥ १४ ॥

शुक्रक्षेत्रे गुरो भौमे कार्पासादिमहर्घता ॥

भौमक्षेत्रे शनी राहौ ताम्रादीनां महर्घता ॥ १५ ॥

भाषार्थ—शुक्रक्षेत्रमें गुरु-भौम हो तो कपास आदिका भाव महंगा हो जावे, भौम (मंगल) के क्षेत्रमें शनि राहु हो तो ताम्र आदिका भाव महंगा हो जावे ॥ १५ ॥

शनिक्षेत्रे शनो राहो सुभिक्षं चन्द्रभास्करे ॥

पशुनाशो धान्यवृद्धिगुंडादीनां महर्घता ॥ १६ ॥

भाषार्थ—शनिक्षेत्रमें शनि राहु हो तो सुभिक्ष हो, चन्द्र सूर्य हो तो पशुनाश हो, धान्यकी वृद्धि हो और गुंड आदि वस्तुओंका भाव महंगा हो जावे ॥ १६ ॥

शुक्रक्षेत्रे शनो राहो पशुनाशस्तृणक्षयात् ॥

भौमे राजविरोधश्च युधे वृष्टिश्च भूयसी ॥ १७ ॥

भाषार्थ—शुक्रके क्षेत्रमें शनि राहु हो तो पशुनाश और तृणक्षय होवे, मंगल हो तो राजाओंमें विरोध हो, युध हो तो बहुत वर्षा होवे ॥ १७ ॥

भौमक्षेत्रे यदा सन्ति राहुभौमार्कभार्गवाः ॥

पण्मासं गुडकर्पासघृतक्षीरमहर्घता ॥ १८ ॥

भाषार्थ—मंगलके क्षेत्रमें जो राहु, भौम, सूर्य, शुक्र हो तो छः महीने गुड, कपास, घी, दूध इनका भाव महंगा होवे ॥ १८ ॥

मन्दक्षेत्रे यदा सन्ति मन्दराहुबुधास्तथा ॥

चतुष्पदानां नाशश्च द्विपदानां च जायते ॥ १९ ॥

भाषार्थ—शनिके क्षेत्रमें जो शनि, राहु, बुध ये होवे तो चतुष्पदोंका नाश होवे और द्विपदोंका भी नाश होवे ॥ १९ ॥

भौमक्षेत्रे यदा सन्ति शुक्रभौमनिशाकराः ॥

तदा मुक्तापशूनां स्वस्य च महर्घता

भाषार्थ—मंगलके क्षेत्रमें जो शुक्र मंगल शनैश्चर हों तो मोती और शंख, इनका भाव महंगा हो जावे ॥ २० ॥

शुक्रभौमो गुरुक्षेत्रे प्रजापीडा च जायते ॥
ग्रहराशिसमायोगे फलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—गुरुके क्षेत्रमें शुक्र मंगल हों तो प्रजाको पीडा होवे ।
ग्रहराशिके योगसे यह फल कहा है ॥ २१ ॥

एकमासे पंचवारफलम् ।

शुक्लाद्ये मासके पंच पापखेटस्य वासराः ॥
प्रजापीडा भवेत्तत्र धान्यस्यापि महर्घता ॥ २२ ॥
मासे पंच शुभा वारा यद्येकस्मिन्प्रजायते ॥
सुभिक्षं सर्वमस्यानां तदा च सुखिनो जनाः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अब एक मासमें पांच वारका फल कहते हैं । शुक्लपक्ष
चिन्दा में मासपर्यन्त अर्थात् जिस चान्द्रमासमें पाप ग्रहका पांच बार होवे
उस मासमें प्रजाको पीडा हो और धान्यका भाव भी महंगा हो
जावे, तथा यदि कोईनी शुभग्रह (चंद्र, बुध, गुरु, शनि, शुक्र) पांच
बार होवे तो सब मनुष्यकान्य मासों भावों के और मनुष्योंको सुख हो ॥ २३ ॥

तथाच ।

पंचाङ्काः पंच वा भौमाः पंच वा मन्द्यामराः ॥
दुर्मिक्षं भयमादेश्यं तदा शेषाः शुभावहाः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—जिस मासमें पांच गीतार वा पांच मंगलग्रह अपना पांच
बार होवे तो दुर्मिक्ष हो और प्रलयमें भय होवे, शेष वारा (बुध,
शुक्र, गुरु, शनि, शुक्र) में शुभ फल देनेवाले लग्न हों ॥ २४ ॥

संक्रान्तिवशान्महर्घसमर्घज्ञानम् ।

सुभिक्षं संक्रमे सौम्ये वारेऽधिकमुहूर्तके ॥

महर्घं पापवारे वा मुहूर्ते चाक्षभूमिते ॥ २५ ॥

भाषार्थ—जो संक्रान्ति शुभवारमें अधिक मुहूर्त (४५) वाली होवे तो सुभिक्ष हो और पापवारमें बारह मुहूर्ती जो संक्रान्ति हो तो दुर्भिक्ष होवे ॥ २५ ॥

पूर्वसंक्रमभाद्वित्रिमिते च संक्रमे रवेः ॥

सुभिक्षं स्याच्चतुःपंचमिते भे तु महर्घता ॥

पष्ठे भे संक्रमे चातिदुर्भिक्षं रौरवं भवेत् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—पिछली संक्रान्ति जिस नक्षत्रमें प्रवेश हो उससे दूजरे वा तीसरे नक्षत्रमें यदि संक्रान्ति अर्के तो सुभिक्ष (मदा) होवे और चौथे पांचवें नक्षत्रमें अर्के तो महर्घता होवे और छठे नक्षत्रमें अर्के तो बहुत बड़ा काल पड़े ॥ २६ ॥

तथाच ।

संक्रान्तिनाडी नवमिश्रिता च सप्ताहता पावक-

भाजिता च ॥ एके समर्घे द्वितये च साम्यं शून्यं

महर्घं मुनयो वदन्ति ॥ २७ ॥

भाषार्थ—संक्रान्तिवाली घटीमंथ्यामें नव संयुक्त वारे और सातने गुणा-
कर तीनका भाग देवे, यदि एक शेष रहे तो भाव मस्ता होवे, दो शेष
रहें तो सम भाव जानना, तीन अथवा शून्य शेष रहनेसे भाव महर्घ
होवे ऐसा जानना ॥ २७ ॥

ग्रीष्मशारदधान्यनिष्पत्तिज्ञानम् ।

वृषे संक्रमणे भानोः केन्द्रस्वान्त्यगतैः शुभैः ॥
 शारदी धान्यनिष्पत्तिरुत्तमा हायने मता ॥ २८ ॥
 पापैरेवं स्थितैः स्वल्पा मिश्रेर्मिश्रा प्रकीर्तिता ॥
 पापाद्यूनगते नश्येदुत्पन्नमपि सस्यकम् ॥ २९ ॥
 दूनशत्रुगते पापे निष्पत्तिः स्वल्पिका भवेत् ॥
 इत्थं वृश्चिकसंक्रान्तौ विज्ञेयं ग्रीष्मधान्यकम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ—वृषराशिके सूर्य जिस लग्नमें प्रवेश हों उस समय मूषके केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान और २।१२में शुभ ग्रह स्थित हों तो शारदश्रुतुका धान्य उस वर्षमें उत्तम होवे, और पूर्वोक्त १।४।७।१०।२।१२ स्थानोंमें पापग्रह हों तो थोड़ा धान्य उपजे, शुभ ग्रह पाप ग्रह मिश्रित हों तो मध्यम उपज कहना, तथा यदि पापग्रह सातवें स्थानमें हों तो उत्पन्न सस्यकामी नाश होवे, । और जो सातवें छठे पाप ग्रह हों तो थोड़ा धान्य उत्पन्न होवे इस प्रकार वृश्चिककी संक्रान्तिसे ग्रीष्मधान्यकी उत्पत्ति जानिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

चापादित्रितये सूर्ये सोम्ययुक्तेक्षिते ग्रहेः ॥
 शरद्वान्यं समर्घं स्याद् ग्राह्यं तद्वान्यजीविभिः ॥ ३१ ॥
 पापयुक्तेक्षिते धान्यमहर्घं जायतेऽखिलम् ॥

भाषार्थ—चनुराशिको आदि ले तीन राशियों (धन मकर कुंभ) में सूर्य स्थित हों, उस समय शुभग्रहयुक्त हों और देखते हों तो शरद्वान्य मन्ने भाव विके, उस धान्यसे जीविका करनेवालोंको यह धान्य संग्रह करना उचित है ॥ ३१ ॥ पापयुक्तदृष्ट हों तो धान्य महंगा होवे ।

एवं मेपात्त्रिगे ग्रामे धान्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ३२ ॥

(१३५)

भाष्य—एवं मेषसे तीन राशि (मेष, वृष, मिथुन) स्थित सूर्यसे
धान्यका विचार करना ॥ ३२ ॥

महर्षयोगः ।

संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं नामाक्षरेक्यं त्रिहृतं
च शेषम् ॥ एकेन वृद्धि द्विगुणं विशेषो शून्ये-
न शून्यं वदति स्फुटं च ॥ ३३ ॥

भाष्य—संक्रान्तिनक्षत्र, तिथि वारयुक्त करे और नामाक्षर मिलाय
कर तीनका भाग देवे, एक शेष रहे तो वृद्धि अर्थात् सम्मा भाग
हो, दो शेषसे विशेष सप्ता हो, शून्य शेष रहनेसे शून्य अर्थात् भाग
होवे ॥ ३३ ॥

रिक्ता तिथिः क्रूरयुता च पष्ठी मध्यान्हरात्रौ च
इनोदयेऽपि ॥ ज्येष्ठार्यभार्द्राशततारका च स्वातो
भुजंगे त्वथ संक्रमश्च ॥ तदा महर्षं प्रकरोति
नूनं सत्यं च सत्यं वदति स्फुटं च ॥ ३४ ॥

भाष्य—रिक्ता (४१९१४) तिथि और क्रूर (मंगल, वृश्चि, शनि)
पष्ठी तिथि, मध्याह्न समय, या रात्रिमें य सूर्योदयसमय, तथा अश्लेष,
मघाशुक्ली, आर्द्रा, श्रावणि, स्वाति, आश्लेषा इन मन्थनेमें संक्रान्ति-
होवे तो उस महीनेमें निम्न अक्षादिक, वस्तुओंका भाग सांकरा
यह सत्य सत्य कथन किया है ॥ ३४ ॥

प्रश्नांकं रविभिर्भक्तं शेषांके जलभादिना
सस्यमौल्यं समानं स्यात्पंचांगे

श्रीष्मशारदधान्यनिष्पत्तिज्ञानम् ।

वृषे संक्रमणे भानोः केन्द्रस्वान्त्यगतैः शुभैः ॥

शारदी धान्यनिष्पत्तिरुत्तमा हायने मता ॥ २८

पापैरेवं स्थितैः स्वल्पा मिश्रैर्मिश्रा प्रकीर्तिता ॥

पापाद्यूनगते नश्येदुत्पन्नमपि सस्यकम् ॥ २९

द्यूनशत्रुगते पापे निष्पत्तिः स्वल्पिका भवेत् ॥

इत्थं दृष्टिकसंक्रान्तौ विज्ञेयं ग्रीष्मधान्यकम् ॥ ३०

भावार्थ—वृषगणेशके सूर्य जिस लग्नमें प्रवेश हों उस समय सूर्य केन्द्र (११४।११०) स्थान और २।१२में शुभ ग्रह स्थित हों तब धान्य उम गरमें उत्तम होते, और पूर्वोक्त ११४।११०।२।१२।११०में पापग्रह हों तो गोज धान्य उपजे, शुभ ग्रह पाप ग्रह मिले हों तो मध्यम उपज कहना, तथा यदि पापग्रह भावमें स्थानमें हों तब धान्य कम उपज कहना, और जो सातवें छठे पाप ग्रह हों तब धान्य कम उपज हों इस प्रकार वृषगणेशकी संक्रान्तिमें ग्रीष्मधान्य निष्पत्ति विज्ञेय ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

चापादित्रितयं सूर्यं सौम्ययुक्तंक्षिते ग्रहेः ॥

शुद्धान्यं ममर्धं स्याद् ब्राह्मं तद्धान्यजीविभिः ॥

पापयुक्तंक्षिते धान्यममर्धं जायतेऽस्वल्पम् ॥

भावार्थ—चापादित्रितयः आदि के तीन ग्रहों (धन मकर कुंज) के सूर्य स्थित हों, इस समय शुभग्रहयुक्त हों और शुभ हों तो शुभ धान्य उत्पन्न होगा, इस धान्यमें सौम्य धान्य कहेंगे, तब धान्य उत्पन्न होगा, शुद्ध धान्य ममर्धं स्याद् ब्राह्मं तद्धान्यजीविभिः ॥ ३१ ॥ पापयुक्तंक्षिते धान्यममर्धं जायतेऽस्वल्पम् ॥ ३२ ॥

एवं मेषान्त्रिमे श्रेष्ठं धान्यं ज्ञेयं वि-

(१३५)

शब्द—यदि मेपसे तीन राशि (मेघ, वृष, मिथुन) स्थित सूर्यमे
अथवा चान्यका विचार करना ॥ ३२ ॥

महर्षयोगः ।

संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं नामाक्षरेक्यं त्रिहृतं
च शेषम् ॥ एकेन वृद्धि द्विगुणं विशेषो शून्य-
न शून्यं वदति स्फुटं च ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—संक्रान्तिनक्षत्र, तिथि वारयुक्त करे और नामाक्षर मिलाय
कर तीनका भाग देवे, एक शेष रहे तो वृद्धि अर्थात् सत्ता भाव
हो, दो शेषसे विशेष सत्ता हो, शून्य शेष रहनेसे शून्य अर्थात् भाव
महंगा होवे ॥ ३३ ॥

रिक्ता तिथिः क्रूरयुता च पष्ठी मध्यान्हिरात्रौ च
इनोदयेऽपि ॥ ज्येष्ठार्यभार्द्राशततारका च स्वातौ
भुजंगे त्वय संक्रमश्च ॥ तदा महर्षं प्रकरोति
नूनं सत्यं च सत्यं वदति स्फुटं च ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—रिक्ता (४१९/१४) तिथि और क्रूर (मंगल, रवि, शनि)
र, पष्ठी तिथि, मध्याह्न समय, या रात्रिमें व सूर्योदयसमय, तथा ज्येष्ठा,
वराहालगुणी, आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें संक्रमन्ति-
वश होने से उस महीनेमें निश्चय अज्ञादिक वस्तुओंका भाव महंगा
सत्य कथन किया है ॥ ३४ ॥

भर्भक्तं शेषांके फलमादिशेत् ॥

समानं स्यात्पंचाविधमवशेषके ॥ ३५ ॥

महर्घं द्वित्रिचैकेन रसाष्टनवदिग्भवेत् ॥ एका-
दशे सप्तशून्ये समर्घं च न संशयः ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—प्रश्नके अक्षरसंख्यामें बारहका भाग देवे, शेष अंक जो रहे तो फल कहे, जो पांच चार शेष रहें तो सत्यका मौल्य समान रहे, और दो, तीन, एक शेष रहे तो महंगा भाव रहे, छः, आठ, नव, दश शेष रहनेसेभी महर्घ जानना, और ग्यारह, सात, शून्य शेष रहनेसे निःसन्देह सत्ता भाव होवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सर्वमासस्य प्रतिपत्तिथौ चेच्छनिवासरः ॥
शुक्लायां सर्वसम्यानि महर्घन्ति न संशयः ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—सब महीनोंमेंसे जिस मासकी प्रतिपदाको शनिवार होवे तो शुक्लपक्षमें निःसन्देह सब सत्यधान्य महंगे होजावे ॥ ३७ ॥

प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य वृद्धिं याति शुभप्रदा ॥
चुटिता दुःखदा प्रोक्ता चतुर्दश्यष्टमी तथा ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—शुक्लपक्षकी प्रतिपदा यदि वृद्धिको प्राप्त हो तो शुभप्रद जानना, क्षय हो तो दुःखप्रद जानना, तथा चतुर्दशी और अष्टमीका फल जानना ॥ ३८ ॥

श्रवणे च यदा कूरो ग्रहः कश्चित्समाश्रितः ॥
अन्नं महर्घतां याति गोधूमाश्च विशेषतः ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—श्रवणनक्षत्रमें जो कूट ग्रह हो तो अन्न महंगा पकड़े गेहूं महंगे हो जावे ॥ ३९ ॥

अग्रे याति दिवानायो पृष्ठे च भृगुनन्दनः
मध्ये सोमसृता याति भवत्यत्र ॥ ४० ॥

भाषार्थ—आगेकी राशिमें सूर्य और पीछेकी राशिमें शुक्र और बीचमें बुध हो, अथवा एकही राशिमें स्थित आगे सूर्य पीछे शुक्र बीचमें बुध हो तो सब वस्तुओंका भाव महंगा हो जावे ॥ ४० ॥

पौषस्य यद्यमावास्या ज्येष्ठानक्षत्रसंयुता ॥

तदा सस्यमहर्घत्वं मूलयुक्ताऽल्पमूल्यता ॥ ४१ ॥

यदा तोयर्क्षसंयुक्ता तदा सस्यविवर्द्धिनी ॥

उत्तराषाढसंयुक्ता भयदुर्भिक्षकारिणी ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—पौषमासकी अमावास्या यदि ज्येष्ठानक्षत्रसे युक्त हो तो सस्यको महंगा करे, मूलनक्षत्रसे युक्त हो तो अल्पमूल्य होवे, यदि पूर्वाषाढानक्षत्रसे युक्त हो तो सस्यधान्यको बढ़ायवेवारी जानने, उत्तराषाढानक्षत्रसे युक्त हो तो दुर्भिक्षकारिणी जानने ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पौषमासेऽर्कसंक्रान्तिः सूर्यवारे यदा भवेत् ॥

धान्यमूल्यं द्विगुणितं तदा भवति नान्यथा ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—पौषमासमें सूर्यसंक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो तो अन्न द्विगुणा मूल्य होता है अर्थात् दूने मोलसे अन्न विक्रता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥

कविरस्तं यदा याति फाल्गुणे मासि निश्चितम् ॥

तदा दुर्भिक्षमादेश्यं पणमासं देवचिन्तकैः ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—यदि फाल्गुणमासमें शुक्रास्त हो तो छः माहिनेतक दुर्भिक्ष होवे ऐसा देवज्ञोंने निश्चय किया है ॥ ४४ ॥

सप्तमीकृत्तिकायुक्ता फाल्गुणस्य सिता यदा ॥

तदा भाद्रपदे मासि कुक्कां मेघः प्रवर्षति ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—फाल्गुणमास शुक्लपक्ष सप्तमी तिथिके दिन यदि कृत्तिकानक्षत्र हो तो भाद्रपदमासमें अमावास्याके दिन वर्षा होवे ॥ ४५ ॥

आपाढे श्रावणे पौषे चार्कभौमशनैश्चराः ॥

वासरा यत्र जायन्ते फलं चैषां गृणुष्व तत् ॥४६॥

पंचार्कवासरे रोगाः पंचभौमे महद्भयम् ॥

पंचमन्दे च दुर्भिक्षं खगाः शेषाः शुभावहाः ॥४७॥

भाषार्थ—आपाढ, श्रावण, पौषमासमें पांच रवि, भौम, शनिवार हों उनका फल कहते हैं सो सुने, पांच रविवार हों तो रोग प्रगट हो, पांच भौम हों तो महामय उत्पन्न हो, पांच शनि हों तो दुर्भिक्ष होवे, शेष वार हों तो शुभ जानना ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

यदारसौरी सुरराजमंत्री यदेकराशौ समसप्तके
वा ॥ लंकात्वयोध्यापुरमध्यदेशे क्षुधाभयं शस्त्र-
भयं करोति ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—जो मंगल, शनि, गुरु ये एक राशिमें हों अथवा परस्पर सप्तम राशिपर हों तो लंका अयोध्या आदिके मध्यमें जो देश है उनमें क्षुधाभय और शस्त्रभय होवे ॥ ४८ ॥

भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तेः ॥

वलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते ग्रैष्मिकविवृद्धिः ॥४९॥

भाषार्थ—वृश्चिकराशिके सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उससे केन्द्र ११४।७।१० में शुभ ग्रह हों अथवा बलवान शुभ ग्रह देखते होय तो ग्रीष्मऋतुमें होनेवाले अन्न (गेहूं जो आदि) वृद्धिको प्राप्त होवे ॥४९॥

वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालयवानाम् ॥

स्थलसंभवोपधीनां कनकस्य च कीर्तितो मेषः ॥५०॥

भाषार्थ—भेड़ व चकरीके ऊनी यस्त्र (कंवल पसमीने आदि) अ-
थवा घी तेल घरनेके कुप्ये, मसूर, गेहूं, राल, जौ और स्थलमें उत्पन्न
नेवाली औषधियां, सुवर्ण इन सबका स्वामी मेघराशि है ॥ ५० ॥

गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिपसुरभितन-
याः स्युः ॥ मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालू-
कर्पासाः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—यस्त्र, फूल, गेहूं, घान, जौ, भैंसे, बैल इनका स्वामी वृष
राशि है । और शारदश्रुतके धान्य (अन्न), ज्वार, बाजरा आदि तथा
दाख आदि वेल, कमल, कमलकी जड़ (भसीड़े), कपास इनका स्वामी
मिथुनराशि है ॥ ५१ ॥

कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि ॥

सिंहे तुपधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—कोदों, केला, दूध, फल, कंद, पत्रज, दालचीनी आदिका
स्वामी कर्कराशि है । और तुप (भूसी) वाले धान्य, रस, सिंहादि जीवों-
की खाल, गुड, इनका स्वामी सिंहराशि है ॥ ५२ ॥

पट्रेऽतसी कलायः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः ॥

सप्तमराशौ मापा गोधूमाः सर्पपाः सयवाः ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—अलसी, मटर, कुलथी, गेहूं, मूंग, चौरा इनका स्वामी
कन्याराशि है । और उड़द, गेहूं, सरसों, जौ इनका स्वामी तुल्यराशि है ॥ ५३ ॥

अष्टमराशाविष्णुः सेक्यं लोहान्यजाविकं चापि ॥

नवमे तु तुरगलवणांवरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—ईख और जो यस्तु जल सींचनेसे उत्पन्न हो, लोहा भेड़,
चकरी आदिके ऊनी कपड़े आदि इनका स्वामी बुधिराशि है । तथा

घोड़े, नमक, वस्त्र, अस्त्र (घनुपादि) तिल, धान्य, मूल इनका स्वामी घनुराशि है ॥ ५४ ॥

मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि ॥

कुंभे सलिलजफलकुसुमरत्नविचित्राणि रूपाणि ५५

भाषार्थ—वृक्ष, गुल्म (छोटे वृक्ष.) साँचनेसे होनेवाली वस्तु, ईस सुवर्ण, कृष्णलोह (खेरीआदि) इनका स्वामी मकर है । जलोत्पन्न वस्तु यै, फल, फूल, रत्न तथा चित्रविचित्ररूपवाले पदार्थ इन सबका स्वामी कुंभराशि है ॥ ५५ ॥

मीने कपालसंभवरत्नान्यम्बूद्रवानि वज्राणि ॥

स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—कपालसे उत्पन्न होनेवाले रत्न (मोती आदि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, हीरे, स्नेह (घी तेल आदि) सद्यजातिके मछली आदि इनका स्वामी मीनराशि है ॥ ५६ ॥

राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपंचमस्थितो जीवः ॥

एकादशदशपंचमाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—जिस राशिके चौथे, दशवें, दूसरे, ग्यारहवें, सातवें, नवें, वा पाचवें बृहस्पति हो तो उस राशिके द्रव्योंकी वृद्धि कहना, और जिस राशिके ग्यारहवें, दशवें, पांचवें, आठवें इन स्थानोंमेंसे किसी स्थानमें बुध हो तो उस राशिके द्रव्योंकी वृद्धि कहना ॥ ५७ ॥

पट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु ॥

उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ५८

भाषार्थ—तथा जिस राशिसे छठे वा सातवें शुक्र हो तो उस राशि के द्रव्योंकी हानि करे, पस्तु शेष स्थानोंमें स्थित होनेसे शुक्र वृद्धि

स्थित है एवं कूर ग्रह जिस राशिके उपचय (३।६।१०।११ स्थान) में स्थित हों तो उस राशिके वस्तुओंकी वृद्धि होवे, अन्य शेष स्थानोंमें कूर ग्रह स्थित हों तो उस राशिके वस्तुओंकी हानि होवे ॥ ५८ ॥

राशेर्यस्य कूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः ॥
तत्प्रोक्तद्रव्याणां महर्घता दुर्लभत्वं च ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—जिस राशिके पीडास्थान अर्थात् उपचय बिना (अन्य स्थानोंमें) कूर ग्रह बलवान् होकर स्थित होवें उस राशिके सब द्रव्य महंगे और दुर्लभ हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशिनाम् ॥
तद्द्रव्याणां वृद्धिः साम्यर्घं बल्लभत्वं च ॥ ६० ॥

भाषार्थ—जिन राशियोंसे उत्तम स्थानोंमें शुभ ग्रह बलवान् होकर स्थित हों उन राशियोंके द्रव्योंकी वृद्धि हो, तथा सस्ते रहें और उन द्रव्योंकी सबको कामना रहे ॥ ६० ॥

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ॥
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—गुरु आदि ग्रहोंके जो पीछे शुभ स्थान पड़े उनको छोड़ कूर ग्रह राशिके और स्थानोंमें स्थित होय तो गोचरपीडा होती है । जिस राशिको गोचरपीडा होय और उस राशिको बलवान् शुभ ग्रह देखते होय तो उस राशिके द्रव्योंकी हानि नहीं होती और राशिको गोचरपीडा होय और बलवान् कूर देखते हों तो उस राशिके द्रव्योंकी हानि और महर्घता होती है ॥ ६१ ॥

मेघोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यसंग्रहं कृत्वा ॥
वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ६२ ॥

सूर्यचन्द्रनक्षत्रसंज्ञा ।

अश्विन्यादित्रयं चैव आर्द्रादेः पंचकं तथा ॥
 पूर्वाषाढादिचत्वारि चोत्तरा रेवतीद्वयम् ॥ ८१ ॥
 उक्तानि शशिभान्यत्र प्रोच्यन्ते सूर्यभान्यथ ॥
 रोहिणी च मृगश्चैव पूर्वाफाल्गुनिका तथा ॥ ८२ ॥
 सूर्य सूर्ये भवेद्वायुश्चन्द्रे चन्द्रे न वर्षति ॥
 सूर्यचन्द्रसमायोगस्तदा वर्षति मेघराट् ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—अश्विनी आदि ३ नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, कृत्तिका),
 आर्द्रा आदि ५ नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा), तथा
 पूर्वाषाढा आदि चार नक्षत्र (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा)
 उत्तरा, रेवती, ये नक्षत्र चन्द्रमाके हैं । अथ सूर्यके नक्षत्र कहते हैं, रोहिणी
 गशिरा, पूर्वाफाल्गुनी और जो शेष हैं वे सब सूर्यके हैं, सूर्य सूर्यका योग
 तो वायु बहे, चन्द्रचन्द्रके योगमें वर्षा नहीं होवे और सूर्य चन्द्रका
 योग हो तो वर्षा बहुत होवे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

संवत्सरलग्नफलम् ।

यस्मिन्वर्षे च लग्ने शशिनि तनुगते सौम्यराशिस्थि-
 ते वा ॥ केन्द्रे याते प्रचुरमुदकं सौम्ययातोपदृष्टे ॥
 पापेदृष्टे न च बहु जलं प्रश्नकालेऽपि तद्दे-
 वाच्यं सर्वं फलमविकलं चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—जिस संवत्सरकी लग्नमें वा केन्द्रस्थानमें हो चन्द्रमा शुभ
 ग्रहकी राशिमें स्थित हो और शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जल बहुत वर्षे,
 तथा यदि चन्द्रमा पाप ग्रहकी राशिमें हो और पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो
 तो बहुत जल नहीं वर्षे, प्रश्नसमयमेंभी इसी प्रकार विचार करना, और

चन्द्रमाके समान शुक्लकामी विचार करना, अर्थात् शुक्ल लग्नमें वा किसी केन्द्रमें शुभ ग्रहकी राशिमें हो और शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बहुत जल वर्षे, और पापराशिगत हो पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बहुत जल नहीं वर्षे ॥ ८४ ॥

वृष्टिलक्षणम् ।

प्रष्टा पृच्छन्स्पृशति सलिलं वारिकार्योन्मुखो वा ॥

पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते सन्मुखं वा ॥

दृष्टः कूपो विमलसलिलं चेद्वदेद्वारिवृष्टि मन्तः
सर्वं भवति च फलं व्यत्यये व्यत्ययेन ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—वृष्टिप्रक्षपतो प्रशामय यदि जलगत स्पर्श करे, अपरा प्रक्ष-
समय जलशब्द सुने, किया जलकी धनी हुई वस्तु, तथा पुरा, पारसी,
तालाय इन (जलाशयों) पर दृष्टि जाय तो जलकी वृष्टि अगली होवे,
इसमें विपरीत लक्षण हो तो विपरीत पल्ल होवे अर्थात् वर्षा नहीं होवे ॥ ८५ ॥

प्रातःकाले पीतरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यो भवेद्रविः ॥

स्निग्धवेद्वर्यकान्तिधेन्मेघो वृष्टिप्रदः स्मृतः ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—जो प्रातः समय सूर्यमें तेज अधिक हो, याम दीनदर्श हो
और मेघ विषम दयागर्ण हो तो ऐसे मेघ वर्षा करनेवाले होते हैं ॥ ८६ ॥

प्रातःकाले यदा सूर्यो मध्याह्ने दुःमहो भवेत् ॥

तादिने वृष्टिदः प्रोक्तो घृतस्पर्णसमप्रभः ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—जो प्रातः समय और कस्याप्रसंगमें सूर्यका तेज अधिक
हो और वाणि गलावे हुए सूर्यकी समान हो तो इस दिन वर्षा
होवे ॥ ८७ ॥

यदा जलं वै विरसं जलदा गोत्रसन्निभाः ॥
 दिशश्च विमलाः सर्वाः काकांडाभं नभस्तलम् ॥ ८८ ॥
 न यदा वाति पवनश्छन्नं यान्ति झपादयः ॥
 शब्दं कुर्वन्ति मंडूकास्तदा दृष्टिरनुत्तमा ॥ ८९ ॥
 भाषार्थ—जो जल विरस हों, बादल पर्वताकार हों, दिशाएँ निर्मल
 कौवाके अंडाके समान आकाश हो, तथा पवन न चले, मछली
 जलचरप्राणी नीचे जा लगें, मँडक शब्द करने लगें तो उत्तम
 होवे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

नखैर्लिखन्ति मार्जाराः पृथिवीं च यदा भृशम् ॥
 लोहानां मलनिचयो विस्रगन्धो यदा भवेत् ॥ ९० ॥
 सेतुं कुर्वन्ति रथ्यायां शिशवो मिलिता यदा ॥
 शुद्धांजनाभा गिरयो वाष्पमुद्रितकंदराः ॥ ९१ ॥
 भाषार्थ—बिल्ली आदि अपने पंजोंसे पृथिवीको खोदें, लोहेके मैलमें
 धावे, मार्गमें बालक सब मिलकर सेतु बांधें और अंजनसमान
 हो जायें पर्वतोंकी गुफा पसीजने लगें ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पिपीलिका यदांडानि गृहीत्वोच्चं प्रयान्ति च ॥
 सर्पा वृक्षं समायान्ति यदा दृष्टिरभूत्किल ॥ ९२ ॥
 गावः सूर्यं निरीक्ष्यन्ते कृकलासगणास्तथा ॥
 गृहान्नेच्छन्ति पशवो निर्गमं कुक्कुरास्तथा ॥ ९३ ॥
 भाषार्थ—तथा जो चिउंटी अपने अंडोंको लेलेकर ऊपरको चढ़ें, माप
 ऊपर चढ़ें तो निश्चय वर्षा करें, तथा गाँवें सूर्यकी ओर देखें,
 कुत्ते भी सूर्यको देखें, पशु घरे जानेकी इच्छा न करें तथा कुत्तेभी
 बाहर निकलना नहीं चाहे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

प्रश्नलग्नात्तोयराशिर्यादि वित्तस्तृतीयके ॥

तोयसंज्ञो ग्रहस्तत्र भवत्यभ्रं जलप्रदम् ॥ ९९ ॥

संयोगे सितबुधयोस्तथा च गुरुशुक्रयोः ॥

तथैव जीवबुधयोर्वृष्टिः स्यान्नात्र संशयः ॥ १०० ॥

भाषार्थ—प्रश्नलग्नसे दूसरे वा तीसरे जलराशि हो और वहां जल-ग्रह स्थित हो तो शीघ्र वर्षा होवे, तथा जो शुक्र बुध एक राशिमें हों, बृहस्पति शुक्र एक घरमें हों अथवा बुध गुरु एक राशिमें हों तो निःस-न्वेह शीघ्र वर्षा होवे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

यदा भवन्ति सूर्यस्य ग्रहाः पृष्ठावलम्बिनः ॥

पुरतो वा यदा यांति तदा त्वेकार्णवा मही ॥ १०१ ॥

बुधभृग्वोर्मध्यगतः सूर्यश्चेज्जलशोपकः ॥

तयोर्यदि समीपस्थस्तदा बहुजलप्रदः ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—जो सूर्यके आगे वा पीछे ग्रह होय तो पृथ्वी जलमयी हो जावे, तथा जो बुध और शुक्रके मध्यगत सूर्य हों तो जलको शोषे और जो पासही हो तो शीघ्र बहुत जल बरसे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्रे याति तदा भौमः पश्चाच्चलति भास्करः ॥

तदा वृष्टिर्न विपुला जायते नात्र संशयः ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—जो आगे मंगल हो और पीछे सूर्य हो तो वर्षा बहुत नहीं हो, अन्यथा वृष्टि होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १०३ ॥

शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते ॥

संचरत्यवनीमुनो मन्दे वृष्टिस्त्रिधा मता ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—शुक्रके अस्तमें और बृहस्पतिके उदयमें तथा मंगल य शनै-भरके संचारमें वृष्टि होती है, यह तीन प्रकारकी वृष्टि कही है ॥ १०४ ॥

प्रत्याग्निन्द्रधनुः मध्याप्रदोषे मेघगर्जनम् ॥

मक्षिकानल्पतां याति माडास्यात्तु पिपीलिका १०५

मध्ये तीव्रातपश्चान्दि नरा निद्रालयो भृशम् ॥

वितेया लक्षणैरेभिः सद्योवृष्टिर्घनागमे ॥ १०६ ॥

भाषार्थ—पूर्यदिशामें मन्ध्यागमय इन्द्रधनु दीख पड़े, प्रदोषसमय मेघ गरजे, मक्षिकयोंकी संख्या कमती हो, चिउंटी अंडे लेकर निकलें, दो पहरको दिनमें तपन बहुत हो, मनुष्य बहुत निद्रातुर हो जायें, इन लक्षणोंमें ऐसा जानना कि बादलोंका आगम होकर शीघ्र वर्षा होवेगी ॥ १०६ ॥

स्वल्पवृष्टिलक्षणम् ।

नो माघे हिमवर्षणं न मरुतश्चंडास्तथा फाल्गुने ।

चैत्रे वृष्टिविवर्जितं तु गगनं मेघेन पूर्णो रविः ॥

वैशाखे न घनोपलस्य पतनं ज्येष्ठे न चंडोरवि ।

वृष्टिः स्वल्पतरा सदैव कथिता वर्षासु नित्यं बुधैः ॥ १०७ ॥

भाषार्थ—माघमासमें हिम (टंड) न पड़े, फाल्गुणमासमें वायु न बहे, चैत्रमें वर्षा न हो और बादल धिरे रहे, वैशाखमें ओले गरजे, ज्येष्ठ-मासमें अधिक तपन न हो तो वर्षाकालमें सदैव थोड़ीही वर्षा होवे, ऐसा पूर्वान्वयनि कथन किया है ॥ १०७ ॥

वृष्टिज्ञानम् ।

मूलक्षे भास्करे याते तदारभ्य दशाहकम् ॥

विशुदभ्रादिना गर्मे यत्र तत्र दिने भवेत् ॥

अमादाद्रादिनक्षत्रे भानौ वृष्टिः प्रजायते ॥ १०८ ॥

प्रश्नलग्नात्तोयराशिर्यादि वित्तस्तृतीयके ॥

तोयसंज्ञो ग्रहस्तत्र भवत्यभ्रं जलप्रदम् ॥ ९९ ॥

संयोगे सितबुधयोस्तथा च गुरुशुक्रयोः ॥

तथैव जीवबुधयोर्वृष्टिः स्यान्नात्र संशयः ॥ १०० ॥

भाषार्थ—प्रश्नलग्ने दूसरे वा तीसरे जलराशि हो और वहां जल ग्रह स्थित हो तो शीघ्र वर्षा होवे, तथा जो शुक्र बुध एक राशिमें हों बृहस्पति शुक्र एक घरमें हों अथवा बुध गुरु एक राशिमें हों तो निःसन्देह शीघ्र वर्षा होवे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

यदा भवन्ति सूर्यस्य ग्रहाः पृष्ठावलम्बिनः ॥

पुरतो वा यदा यांति तदा त्वेकार्णवा मही ॥ १०१ ॥

बुधभृग्वोर्मध्यगतः सूर्यश्चेज्जलशोपकः ॥

तयोर्यदि समीपस्थस्तदा बहुजलप्रदः ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—जो सूर्यके आगे वा पीछे ग्रह होय तो पृथ्वी जलमयी हो जावे, तथा जो बुध और शुक्रके मध्यगत सूर्य हों तो जलको शोषे और जो पामर्ह हो तो शीघ्र बहुत जल बरसे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्रे याति तदा भौमः पश्चाच्चलति भास्करः ॥

तदा वृष्टिर्न विपुला जायते नात्र संशयः ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—जो आगे मंगल हो और पीछे सूर्य हो तो वर्षा बहुत नहीं हो, अन्यथा वृष्टि होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १०३ ॥

शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चादयमागते ॥

संचरत्यवर्नामृता मन्दे वृष्टिस्त्रिधा मता ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—शुक्रके अस्तमें और वृहस्पतिके उदयमें तथा मंगल व शुक्रके मन्दगमें वृष्टि होती है, यह तीन प्रकारकी वृष्टि कही है ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—मूलनक्षत्रमें सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन बिजली चमके, बादल गर्जे उसी क्रमसे आर्द्रादिनक्षत्रार्कमें वर्षासमय वृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्ररणी यावद्भेपु चैकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥

पौषमासदिनर्क्षेषु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥

तत आर्द्रादिके सूर्यक्रमादृष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भाषार्थ—मूलनक्षत्रसे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन बादल हो बिजली चमके मेघ गर्जे तो आर्द्रार्कादिमें वर्षासमय क्रमसे वर्षा होवे, जैसे पौषमासमें मूलनक्षत्रके दिन अभ्रादि हो तो आर्द्रानक्षत्रार्क और पूर्वाषाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुनर्वसुनक्षत्रार्क उत्तराषाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुष्यनक्षत्रार्क वर्षासमय भली भांति वर्षे, इसी क्रमसे विचार कर लेवे और आगामी वर्षाका हाल जान लेवे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अश्विन्यादिषु धिष्ण्येषु चेत्रे दशसु चेद्भवेत् ॥

अभ्रादिकं तथा गर्भः आर्द्रादौ दृष्टिदः क्रमात् ॥ १११ ॥

मेषार्कदिनमारभ्य ज्ञेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—चैत्रमासमें अश्विनी आदि मघापर्यन्त दशनक्षत्रोंके दिन मेघगर्जनादि हो तो वर्षासमय आर्द्रार्कादि दश नक्षत्र क्रमपूर्वक वर्षा करनेवाले जानने, इसी प्रकार जिस दिन मेषार्क प्रवेश हो उस दिनसे दश दिन अभ्रादिकयोग हो तो आर्द्रार्कादि नक्षत्रक्रमसे वृष्टि करनेवाले जानने ॥ १११ ॥ ११२ ॥

यदाभ्रं दृश्यते व्योम्नि चैकादश्यां तु कार्तिके ॥

आषाढे मासि दृष्टिश्च तदा भवति भूयसी ॥ ११३ ॥

भाषार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आपादमासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्वर्षणं श्रावणे भवेत् ॥

पौषकृष्णे दशम्यां चेद्दृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन बिजली चमके बादल गर्जे तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौषकृष्ण दशमीके दिन जो बादल हो मेघगर्जे तो भाद्रमासमें उच्चम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेद्भ्रादिकं यदा ॥

ज्येष्ठे मूले न चेद्दृष्टिः सुद्यष्टिर्वहुला मता ॥ ११५ ॥

भाषार्थ—भाषमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गर्जे और ज्येष्ठमासमें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे ॥ ११५ ॥

आढकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भा-

तुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽढं

हरि ५ कार्मुके ८ ऋ ५० तुल्य ७ कन्या ६ मृगं

१० योरशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते

यदा स्यात्पडिंश २६ काढं भुवि वारिपातः ॥

अर्द्धं पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं

याति मेदिन्यां वाराहेण च भाषितम् ॥ ११७ ॥

भाषार्थ—जो कर्कराशिके सूर्यप्रवेशसमय चन्द्रमा मियुन, मेघ, धूप, अथवा भीनका हो तो एक सौ १०० आढक वर्षा जानना, सिंह धनु-

भाष्य—मूलभाद्रपदे सूर्य जिन दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन बिजली चमके, बादल गर्जे उसी क्रमसे आर्द्रादिनाश-प्रक्रममें वर्तमानवृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्रपदी यावद्रेषु चैकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥
 पौषमासदिनक्षेपु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥
 तत आर्द्रादिके सूर्यक्रमाद्वाष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भाष्य—मूलभाद्रपदे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन बारिश हो बिजली चमके भेग गर्जे तो आर्द्रादिदिमें वर्षासमय क्रमसे वर्षा होवे, जैसा वैशाखमें मृगशिराके दिन आधादि हो तो आर्द्रादिनाशप्रक्रम और पुष्यमासमें पुष्यमासके दिन आधादि हो तो पुनर्वसुनाशप्रक्रम उत्तरमासके दिन भेग भेग होवे तो पुष्यमासके वर्षासमय मन्ती भाति वर्षा, इसी क्रमसे शि-
 शिरमास में और आषाढी वर्षासमय हाथ जान लेवे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अश्विन्यादिषु विष्णवेषु चैत्रे दशसु चैद्रयेत ॥
 अश्विन्यादिकं तथा गर्भः आर्द्रादी वृष्टिदः क्रमात् ॥ १११ ॥
 मघादीदिनमागम्य क्षेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भाष्य—वैशाखमें अश्विनी आदि मघापर्यन्त दशरात्राधिक दिन भेग भेग होवे तो वैशाखमें आर्द्रादीदि दश रात्रि मघापूर्वक वर्षा होवे तब पुष्य, मन्ती आदि जिस दिन भेगके भेग हो उस दिनसे दश दिन मन्ती आदिदिनाशप्रक्रमसे वृष्टि वर्तमानसे दृश्ये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

यदाश्विनं दृश्यते तदाश्वि चैकादश्यां नृ कार्त्तिके ॥
 अश्विनं दृष्ट्वा तदा मघानि सूर्यमा ॥ ११३ ॥

भाषार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आषाढमासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्वर्षणं श्रावणे भवेत् ॥

पौषकृष्णे दशम्यां चेद्दृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन बिजली चमके बादल गजें तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौषकृष्ण दशमीके दिन जो बादल हो मेघगजें तो भाद्रमासमें उत्तम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेदभ्रादिकं यदा ॥

ज्येष्ठे मूले न चेद्दृष्टिः सुवृष्टिर्वहुला मता ॥ ११५ ॥

भाषार्थ—माघमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गजें और ज्येष्ठमासमें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे ॥ ११५ ॥

आढकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भा-

नुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽढं

हरि ५ कार्मुके ८ ऋ ५० तुल्य ७ कन्या ६ मृगं

१० योरंशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते

यदा स्यात्पडिंश २६ काढं भुवि वारिपातः ॥

अर्द्धं पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं

याति मेदिन्यां वाराहेण च भाषितम् ॥ ११७ ॥

भाषार्थ—जो कर्कराशिके सूर्यप्रवेशसमय चन्द्रमा मिथुन, मेष, वृष, अथवा मीनका हो तो एक सौ १०० आढक वर्षा जानना, सिंह धनु-

भाषार्थ—मूलनक्षत्रमें सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन विजली चमके, बादल गजें उसी क्रमसे आर्द्रादिनक्षत्रार्कमें वर्षासमय वृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्ररणी यावद्भेषु चेकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥

पौषमासदिनक्षेपु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥

तत आर्द्रादिके सूर्यक्रमाद्वाष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भाषार्थ—मूलनक्षत्रसे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन बादल हो विजली चमके मेघ गजें तो आर्द्राकादिमें वर्षासमय क्रमसे वर्षा होवे, जैसे पौषमासमें मूलनक्षत्रके दिन अम्नादि हो तो आर्द्रानक्षत्रार्क और पूर्वाषाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुनर्वसुनक्षत्रार्क उत्तराषाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुष्यनक्षत्रार्क वर्षासमय भली भांति वर्षे, इसी क्रमसे विचार कर लेवे और आगामी वर्षाका हाल जान लेवे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अश्विन्यादिषु धिष्ण्येषु चेत्रे दशमु चेद्भवेत् ॥

अभ्रादिकं तथा गर्भः आर्द्रादी वाष्टिदः क्रमात् ॥ १११ ॥

मेषार्कदिनमारभ्य ज्ञेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—चैत्रमासमें अश्विनी आदि मघापर्यन्त दशनक्षत्रोंके दिन मेघगर्जनादि हो तो वर्षासमय आर्द्राकादि दश नक्षत्र क्रमपूर्वक वर्षा करनेवाले जानने, इसी प्रकार जिस दिन मेषार्क प्रवेश हो उस दिनसे दश दिन अम्नादिकयोग हो तो आर्द्राकादि नक्षत्रक्रमसे वृष्टि करनेवाले जानने ॥ १११ ॥ ११२ ॥

यदाभ्रं दृश्यते न्योसि चेकादश्यां तु कार्तिके
आषाढे मामि वाष्टिश्च तदा भवति न्यूनं

भाषार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आपादमासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्वर्षणं श्रावणे भवेत् ॥
पौषकृष्णे दशम्यां चेद्दृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन बिजली चमके बादल जैँ तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौषकृष्ण दशमीके दिन भी बादल हो मेघजैँ तो भाद्रमासमें उच्चम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेदभ्रादिकं यदा ॥
ज्येष्ठे मूले न चेद्दृष्टिः सुवृष्टिर्वहुला मता ॥ ११५ ॥

भाषार्थ—माघमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गरें और ज्येष्ठमा-
समें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे ॥ ११५ ॥

आदकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भा-
नुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽहं
हरि ५ कार्मुके ८ र्द्ध ५० तुल्य ७ कन्या ६ मृग
१० योरशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते
स्यात्पडिश २६ काढं मुवि वारिपातः ॥
पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं
ति मेदिन्यां वाराहेण च भापितम् ॥ ११७ ॥

—जो कर्कराशिके प्रवेशसमय चन्द्रमा मिथुन, मेष, वृष,
मीनका हो तो

• आदक वर्षा जानना, सिंह धनु-

का चन्द्रमा हो तो पचास ५० आठक, और तुला कन्या वा मकरका चन्द्रमा हो तो असी ८० आठक वर्षा जानना, तथा कर्क, कुंभ अथवा वृश्चिकका चन्द्रमा हो तो छब्बीस २६ आठक वर्षा जानना, जितने आठक वर्षा हो उसमेंसे आधे आठक पर्वतभागमें, उसके आधे वायुभागमें, और आधे भूमिमें जानना, यह वराहजीने कथन किया है॥११६॥११७

सविनसत्रवाहनम् ।

दिनेशभात्सूर्यभवं हि घसं विगण्य सप्तोद्धृत-
मर्कवाहनम् ॥ भवेत्तुरंगः शशकश्च शूकरः शचा-
नको गोर्महिपश्च दर्दुरः ॥ ११८ ॥

भाषार्थ—जिस दिन सूर्यनक्षत्रप्रवेश हो उस दिनके नक्षत्रसे सूर्यनक्षत्रतक गिने और सातका भाग देवे जो एक शेष रहे तो घोडा वाहन, २ शेषसे शशक (खरहा), ३ शेषसे शूकर, ४ शेषसे शचान, पांच शेषसे बैल, ६ शेषसे भैंसा, ७ शेषसे मेंढक वाहन, यह सूर्यनक्षत्रवाहन है ॥ ११८ ॥

सप्तनाडीचक्रम् ।

कृत्तिकादि लिखेच्चक्रं साभिजित्सप्तनाडिकम् ॥
चंडा वायुस्तथावन्हिः सौम्या नीरा जलशमृता ११९
नाडीनां सप्त नामानि ज्ञेयान्येतानि पंडितैः ॥
क्रमान्मन्दाऽर्कभांमेज्यशुक्रज्ञावास्तदीश्वराः १२०

भाषार्थ—कृत्तिकादि नक्षत्र अभिजित्सहित सप्तनाडीचक्रमें लिखो, १ चंडा, वायु, ३ अग्नि, ४ सौम्या, ५ नीरा, ६ जला, अमृता, ये सातों नाडि-योंके नाम हैं, सो पंडितों करके जानना, अब क्रमसे इनके स्वामी

(१५७)

को है कि, १ शनि, २ सूर्य, ३ मंगल, ४ गुरु, ५ शुक्र, ६ बुध ७
मं ॥ ११९ ॥ १२० ॥

ग्रहा यद्येकनाडीस्थां सौम्याः पापा यथा तथा ॥
तेभ्यो नाडीफलं वाच्यं सदसदा विचक्षणैः ॥ १२१ ॥

भावार्थ—जो ग्रह एक नाडीमें स्थित हो शुभ ग्रह या पाप ग्रह
ते ग्रहोंके योगसे नाडीफल शुभ या अशुभ पंडितोंने कथन करना
ह ॥ १२१ ॥

सप्तनाडीचक्रम्						
बंदा	घाता	वन्दि	सौम्या	नीरा	जला	अमृता
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	श्ले.
त्रि.	स्या	वि.	ह.	उ.	पू.	म.
जु.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	जमि	श्र.
भ.	अ.	रे.	उ.	पू.	श.	घ.
शनि	सूर्य	भीम	गुरु	शुक्र	बुध	चंद्र

चंडानाड्यां महावातान् वातनाड्यां तथानिलम् ॥
वन्दिनाड्यां स्थिता दाहं सौम्यनाड्यां महाभ्रकम् १२२
नीरनाड्यां पयोऽष्टिर्जलनाड्यां च वर्षणम् ॥
कुर्वन्त्यमृतनाड्यां च महारष्टिं नभश्चराः ॥ १२३ ॥

कहते हैं कि, १ शनि, २ सूर्य, ३ मंगल, ४ गुरु, ५ शुक्र, ६ बुध ७ चन्द्र ॥ ११९ ॥ १२० ॥

ग्रहा यद्येकनाडीस्था सौम्याः पापा यथा तथा ॥
तेभ्यो नाडीफलं वाच्यं सदसद्वा विचक्षणैः ॥ १२१ ॥

भाषार्थ—जो ग्रह एक नाडीमें स्थित हो शुभ ग्रह वा पाप ग्रह
उन्हो ग्रहोंके योगसे नाडीफल शुभ वा अशुभ पंडितोंने कथन करना
है ॥ १२१ ॥

सप्तनाडीचक्रम्						
चंडा	वाता	वन्धि	सौम्या	नीरा	जला	अमृता
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु	पु.	रु.
वि.	स्वा	वि.	ह.	उ.	पू.	म.
जु.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	उभि	श्र.
म.	अ.	रे	उ.	पू.	श.	घ.
शनि	सूर्य	भौम	गुरु	शुक्र	बुध	चंद्र

चंडानाड्यां महावातान् वातनाड्यां तथानिलम् ॥
वन्धिनाड्यां स्थिता दाहं सौम्यनाड्यां महाभ्रकम् १२२
नीरनाड्यां पयोदृष्टिर्जलनाड्यां च वर्षणम् ॥
कुर्वन्त्यमृतनाड्यां च श्रराः ॥ १२३ ॥

का चन्द्रमा हो तो पचास ५० आठक, और तुला कन्या वा मकरका चन्द्रमा हो तो असी ८० आठक वर्षा जानना, तथा कर्क, कुंभ अथवा वृश्चिकका चन्द्रमा हो तो छत्तीस २६ आठक वर्षा जानना, जितने आठक वर्षा हो उसमेंसे आधे आठक पर्वतमागमें, उसके आधे वायुमागमें, और आधे भूमिमें जानना, यह वराहजीने कथन किया है॥११६॥११७

रविनक्षत्रवाहनम् ।

दिनेशभात्सूर्यभवं हि घसं विगण्य सप्तोद्धृत-
मर्कवाहनम् ॥ भवेत्तुरंगः शशकश्च शूकरः शचा-
नको गौर्महिषश्च दर्दुरः ॥ ११८ ॥

भाषार्थ—जिस दिन सूर्यनक्षत्रप्रवेश हो उस दिनके नक्षत्रसे सूर्यनक्षत्रतक गिने और सातका भाग देवे जो एक शेष रहे तो घोडा वाहन, २ शेषसे शशक (खरहा), ३ शेषसे शूकर, ४ शेषसे शचान, पांच शेषसे बैल, ६ शेषसे भैंसा, ७ शेषसे मेंढक वाहन, यह सूर्यनक्षत्रवाहन है ॥ ११८ ॥

सप्तनाडीचक्रम् ।

कृत्तिकादि लिखेच्चक्रं साभिजित्सप्तनाडिकम् ॥
चंडा वायुस्तथावन्हिः सौम्या नीरा जलगमृता ११९
नाडीनां सप्त नामानि ज्ञेयान्येतानि पंडितैः ॥
क्रमान्मन्दाऽर्कभांमेज्यशुक्रज्ञाबास्तदीश्वराः १२०

भाषार्थ—कृत्तिकादि नक्षत्र अभिजित्सहित सप्तनाडीचक्रमें लिखे, १ चंडा, वायु, ३ अग्नि, ४ सौम्या, ५ नीरा, ६ जला, अमृता, ये सातों नाडियोंके नाम हैं, सो पंडितों करके जानना, अब क्रमसे इनके स्वामी

ज्योतिषग्रन्थाः ।

श्री.

श्री.

१ अर्पणकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है०-४	रखने योग्य है)... .. -१२
२ अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मजातकादि भलीभांति वर्णित है) ... -४	१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रंथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं २-८
३ कालज्ञान भाषाटीका -४	२० जैमिनिमूत्रसटीक चार अध्याय -६
४ करेखासंख्यावली (छंदसद् मुग- गतामुद्रिक) -४	२१ जैमिनीमूत्र भा० टी० १०
५ गंगास्थित्वनिर्णय भाषाटीका ... -९	२२ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा० टी० ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मप- त्रका नाव योगानुषोय उद्यादि- फल दशा अरिष्ट राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं) २-८
६ केरलमत मंत्रसंग्रह इसमें मंत्र देखनेके हैं -४	२३ " रफ २-०
७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह -२	२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित १-०
८ गर्गजातक भाषाटीका -३	२५ ज्योतिषश्री खखणी -३
९ ग्रहगोचर भा० टी० -२	२६ ज्योतिःशास्त्र निर्गुण -२
१० ग्रहलापव भा० टी० १	२७ ज्योतिषश्री चावी भाषामें ... -१
११ ग्रहशान्ति संस्कृत (अनितुत्तम) -१०	२८ तत्त्वप्रदीप (जातक ग्रन्थ देखने योग्य) -३
१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका -४	२९ तामिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्र- प्रयात्पक संस्कृत टीकासह खुलापाना १-०
१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फल मन्थेका -१॥	३० " " जिल्दकी १-०
१४ जातकालङ्कार भाषाटीका ... -६	३१ तामिकनीलकण्ठी मरीधारकृत भाषाटीका १-८
१५ जातकालङ्कारसटीक -६	३२ तामिकभूषण भाषाटीका
१६ जातकाभरण मूल ग्लेज १२ आ. रफ् -१०	३३ त्रिपिनिर्णय मल
१७ जातकाभरण भा० टी० ?-८	३४ " " " " " "
१८ जातकचन्द्रिका भा० टी० (अत्यु- त्तमजन्मजातक मन्वादि भाव- फलपदवर्णफल अनेकानेक योग दशादिवर्णित पासमें अवश्य	

भाषार्थ—चंडानाडीमें मेघ हों तो बहुत वायुं वहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अभिनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूषनाडीस्थः मिश्रैः खेटेश्च संयुतः ॥

त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥

जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥

दिनाद्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥

नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटेश्च संयुते ॥

पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्वहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा पीयूषनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५ ७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चन्द्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे घे, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंसहित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥

अत्रकृत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ अशुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवानपंडित जनोंको क्षमा करनी चाहिये है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोग्यामंदलान्तर्निर्दिष्टाग्निनिवामिज्योतिर्वित्पण्डित-
नागयन्त्रनादमिश्रविज्जिनिनमांस्त्वगीपट्टनिभाषानुवादे महर्षे-
स्मर्षे वर्षाविभागो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सुमनोयं ग्रन्थः ।

ज्योतिषग्रन्थाः ।

४८.	४९.
१ अर्घ्यप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है०-४	रखने योग्य है)... .. -११
२ अपोभ्यानातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मनातकादि मर्त्यमाति वर्णित है) ... -४	१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मप्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकप्रयोगोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं २-८
३ कालज्ञान भाषाटीका -४	२० जेमिनिमूत्रसटीक चार अध्याय -६
४ कालेखानसंख्यावली (छंदबद्ध मुग- गतामुद्रिक) -४	२१ जेमिनीमूत्र भा० टी० -१०
५ गंगास्वित्त्वनिर्णय भाषाटीका ... -१	२२ ज्योतिषदयामसंग्रह भा० टी० ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मप्र- काश नाच योगानुयोग वशादि- बल दशा अरिष्ट रात्रयोगादि भाव मलीप्रकार कह सकते हैं) २-८
६ केरलमन मन्त्रसंग्रह इसमें मन्त्र देखनेका है -४	२३ " रक्त ... २-०
७ गर्गपनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासहित -२	२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित ?-०
८ गर्गनातक भाषाटीका -३	२५ ज्योतिषटी स्यावणी -२
९ ग्रहगोचर भा० टी० -२	२६ ज्योतिःशास्त्र निर्देश -२
१० ग्रहनाथ भा० टी० -१	२७ ज्योतिषटी चावी भाषाये ... -१
११ ग्रहगोले संस्कृत (अनिउत्तम) -१०	२८ तत्त्वप्रदीप (जातक ग्रन्थ देखने योग्य) -१
१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका -४	२९ तानिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्र- प्रथात्मक संस्कृत टीकासहित सुधापाना १-०
१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फार्म प्रत्येकका -१॥	३० " " निन्दकी ?-०
१४ जानकालकार भाषाटीका ... -६	३१ तानिकनीलकण्ठी महीपरहन भाषाटीका १-८
१५ जानकालकारमटीक ... -६	३२ तानिकभूषण भाषाटीका ... -८
१६ जातकभरण मूल ग्लेज १२ आ. १५ -१०	३३ त्रिधिनिर्णय मूल संस्कृत ... -१॥
१७ जानकाभरण भा० टी० ?-८	३४ नष्टग्रन्थाद्दीपिका और पंचा-
१८ जातकचन्द्रिका भा० टी० (अत्यु- त्तमजन्मजातक मन्त्रादि भाव- फलपदार्थफल अनेकानेक योग दशादिबोधित वासोंमें अवश्य	

भाषार्थ—चंडानाडीमें मेघ हों तो बहुत वायुं वहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अग्निनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे, अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूषनाडीस्थः मिश्रैः खेटेश्च संयुतः ॥

त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥

जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥

दिनाद्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥

नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटेश्च संयुते ॥

पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्वहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा पीयूषनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५ ७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चंद्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे घे, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंसहित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥

अत्रकुत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ अशुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवानपंडित जनोंको क्षमा करनी देन्य है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोव्यामंदन्यांतरवर्तिलक्ष्मीरीनिवाभिज्योतिर्वित्पण्डित-
नागपद्मनाभमिश्रविनिगितमांस्त्वगीपट्टनिभाषानुवादे मध्य-
ममर्धे वर्षाविचारे नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सुमनायं ग्रन्थः ।



ज्योतिषग्रन्थाः ।

१ अर्पकग्रन्थ ज्योतिष भाषाटीका इसमें

तेजी धंदी वस्तु देखनेका विचार है-४

अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका
(इसमें पालकका जन्म जन्मजातकादि
मर्त्यभाति वर्णित है) ... -४

३ कालज्ञान भाषाटीका ... -४

४ करेखामंखपावली (छंदबद्ध मुग-
गसामुद्रिक) ... -४

५ गंगास्थितनिर्णय भाषाटीका ... -४

६ केरलमन ग्रन्थसंग्रह इसमें मन्त्र
देखनेका है ... -४

७ गर्गनोरमा भाषा और संस्कृत
टीकासह ... -४

८ गर्गजातक भाषाटीका ... -४

९ ग्रहगोचर भा० टी० ... -४

१० ग्रहलापव भा० टी० ... -४

११ ग्रहशांति संस्कृत (अनिउत्तम) -१०

१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका -४

१३ जन्मपत्र और वर्षवृत्तके फार्म
मत्पेकका ... -१॥

१४ जातकालङ्कार भाषाटीका ... -६

१५ जातकालङ्कारसटीक ... -६

१६ जातकभरण मूल ग्लेज १२
आ. १५ ... -१०

१७ जातकभरण भा० टी० ... -१०

१८ जातकचन्द्रिका भा० टी० (अत्यु-
त्तमजन्मजातक मन्वादि भाव-
फलपद्वर्गफल अनेकानेक योग
दशादिबर्णित पासमें अवश्य

४१.

रखने योग्य है)... -१२

१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन
विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें
आवश्यकता होती है वेही समस्त
विषय अनेक संस्कृत जातकग्रन्थोंसे
सार २ छेकर भाषाटीकासहित
छपे हैं ... -२-८

२० जेमिनिमूत्रसटीक चार अध्याय -६

२१ जेमिनीमूत्र भा० टी० ... -१०

२२ ज्योतिषदशमसंग्रह भा० टी०
ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मप-
त्रका नाव योगानुषोष उद्यादि-
बल दशा अरिष्ट राशयोगादि
भाव भलीप्रकार कह सकते हैं) २-८

२३ " रफ ... -२-०

२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित १-०

२५ ज्योतिषत्री लावणी ... -१

२६ ज्योतिःशास्त्र निर्दु ... -१

२७ ज्योतिषकी चाबी भाषामें ... -१

२८ तत्त्वमदीप (जातक ग्रन्थ देखने
योग्य) ... -१

२९ तानिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्र-
प्रपात्यक संस्कृत टीकासह
खुलापाना ... -१-०

३० " " मिलदकी १-०

३१ तानिकनीलकण्ठी महीपारकृत
भाषाटीका ... -१-८

३२ तानिकभूषण भाषाटीका ... -८

३३ तिथिनिर्णय मूळ संस्कृत ... -१॥

३४ नष्टजन्माद्गदीपिका और पंचा-

भाषार्थ—चंडानाडीमें मेघ हों तो बहुत वायु वहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अग्निनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे, अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूषनाडीस्थः मिश्रैः खेटेश्च संयुतः ॥

त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥

जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥

दिनाद्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥

नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटेश्च संयुते ॥

पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्वहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा पीयूषनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५ ७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चंद्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे घे, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंसहित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥

अत्रकुत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ अशुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवान्पंडित जनोंको क्षमा करनी योग्य है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलंतर्तिलखीरीनिवासिज्योतिर्वित्पण्डित-
नारायणप्रसादमिश्रविलिखितसांवत्सरीपद्धतिभाषानुवादे महर्ष-
समर्ष वर्षाविचारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समसोयं ग्रन्थः ।

ज्योतिषग्रन्थाः ।

[illegible]

श्री.	
गदीपिकागद्यपद्यटीका समेत (ऐसी उपयोगी कुंजी हैं जो हजारों रु० स्वर्चसे भी अलभ्य हैं ज्योतिषी इससे अमूल्य लाभ पावेंगे) ... -४	४४ मारल्यप्रकाश
३५ परीक्षा चक्रावली मन्त्रग्रंथ भा० टी० -४	४५ मन्त्रचंद्रेश्वर भाषाटीका
३६ पट्टीपत्र भाषाटीका -१॥	४६ मन्त्रवैष्णवभाषाटीका
३७ पत्रीवर्षदीपक भाषाटीकासहित (परिपरशर्माकृत) -१०	४७ मन्त्रपयोनिधि भाषाटीका
३८ पत्रीमार्गदीपिका और वर्षदीपक मूल मात्र -४	४८ बालबोधज्योतिष मूलमात्र
३९ पद्माङ्गनिधिपत्र संस्कृत १९७० ... -१	४९ बालबोध ज्योतिष भाषाटीका
४० पंचपत्नी सटीक -४	५० बृहद्वक्त्रहृदाचक्र (होडाचक्र) भाषाटीका
४१ पंचपत्नी सपरिहार भाषाटीका ... -६	५१ बृहत्संहिता भा० टी० ग्लेज (पं० बलदेवमसादामिश्रकृत भाषाटीकासमेत बराहमिहिरा- चार्य प्रणीत तिसमें नवग्रह अ- गस्ति और सप्तऋषियोंके चार- काफल सूर्य चंद्रग्रह पूरकतुके- फल ग्रहपुष ग्रहसमागम ग्रह- वर्षफल पानी बरसनेका अनेके विचार दिग्दाह भूमिकर्म उन्ना परिवेग इन्द्रानुष गन्धर्वागार रां- जनदर्शन उत्थानक मप्राभिक पुण्यप्रदान पट्टमज्ञान मरुतानपना- नेकी विधि और मतिवृत्तन इ- त्यादि १०८ विध हैं) ... ४-१
४२ पद्मरोच भा० टी० वर्षफलका भाषाध्याय -१	५२ स्याद्वक्त्र
४३ मन्त्रनिरोधभाषा भा० टी० नूतन छा है (इस ग्रंथमें संपूर्ण द्वादश भाषाका मन्त्र, और नन्दीका फल लाभ मन्त्र, संतान मन्त्र, शौचाम्निमन्त्र, द्रव्यमाप्ति मन्त्र, आदि लिखे हैं) ... १-८	५३ स्याद्वक्त्र

તે હોતાં (હોવાથી), સ્વપરના એકત્વના અધ્યાસને લીધે જ્ઞાનમાત્ર એવા
(આત્મસ્વરૂપમાંથી) ભ્રષ્ટ થયેલો, પરંતુ એવા રાગદ્વેષ સાથે એક થઈને બેસે
પ્રવર્તે છે એવો પોતે 'આ હું' ખરેખર રાગી છું, દ્વેષી છું (અર્થાત્ આ
કરું છું, દ્વેષ કરું છું)' એમ (માનનો થકો) રાગી અને દ્વેષી થાય છે; તેથી
ભાવને લીધે અજ્ઞાની પોતાને પરંતુ એવા રાગદ્વેષરૂપ કરતો થકો કરે છે.

જ્ઞાનીને તો, સમ્યક્ પ્રકારે સ્વપરના વિવેક વડે ભિન્ન આત્માની
અત્યંત ઉદય પામી હોવાથી, જ્ઞાનમય ભાવ જ હોય છે; અને તે હોતાં
નાનાત્વના વિજ્ઞાનને લીધે જ્ઞાનમાત્ર એવા પોતામાં મુનિષ્ટ (સમ્યક્ પ્રકારે
થયેલો, પરંતુ એવા રાગદ્વેષથી પૃથગ્ભૂતપણાને (ભિન્નપણાને) લીધે નિમગ્ન
અહંકાર નિવૃત્ત થયો છે એવો પોતે ખરેખર કેવળ જાણે જ છે, રાગી અને
નથી (અર્થાત્ રાગ અને દ્વેષ કરતો નથી); તેથી જ્ઞાનમય ભાવને લીધે જ્ઞાની
પરંતુ એવા રાગદ્વેષરૂપ નહિ કરતો થકો કરે છે કરતો નથી.

ભાવાર્થ:—આ આત્માને કોઈકે કોઈકે આહુનીય કર્મની પ્રકૃતિને
(રાગદ્વેષને) ઉદય આવતાં, પોતાના ઉપયોગમાં તેના રાગદ્વેષરૂપ ભસિન સ્વરૂપ
અજ્ઞાનીને સ્વપરજીવે એકજ્ઞાન નહિ હોવાથી તે એમ માને છે કે "આ રાગ
ભસિન ઉપયોગ છે તે જ મારું સ્વરૂપ છે—તે જ હું છું." આમ રાગદ્વેષમાં
કરતો અજ્ઞાની પોતાને રાગીદ્વેષી કરે છે; તેથી તે કરે છે. આ પ્રમાણે
મય ભાવથી કર્મબંધ થાય છે.

જ્ઞાનીને એકજ્ઞાન હોવાથી તે એમ જાણે છે કે "જ્ઞાનમાત્ર મુક્તિ
તે જ મારું સ્વરૂપ છે—તે જ હું છું"; રાગદ્વેષ છે તે કર્મનો રસ છે—મારું સ્વરૂપ
આમ રાગદ્વેષમાં અહંબુદ્ધિ નહિ કરતો જ્ઞાની પોતાને રાગીદ્વેષી કરતો નથી,
જ્ઞાતા જ રહે છે; તેથી તે કરે છે કરતો નથી. આ પ્રમાણે જ્ઞાનમય ભાવથી
થતો નથી.

હવે આગળની ગાથાના અર્થની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(આર્ષ)

જ્ઞાનમય एव मात्रः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।

अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥ ૬૬ ॥

અર્થ:—આવી પ્રશ્ન છે કે જ્ઞાનીને કેમ જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય અને
(અર્થાત્ અજ્ઞાનમય) ન હોય? વળી અજ્ઞાનીને કેમ સર્વ ભાવ અજ્ઞાનમય
અને અન્ય (અર્થાત્ અજ્ઞાનમય) ન હોય?

આ જ પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ ગાથા કહે છે—

જ્ઞાનમયા ભવાઓ જ્ઞાનમઓ ચેવ જાયણ ભવો ।
જહ્યા તહ્યા જ્ઞાણિસ્સ સર્વે ભવા હુ જ્ઞાનમયા ॥ ૧૨૮ ॥
અજ્ઞાનમયા ભવા અજ્ઞાણો ચેવ જાયણ ભવો ।
જહ્યા તહ્યા ભવા અજ્ઞાનમયા અજ્ઞાણિસ્સ ॥ ૧૨૯ ॥

જ્ઞાનમયાદ્વાવાદ્ જ્ઞાનમયઐવ જાયતે ભાવઃ ।
યસ્માદ્વસ્માદ્જ્ઞાનિનઃ સર્વે ભાવાઃ સ્વલુ જ્ઞાનમયાઃ ॥ ૧૨૮ ॥
અજ્ઞાનમયાદ્વાવાદ્અજ્ઞાનયૈવ જાયતે ભાવઃ ।
યસ્માદ્વસ્માદ્વાવા અજ્ઞાનમયા અજ્ઞાનિનઃ ॥ ૧૨૯ ॥

અન્વયાર્થઃ—[યસ્માન્] કારણ કે [જ્ઞાનમયાન્ ભવાન્ જ] જ્ઞાનમય ભવાંથી [જ્ઞાનમયઃ વય] જ્ઞાનમય જ [માયઃ] ભાવ [જાયતે] ઉત્પન્ન થાય છે [યસ્માન્] તેથી [જ્ઞાનિનઃ] જ્ઞાનીના [સર્વે ભાવાઃ] સર્વ ભાવો [મતુ] ખરેખર જ્ઞાનમયાઃ] જ્ઞાનમય જ હોય છે. [જ] અને, [યસ્માન્] કારણ કે [અજ્ઞાનમયાન્ ભવાન્] અજ્ઞાનમય ભાવભાંથી [અજ્ઞાનઃ વય] અજ્ઞાનમય જ [માયઃ] ભાવ જાયતે] ઉત્પન્ન થાય છે [તસ્માન્] તેથી [અજ્ઞાનિનઃ] અજ્ઞાનીના [ભાવાઃ] ભાવો અજ્ઞાનમયાઃ] અજ્ઞાનમય જ હોય છે.

ટીકા—ખરેખર અજ્ઞાનમય ભાવભાંથી જે કોઈ પણ ભાવ થાય છે તે સવગોચર જ્ઞાનમયપણાને નહિ ઉદ્દેશ્યતો થકે અજ્ઞાનમય જ હોય છે, તેથી અજ્ઞાનીના ભાવો પણ અજ્ઞાનમય હોય છે. અને જ્ઞાનમય ભાવભાંથી જે કોઈ પણ ભાવ થાય છે તે ગોચર જ્ઞાનમયપણાને નહિ ઉદ્દેશ્યતો થકે જ્ઞાનમય જ હોય છે, તેથી જ્ઞાનીના ભાવો પણ જ્ઞાનમય હોય છે.

વળી જ્ઞાનમય કે ભાવભાંથી જ્ઞાનભાવ જ ઉપજે,
તે કારણે જ્ઞાનીતણા સૌ ભાવ જ્ઞાનમયી ખરે ૧૨૮.
અજ્ઞાનમય કે ભાવથી અજ્ઞાનભાવ જ ઉપજે,
તે કારણે અજ્ઞાનીના અજ્ઞાનમય ભાવો બને. ૧૨૯.

તં સલુ જીવણિવદ્દં કમ્મઙ્ગવગ્ગણાગયં જહયા ।

તહયા દુ હોદિ હેદ્દુ જીવો પરિણામભાવાણં ॥ ૧૩૬ ॥

અજ્ઞાનસ્ય સ ઉદયો યા જીવાનામતત્તોપલબ્ધિઃ ।

મિથ્યાત્વસ્ય તૂદયો જીવસ્યાથદધાનત્વમ્ ॥ ૧૩૨ ॥

ઉદયોઽસંયમસ્ય તુ યજ્જીવાનાં ભવેદ્વિરમણમ્ ।

યસ્તુ કલુસોપયોગો જીવાનાં સ કપાયોદયઃ ॥ ૧૩૩ ॥

તં જાનીદિ યોગોદયં યો જીવાનાં તુ ચેદ્દોત્સાદઃ ।

શોભનોઽશોભનો યા કર્તવ્યો વિરતિભાવો યા ॥ ૧૩૪ ॥

એતેષુ દેતુભૂતેષુ કાર્મણવર્ગણાગતં યત્તુ ।

પરિણમતેઽદ્વિધં જ્ઞાનાવરણાદિભાવેઃ ॥ ૧૩૫ ॥

તત્ત્વગતુઃ જીવનિવદ્દં કાર્મણવર્ગણાગતં યદા ।

તદા તુ ધવતિ દેતુર્જીવઃ પરિણામભાવાનામ્ ॥ ૧૩૬ ॥

અન્વયાર્થઃ—[જીવાર્તા] હવેને [યા] જે [અતત્તોપલબ્ધિઃ] તત્ત્વગતુઃ
જ્ઞાન (અર્થાત્ વસ્તુસ્વરૂપગતું અપધાર્થ-વિપરીત જ્ઞાન) છે [તા] તે [અજ્ઞાનસ્ય]
જ્ઞાનનો [ઉદયઃ] ઉદય છે [તુ] અને [જીવસ્ય] હવેને [અથદધાનત્વં] જે
તત્ત્વગતું અમદાન છે તે [મિથ્યાત્વસ્ય] મિથ્યાત્વનો [ઉદયઃ] ઉદય છે; [તુ]
પણી [જીવાર્તા] હવેને [યદ્] જે [અવિરમણં] અવિરમણ અર્થાત્ અત્યાગભાવ
તે [અસંયમસ્ય] અસંયમનો [ઉદયઃ] ઉદય [ભવેત્] છે [તુ] અને [જીવાર્તા]
હવેને [યા] જે [કલુસોપયોગઃ] મલિન (અર્થાત્ અભુપબ્ધાની સ્વચ્છતા રહિત)
અધા છે [તઃ] તે [કપાયોદયઃ] કપાયનો ઉદય છે; [તુ] પણી [જીવાર્તા]
હવેને [યા] જે [શોભનઃ અશોભનઃ યા] શુભ કે અશુભ [કર્તવ્યઃ વિરતિભાવઃ]
પ્રવૃત્તિ કે નિવૃત્તિરૂપ [ચેદ્દોત્સાદઃ] (અનવચનકાયા-આમિત) દેહનો ઉત્સાદ
[તં] તે [યોગોદયં] યોગનો ઉદય [જાનીદિ] જાણુ.

[એતેષુ] આ (ઉદયો) [દેતુભૂતેષુ] દેતુભૂત થયાં [યદ્ તુ] જે [કાર્મણ
વર્ગણાગતં] કાર્મણવર્ગણાગત (કાર્મણવર્ગણાગત) પુરુષસદૃશ્ય [જ્ઞાનાવરણાદિભાવેઃ]

કાર્મણવર્ગણાગત તે જ્યાં હવનિબદ્ધ અને ખરે,
આત્માય હવપરિણામભાવોનો તદા દેતુ બને. ૧૧૯.

અર્થવિષય] જ્ઞાનાવરણરૂપિભાવોરૂપે આગ પ્રકારે [પરિણમને] પરિણમે છે.
 વર્ણનાગત] તે કાર્મણ્યવર્ણનાગત પુણ્યસદૃશ્ય [વર્ણ] બ્યારે [સ્વરૂપ]
 નિવસં] હવેમાં બંધાય છે [તથા તુ] ત્યારે [જીવ] હવે [
 (પોતાના અજ્ઞાનમય) પરિણામભાવોનો [હેતુ] હેતુ [મરતિ] મરતિ

ટીકા:—તત્ત્વના અજ્ઞાનરૂપે (અર્થાત્ વસ્તુસ્વરૂપની અવગતિ હોય)
 જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો (—સ્વાદમાં આવતો) અજ્ઞાનનો ઉદય છે. મિથ્યાત્વ
 કયાય અને યોગના ઉદયો—કે જેઓ (નવાં) કર્મના હેતુઓ છે તેઓ—તેન
 અજ્ઞાનમય આર બાવો છે. તત્ત્વના અમદ્વાનરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો
 ઉદય છે; અવિરમ્ભરૂપે (અત્યાગભાવરૂપે) જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો અમરમ્ભ
 કલુષ (મલિન) ઉપયોગરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો કયાયનો ઉદય છે; મુલુક
 કે નિવૃત્તિના વ્યાપારરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો યોગનો ઉદય છે. આ
 મિથ્યાત્વાદિના ઉદયો હેતુજૂત થતાં જે કાર્મણ્યવર્ણનાગત પુણ્યસદૃશ્ય ભા
 આઠ પ્રકારે સ્વયમેવ પરિણમે છે, તે કાર્મણ્યવર્ણનાગત પુણ્યસદૃશ્ય ભા
 નિમજ્જ થાય ત્યારે હવે સ્વયમેવ અજ્ઞાનથી સ્વપરના એકત્વના અધ્યાસને દે
 અમદ્વાન આદિ પોતાના અજ્ઞાનમય પરિણામભાવોનો હેતુ થાય છે.

ભાવાર્થ:—અજ્ઞાનભાવના ભેદરૂપ જે મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, જા
 યોગના ઉદયો તે પુણ્યસદૃશ્ય પરિણામ છે અને તેમનો સ્વાદ અતત્ત્વઅદ્વાનથી
 આવે છે. તે ઉદયો નિમિત્તજૂત થતાં, કાર્મણ્યવર્ણનાગત નવાં પુણ્યો સ્વરૂપે
 વરણાદિ કર્મરૂપે પરિણમે છે અને હવે સાથે બંધાય છે; અને તે સમયે જ
 સ્વયમેવ પોતાના અજ્ઞાનભાવથી અતત્ત્વઅદ્વાનથી ભાવોરૂપે પરિણમે છે અને
 પોતાના અજ્ઞાનમય ભાવોનું કારણ પોતે જ થાય છે.
 મિથ્યાત્વાદિના ઉદય થવો, નવાં પુણ્યોનું કર્મરૂપે પરિણમવું તથા
 અને હવેનું પોતાના અતત્ત્વઅદ્વાનથી ભાવોરૂપે પરિણમવું—એ ત્રણેય એ
 જ થાય છે; સૌ સ્વતંત્રપણે પોતાની મેળે જ પરિણમે છે, કોઈ કોઈને જમી
 નથી. ૧૩૨-૧૩૬.

હવેથી જુદાં જ પુણ્યસદૃશ્યનું પરિણામ એમ હવે પ્રતિપાદન છે.

જહ જીવેણ સહ ચિય પુગલદવ્વસ્સ કમ્મપરિણામો ।
 एवं पुगलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥ १३७ ॥

જે કર્મરૂપ પરિણામ, હવે ભેળાં જ, પુણ્યસદૃશ્યને,
 તે હવે ને પુણ્યસદૃશ્ય ઉભય પાણુ કર્મપણુ પામે અરે! ॥

एकस्स दु परिणामो पुग्गलद्वयस्स कम्मभावेण ।

ता जीवभावहेतुहि विणा कम्मस्स परिणामो ॥ १३८ ॥

यदि जीवेन सह चैव पुद्गलद्वयस्य कर्मपरिणामः ।

एवं पुद्गलजीवौ खलु द्वावपि कर्मत्वमापन्नौ ॥ १३७ ॥

एकस्य तु परिणामः पुद्गलद्वयस्य कर्मभावेन ।

तज्जीवभावहेतुभिर्विना कर्मणः परिणामः ॥ १३८ ॥

અન્યથાર્થ:-[यदि] એ [પુદ્ગલદ્વયસ્ય] પુદ્ગલદ્વયને [જીવેન સહ] જીવની સાથે જ [કર્મપરિણામઃ] કર્મરૂપ પરિણામ થાય છે (અર્થાત્ બન્ને બેળાં જ કર્મરૂપે પરિણમે છે) એમ માનવામાં આવે તો [एवं] એ રીતે [પુદ્ગલ-દ્વૌ અપિ] પુદ્ગલ અને જીવ બન્ને [સત્ત્વ] ખરેખર [કર્મત્વં આપન્નૌ] કર્મપણાને [તુ] પરંતુ [કર્મમાત્રેણ] કર્મભાવે [પરિણામઃ] પરિણામ તો [પુદ્ગલદ્વયસ્ય ચ] પુદ્ગલદ્વયને એકને જ થાય છે [સત્] તેથી [જીવભાવહેતુભિઃ વિના] ભાવરૂપ નિમિત્તથી સ્થિત જ અર્થાત્ જુદું જ [કર્મણઃ] કર્મનું [પરિણામઃ] મુખ્ય છે.

ટીકા:-એ પુદ્ગલદ્વયને, કર્મપરિણામના નિમિત્તભૂત એવા રાગાદિ-અજ્ઞાન-ભામે પરિણમેલા જીવની સાથે જ (અર્થાત્ બન્ને બેળાં મળીને જ), કર્મરૂપ ભામ થાય છે-એમ વિનહી દરવામાં આવે તો, એમ બેળાં થયેલાં હુણદર અને ડી બન્નેને લાલ રંગરૂપ પરિણામ થાય છે તેમ, પુદ્ગલદ્વય અને જીવ બન્નેને કર્મરૂપ ભામ આવી પડે. પરંતુ પુદ્ગલદ્વયને એકને જ કર્મપણારૂપ પરિણામ તો થાય તેથી જીવનું રાગાદિ અજ્ઞાનપરિણામ કે જે કર્મનું નિમિત્ત છે તેનાથી જુદું જ લોકકર્મનું પરિણામ છે.

ભાવાર્થ:-એ પુદ્ગલદ્વય અને જીવ બેળાં થઈને કર્મરૂપે પરિણમે છે એમ ત્રામાં આવે તો બન્નેને કર્મરૂપ પરિણામ દરે. પરંતુ જીવ તો જડ કર્મરૂપે દરી મુખી શકતો નથી; તેથી જીવનું અજ્ઞાનપરિણામ કે જે કર્મને નિમિત્ત છે તેનાથી જ પુદ્ગલદ્વયનું કર્મપરિણામ છે. ૧૩૭-૧૩૮.

પુદ્ગલદ્વયથી જુદું જ જીવનું પરિણામ છે એમ હવે પ્રતિપાદન કરે છે:-

પણ કર્મભાવે પરિણુમન છે એક પુદ્ગલદ્વયને,
જીવભાવહેતુથી અત્રગ, તેથી, કર્મનાં પરિણામ છે. ૧૩૮.

જીવસ્સ દુ કમ્મેણ ય સહ પરિણામા દુ હોંતિ રાગાદી
 एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥ १३९ ॥

एकस्स द्दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहि ।
 ता कम्मोदयहेद्दुहि विणा जीवस्स परिणामो ॥ १४० ॥

जीवस्य तु कर्मणा च सह परिणामाः खलु भवंति रागादयः ।

एवं जीवः कर्म च द्वे अपि रागादिस्त्वमापन्ने ॥ १३९ ॥

एकस्य तु परिणामो जायते जीवस्य रागादिभिः ।

तत्कर्मोदयहेतुभिर्विना जीवस्य परिणामः ॥ १४० ॥

અન્યથાર્થઃ—[જીવસ્ય તુ] એ જીવને [કર્મણા ચ સહ] કર્મની સાથે
 [રાગાદયઃ પરિણામાઃ] રાગાદિ પરિણામે [સ્વલુ ભવંતિ] થાય છે (અર્થાત્
 એનાં થઈને રાગાદિરૂપે પરિણમે છે) એમ માનવામાં આવે [एवं] તે એ રીતે
 કર્મ જ [જીવ અને કર્મ] [દ્વે અપિ] બન્ને [રાગાદિત્વં આપન્ને] રાગાદિપણને
 [તુ] પરંતુ [રાગાદિભિઃ પરિણામઃ] રાગાદિભાવે પરિણામ તો [જીવસ્ય]
 જીવને એકને જ [જાયતે] થાય છે [તત્] તેથી [કર્મોદયહેતુભિઃ વિના]
 નિમિત્તથી સહિત જ અર્થાત્ જુડ' જ [જીવસ્ય] જીવનું [પરિણામઃ] પરિણામ

ટીકાઃ—એ જીવને, રાગાદિ-અજ્ઞાનપરિણામના નિમિત્તભૂત એવું જ
 આવેલું પુણ્યકર્મ તેની સાથે જ (અર્થાત્ બન્ને એમાં મળીને જ), રાગાદિ-
 પરિણામ થાય છે—એમ વિતર્ક કરવામાં આવે તો, જેમ એનાં થયેલાં કર્મ
 હજાર બન્નેને સાત રંગરૂપ પરિણામ થાય છે તેમ, જીવ અને પુણ્યકર્મ
 રાગાદિ અજ્ઞાનપરિણામ આવી પડે. પરંતુ જીવને એકને જ રાગાદિ
 તો થાય છે; તેથી પુણ્યકર્મના ઉદય કે જે જીવના રાગાદિ-અજ્ઞાનપરિણામનું
 તેનાથી જુડ' જ જીવનું પરિણામ છે.

જીવનાં, કર્મ એનાં જ, એ પરિણામ રાગાદિક બને,
 તો કર્મ ને જીવ ઉભય પણ રાગાદિપણ પામે અરે!
 પણ પરિણામન રાગાદિરૂપ તો થાય છે જીવ એકને,
 તેથી જ કર્મોદયનિમિત્તથી અજ્ઞાન જીવપરિણામ છે.

શાસ્ત્રાર્થ:—એ દુષ્ટ અને પુણ્યકર્મ બેમાં કાર્મને મનાદિતર પશુનું છે. એ જાનવામાં આવે નો જોડેને મનાદિતર પશુજાત છે. પરંતુ પુણ્યકર્મ નો મનાદિતર પુણ્યકર્મ (દી) પશુથી માનું નથી; તેથી પુણ્યકર્મના દેવ કે જે મનાદિ-મનાને નિમિત્ત ને નેનાથી હરે જે દુષ્ટનું પશુજાત છે. ૧૭૨-૧૮૦.

‘આત્મામાં કર્મ બદરૂપ છે કે અબદરૂપ છે’—ને દને નયવિભાગી છે કે:—

જીવે કર્મ વદં પુત્રં જેદિ વચારણયમણિદં ।

શુદ્ધણયમ્ન તુ જીવે અવદપુત્રં ત્યદ કર્મ ॥ ૧૪૧ ॥

જીવે કર્મ વદં પુત્રં જેદિ વ્યવહારનયમણિદં ।

શુદ્ધણય તુ જીવે અવદપુત્રં યતિ કર્મ ॥ ૧૪૧ ॥

અભ્યર્થ:—[જીવે] દુષ્ટમાં [કર્મ] કર્મ [વદં] (તેના પ્રદેશ સાથે) મનાદિતર છે [જ] તથા [પુત્રં] સ્વર્ગપુત્ર છે [દિ] એત્ર [વ્યવહારનયમણિદં] વ્યવહારનયનું કથન છે [તુ] અને [જીવે] દુષ્ટમાં [કર્મ] કર્મ [અવદપુત્રં] અણુઅણુપુત્ર, અણુસ્વર્ગપુત્ર [યતિ] છે એત્ર [શુદ્ધણય] શુદ્ધનયનું કથન છે.

ટીકા:—દુષ્ટના અને પુણ્યકર્મના આજીવનપર્યાયપણથી જોનાં તેમને અત્યંત બેજાનો અભાવ હોવાથી દુષ્ટમાં કર્મ બદરૂપ છે એવો વ્યવહારનયનો પક્ષ છે. દુષ્ટના અને પુણ્યકર્મના અનંતસ્વપણથી જોનાં તેમને અત્યંત ભિન્નતા હોવાથી દુષ્ટમાં કર્મ અબદરૂપ છે એવો નિશ્ચયનયનો પક્ષ છે. ૧૪૧.

પણ તેથી શું? જે આત્મા તે બન્ને નયપદ્ધતિને યોગગી ગયો છે તે જ પ્રમયસાર છે,—એમ હવે ગાથામાં કહે છે:—

કર્મ વદમવદં જીવે एवं તુ જાણ નયપક્ષં ।

પદ્ધતિપંતો પુણ મણદિ જો સો સમયસારો ॥ ૧૪૨ ॥

છે કર્મ દુષ્ટમાં બદરૂપ—કથિત નય વ્યવહારનું;
પણ બદરૂપ ન કર્મ દુષ્ટમાં—કથન છે નય શુદ્ધનું. ૧૪૧.
છે કર્મ દુષ્ટમાં બદ વા અણુબદ એ નયપક્ષ છે;
પણ પક્ષથી અનિદાંત બાખ્યો ને ‘સમયનો સાર’ છે. ૧૪૨.

કર્મ વદ્ધમવદ્ધં જીવે एवं તુ જાનીદિ નયપક્ષમ્ ।

પક્ષાતિક્રાંતઃ પુનર્મણ્યતે યઃ સ સમયસારઃ ॥ ૧૪૨ ॥

અન્યથાર્થઃ—[જીવે] જીવમાં [કર્મ] કર્મ [વદ્ધં] બદ્ધ છે અર્થે
[અવદ્ધં] અબદ્ધ છે—[एवं તુ] એ પ્રકારે તો [નયપક્ષ] નયપક્ષ [જાનીદિ] જાણ
[પુનઃ] પુનઃ [યઃ] જે [પક્ષાતિક્રાંતઃ] પક્ષાતિક્રાંત (અર્થાત્ પક્ષને ઓગાળી ગયેલા)
[મણ્યતે] કહેવાય છે. [સઃ] તે [સમયસારઃ] સમયસાર (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ સુખ
આત્મભાવ) છે.

ટીકાઃ—‘જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે’ એવો જે વિકલ્પ તથા ‘જીવમાં કર્મ અબદ્ધ
છે’ એવો જે વિકલ્પ તે બન્ને નયપક્ષ છે. જે તે નયપક્ષને અતિક્રમે છે (ઓગાળી
ગયો છે, છોડે છે), તે જ સરસ વિકલ્પને અતિક્રમ્યો થકો પોતે નિર્વિકલ્પ, એક વિચિત્ર
ધનસ્વભાવરૂપ થઈને સાક્ષાર સમયસાર થાય છે. ત્યાં (વિશેષ સમગ્રવચમાં આરોહ
કે)—જે ‘જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે’ એમ વિકલ્પ કરે છે તે ‘જીવમાં કર્મ અબદ્ધ છે’
એવા એક પક્ષને અતિક્રમતો હોવા છતાં વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી, અને જે ‘જીવમાં
કર્મ અબદ્ધ છે’ એમ વિકલ્પ કરે છે તે પણ ‘જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે’ એવા એક પક્ષને
અતિક્રમતો હોવા છતાં વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી; વળી જે ‘જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે’
અને અબદ્ધ પણ છે’ એમ વિકલ્પ કરે છે તે, તે બન્ને પક્ષને નહિ અતિક્રમતો થકો
વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી. તેથી જે સમસ્ત નયપક્ષને અતિક્રમે છે તે જ સમસ્ત નિ
કલ્પને અતિક્રમે છે; જે સમસ્ત વિકલ્પને અતિક્રમે છે તે જ સમયસારને પ્રાપ્તિ
છે—અનુભવે છે.

સામાર્થ્યઃ—જીવ કર્મથી ‘બંધાયો છે’ તથા ‘નથી બંધાયો’—એ બન્ને
નયપક્ષ છે. તેમાંથી કોઈએ બંધપક્ષ પકડ્યો, તેણે વિકલ્પ જ મદલ્ય કર્યો; કોઈએ
અબંધપક્ષ પકડ્યો, તેણે પણ વિકલ્પ જ મદલ્ય કર્યો; અને કોઈએ બન્ને પક્ષ પાછા
તેણે પણ પક્ષરૂપ વિકલ્પનું જ મદલ્ય કર્યું. પરંતુ એવા વિકલ્પોને છોડી જે કોઈ પણ
પક્ષ ન પકડે તે જ શુદ્ધ પદાર્થનું સ્વરૂપ જાણી તે-રૂપ સમયસારને—શુદ્ધાત્મને—પ્રાપ્તિ
છે. નયપક્ષ પકડ્યો તે રાગ છે, તેથી સમસ્ત નયપક્ષને છોડવાથી વીતરાગ સમયસાર
થવાય છે.

હવે, ‘જો આત્મ છે તો નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાને ખરેખર કોણ ન નયારે’
એમ કહીને ધીમાન્ અમૃતચંદ્ર આચાર્ય નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાના ૨૩ ક્રમોના
કાન્ધા કરે છે:—

(૬૫-૬૫૫)

ય એવ મુવન્તો નયપણપાન
સ્વસ્ત્યગુણા નિવર્તનિ નિવ્યમ્ ।
વિવન્ત્યગુણાન્યુત્તરનાતિવિષા-
ન એવ માતાદમ્ને પિવેતિ ॥ ૬૦ ॥

અર્થ:—એવો નયપણપાનને હાડી (પાનપાન) સ્વસ્ત્યમાં ગુણ થઈને સદા
કે છે તેવો જ, જેમનું ચિત્ત વિકલ્પભગથી સદિન સંતન થયું છે એવા થયા થકા,
માતા અમૃતને પીએ છે.

ભાવાર્થ:—આગુણી કાંઈ પણ પણપાન એ છે ત્યાંગુણી ચિત્તને દ્વાબ મરતો
થી. આરે નયોનો સર્વ પણપાન મરી જાય ત્યારે વીતરાગ કરા થઈને સ્વસ્ત્યમાં
જુલિ થાય છે અને અર્નાદિય ગુણ અનુભવાય છે.

દુવેના ૨૦ હાગમાં નયપણને વિરૂદ્ધ વળવે છે અને કહે છે કે આવા સમસ્ત
વપણોને જે હાડે છે તે તત્ત્વવેદી (તત્ત્વનો જાણનાર) સ્વસ્ત્યને પામે છે:—

(ઉપલનિ)

પ્રકમ્પ ચક્ષો ન તથા પરસ્પ
ચિત્તિ દ્વયોદ્ગાત્રિતિ પક્ષપાતૌ ।
ચક્ષુષ્વેદી વ્યુત્પત્તપાત-
સ્તસ્પાસ્તિ નિત્યં મનુ વિચિદેવ ॥ ૭૦ ॥

અર્થ:—જવ, કર્મથી બચાયેલા છે એવો એક નયનો પક્ષ ॥ અને જવ
કર્મથી બચાયેલા નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્તસ્વસ્ત્ય જવ વિષે બે
ધોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી (વસ્તુસ્વસ્ત્યનો જાણનાર) પક્ષપાતરહિત છે
તે નિરંતર ચિત્તસ્વસ્ત્ય જવ ચિત્તસ્વસ્ત્ય જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્તસ્વસ્ત્ય જવે છે
તે નિરંતર અનુભવાય છે).

ભાવાર્થ:—આ પ્રથમાં પ્રથમથી જ વ્યવહારનયને ગૌણ કરીને અને શુદ્ધ-
યને મુખ્ય કરીને કથન કરવામાં આવ્યું છે. ચેતન્યનાં પરિણામ પરિનિમિત્તથી અનેક
જ છે તે સર્વને પદ્મસેધી જ આવ્યાર્થ ગૌણ કહેતા આવ્યા છે અને જવને શુદ્ધ
તત્ત્વમાત્ર કહ્યો છે. એ રીતે જવ-પદાર્થને શુદ્ધ, નિત્ય, અભેદ ચેતન્યમાત્ર સ્થાપીને
વે કહે છે કે—આ શુદ્ધનયનો પણ પક્ષપાત (વિકલ્પ) કરશે તે પણ ૧૬ સ્વ-

રૂપના સ્વાદને નહિ પામે. અમુક નયની તો વાત જ રી? પણ એ કેસ
પણ પક્ષપાત કરશે તો પક્ષનો રાગ નહિ મટે તેથી વીતરાગના નહિ થાય
છાડી ચિન્માન સ્વરૂપ વિષે હીન થયે જ સમયસારને પમાય છે. મટે ગુદનયને
તેનો પણ પક્ષપાત છાડી મુદ્દ સ્વરૂપનો અનુભવ કરી, સ્વરૂપ વિષે પ્રવૃત્તિ
પ્રાપ્ત કરી, વીતરાગ દશા પ્રાપ્ત કરવી યોગ્ય છે.

(ઉપખાતિ)

एकस्य मूढो न तथा परस्य चित्ति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्छिदेव ॥ ७१ ॥

અર્થ:-અવ મૂઠ (ગ્રાહી) છે એવો એક નયનો પક્ષ ॥ અને જા
(ગ્રાહી) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ અવ વિષે બે નાં
બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ અવ ચિત્
જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્સ્વરૂપ અવ એવો છે તેવો નિરંતર અનુભવાય છે

(ઉપખાતિ)

एकस्य रक्तो न तथा परस्य चित्ति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्छिदेव ॥ ७२ ॥

અર્થ:-અવ રાગી છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને અવ રાગી નથી
બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ અવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે
તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ અવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખાતિ)

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चित्ति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्छिदेव ॥ ७३ ॥

અર્થ:-અવ દુષ્ટી ॥ એવો એક નયનો પક્ષ છે અને અવ દુષ્ટી નથી
બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ અવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે
વેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ અવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખાતિ)

एकस्य कर्ता न तथा परस्य चित्ति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्छिदेव ॥ ७४ ॥

અર્થ:—હવે કર્તા ॥ એવો એક નયનો પક્ષ છે અને હવે કર્તા નથી એવો નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ હવે વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વ: પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ હવે ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપગતિ)

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिधिदेव ॥ ७५ ॥

અર્થ:—હવે બોક્તા છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને હવે બોક્તા નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ હવે વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ હવે ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપગતિ)

एकस्य जीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिधिदेव ॥ ७६ ॥

અર્થ:—હવે હવે છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને હવે હવે નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ હવે વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ હવે ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપગતિ)

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिधिदेव ॥ ७७ ॥

અર્થ:—હવે સૂક્ષ્મ છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને હવે સૂક્ષ્મ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ હવે વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ હવે ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપગતિ)

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिधिदेव ॥ ७८ ॥

અર્થ:—હવે હેતુ (કારણ) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને હવે હેતુ (કારણ) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ હવે વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ હવે ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य कार्यं न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु विधिदेव ॥ ७९ ॥

અર્થ:—જવ કાર્ય છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ કાર્ય નથી બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે જે વેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतપક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં खलु विधिदेव ॥ ૮૦ ॥

અર્થ:—જવ ભાવ છે (અર્થાત્ ભાવરૂપ છે) એવો એક નયનો અને જવ ભાવ નથી (અર્થાત્ અભાવરૂપ છે) એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतપક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં खलु विधिदेव ॥ ૮૧ ॥

અર્થ:—જવ એક છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ એક (અનેક છે) એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य सांगो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतપક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં गण्ड विधिदेव ॥ ૮૨ ॥

અર્થ:—જવ સાંગ (અર્થાત્ સહિત) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે જવ સાંગ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य निर्या न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतપક્ષપાતસ્ત્યાસ્ति નિત્યં गण्ड विधिदेव ॥ ૮૩ ॥

અર્થ:—જવ નિત્ય છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ નિત્ય નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. તે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिचिदेव ॥ ૮૪ ॥

અર્થ:—જવ વાચ્ય (અર્થાત્ વચનથી કહી શકાય એવો) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ વાચ્ય (-વચનગોચર) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्પક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં खलु चिचिदेव ॥ ૮૫ ॥

અર્થ:—જવ નાનારૂપ છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ નાનારૂપ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्પક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં खलु चिचिदेव ॥ ૮૬ ॥

અર્થ:—જવ ચેત્ય (-ચેતાવાચીય) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्राविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्પક્ષપાતસ્તस्याસ્ति નિત્યં खलु चिचिदेव ॥ ૮૭ ॥

અર્થ:—જવ દૃશ્ય (-રૂપાવાચીય) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જવ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપખતિ) :-

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु विचिदेव ॥ ८८ ॥

અર્થ:-જેવે વેદ (વેદાનાયોગ્ય, જજ્ઞાનાયોગ્ય) છે એવો એક નામે છે અને જો વેદ નથી એવો બીજા નામનો પક્ષ છે; આમ ચિત્તવશ્ય દર્શિ નોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્તવશ્ય જ છે.

(ઉપખતિ)

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतપક્ષપાતस्तस्यास्ति नित्यं खलु विचिदेव ॥ ८९ ॥

અર્થ:-જેવે 'ભાવ' (પ્રકાશમાન અર્થાત્ વર્તમાન પ્રત્યક્ષ) છે એક નામનો પક્ષ છે અને જો 'ભાવ' નથી એવો બીજા નામનો પક્ષ છે; આમ ચિત્તવશ્ય દર્શિ બે નોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્તવશ્ય જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્તવશ્ય જોવો છે તેને જ અનુભવવા છે).

આવાર્થ:-બહુ આમદ, મૂલ અમૂલ, રાગી અરાગી, દ્રેષી અદ્રેષી, આત્મી, ભાજા અભાજા, જીવ અજીવ, સૂક્ષ્મ સ્પૃક્ષ, કારણ આકારણ, કાર્ય ના અકાર્ય, એક અનેક, સાત્ત્વ અનાત્ત્વ, નિત્ય અનિત્ય, વાચ્ય અવાચ્ય, જ્ઞાતા અજ્ઞાતા, દૃશ્ય અદૃશ્ય, વેદ્ય અવેદ્ય, જ્ઞાન અજ્ઞાન કાવચી નિવૃત્તિ, જ્ઞાન નિવૃત્તિ કરીને નોના પક્ષપાતને છોડે છે તે મુદ્દાને ચિત્તવશ્ય જોવો જોઈએ.

જોવો અનેક આધારનું પદો છે પરંતુ ચિત્તવશ્ય તેનો પ્રમાણ અનુભવ કરીને નથી તેને મુખ્ય કરીને આત્મી જોવો ચિત્તવશ્ય જોવો છે.

૩. જ્ઞાન ૨૨ કાવચી કથનને દ્વયે સંબંધ છે:-

(વર્તમાનિયા)

જ્ઞાનમુક્તિદ્વયનિવૃત્તિનિવૃત્તિ-

મેંદ અર્થજ્ય મદર્થી નવત્રાદિત્રામ ।

જ્ઞાનવૈદિ: જ્ઞાનવૈદિત્રામવાદ

જ્ઞાન વૈદિત્રામવાદનુવૃત્તિમાત્ર ॥ ૯૦ ॥

અર્થ:—એ પ્રભાણે જેમાં બહુ વિકલ્પોની જાણો આપોઆપ હોડે છે એવી
દી નયપક્ષકક્ષાને (નયપક્ષની ભૂમિને) ઓળંગી જઈને (તત્ત્વવેદી) અંદર અને
હાર સમતા-રસરૂપી એક રસ જ જેનો સ્વભાવ છે એવા અનુભૂતિમાત્ર એક પોતાના
પક્ષને (સ્વરૂપને) પામે છે.

હવે નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાનું ઉદ્દત્ત કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

इंद्रजातमिदमेवमुच्छलत्

पुष्कलोद्यमविकल्पबीचिभिः ।

यस्य विस्फुरणमेव तत्तत्

कृत्स्नमस्પति तदस्મि चिन्मयः ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:—પુષ્કળ, મોટા, અંબળ વિકલ્પરૂપ તરંગો વડે હોડાતી આ સમસ્ત
દ્રવ્યજને જેવું “રુદ્રરુદ્ર” માત્ર જ તત્ત્વજન્ય ભગાદી મૂકે છે તે ચિન્માત્ર તેજ:પુર્ણ હું છું.

ભાવાર્થ:—ચેતન્યનો અનુભવ થતાં સમસ્ત નયોના વિકલ્પરૂપી ઉદ્દત્તજ તે
જેવું જ વિસ્તૃત પામે છે; એવો ચિત્પ્રકાશ હું છું. ૧૪૨.

‘પક્ષાનિકાન્તનું’ (પક્ષને ઓળંગી ગયેલાનું) શું સ્વરૂપ છે?—એ પક્ષના
સ્વરૂપ ગાથા હવે કહે છે:—

दोण्डवि णयाण भणियं जाणइ णयरं तु ममयपटिचट्ठो ।

ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिणीणो ॥ ૧૪૩ ॥

द्वयोरपि नययोर्भणितं जानाति केवलं तु ममयपटिचट्ठः ।

न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥ ૧૪૩ ॥

અન્યથાર્થ:—[નયપક્ષપરિહીના] નયપક્ષથી રહિત હવે, [મમયપટિચટ્ઠ]
[મયથી પ્રતિબદ્ધ થયેલ થકો] (અર્થાત્ ચિત્સ્વરૂપ આત્માને અનુભવનો થકો), [દ્વયોર
પિ] બન્ને [નયયો] નયોના [ભણિત] કથનને [કેવલં તુ] કેવળ [જાનાતિ]

“રુદ્ર” = ૧૨૧નું તે; પશુપ્ત-દ્વારે કરેલો તે.

નયદયકથન જાણે જ કેવળ સમયમાં પ્રતિબદ્ધ છે,

નયપક્ષ કંઈ પાત્ર નવ મારે, નયપક્ષથી પરિહીન ને. ૧૪૩.

જાણે જ છે [તુ] પરંતુ [નયપક્ષ] નયપક્ષને [કિંચિત્ અપિ] જાણે
 ગૃહાતિ] મહણ કરતો નથી.

ટીકા:—જેવી રીતે કેવળી ભગવાન, વિદ્યના સાક્ષીપણને લીધે,
 અવયવભૂત એવા જે વ્યવહારનિશ્ચયનયપક્ષો તેમના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે છે.
 નિરંતર પ્રકાશમાન સહજ, વિભજ, સકળ કેવળજ્ઞાન વડે સદા ધોને જ વિ-
 થયા હોઈને, શ્રુતજ્ઞાનની ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણ વડે (અર્થાત્ શ્રુતજ્ઞાનની મુક્તિ
 આજગી ગયા હોવાને લીધે) સમસ્ત નયપક્ષના મહણથી દૂર થયા હોવાથી, કે-
 નયપક્ષને મહતા નથી, તેવી રીતે જે (શ્રુતજ્ઞાનની આત્મા), ક્ષયોપશમી
 ઉપજવું થાય છે એવા શ્રુતજ્ઞાનાત્મક વિકલ્પો ઉત્પન્ન થતા હોવા છતાં પરંતુ
 કરવા પ્રતિ ઉત્સાહ નિવૃત્ત થયો હોવાને લીધે, શ્રુતજ્ઞાનના અવયવભૂત વ્યવહાર
 નયપક્ષોના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે છે પરંતુ, તીક્ષ્ણ જ્ઞાનદંષ્ટ્રી મહુવામાં આ
 નિર્મળ, નિત્ય-ઉદિત, ચિન્મય સમયથી પ્રતિબદ્ધપણ વડે (અર્થાત્ ચૈતન્યમય
 આત્મા અનુભવન વડે) તે વખતે (અનુભવ વખતે) પોતે જ વિજ્ઞાનઘન થયો હો-
 શ્રુતજ્ઞાનાત્મક સમસ્ત અંતરંગ તથા બાહ્ય (અક્ષરસ્વરૂપ) ઉત્પન્ન થતા
 ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણ વડે સમસ્ત નયપક્ષના મહણથી દૂર થયો હોવાથી, કે-
 નયપક્ષને મહતા નથી, તે (આત્મા) ખરેખર સમસ્ત વિકલ્પોથી પર
 જ્ઞાનાત્મા, પ્રત્યક્ષબોધિ, આત્મખ્યાતિરૂપ, અનુભૂતિમાત્ર સમયસાર છે.

ભાવાર્થ:—જેમ કેવળી ભગવાન સદા નયપક્ષના સ્વરૂપના સાક્ષી (દ્રષ્ટા)
 છે તેમ શ્રુતજ્ઞાનની પણ બ્યારે સમસ્ત નયપક્ષોથી સ્થિત થઈ શુદ્ધ છે.
 ભાવનું અનુભવન કરે છે ત્યારે નયપક્ષના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા જ છે. એક નયનો
 પક્ષ મહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સાથે મળેલો રાગ થાય; પ્રયોજનના વશે એક
 પ્રધાન કરી તેનું મહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સિવાય માત્ર આદિત્તમોહનો રાગ રહે
 બ્યારે નયપક્ષને છાડી પરતુસ્વરૂપને કેવળ જાણે જ ત્યારે તે વખતે શ્રુતજ્ઞાન
 કેવળીની માફક વીતરાગ જેવો જ હોય છે એમ જાણવું.

તે આત્મા આવે અનુભવ કરે છે એમ કળશમાં કહે છે:—

(સ્વામી)

ચિત્ત્વમાવપરમાવિતમાર્વા-

માવમાવપરમાર્થતયૈકમ્ ।

વંચપદ્ધતિમપાસ્ય સમસ્તાં

ચેતયે સમયસારપારમ્ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ:—ચિત્સ્વભાવના પુંજ વડે જ પોતાનાં ઉત્પાદ, બ્યય અને દ્રૌવ્ય ભવાય ન્કરાય છે.)—એવું જેવું પરમાર્થ સ્વરૂપ હોવાથી જે એક છે એવા અપાર સમય-ને હું, સમસ્ત બધપદ્ધતિને દૂર કરીને અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી થતા સર્વ ભાવોને ને, અનુભવું છું.

ભાવાર્થ:—નિર્વિકલ્પ અનુભવ થતાં, જેના કેવળજ્ઞાનાદિ ગુણોનો પાર નથી સમયસારરૂપી પરમાત્માનો અનુભવ જ વર્તે છે, ‘હું અનુભવું છું’ એવો પણ વ્યવહાર હોતો નથી—એમ જાણવું. ૧૪૩.

પદ્ધતિકાંત જ સમયસાર છે એમ નિયમથી કરે છે—એમ હવે કહે છે:—

સમ્મદ્વંસણાણં एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं ।

सव्वणयपक्खरहिदो भणितो जो सो समयसारो ॥ १४४ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेव लभत इति केवलं व्यपदेशम् ।

सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥ १४४ ॥

અન્યથાર્થ:—[યઃ] જે [સર્વનયપક્ષરહિતઃ] સર્વ નયપક્ષોથી રહિત બિન:] કહેવામાં આવ્યો છે [સઃ] તે [સમયસારઃ] સમયસાર છે; [લયઃ] આને (—સમયસારને જ) [કેવલં] કેવળી [સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનં] સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન તે] એવી [વ્યપદેશં] સંજ્ઞા (નામ) [લભતે] મળે છે. (નામ જુદાં હોવા છતાં એક જ છે.)

ટીકા:—જે ખરેખર સમસ્ત નયપક્ષો વડે ખંડિત નહિ થતો હોવાથી જેનો સ્વેન વિકલ્પોનો બ્યાપાર આટલી ગયો છે એવો છે, તે સમયસાર છે; ખરેખર આ ને જ કેવળ સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાનનું નામ મળે છે. (સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન સારથી જુદાં નથી, એક જ છે.)

પ્રથમ, સુતજ્ઞાનના અવજ્ઞાનથી જ્ઞાનસ્વભાવ આત્માનો નિશ્ચય કરીને, પછી માની પ્રગટ પ્રસિદ્ધિને માટે, પર પદાર્થની પ્રસિદ્ધિનાં કારણે જે હૃદયદારા અને દારા પ્રવર્તતી બુદ્ધિઓ તેમને મર્યાદામાં લાવીને જેણે મનિજ્ઞાનનાત્વને (—મનના સ્વરૂપને) આત્મસંયુખ કયું છે એવો, તથા નાના પ્રકારના પદ્ધતિના આજ્ઞાનથી

સમ્યક્ત્વ તેમ જ જ્ઞાનની જે એકને સંજ્ઞા મળે,

નયપક્ષ સકલ રહિત ભાખ્યો તે ‘સમયનો સાર’ છે. ૧૪૪.

અર્થ:—ચિત્સ્વભાવના પુ'જ વડે જ પોતાનાં ઉત્પાદ, બ્યસ અને ધૌવ્ય ભવાય (કરાય છે)—એવું જેવું પરમાર્થ સ્વરૂપ હોવાથી જે એક છે એવા અપાર સમય-ને હું, સમસ્ત બંધનદશિને દૂર કરીને અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી થતા સર્વ ભાવોને ને, અનુભવું છું.

આવાર્થ:—નિર્વિકલ્પ અનુભવ થતાં, જેના કેવળજ્ઞાનાદિ ગુણોનો પાર નથી (સમયસારથી પરમાત્માનો અનુભવ જ વર્તે છે, 'હું અનુભવું છું' એવો પણ વ્ય હોતો નથી—એમ જાણવું. ૧૪૩.

પદ્ધતિમાં જ સમયસાર છે એમ નિયમથી દરે છે—એમ દવે કહે છે:—

સમ્મદંસણણાણં एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं ।

सव्वणयपक्खरहिदो भणितो जो सो समयसारो ॥ १४४ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेव लभत इति केवलं व्यपदेशम् ।

सर्वनयपक्खरहितो भणितो यः स समयसारः ॥ १४४ ॥

અન્યવાર્થ:—[વા :] જે [સર્વનયપક્ષરહિતઃ] સર્વ નયપક્ષોથી રહિત રણિતઃ] કહેવામાં આવ્યો છે [સા] તે [સમયસારઃ] સમયસાર છે; [વ્યઃ] આને (સમયસારને જ) [કેવલં] કેવળ [સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાને] સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન રિતિ] એવી [વ્યપદેશં] સંજ્ઞા (નામ) [લભતે] મળે છે. (નામ બુદ્ધિ હોવા બાં બુદ્ધ એક જ છે.)

ટીકા:—જે અરેખર સમસ્ત નયપક્ષો વડે ખરિત નહિ થતો હોવાથી જેનો મસ્ત વિલેપિતો વ્યાપાર બાદી ગયો છે એવો છે, તે સમયસાર છે; અરેખર આ ક્ષેત્રે જ કેવળ સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાનવું નામ મળે છે. (સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન મયસારથી બુદ્ધિ નથી, એક જ છે.)

પ્રથમ, મુતજ્ઞાનના અવલંબનથી જ્ઞાનસ્વભાવ આત્માનો નિશ્ચય કરીને, પછી આત્માની પ્રગટ પ્રસિદ્ધિને મારે, પર પદાર્થની પ્રસિદ્ધિનાં કારણો જે હિયકારા અને નકારા પ્રવર્તતી બુદ્ધિઓ તેમને મર્યાદામાં લાવીને જેવું અનિજ્ઞાનનાત્મને (અનિ-જ્ઞાનના સ્વરૂપને) આત્મસંસ્થા કહ્યું છે એવો, તથા નાના પ્રકારના પદ્ધાના આત્મબનથી

સમ્યક્ત્વ તેમ જ જ્ઞાનની જે એકને સંજ્ઞા મળે, નયપક્ષ મક્કલ રહિત જાણ્યો ને 'સમયનો સાર' જે

થતા અનેક ચિકિત્સા વડે આકુળતા ઉત્પન્ન કરનારી મૃતજ્ઞાનની શુદ્ધિએ પણ
 લાવીને મૃતજ્ઞાન-તત્ત્વને પણ આત્મ-સન્મુખ કરતો, અત્યંત ચિકિત્સકીય રો
 નિજ રસથી જ પ્રગટ થતા, આદિ-મધ્ય-અંત સહિત, અનાકુળ, કેવળ
 વિધેતા ઉપર જાણ કે તરતો હોય તેમ અખંડ પ્રતિભાસમય, અનંત
 પરમાત્મારૂપ સમયસારને જ્યારે આત્મા અનુભવે છે તે વખતે જ આ
 રૂપાય છે (અર્થાત્ મહાય છે) અને જણાય છે તેથી સમયસાર જ
 અને જ્ઞાન છે.

સાચાર્ય:—આત્માને પહેલાં આગમજ્ઞાનથી જ્ઞાનસ્વરૂપ નિષ્કર્ષ
 કાર્યશુદ્ધિરૂપ અતિજ્ઞાનને જ્ઞાનભાવમાં જ મેળવી દર્શને, તથા મુક્તિપ્રાપ્તિ
 ચિકિત્સાને મારી મૃતજ્ઞાનને પણ નિર્વિકલ્પ કરીને, એક અખંડ પ્રતિભાસને
 કરતો તે જ ‘સમ્યક્દર્શન’ અને ‘સમ્યક્જ્ઞાન’ એવાં નામ પામે છે;
 સમ્યક્જ્ઞાન કંઈ અનુભવથી જુદાં નથી.

દુને આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાંદ્વિનિર્મિત)

આકામશ્ચરિત્ત્વમાવમચયં વૈર્તેર્નવાનાં વિના
 મારો યઃ મમયસ્ય પ્રાપ્તિ નિમ્ત્તૈરામ્યાપમાનઃ મમ્
 વિજ્ઞાનેકરમઃ સ પ્વ મગવાન્મુગમઃ પુરાણઃ પુષ્પા
 જ્ઞાનં દર્શનમપ્યપં કિમપિ યત્નિર્ગતૈસ્તોડપ્યપ્ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:—મોના પડેલા શુદ્ધિ, અવગત નિર્વિકલ્પભાવને પામતો જે
 (આત્માના) માત્ર પ્રકાર છે તે આ સમયસાર (શુદ્ધ આત્મા) નો જે
 (નિર્માળ, આત્મલિંગ) મુદ્દા વડે સ્વરૂપ આસ્વાદ્યમાન છે (આત્માના
 અનુભવ છે) તે—જ્ઞાન જ જેને એક રૂપ છે એ જ જાણવાનું છે, જે
 રૂપ જ્ઞાન કહે છે તેને કહે છે તે આ (સમયમાત્ર) જ છે; અવગત
 રૂપ જ્ઞાન કહે છે તે આ એક જ છે (—માત્ર જુદાં જુદાં નામથી કહેવા
 ૧૧ ૫૬ છે—

અને આત્મા જાણવી એવું થતો દુને તે જ્ઞાનના જ આત્માના

(શાંદ્વિનિર્મિત)

જે વર્તિત્ત્વમાવમચયને આકામશ્ચરિત્ત્વમાવમચય
 સમ્યક્દર્શનસમ્યક્જ્ઞાનને સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન

વિજ્ઞાનૈકરસસ્તદેકરસિનામાત્માનમાત્મા હરન્ ।

આત્મન્યેવ સદા મતાનુગતતામાપાત્યયં તોયવત્ ॥ ૯૪ ॥

અર્થ:—એમ પાણી પોતાના સમુદ્ધી ધ્યુત થયું થકું દર ગાદન વનમાં મળું હોય તેને દરથી જ દાળવાળા માર્ગદાર પોતાના સમુદ્ધ તરફ બળથી વાળવામાં આવે; પછી તે પાણી, પાણીને પાણીના સમુદ્ધ તરફ ખેંચતું થકું પ્રવાહ રૂપ થઈને, પોતાના સમુદ્ધમાં આવી મળે; તેવી રીતે આ આત્મા પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવથી તથા થયો થકો પ્રચુર વિકલ્પભળના ગાદન વનમાં દર ભ્રમતો હોતો તેને દરથી જ વેકરૂપી દાળવાળા માર્ગદાર પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવ તરફ બળથી વાળવામાં આવે; કેવળ વિજ્ઞાનઘનના જ રસીલા પુરુષોને જે એક વિજ્ઞાનરસવાળો જ અનુભવ થાય છે એવો તે આત્મા, આત્માને આત્મામાં ખેંચતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાન જ્ઞાનને ધ્યુત થકું પ્રવાહરૂપ થઈને), સદા વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવમાં આવી મળે છે.

ભાવાર્થ:—એમ જળ, જળના નિવાસમાંથી કોઈ માર્ગ બહાર નીકળી વનમાં નેક જગ્યાએ ભ્રમે; પછી કોઈ દાળવાળા માર્ગદાર, એમ હવે તેમ પોતાના નિવાસ-મમાં આવી મળે; તેવી રીતે આત્મા પણ મિથ્યાત્વના માર્ગે સ્વભાવથી બહાર કળી વિકલ્પના વનમાં ભ્રમણ કરેતો થકો કોઈ બેદજ્ઞાનરૂપી દાળવાળા માર્ગદાર જે જ પોતાને ખેંચતો પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવમાં આવી મળે છે.

હવે કર્તાકર્મ અધિકારનો ઉપસાદાર કરતાં, કેલોક કળશરૂપ માળ્યો કહે છે; પ્રથમ કળશમાં કર્તા અને કર્મનું સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપ કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

વિકલ્પકઃ પરં કર્તા વિકલ્પઃ કર્મ કૈવલ્યમ્ ।

ન જાતુ કર્તૃકર્મત્વં સવિકલ્પસ્ય નશ્યતિ ॥ ૯૫ ॥

અર્થ:—વિકલ્પ કરનાર જ કેવળ કર્તા છે અને વિકલ્પ જ કેવળ કર્મ છે; જ્યાં કોઈ કર્તા-કર્મ નથી; જે જ્યાં વિકલ્પસ્પદિત તેનું કર્તાકર્મપણું કદી નાશ પામે નથી.

ભાવાર્થ:—જ્યાંગુથી વિકલ્પભાવ છે ત્યાંગુથી કર્તાકર્મભાવ છે; જ્યારે વિ-
જ્ઞાનના અભાવ થાય ત્યારે કર્તાકર્મભાવનો પણ અભાવ થાય છે.

જે કરે છે તે કરે જ છે, જે બળે છે તે બળે જ છે—એમ હવે કહે છે:—

યઃ કરોતિ સ કરોતિ કેવલં
 યસ્તુ વેત્તિ સ તુ વેત્તિ કેવલમ્ ।
 યઃ કરોતિ ન હિ વેત્તિ સ કચિત્
 યસ્તુ વેત્તિ ન કરોતિ સ કચિત્ ॥ ૯૬ ॥

અર્થઃ—જે કરે છે તે કેવળ કરે જ છે અને જે જાણે છે તે કેવળ
 છે; જે કરે છે તે કદી જાણતો નથી અને જે જાણે છે તે કદી કરતો નથી.

ભાવાર્થઃ—કર્તા છે તે જ્ઞાતા નથી અને જ્ઞાતા છે તે કર્તા નથી.

એવી જ રીતે કરવારૂપ ક્રિયા અને જાણવારૂપ ક્રિયા બન્ને ભિન્ન
 હોયે કહ્યું છે:—

(ઇન્દ્રવજ્ર)

જ્ઞપ્તિઃ કરોતૌ ન હિ ભાસતેજ્ઞતઃ
 જ્ઞપ્તૌ કરોતિશ્ચ ન ભાસતેજ્ઞતઃ ।
 જ્ઞપ્તિઃ કરોતિશ્ચ તતો વિભિન્ને
 જ્ઞાતા ન કર્તેતિ તતઃ સ્થિતં ચ ॥ ૯૭ ॥

અર્થઃ—કરવારૂપ ક્રિયાની અંદરમાં જાણવારૂપ ક્રિયા ભાસતી નથી
 જાણવારૂપ ક્રિયાની અંદરમાં કરવારૂપ ક્રિયા ભાસતી નથી; મારે સમિધિ
 ‘કરેપિ’ ક્રિયા બન્ને ભિન્ન છે; અને તેથી એમ કહ્યું કે જે જ્ઞાતા છે તે કર્તા નથી.

ભાવાર્થઃ—‘હું પરદ્રવ્યને કહું છું’ એમ જ્યારે આત્મા પરિણમે છે
 તેા કર્તાભાવરૂપ પરિણમનક્રિયા કરતો હોવાથી અર્થાત્ ‘કરોતિ’ ક્રિયા કરતો કે
 કર્તા જ છે અને જ્યારે ‘હું પરદ્રવ્યને જાણું છું’ એમ પરિણમે છે ત્યારે
 પરિણમનેા હોવાથી અર્થાત્ સમિધિક્રિયા કરતો હોવાથી જ્ઞાતા જ છે.

અર્થા કહ્યું પૂછે છે કે અવિરત-સમ્યગ્દષ્ટિ આદિને જ્યાંગુધી યદિતે
 દેવ છે ત્યાંગુધી તે કયાવરૂપ પરિણમે છે તો તેને કર્તા કહેવાય કે નહિ? તેનું
 ધનઃ—અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિ વગરને અદા-જ્ઞાનમાં પરદ્રવ્યના સ્વામીપરુણ
 અભિપ્રાય નથી; કયાવરૂપ પરિણમન છે તે ઉદયની અગત્યેરીથી છે; તેના તે જ
 નથી અજ્ઞાન મનથી કર્તાપણું તેને નથી. નિમિત્તની અગત્યેરીથી પણ

કિંચિત્ હોય છે તે સંસારનું કારણ નથી. જેમ વૃક્ષની જડ કાપ્યા પછી તે વૃક્ષ
એક કાળ સહે અથવા ન સહે—ફાણે ફાણે તેનો નાશ જ થતો જાય છે, તેમ અહીં
સંસારનું.

ફરીને એ જ પાતને દૃઢ કરે છે:—

(શાર્દૂલવિહીરિત)

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तारि

द्वंद्वं विमतिषिष्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः ।

ज्ञाना ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-

नैવધ્યે घत जानत्रीति रमसा मोहस्तथाप्येष विम् ॥ ૧૮ ॥

અર્થ:—કર્તા નહીં કર્મમાં નથી, અને કર્મ છે તે પણ નહીં કર્તામાં નથી—
તે બંનેનો પરસ્પર નિરેધ હરવામાં આવે છે તો કર્તાકર્મની સ્થિતિ શી? (અ-
હા એવ-પુણ્યગતને કર્તાકર્મપણું ન જ હોઈ શકે). આ પ્રમાણે જ્ઞાના સદા જ્ઞાનામાં
છે અને કર્મ સદા કર્મમાં જ છે એવી વસ્તુસ્થિતિ પ્રગટ છે તોપણ અરે! નેપ'યમાં
આ શ્રાદ્ધ કેમ અત્યંત જોરથી નાચી રહ્યો છે? (એમ આશ્ચર્યને ખેદ અને આશ્ચર્ય
ય છે).

ભાવાર્થ:—કર્મ તો પુણ્યગત છે, તેનો કર્તા હવેને હરવામાં આવે તે અસંભ-
વ છે બંનેને અત્યંત બેઠ છે, એવ પુણ્યગતમાં નથી અને પુણ્યગત હવમાં નથી; તો
હી તેમને કર્તાકર્મભાવ કેમ હોઈ શકે? ખરે હવ તો જ્ઞાના છે તે જ્ઞાના જ છે, પુણ-
્યગતના કર્તા નથી; અને પુણ્યગતકર્મ છે તે પુણ્યગત જ છે, જ્ઞાનાનું કર્મ નથી.
આશ્ચર્ય ખેદપૂર્વક કહ્યું છે કે—આમ પ્રગટ બિલત દ્રવ્ય છે તોપણ 'હું કર્તા છું' અને
પુણ્યગત માનું કર્મ છે' એવો અજ્ઞાનીનો આ શ્રાદ્ધ (—અજ્ઞાન) કેમ નાથ છે?

અથવા જે શ્રાદ્ધ નાથ છે તો બસે નાથા; તથાપિ વસ્તુસ્વરૂપ તો હેતુ' છે
જ છે—એમ હવે કહે છે:—

(મહાના)

कर्ता कर्ता भवति च यथा कर्म कर्मापि नैव

જ્ઞાન જ્ઞાન ભવતિ ચ યથા કુદ્ધમઃ કુદ્ધ્નોઽપિ ।

જ્ઞાનઽપોતિર્ગર્ભિતઽવ્યવસ્થાં વ્યવસ્થાંતરણયોદ-

વિષ્ણુતીર્થાં નિવરત્તરણોઽવ્યવસ્થાંતરણયોદ ॥ ૧૯ ॥

અર્થ:—અગળી, વ્યજ્ઞ અને ચિત્સાક્ષિઓના (-જ્ઞાનના અધિકારીઓના) સમૂહના ભાષણી અત્યંત ગંભીર આ જ્ઞાનભવેતિ અંતરંગમાં બિંદુ રીતે મજબૂતમાન થઈ કે—આત્મા અજ્ઞાનમાં કર્તા થતો હતો તે હવે કર્તા અને અજ્ઞાનના નિમિત્તે પુદ્ગલ કર્મરૂપ થતું હતું તે કર્મરૂપ થતું નથી; વડ જ્ઞાનરૂપ જ રહે છે અને પુદ્ગલ પુદ્ગલરૂપ જ રહે છે.

ભાવાર્થ:—આત્મા જ્ઞાની થાય ત્યારે જ્ઞાન તો જ્ઞાનરૂપ જ પુદ્ગલકર્મનો કર્તા થતું નથી; વળી પુદ્ગલ પુદ્ગલ જ રહે છે, કર્મરૂપ નથી. આમ યથાર્થ જ્ઞાન થયે બન્ને દ્રવ્યનાં પરિણામને નિમિત્તનિમિત્તભાવે આપું જ્ઞાન સમ્યગ્દષ્ટિને હોય છે.

ટીકા:—આ પ્રભાણે જીવ અને અજીવ કર્તાકર્મનો વેશ છાંડી નીકળી ગયા.

ભાવાર્થ:—જીવ અને અજીવ બન્ને કર્તા-કર્મનો વેશ ધારણ કરી એ રંગભૂમિમાં દાખલ થયા હતા. સમ્યગ્દષ્ટિતું જ્ઞાન કે જે યથાર્થ રૂપનારૂં છે તેમનાં જુદાં જુદાં લક્ષણથી એમ જાણી લીધું કે તેઓ એક નથી પણ બે છે તેઓ વેશ દૂર કરી રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયા. બહુરૂપીતું એક દોષ છે કે રૂપનારૂં બધાંમુધી ઓળખે નહિ ત્યાંમુધી એકા કર્યા કરે, પરંતુ યથાર્થ ઓળખી લે ત્યારે નિજ રૂપ પ્રગટ કરી એકા કરવી છાડી કે તેવી રીતે પણ જાણવું. ૧૪૮.

જીવ અનાદિ અજ્ઞાન વસાય વિકાર ઉપાય વઢૈ કરતા મોઢાકરિ બંધન આન તત્ત્વ રૂલે લે મુખ દુઃખ બચામમવાગેદ જ્ઞાન ભયે કરતા ન બને તમ બંધ ન હોય ખુલ્લે પરપ્રાપ્ત આનમમાંદિ સદા શુચિસાસ કરે સિવ પાપ રહે નિતિ ધામેલ

આમ આ સમયમારમથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પાંચ પાનાં ૬૧ બાંધવ્યનિકામાં બીજા કર્તાકર્મ અધિકાર પૂર્ણ થયા.



પુણ્ય-પાપ અધિકાર

પુણ્ય-પાપ બન્ને ફરમ, બંધરૂપ હરે માની;
શુદ્ધાત્મા લેણે લક્ષ્યો, નમું ચરણ દિલ જાણી.
પ્રથમ દીકાર કહે છે કે 'દેવે એક જ કર્મ બે પાતરૂપ થઈને પુણ્ય-પાપરૂપે
રે છે.'

એમ નૃત્યના અખ્યાતમાં એક જ પુરુષ પોતાને બે રૂપે બનાવી નાચતો હોય
માર્ગે જાણનાર ઓળખી લે છે અને એક જ જાણે છે, તેવી રીતે એકે કર્મ
જે તેપણ પુણ્ય-પાપના બેર બે પ્રકારનાં રૂપ કરી નાચે છે તેને, સમ્યક્દષ્ટિનું
કે જે વધાર્થ છે તે એકરૂપ જાણી લે છે. તે જ્ઞાનના અદિમાત્ર હોય આ અધિ-
માત્રમાં દીકાર આચાર્ય કહે છે:—

(કૃતવિવર્ણિત)

તદય કર્મ શુભાશુભમેદતો

દ્વિતપનાં ગતમૈવયમુપાનયન્ ।

ગ્લપિતનિર્ભરમોદરજા અયં

સ્વયમુદેત્યવબોધમુપાસ્રવઃ ॥ ૧૦૦ ॥

અર્થ:—દેવે (કર્તાકર્મ અધિકાર પાલી), શુભ અને અશુભના બેરને લીધે
જાણને પામેલા તે કર્મને એકરૂપ કરેને, જેણે અત્યંત પ્રાદુરજ્ઞને ફર કરી છે
॥ આ (પ્રત્યક્ષ—અનુભવગ્રાસ્તર) જ્ઞાન-ગુણાંશુ (સમ્યક્જ્ઞાનરૂપી ચંદ્રમા) સ્વયં
જ પામે છે.

બાવાર્થ:—અજ્ઞાનથી એક જ કર્મ બે પ્રકારનું રખાતું હતું તેને જ્ઞાન
પ્રકારનું બનાવ્યું. જ્ઞાનમાં પ્રાદુરજ્ઞ રજ લાગી રહી હતી તે ફર કરવામાં આવ્યું.

ત્યારે યથાર્થ જ્ઞાન થયું; જેમ ચંદ્રને વાદળાં તથા ધુમ્રસત્તું પાડે આઠ મંદ
યથાર્થ પ્રકારા થતો નથી પરંતુ આવશ્યક દૂર થતાં ચંદ્ર યથાર્થ પ્રકારી છે, તે
અહીં પણ જાણવું.

હવે પુણ્ય-પાપના સ્વરૂપના દૃષ્ટાંતરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાકાંતા)

एको दूरात्पयजति मदिरां ब्राह्मणत्वामिमाना-
दन्यः शुद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तपैव ।
ब्राह्मण्येनैतौ युगपदुदराभिर्गतौ शुद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥ ૧૦૧ ॥

અર્થ:—(શૂદ્રાણીના એકી સાથે જન્મેલા બે પુત્રોમાંથી એક બ્રા-
હ્મણ્યો અને બીજો શૂદ્રના મર જ રહ્યો). એકે તો 'હું બ્રાહ્મણ છું' એમ
તના અભિમાનને લીધે અદિશને દૂરથી જ છાડે છે અર્થાત્ સ્વરૂપે પણ નથી
'હું' પાને શૂદ્ર છું' એમ જાનીને અદિશથી જ નિત્ય સ્નાન કરે છે અર્થાત્ તે
મને છે. આ બન્ને પુત્રો શૂદ્રાણીના ઉદરથી એકી સાથે જન્મેલા છે તેથી (પર-
બન્ને સાક્ષાત્ શૂદ્ર છે, તોપણ જાતિભેદના જામ સહિત તેઓ પ્રવર્તે છે—આ
છે. (આ પ્રમાણે પુણ્ય-પાપનું પણ જાણવું.)

આવાર્થ:—પુણ્ય-પાપ બન્ને વિભાવપરિણતિથી ઉપજ્યાં હોવાથી
જોડેલા જ છે. બ્રાહ્મણરૂપિએ જામને લીધે તેમની પ્રવૃત્તિ ભુરી ભુરી જ
સારું અને અજામ—અજામ બે પ્રકારે તેઓ રખાય છે. પરમાર્થદષ્ટિ તો તેઓ
જ, જોડેલા જ, અજામ જ જાણે છે.

હવે ગુણગુણ કર્મના સ્વભાવનું વર્ણન ગાથામાં કરે છે:—

वर्मममृते कुमीले मुहकर्मं चानि जाणत मुमीले ।
वद नं होति मुमीले जं मंगारं पवेमेदि ॥ ૧૪૦ ॥

વર્મ પ્રવૃત્તિ દર્શનને મુલકર્મ પાત્ર જાણીત મુમીલે
વર નહીં હોતિ મુમીલે જં મંગારં પવેમેદિ ॥ ૧૪૦ ॥

જે જે વર્મ પ્રવૃત્તિ દર્શનને મુલકર્મ પાત્ર જાણીત મુમીલે
જે જે વર્મ પ્રવૃત્તિ દર્શનને મુલકર્મ પાત્ર જાણીત મુમીલે

અન્વયાર્થઃ—[અશુભ કર્મ] અશુભ કર્મ [કુચીલં] કુચીલ છે (—અશુભ
અપિ ચ) અને [શુભકર્મ] શુભ કર્મ [સુચીલં] સુચીલ છે (—સાદું છે)
[જાનીય] તમે જાણો છો! [તત્] તે [સુચીલં] સુચીલ [કર્મ] કેમ [મયતિ]
[યત્] કે જે [સંસારં] (જીવને) સંસારમાં [પ્રવેશયતિ] પ્રવેશ કરાવે છે?

ટીકા:—કેઈ કર્મને શુભ જીવપરિણામ નિમિત્ત હોવાથી અને કેઈ કર્મને
જીવપરિણામ નિમિત્ત હોવાથી કર્મના કારણમાં બેદ—તદ્વત છે (અર્થાત્
જુદાં જુદાં છે); કેઈ કર્મ શુભ પ્રદગતપરિણામમય અને કેઈ કર્મ અશુભ
પરિણામમય હોવાથી કર્મના સ્વભાવમાં બેદ છે; કેઈ કર્મના શુભ ફળરૂપે અને
કર્મના અશુભ ફળરૂપે વિપાક થતો હોવાથી કર્મના અનુભવમાં (—સ્વાદમાં) બેદ
કર્મ શુભ (સારા) એવા શ્રોણમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી અને કેઈ કર્મ અશુભ
(અ) એવા બંધમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી કર્મના આશ્રયમાં બેદ છે. આટલે—જોકે
[કર્મ] કર્મ એક જ છે તોપણ—કેટલાકને એવો પક્ષ [કે] કેઈ કર્મ શુભ છે
કેઈ કર્મ અશુભ છે. પરંતુ તે તો પ્રતિપક્ષ અર્થાત્ વિરુદ્ધ પક્ષ છે. તેના નિવેધ
નિવેધ પક્ષ આ પ્રમાણે છે:—

શુભ કે અશુભ જીવપરિણામ કેવળ અજ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી એક છે; તે એક
જી કર્મના કારણમાં બેદ નથી; આટલે કર્મ એક જ છે. શુભ કે અશુભ પ્રદગત-
પરિણામ કેવળ પ્રદગતમય હોવાથી એક છે; તે એક હોવાથી કર્મના સ્વભાવમાં બેદ
આટલે કર્મ એક જ છે. શુભ કે અશુભ ફળરૂપે થતો વિપાક કેવળ પ્રદગતમય
જી એક છે; તે એક હોવાથી કર્મના અનુભવમાં (—સ્વાદમાં) બેદ નથી; આટલે
એક જ છે. શુભ (સારા) એવો શ્રોણમાર્ગ તો કેવળ જીવમય હોવાથી અને
અ (અશુભ) એવો બંધમાર્ગ તો કેવળ પ્રદગતમય હોવાથી તેઓ અનેક (—જુદાં
બે) છે; તેઓ અનેક હોવા છતાં કર્મ તો કેવળ પ્રદગતમય એવા બંધમાર્ગને
શ્રિત હોવાથી કર્મના આશ્રયમાં બેદ નથી; આટલે કર્મ એક જ છે.

ભાવાર્થ:—કેઈ કર્મ તો અરહંતાદિમાં ભજિ-અનુરાગ, જીવો પ્રત્યે અનુ-
પરિણામ, મંદ કપાયથી ચિત્તની ઉન્નતવગના ક્રત્યાદિ શુભ પરિણામોના નિમિત્તે
અને કેઈ કર્મ તીવ્ર ક્રોધાદિક અશુભ હેરયા, નિર્વંશપક્ષ, વિષવાસજિ, કેવ-નુર
પૂજ્ય પુરુષો પ્રત્યે વિનયભાવે ન પ્રવર્તિત ક્રત્યાદિ અશુભ પરિણામોના નિમિત્તથી
છે; આમ હેતુને બેદ હોવાથી કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે બેદ છે.
હિનીય, શુભઆયુ, શુભનામ અને શુભધાત્ર—એ કર્મોનાં પરિણામ (—પ્રદાન
)માં તથા ચાર ધર્મિકર્મો, અશાન્તચેદનીય, અશુભઆયુ, અશુભનામ, અશુભ-
એ કર્મોનાં પરિણામ (—પ્રદાન વગેરે—)માં બેદ છે; આમ સ્વભાવને બેદ હોવાથી

હવે, (શુભ-અશુભ) બન્ને કર્મો અવિશેષપણે (કાંઈ તદ્દાવત વિના) બંધનાં છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

સૌવર્ણિયં પિ ણિયલં વંધદિ કાલાયસં પિ જહ પુરિસં ।

વંધદિ एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कर्म ॥ ૧૪૬ ॥

સૌવર્ણિકમપિ નિગલં વધ્રાતિ કાલાયમમપિ યથા પુરુષમ્ ।

વધ્રાત્યેવં जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ ૧૪૬ ॥

અન્યથાર્થ:—[યથા] એમ [સૌવર્ણિકં] સુવર્ણની [નિગલં] બેડી [મપિ] પુરુષને [વધ્રાતિ] બાંધે છે અને [કાલાયસં] લોખંડની [મપિ] બેડી છે, [વંધ] તેવી રીતે [શુભં વા અશુભં] શુભ તેમ જ અશુભ [કૃતં કર્મ] કર્મ [જીવં] જીવને [વધ્રાતિ] (અવિશેષપણે) બાંધે છે.

ટીકા:—એમ સુવર્ણની અને લોખંડની બેડી કાંઈ પંખ તદ્દાવત વિના પુરુષને જ કાણ કે બંધનપણની અપેક્ષાએ તેમનામાં તદ્દાવત નથી; તેવી રીતે શુભ અશુભ કર્મ કાંઈ પંખ તદ્દાવત વિના પુરુષને (જીવને) બાંધે છે કાણ કે બંધન અપેક્ષાએ તેમનામાં તદ્દાવત નથી. ૧૪૬.

હવે બન્ને કર્મોના નિષેધ કરે છે:—

તદ્વા હુ કુમીલેહિ ચ રાયં મા કુણહ મા વ મંગગમં ।

સારીણો હિ વિણામો કુમીલસંમગ્ગરાયેણ ॥ ૧૪૭ ॥

તત્માનુ કુમીલાશ્ચાં ચ રાગં મા કુલ્લ મા વા મંગગમ્ ।

સારીણોં हि विनामः कुमीलमंगगमणेण ॥ ૧૪૭ ॥

અન્યથાર્થ:—[તત્માનુ હુ] અહિ [કુમીલાશ્ચાં] એ બન્ને કુસીલા સાથે [રાગ] [મા કુલ્લ] ન કરે [વા] અથવા [સંસર્ગ] જ [સારાં] ૫૭ [મા]

ત્યમ લોહનું ત્યમ દંડનું જાણે જકડે પુરુષને.

એવી રીતે શુભ કે અશુભ કૃત કર્મ બાંધે જીવને. ૧૪૬.

તેથી કરે નહિ રાગ કે સંસર્ગ એ કુસીલાનામાં.

કે કુસીલના મંસર્ગ-રોમે નાશ સ્વાધીનતાને. ૧૪૭.

કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. કેઈ કર્મના ફળનો અનુભવ થઈ અને કેઈ કર્મના ફળનો અનુભવ દુઃખરૂપ છે; આમ અનુભવનો ભેદ હોવાથી શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. કેઈ કર્મ મોક્ષમાર્ગને આશ્રિત છે (મોક્ષમાર્ગમાં બંધાય છે) અને કેઈ કર્મ બંધમાર્ગના આશ્રય છે; આમ આ હોવાથી કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. આ પ્રમાણે હેતુ, અનુભવ અને આશ્રય—એ ચાર પ્રકારે કર્મમાં ભેદ હોવાથી કેઈ કર્મ શુભ કેઈ અશુભ છે એમ કેલોકનો પક્ષ છે.

હવે એ ભેદપક્ષનો નિષેધ કરવામાં આવે છે:—જીવનાં શુભ અને પરિણામ બંને અજ્ઞાનમય ■ તેથી કર્મના હેતુ એક અજ્ઞાન જ છે; મોટે કર્મ છે. શુભ અને અશુભ પુદ્ગલપરિણામો બંને પુદ્ગલમય જ છે તેથી કર્મનો એક પુદ્ગલપરિણામરૂપ જ છે; મોટે કર્મ એક જ છે. સુખરૂપ અને દુઃખરૂપ બંને પુદ્ગલમય જ છે તેથી કર્મનો અનુભવ એક પુદ્ગલમય જ છે; મોટે કર્મ એક જ છે. મોક્ષમાર્ગ અને બંધમાર્ગમાં, મોક્ષમાર્ગ તો કેવળ જીવનાં પરિણામ અને બંધમાર્ગ કેવળ પુદ્ગલનાં પરિણામમય જ છે તેથી કર્મનો આશ્રય મોક્ષમાર્ગ જ છે (અર્થાત્ કર્મ એક બંધમાર્ગના આશ્રયે જ થાય છે—મોક્ષમાર્ગ નથી); મોટે કર્મ એક જ છે.

આ પ્રમાણે કર્મના શુભાશુભ ભેદના પક્ષને ગૌણ કરી તેનો નિષેધ કરવું કે અહીં અભેદપક્ષ પ્રધાન છે, અને અભેદપક્ષથી જોવામાં આવે તો જ છે—બે નથી.

હવે આ અર્થનું કળાસરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

हेतुस्वभावानुभवावधारणां
सदाप्यभेदाच्च हि कर्मभेदः ।
तद्वन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बंधहेतुः ॥ १०२ ॥

અર્થ:—હેતુ, સ્વભાવ, અનુભવ અને આશ્રય—એ ચારનો (મોક્ષમાર્ગ પ્રકારે) સદાય અભેદ હોવાથી કર્મમાં નિશ્ચયથી ભેદ નથી; મોટે કર્મમાં પાને નિશ્ચયથી બંધમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી અને બંધનું કારણ હોવાથી જ અનુભવમાં આવ્યું છે—એક જ માનવું યોગ્ય છે. ૧૦૫.

હવે, (શુભ-અશુભ) બન્ને કર્મો અવિશેષપણે (કાંઈ તફાવત વિના) બંધનાં છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

સૌવર્ણિયં પિ ણિયલં વંધદિ કાલાયસં પિ જહ પુરિસં ।

વંધદિ एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कर्म ॥ ૧૪૬ ॥

સૌવર્ણિકમપિ નિગલં વધ્નાતિ કાલાયસમપિ યથા પુરુષમ્ ।

વધ્નાત્યેવં जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ ૧૪૬ ॥

અન્યથાર્થ:—[યથા] જેમ [સૌવર્ણિકં] સુવર્ણની [નિગલં] બેડી [મપિ] પુરુષં] પુરુષને [વધ્નાતિ] બાંધે છે અને [કાલાયસં] લોખંડની [મપિ] બાંધે છે, [વંધં] તેવી રીતે [શુભં વાં અશુભં] શુભ તેમ જ અશુભ [કૃતં કર્મ] કર્મ [જીવં], જીવને [વધ્નાતિ] (અવિશેષપણે) બાંધે છે.

ટીકા:—જેમ સુવર્ણની અને લોખંડની બેડી કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને છે હાથ કે બંધનપણાની અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી; તેવી રીતે શુભ અશુભ કર્મ કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને (જીવને) બાંધે છે હાથ કે બંધનની અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી. ૧૪૬.

હવે બન્ને કર્મોનાં નિષેધ કરે છે:—

તદ્વા દુ કુસીલેહિ-ય-રાયં મા કુણહ મા વ સંસર્ગં ।

સાહીણો હિ વિણાસો કુસીલસંસર્ગરાયેણ ॥ ૧૪૭ ॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां च रागं मा कुरुत मा वा संसर्गम् ।

स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण ॥ ૧૪૭ ॥

અન્યથાર્થ:—[તસ્માત્ તુ] મારે [કુશીલાભ્યાં] એ બન્ને કુશીલો સાથે [રાગ] [મા કુરુત] ન કરે [યા] અથવા [સંસર્ગં વા] સંસર્ગ પદ [મા]

જન્યમ લોહનું ત્યમ કનકનું જ'હર જ'કરે પુરુષને, એવી રીતે-શુભ કે અશુભ કૃત કર્મ બાંધે જીવને. ૧૪૬.

તેથી કરે નહિ, રાગ કે સંસર્ગ એ કુશીલોત્પન્ન, છે કુશીલના સંસર્ગ-રાગે નાશ સ્વાધીનતાવશ્યે.

ન કરે. [દિ] કારણ કે [કુશીલસંસર્ગરાગેણ] કુશીલ સાથે સંસર્ગ અને રાગ...
[સ્વાધીનઃ વિનાશઃ] સ્વાધીનતાનો નાશ થાય છે (અથવા તે પોતાનો ઘાત પે-
જ થાય છે).

ટીકા:—જેમ કુશીલ (ખરાબ) એવી મનોરમ અને અમનોરમ હૃદય-
કૂટણી સાથે રાગ અને સંસર્ગ (હાથીને) બંધનાં કારણ થાય છે તેવી રીતે મ-
એવાં શુભ અને અશુભ કર્મ સાથે રાગ અને સંસર્ગ બંધનાં કારણ હોવાથી, મ-
શુભ કર્મો સાથે રાગ અને સંસર્ગના નિવેધ કરવામાં આવ્યો છે. ૧૪૭.

હવે, બન્ને કર્મ નિવેધવાયેલ્ય છે એ વાતનું ભગવાન કુંદકુંદાચર્યે જે
દષ્ટાંતથી સમર્થન કરે છે:—

જહ નામ કોવિ પુરિસો કુચ્છિયસીલં જર્ણ વિયાણિતા ।
વજ્જેદિ તેણ સમયં સંસર્ગં રાયકરણં ચ ॥ ૧૪૮ ॥
એમેવ કમ્મપયડીસીલસહાવં ચ કુચ્છિદં ણાઉં ।
વજ્જંતિ પરિહરંતિ ય તસ્સંસર્ગં સહાવરયા ॥ ૧૪૯ ॥

યથા નામ કોડપિ પુરુષઃ કુત્સિતશીલં જર્ણ વિશાય ।
વર્જયતિ તેન સમયં સંસર્ગં રાયકરણં ચ ॥ ૧૪૮ ॥
એવમેવ કર્મપ્રકૃતિશીલસ્વભાવં ચ કુત્સિતં જ્ઞાત્વા ।
વર્જયંતિ પરિહરંતિ ચ તત્સંસર્ગં સ્વભાવરતાઃ ॥ ૧૪૯ ॥

આવધાર્થ:—[યથા નામ] જેમ [કોડપિ પુરુષઃ] કોઈ પુરુષ [કુત્સિત-
શીલં] કુત્સિત શીલવાળા અર્થાત્ ખરાબ સ્વભાવવાળા [જર્ણ] પુરુષને [વિ-
યાણિતા] તેન સમયં [સંસર્ગં ચ રાયકરણં] સંસર્ગ અને રાગ
[વર્જયતિ] છાડી દે છે, [એવમેવ ચ] તેવી જ રીતે [સ્વભાવરતાઃ]
૨૧ પુરુષ [કર્મપ્રકૃતિશીલસ્વભાવં] કર્મપ્રકૃતિના શીલ-સ્વભાવને [કુત્સિતં]

જેવી રીતે કે પુરુષ કુત્સિતશીલ જનને છાડીને,
સંસર્ગ નેની સાથે તેમ જ રાગ કરવો પરિત્યજે. ૧૪૮.
એમ જ કર્મપ્રકૃતિશીલસ્વભાવ કુત્સિત છાડીને,
નિજ ભાવમાં ૨૧ રાગ ને સંસર્ગ નેનો પરિત્યજે. ૧૪૯.

મ [જાણ્યા] જાણીને [જાતેજાતે] તેની સાથે સંસર્ગ [ધર્મચંતિ] છાડી
જનિ જ] અને રાગ છાડી દે છે.

અર્થ—જેમ કેહાં દુરાગ વન-દરતી પાળાના બંધને મારે સમીપ આવતી
ગી મનોરમ કે અમનોરમ હાથળીરૂપી દૂરળીને પરમાર્થ જૂરી જાણીને
તથા સંસર્ગ કરતો નથી, તેવી રીતે આત્મા અસગી જ્ઞાની થયો થકો
ને મારે સમીપ આવતી (દિવ્યમાં આવતી) મનોરમ કે અમનોરમ
શુભ)—બધીયે કર્મપ્રવૃત્તિને પરમાર્થ જૂરી જાણીને તેની સાથે રાગ તથા
નથી.

અર્થ—હાથીને પકડવા હાથળી રાખવામાં આવે છે; હાથી કામાંધ થયો
રૂપી દૂરળી સાથે રાગ તથા સંસર્ગ કરે છે તેથી પકડાઈ જઈને પરાધીન
મોગવે છે, અને જે અનુર હાથી દોડ્ય તો તેની સાથે રાગ તથા સંસર્ગ
થી રીતે અજ્ઞાની જીવ કર્મપ્રવૃત્તિને સારી સમજીને તેની સાથે રાગ તથા
તેથી બંધમાં પડી પરાધીન થઈને સંસારનાં દુઃખ ભોગવે છે, અને જે
તેની સાથે રાગ તથા સંસર્ગ કરી કરતો નથી. ૧૪૮-૧૪૯.

અને કર્મો બંધનાં કારણ છે અને નિવેશવાયોગ્ય છે એમ આગમથી

યંયદિ કમ્મં મુંચદિ જીવો વિરાગસંપત્તો ।

જિણોવદેસો તહા કમ્મેસુ મા રજ્જ ॥ ૧૫૦ ॥

રક્તો જાતિ કર્મ મુચ્યતે જીવો વિરાગસંપાપ્તઃ ।

અપો મિનોપદેશઃ તસ્માત્ કર્મણ મા રજ્યસ્વ ॥ ૧૫૦ ॥

અર્થ—[રક્તઃ જીવઃ] રાગી જીવ [કર્મ] કર્મ [જાતિ] બાંધે
જાતઃ] અને વિરાગ્યતે પામેલો જીવ [મુચ્યતે] કર્મથી છૂટે છે—[અપઃ]
જીવઃ] જિનભગવાનનો ઉપદેશ છે; [તસ્માત્] માટે (હે સખ્ય જીવ !)
કર્મોમાં [મા રજ્યસ્વ] પ્રીતિ—રાગ ન કરે.

અર્થ—“ રક્ત અર્થાત્ રાગી અવશ્ય કર્મ બાંધે અને વિરક્ત અર્થાત્ વિરાગી
” એવું જે આ આગમવચન ॥ તે, સામાન્યપણે રાગીપણના નિમિત્ત

રક્ત બાંધે કર્મને, વિરાગ્યપ્રાપ્ત મુકાય છે,
જિનતત્ત્વો ઉપદેશ તેથી ન રાગ્ય તું કર્મો વિષે. ૧૫૦.

પણાને દીધે શુભ અને અશુભ બન્ને કર્મને અવિશેષપણે બંધનાં કાચાં છે
હવે છે અને તેથી બન્ને કર્મને નિષેધે છે.

આ અર્થનું કળશારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સ્વામી)

કર્મ સર્વમપિ સર્વવિદો યદ્
વંધસાધનમુગ્ધન્યવિશેષાત્ ।
તેન સર્વમપિ તત્પતિપિદ્
જ્ઞાનમેવ વિહિતં શિવદેતુઃ ॥ ૧૦૩ ॥

અર્થ:—કારણ કે સર્વજ્ઞદેવો સમસ્ત (શુભ તેમ જ અશુભ)
અવિશેષપણે બંધનું સાધન (કારણ) કહે છે તેથી (એમ સિદ્ધ થયું કે સર્વજ્ઞો
સમસ્ત કર્મને નિષેધ્યું છે અને જ્ઞાનને જ મોક્ષનું કારણ ફરમાવ્યું છે.

જો સમસ્ત કર્મ નિષેધવામાં આવ્યું છે તો પછી મુનિએને શી કા
ને દેવેના કળશમાં કહે છે:—

(સિખરિણી)

નિષિદ્ધે સર્વમિન્ ગુહ્યતદુરિતે કર્મણિ ક્ષિપ્ત
મદતે નૈવકર્મ્યે ન ચાત્મ મુનયઃ સંન્યસરણાઃ ।
તદા જ્ઞાને જ્ઞાનં પતિગરિતમેવાં દિ ગરણં
સ્વયં વિદ્યોતે પરમમમૃતં તત્ર નિરતાઃ ॥ ૧૦૪ ॥

અર્થ:—શુભ આચરણરૂપ કર્મ અને અશુભ આચરણરૂપ કર્મ
જન્મને કર્મને નિષેધ કરવામાં આવ્યાં અને એ રીતે નિષર્ગ આત્મા જે
મુનિએ કહે છે એવાનું નથી; (કારણ કે) બધાને નિષર્ગ આચરણ (નિષર્ગ
કર્મ) છે ત્યારે જ્ઞાનમાં આવવું જરૂર—જન્મ જરૂર—પરિણમનું જ્ઞાન જરૂર
એવું જરૂર છે; તેથી તે જ્ઞાનમાં રીતે થયા થકા પરમ અમૃતને વિષે અર્થ
આપ્યો છે.

અર્થ:—મદતે કે દુષ્ટન—જન્મને નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે
જન્મને નિષેધ કરવામાં નહિ એવાથી તેથી મુનિએ જ્ઞાન આપ્યું છે. જ્ઞાન
જરૂર છે. જ્ઞાન—જન્મને નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે જ્ઞાન

પુણ્ય-પાપ આધારે
 જિના ત્યાગ થયે જ્ઞાનનું મહા શરણુ છે. તે જ્ઞાનમાં લીન થતાં સર્વ આકુળતા
 પરમાત્મના ભોગવટા હોય છે—જેનો સ્વાદ જ્ઞાની જ જાણે છે. અજ્ઞાની કપાળી
 મનિ જ સર્વસ્થ જાણી તેમાં લીન થઈ રહ્યો છે, જ્ઞાનાત્મનો સ્વાદ નથી
 ૧. ૧૫૦.

૧૫૦. દહે, જ્ઞાન મોક્ષનું કારણ છે જ્યમ સિદ્ધ કરે છે:—
→ નો કેવલી

॥ १५१ ॥
 परमहो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
 तस्मि णिदा सहावे मुणिणो पावंति णिज्वाणं ॥ १५१ ॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्हानी ।
द्विदा सहावे मुणिणा पावति ।

परमार्थः खलु समयः श्रद्धो यः केवली मुनिज्ञाना-
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनयः प्राप्नुवन्ति निर्वाणम् ॥ १५१ ॥

અન્યવાર્થ:—[યંત્ર] નિશ્ચયથી [યા] એ [પરમાયં] પરમાર્થ (પરમ
પ્રમાર્થ) છે, [સમય] સમય છે, [મુદ્ધ] શુદ્ધ છે, [વેવલી] કેવળી છે, [મુનિ]
મુનિ છે, [જ્ઞાત્રી] જ્ઞાત્રી છે, [તસ્મિન્ સ્વમાવે] તે સ્વભાવમાં [સ્થિત] સ્થિત
મુનય:] મુનિઓ [નિર્વાણ] નિર્વાણને [પ્રાપ્ન્યંતિ] પામે છે.

ટીકા:—જ્ઞાન પ્રાપ્તિનું કારણ છે, કેમ કે જ્ઞાન શુભાશુભ કર્મોના બંધનું કારણ છે. તે જ્ઞાન, સમસ્ત કર્મ બાદિ હોવાથી તેને એ રીતે પ્રાપ્તિનું કારણપણું બને છે. તે જ્ઞાન, સમસ્ત કર્મ બાદિ બન્યા બાદ જ્ઞાનથી વિભક્ત કેવળ જુદી જ બાતનો પરમાર્થ (-પરમ પદાર્થ) છે—આત્મા. તે (આત્મા) એકી સાથે એકરૂપે પ્રવર્તતાં એવાં જે જ્ઞાન અને ગમન (પરિગમન) સ્વરૂપ હોવાથી સમય છે, સકળ નયપદ્ધતી અભિલિન (અભિલિન) એવાં એક સ્વરૂપ હોવાથી શુદ્ધ છે, કેવળ ચિન્માત્ર વસ્તુસ્વરૂપ હોવાથી કેવળી છે, ફક્ત મનન (જ્ઞાનમાત્ર) બાવસ્વરૂપ હોવાથી મુનિ છે, પાને જ જ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી જ્ઞાની (સ્વના બવનમાત્રસ્વરૂપ હોવાથી સ્વભાવ છે અથવા સ્વપ્ન (પાનાથી જ) બંધ ન બવનમાત્રસ્વરૂપ હોવાથી સદ્ભાવ છે (કારણ કે જે સ્વપ્ન હોય તે સત્ સ્વરૂપ હોય). આ પ્રમાણે શબ્દબોધ હોવા છતાં વસ્તુબોધ નથી (નામ જુદાં જુદાં પદો એક જ છે).

• જાવન = દોષું ને.

પરમાર્થ છે નક્કી, સમય છે, શુદ્ધ, કેવળી, મુનિ, જ્ઞાની છે,
એવા સ્વભાવે રિયન મુનિઓ પ્રાપ્તિ કરે.

હવે ફરીને પણ, પુણ્યકર્મના પક્ષપાતીને સમજાવવા માટે તેને તો

પરમદ્વંદ્વાહિરાં જે તે અણ્ણાણેણ પુણ્ણમિચ્છંતિ ।
સંસારગમણહેદું વિ મોક્ષહેદું અજાણંતા ॥ ૧૫૪ ॥

પરમાર્થવાદ્યા યે તે અજ્ઞાનેન પુણ્યમિચ્છંતિ ।

સંસારગમનહેતુમપિ મોક્ષહેતુમજાનંતઃ ॥ ૧૫૪ ॥

અન્યવાર્થ:—[યે] જોએ [પરમાર્થવાદ્યાઃ] પરમાર્થથી જાણે તેઓ [મોક્ષહેતુમ] મોક્ષના હેતુને [અજાનંતઃ] નહિ જાણતા થતા—[હેતુમ અપિ] જોકે પુણ્ય સંસારગમનના હેતુ છે તોપણ—[અજાનેન] અજાનથી પુણ્યને (મોક્ષના હેતુ જાણીને) [મિચ્છંતિ] ઇચ્છે છે.

ટીકા:—સમસ્ત કર્મના પક્ષના નાશ કરવાથી ઉપજતો જે જ્ઞાન (નિર્જ રચરૂપની પ્રાપ્તિ) તે આત્મજ્ઞાનસ્વરૂપ મોક્ષને આ જગતમાં ફેલાવવા દેવા છતાં, મોક્ષના કારણભૂત સામાયિકની—કે જે સામાયિક કેમ જ્ઞાન-આવિરત્વભાવવાળા પરમાર્થભૂત જ્ઞાનના અવગતમાન છે, એકાદા અને સમયસારસ્વરૂપ છે તેની—પ્રતિજ્ઞા લઈને પણ, દુરંત કર્મકાને પાર નાખીને લીધે (અસાધ્યતાને લીધે) પરમાર્થભૂત જ્ઞાનના અનુભવના પિતે તે સામાયિકસ્વરૂપ આત્મસ્વભાવને નહિ પામતા થતા, જેમને અર્થ મોકેશવરિત્વમારૂપ કર્મો નિવૃત્ત થયાં છે અને અત્યંત સૂક્ષ્મ વિશુદ્ધિવાળા પ્રવર્તે છે એવા તેઓ, કર્મના અનુભવના ગુરુપણ-સુપુણ્યની પ્રતિમાથી જ વિજયવાળા થયા થકા, પાને સૂક્ષ્મ સફળતાવાળા હોઈને (સંકેશવરિત્વમારૂપે જ) મગ્નતા કર્મકાને મુગથી ઉભેલા નથી. આ રીતે તેઓ, પાને પાતળ એવો અગુભ કર્મને જ અવગું કારક માનીને, યત, નિયમ, રીત, તપ, કર્મો પણ અવગું કારક હોવા છતાં તેમને અવગું કારક નહિ જાણતા થતા, કાનું નહિ તેમને અગ્નીકાર કરે છે—મોક્ષના કારક તરીકે તેમને અવગું

• અર્થ = ૧૬ ને. પા. ૧૫૫.

પરમાર્થવાદ્યા જુદા અરે! જાણે ન રેજી માણે.
અજાનથી ને પુણ્ય ઇચ્છે રેજી જે સમાણે.

સાવાર્થ:—કેટલાક અજ્ઞાની લોકો કીકા લેતી વખતે સામાયિકની પ્રતિજ્ઞા પરંતુ સૂક્ષ્મ એવા આત્મસ્વભાવની મદદ, લક્ષ તથા અનુભવ નહિ કરી શકવાથી, તે લક્ષ્યવાળા તે જીવો સ્થૂલ સંકલેશપરિણામોને છાપીને એવાં જ સ્થૂલ વિશુદ્ધ-ભાઓમાં (શુભ પરિણામોમાં) રાચે છે. (સંકલેશપરિણામો તેમ જ વિશુદ્ધપરિણામો અત્યંત સ્થૂલ છે; આત્મસ્વભાવ જ સૂક્ષ્મ છે.) આ રીતે તેઓ—જોકે વાસ્તવિક સર્વકર્મચંદ્રિત આત્મસ્વભાવનું અનુભવન જ મોક્ષનું કારણ છે તેપણ—કર્માનુ-ભા બાધુપણા-ધારાપણને જ બંધ-મોક્ષનું કારણ માનીને, મત, નિયમ, રીત, તપ જે શુભ કર્મોના મોક્ષના હેતુ તરીકે આશ્રય કરે છે. ૧૫૪.

હવે જીવોને પરમાર્થ મોક્ષકારણ (ખરું મોક્ષનું કારણ) બતાવે છે:—

जीवादीसद्ग्रहणं सम्मतं तेसिमधिगमो णाणं ।

रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्षप्रहो ॥ १५५ ॥

जीवादिग्रहणं सम्यक्त्वं तेषामधिगमो ज्ञानम् ।

रागादिपरिहरणं चरणं एषमु मोक्षप्रहः ॥ १५५ ॥

અન્યવાર્થ:—[જીવાદિગ્રહણં] જીવાદિ પદાર્થોનું મદાન [સમ્યક્ત્વં] સચ્ચ છે, [તેષાં અધિગમઃ] તે જીવાદિ પદાર્થોના અધિગમ [જ્ઞાનં] જ્ઞાન છે અને રાગાદિપરિહરણં] રાગાદિના ત્યાગ [ચરણં] અર્થસ્થિત છે;—[અથ: તુ] આ જ મોક્ષપ્રહ:] મોક્ષનો માર્ગ છે.

ટીકા:—મોક્ષનું કારણ ખરેખર સમ્યક્જ્ઞાન-જ્ઞાન-આસ્થિત છે. તેમાં, સમ્યક્જ્ઞાન જીવાદિ પદાર્થોના મદાનસ્વભાવે જ્ઞાનનું ધત્તું—પરિણમત્તું તે છે; જીવાદિ પદાર્થોના નસ્વભાવે જ્ઞાનનું ધત્તું—પરિણમત્તું તે જ્ઞાન છે; રાગાદિના ત્યાગસ્વભાવે જ્ઞાનનું ધત્તું—પરિણમત્તું તે આસ્થિત છે. આરે જ્ઞાન જ પરમાર્થ મોક્ષકારણ છે.

સાવાર્થ:—આત્માનું અસાધારણ સ્વરૂપ જ્ઞાન જ છે. વળી આ પ્રકરણમાં નવે જ પ્રધાન કરીને બ્યાખ્યાન છે. તેથી ‘સમ્યક્જ્ઞાન, જ્ઞાન અને આસ્થિત—એ સ્વરૂપ જ્ઞાન જ પરિણમે છે’ એમ કહીને જ્ઞાનને જ મોક્ષનું કારણ કહ્યું છે. જ્ઞાન તે અબેશ વિવક્ષામાં આત્મા જ છે—એમ દરેકમાં કહેવું પણ વિરોધ નથી. આરે કામાં કેટલેક સ્થળે આવાર્થ દેવે જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને ‘જ્ઞાન’રૂપથી કહ્યો છે. ૧૫૫.

જીવાદિનું યદ્વાન સમકિત, જ્ઞાન તેમનું જ્ઞાન છે,

રાગાદિ-વર્જન ચરણ છે. ને આ જ મુક્તિપ્રદ છે. ૧૫૫.

હવે, પરમાર્થ મોક્ષહેતુથી અન્ય જે કર્મ તેના નિવેદ કરે છે—

મોક્ષાણિચ્છ્યદ્વં વ્યવહારેણ વિદુસા પવદ્વંતિ ।

પરમદ્વમસ્સિદ્ધાણ દુ જદીણ કમ્મકમ્મવો વિહિઓ ॥ ૧૫૪ ॥

મુક્ત્વા નિશ્ચયાર્થે વ્યવહારેણ વિદ્વાંમઃ પ્રવર્તેતે ।

પરમાર્થમાશ્રિતાનાં તુ યતીનાં કર્મક્રમો વિદિતઃ ॥ ૧૫૬ ॥

અન્યથાર્થઃ—[નિશ્ચયાર્થ] નિશ્ચયનયના ત્રિપથને [મુક્ત્વા] મોક્ષ
[વિદ્વાંમઃ] વિદ્વાનો [વ્યવહારેણ] વ્યવહાર વડે [પ્રવર્તેતે] પ્રવર્તે છે; [યતી]
[પરમાર્થ આશ્રિતાનાં] પરમાર્થને (આત્મસ્વરૂપને) આશ્રિત [યતીનાં] યતી
જ [કર્મક્રમઃ] કર્મનો નાશ [વિદિતઃ] આગમમાં કહ્યો છે. (કેવળ મુક્તિ
પ્રવર્તનારા પંડિતોને કર્મક્રમ થતો નથી.)

ટીકા:—પરમાર્થ મોક્ષહેતુથી જુદો, જે મત, તપ વગેરે શુભ
મોક્ષહેતુ કેટલાક લોકો માને છે, તે આખોય નિવેદવામાં આવ્યો છે; કારણ કે
હેતુ) અન્ય દ્રવ્યના સ્વભાવવાળો (અર્થાત્ પુરુષસ્વભાવી) હોવાથી તેના
વડે જ્ઞાનનું ભવન થતું નથી,—માત્ર પરમાર્થ મોક્ષહેતુ જ એક દ્રવ્યના સ્વભાવ
(અર્થાત્ જીવસ્વભાવી) હોવાથી તેના સ્વભાવ વડે જ્ઞાનનું ભવન થાય છે.

ભાવાર્થઃ—મોક્ષ આત્માનો થાય છે તો તેનું કારણ પણ આત્મસ્વ
હોવું જોઈએ. જે અન્ય દ્રવ્યના સ્વભાવવાળું હોય તેનાથી આત્માનો મોક્ષ
શુભ કર્મ પુરુષસ્વભાવી છે તેથી તેના ભવનથી પરમાર્થ આત્માનું ભવન
શકે; માટે તે આત્માના મોક્ષનું કારણ થતું નથી. જ્ઞાન આત્મસ્વભાવી છે તેથી
ભવનથી આત્માનું ભવન થાય છે; માટે તે આત્માના મોક્ષનું કારણ થાય છે.
રીતે જ્ઞાન જ વાસ્તવિક મોક્ષહેતુ છે.

હવે આ જ અર્થના કળારૂપ બે શ્લોકો કહે છે:—

(અનુક્રુપ)

વૃત્તં જ્ઞાનસ્વમાવેન જ્ઞાનસ્ય ભવનં સદા ।

એકદ્રવ્યસ્વમાવત્વાન્મોક્ષહેતુસ્તદેવ તત્ ॥ ૧૦૬ ॥

વિદ્વાન્મનો ભૂતાર્થ તજી વ્યવહારમાં વર્તન કરે,
પણ કર્મક્રમનું વિધાન તો પરમાર્થ-આશ્રિત સંતોને. ૧૫૫.

વૃત્તં કર્મસ્વભાવેન જ્ઞાનસ્ય ધવનં ન હિ ।

દ્રવ્યંતરસ્વભાવત્વાન્યોસદેતુર્ન કર્મ તત્ ॥ ૧૦૭ ॥

અર્થઃ—જ્ઞાન એકદ્રવ્યસ્વભાવી (-અવસ્વભાવી-) હોવાથી જ્ઞાનના સ્વ-
થી હવેનાં જ્ઞાનનું બચન થાય છે; આરે જ્ઞાન જ મોક્ષનું કારણ છે.

કર્મ અન્યદ્રવ્યસ્વભાવી (-પ્રદગ્ધસ્વભાવી-) હોવાથી કર્મના સ્વભાવથી
તું બચન થતું નથી; આરે કર્મ મોક્ષનું કારણ નથી.

હવે આગળના કથનની સૂચનાનો સ્થાલ કહે છે:—

(અનુક્ર. ૫)

મોક્ષદેહુતિરોપાનાદ્વંષત્વાત્સ્વયમેવ ચ ।

મોક્ષદેહુતિરોપાયિભાવત્વાત્તદ્વિપિષ્યતે ॥ ૧૦૮ ॥

અર્થઃ—કર્મ મોક્ષના કારણનું તિરોપાન કરનારું હોવાથી, તે પાતે જ બ્ય-
થ હોવાથી અને તે મોક્ષના કારણના તિરોપાયિભાવસ્વરૂપ હોવાથી તેને વિષય-
ભાવે છે. ૧૫૬.

હવે પ્રથમ, કર્મ મોક્ષના કારણનું તિરોપાન કરનારું છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

વત્યસ્મ સેદમાવો જહ ણાસેદી મલમેલણાસત્તો ।

મિચ્છત્તમલોચ્છણ્ણં તહ સમ્મતં ત્થુ ણાયલ્લં ॥ ૧૫૭ ॥

વત્યસ્મ સેદમાવો જહ ણાસેદી મલમેલણાસત્તો ।

અણ્ણાણમલોચ્છણ્ણં તહ ણાણં હોદિ ણાયલ્લં ॥ ૧૫૮ ॥

નિરોપાયિ = નિરોપાન કરનાર.

મળમિત્તનલેપથી નાશ પામે શ્વેતપણું જ્યમ વસ્ત્રનું,

મેધ્યાત્વમળના લેપથી સમ્યક્ત્વ એ રીત બાળુવું. ૧૫૭.

મળમિત્તનલેપથી નાશ પામે શ્વેતપણું જ્યમ વસ્ત્રનું,

અજ્ઞાનમળના લેપથી વળી જ્ઞાન એ રીત બાળુવું. ૧૫૮.

વરૂપ પ્રેક્ષથી વ્યાપ્ત થયેલો એવે વસ્ત્રના સ્વભાવભૂત સ્વેતસ્વભાવ તિરોભૂત થાય છે તેમ. જ્ઞાનનું ચારિત્ર કે જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તે, પરભાવસ્વરૂપ કપાય તામના કર્મભગ વડે વ્યાપ્ત થવાથી તિરોભૂત થાય છે—એમ પરભાવસ્વરૂપ પ્રેક્ષથી વ્યાપ્ત થયેલો એવે વસ્ત્રના સ્વભાવભૂત સ્વેત સ્વભાવ તિરોભૂત થાય છે તેમ. આટલે મોક્ષના કારણનું (સમ્યક્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રનું) તિરોધાન કરતું હોવાથી કર્મને નિરેવવામાં આવ્યું છે.

આવાર્થ:—સમ્યક્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર મોક્ષમાર્ગ છે. જ્ઞાનનું સમ્યક્સ્વરૂપ પરિભૂતન મિથ્યાત્વકર્મથી તિરોભૂત થાય છે; જ્ઞાનનું જ્ઞાનરૂપ પરિભૂતન અજ્ઞાનકર્મથી તિરોભૂત થાય છે; અને જ્ઞાનનું ચારિત્રરૂપ પરિભૂતન કપાયકર્મથી તિરોભૂત થાય છે. આ રીતે મોક્ષના કારણભાવને કર્મ તિરોભૂત કરતું હોવાથી તેના નિરેવ કરવામાં આવ્યો છે. ૧૫૭-૧૫૮.

હવે, કર્મ પાતે જ બંધસ્વરૂપ છે એમ શિક્ષ કરે છે:—

સો સન્વણાણદરિસી કમ્મરણ્ણ ણિયેણવન્છણ્ણો ।

સંસારસમાવણ્ણો ણ વિજાણદિ સન્વદો સન્વં ॥ ૧૬૦ ॥

સ સર્વજ્ઞાનદર્શી કર્મરજસા નિજેનાવચ્છન્નઃ ।

સંસારસમાવણ્ણો ન વિજાનાતિ સર્વતઃ સર્વમ્ ॥ ૧૬૦ ॥

અન્યવાર્થ:—[સા] તે આત્મા [સર્વજ્ઞાનદર્શી] (સ્વભાવથી) સર્વને જાણનારો નથા કેમનારો છે તેપણ [નિજેન કર્મરજસા] પાતાના કર્મભગથી [અવ-ચ્છન્નઃ] અસાયો—વ્યાપ્ત થયો—થકો [સંસારસમાવણ્ણઃ] સંસારને પ્રાપ્ત થયેલો તે [સર્વતઃ] સર્વ પ્રકારે [સર્વ] સર્વને [ન વિજાનાતિ] જાણતો નથી.

ટીકા:—જો પાતે જ જ્ઞાન હોવાને હીધે રિથને (સર્વ પદાર્થને) સામાન્ય-વિદ્યેપણે જાણવાના સ્વભાવવાળું છે એવું જ્ઞાન અર્થાત્ આત્મદ્રવ્ય, અનાદિ કાગથી પાતાના પ્રત્યયના અપરોક્ષથી પ્રવર્તના એવા કર્મભગ વડે લેવાયું—વ્યાપ્ત થયું—હોવાથી જ, બંધ-અવસ્થામાં સર્વ પ્રકારે સંપૂર્ણ એવા પાતાને અર્થાત્ સર્વ પ્રકારે સર્વ જોવાને જાણનારા એવા પાતાને નહિ જાણતું થકું, આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ અજ્ઞાનભાવે

તે સર્વજ્ઞાની-દર્શી પણ નિજ કર્મરજ-આશ્ચર્યને,
સંસારપ્રાપ્ત ન જાણતો તે સર્વ રીતે સર્વને. ૧૬૦.

વારિષપતિનિવહઃ કળાપો જિનવરેઃ પરિકથિતઃ ।
તસ્યોદયેન જીવોઽવારિષો ધવનિ જ્ઞાતવ્યઃ ॥ ૧૬૩ ॥

અન્યથાર્થઃ—[સમ્યક્વ્યવસ્થાપિતનિવહઃ] સમ્યક્વ્યવસ્થાપિતે રેફનારું [મિથ્યાત્વ] મિ-
એમ [જિનવરેઃ] જિનવરેએ [પરિકથિત] કહ્યું છે; [તસ્ય ઉદયેન] તેના
જીવઃ] એવ [મિથ્યારુદિ] મિથ્યારુદિ થાય છે [જ્ઞાતવ્યઃ] એમ
જ્ઞાનમ્ય પ્રતિનિવહઃ] જ્ઞાનને રેફનારું [અજ્ઞાન] અજ્ઞાન છે એમ [જિનવરેઃ]
[પરિકથિત] કહ્યું છે; [તસ્ય ઉદયેન] તેના ઉદયથી [જીવઃ] એવ
અજ્ઞાની [અવનિ] થાય છે [જ્ઞાતવ્યઃ] એમ અભ્યુત્પન્ન. [વારિષપતિનિવહઃ]
રેફનાર [કળાપઃ] કળાપ છે એમ [જિનવરેઃ] જિનવરેએ [પરિકથિતઃ]
[તસ્ય ઉદયેન] તેના ઉદયથી [જીવઃ] એવ [અવારિષઃ] અવારિષી
થાય છે [જ્ઞાતવ્યઃ] એમ અભ્યુત્પન્ન.

ટીકા—સમ્યક્વ્યવસ્થાપિત કે જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તેને રેફનારું મિથ્યાત્વ
મિથ્યાત્વ) તે પાતે કર્મ જ છે, તેના ઉદયથી જ જ્ઞાનને મિથ્યારુદિપણું થાય
જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તેને રેફનારું અજ્ઞાન છે; તે તે પાતે કર્મ
ઉદયથી જ જ્ઞાનને અજ્ઞાનીપણું થાય છે. અરિષ્ટ કે જે મોક્ષના કારણરૂપ
તેને રેફનાર કળાપ છે; તે તે પાતે કર્મ જ છે, તેના ઉદયથી જ જ્ઞાનને
પણું થાય છે. આટે, (કર્મ) પાતે મોક્ષના કારણના તિરેપાદિભાવસ્વરૂપ
ને નિરેપવામાં આવ્યું છે.

અર્થઃ—સમ્યક્જ્ઞાન, જ્ઞાન અને અરિષ્ટ મોક્ષના કારણરૂપ ભાવો છે
તિરેપરીત મિથ્યાત્વદિ ભાવો છે; કર્મ તે મિથ્યાત્વદિ ભાવો-સ્વરૂપ છે. આ
મોક્ષના કારણરૂપ ભાવોથી વિપરીત ભાવોસ્વરૂપ છે.

હૈલાં ત્રણ ગાથાઓમાં કહ્યું હતું કે કર્મ મોક્ષના કારણરૂપ ભાવોનું—સમ્યક્-
જ્ઞાન છે. પછીની એક ગાથામાં એમ કહ્યું કે કર્મ પાતે જ બંધસ્વરૂપ છે.
ત્રણ ગાથાઓમાં કહ્યું કે કર્મ મોક્ષના કારણરૂપ ભાવોથી વિરોધી ભાવો-
મિથ્યાત્વદિસ્વરૂપ છે. આ પ્રમાણે એમ બતાવ્યું કે કર્મ મોક્ષના કારણરૂપ
બંધસ્વરૂપ છે અને બંધના કારણસ્વરૂપ છે, આટે નિષિદ્ધ છે.

પ્રથમ કર્મ તે મોક્ષનું કારણ છે જ નહિ, બાંધક જ છે, તેથી નિષિદ્ધ જ
પ્રથમ કર્મ પણ કર્મસામાન્યમાં આવી જવું હોવાથી તે પણ બાંધક જ છે
જ છે એમ અભ્યુત્પન્ન.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

મમયગાર

(શાદ્દંત્રિકીડિન)

સંન્યસન્યમિદં સમસ્યમપિ તત્કર્મવ મોક્ષાર્થિના
સંન્યસ્તે સતિ તત્ર કા કિલ્લ કથા પુન્યસ્ય પાપસ્ય ચા
સમ્યવત્તાદિનિજસ્વમાવભવનાન્મોક્ષસ્ય હેતુર્મવ-
ઐવ્યર્થ્યપ્રતિવદ્મુદતરસં જ્ઞાનં સ્વયં પ્રાવતિ ॥ ૧૦૧ ॥

અર્થ:—મોક્ષાર્થીએ આ સઘળુંય કર્મમાત્ર ત્યાગવા શોભે કે નહીં
કર્મ છોડવામાં આવે છે ત્યાં પછી પુન્ય કે પાપની શી વાત? (કર્મમાત્ર
ત્યાં પુન્ય સાતું અને પાપ ખરાબ—એવી વાતને ક્યાં અવકાશ છે? મને
બંને આવી ગયાં.) સમસ્ત કર્મના ત્યાગ થતાં, સમ્યક્ત્વાદિ જે પાપને
તે-રૂપે ધવાથી—પરિણમવાથી મોક્ષના કારણભૂત થતું, નિઃકર્મ અવસ્થા કો
ઉદ્ભવ (-ઉત્કટ) રસ પ્રતિબદ્ધ અર્થાત્ સંકળાયેલો છે એવું જ્ઞાન આપેલું
આવે છે.

ભાવાર્થ:—કર્મને દૂર કરીને, ધોવાના સમ્યક્ત્વાદિસ્વભાવરૂપે કર્મ
મોક્ષના કારણરૂપ થતું જ્ઞાન આપોઆપ પ્રગટ થાય છે, ત્યાં પછી તેને કેળવે
હવે આશંકા ઉપજે છે કે—અવિરત સમ્યક્દષ્ટિ વગરને ત્યાંમુખી
ઉદય રહે ત્યાંમુખી જ્ઞાન મોક્ષનું કારણ કેમ થઈ શકે? વળી કર્મ અને જ્ઞાન
(-કર્મના નિમિત્ત થતી શુભાશુભ પરિણતિ અને જ્ઞાનપરિણતિ બંને-) કો
રહી શકે? તે આશંકાના સમાધાનનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાદ્દંત્રિકીડિન)

યાવત્પાકમુપૈતિ કર્મવિરતિર્જ્ઞાનસ્ય સમ્યક્ ન સા
કર્મજ્ઞાનસમુચયોઽપિ વિદિતસ્તાવન્ન કાચિત્સતિઃ ।
કિંત્રાપિ સમુલ્લસત્યવશતો યત્કર્મ વંચાય ત-
ન્મોક્ષાય સ્થિતમેકમેવ પરમં જ્ઞાનં વિમુક્તં સ્વતઃ ॥ ૧૧૦ ॥

અર્થ:—ત્યાંમુખી જ્ઞાનની કર્મવિરતિ બરાબર પરિપૂર્ણતા પામી શકે
ત્યાંમુખી કર્મ અને જ્ઞાનનું એકકાપણ સામ્યમાં કદું છે; તેમના એકા સ્વરૂપ
પર જનિ અર્થાત્ વિરોધ નથી. પરંતુ આદી એવું વિશેષ જણવું કે નહીં

જી. (જાગરસ્તીથી) જે કર્મ પ્રગટ થાય છે અર્થાત્ દેહ્ય થાય છે તે તે જાગરનું થાય છે, અને પ્રાણનું કારણ તે, જે એક પરમ્ સૂત્ર છે તે એક જ થાય છે— જ્ઞાન સ્વરૂપ વિમુક્ત છે (અર્થાત્ ત્રણે કાર્યે પરદ્રવ્ય-આવેશી બિંબ છે).

આવાર્ય:—ત્યાંગુથી વધાખ્યાન ચારિત્ર થતું નથી-ત્યાંગુથી સમ્યક્દષ્ટિને બે રહે છે—શુભાશુભ કર્મપારા અને જ્ઞાનપારા. તે બંને સાથે શરૂવામાં કાંઈ પણ નથી. તે સ્થિતિમાં કર્મ-પાતાનું કાર્ય કરે છે અને જ્ઞાન પાતાનું કાર્ય કરે છે. આથી શુભાશુભ કર્મપારા છે તેટલા આથી કર્મબંધ થાય છે અને બેટલા આથી જ્ઞાન છે તેટલા આથી કર્મનો નાશ થતો જાય છે. વિષય-કપાયના વિકલ્પો કે પ્રતિ-ભાવ વિકલ્પો—શુદ્ધ સ્વરૂપનો વિચાર શુદ્ધ—કર્મબંધનું કારણ છે; શુદ્ધ પરિણતિ જ્ઞાનપારા જ પ્રાણનું કારણ છે.

હવે કર્મ અને જ્ઞાનનો નવવિભાગ બતાવે છે:—

(સાદૃશ્યવિગિહિત)

મમાઃ કર્મનયાવચ્ચનપરા જ્ઞાને ન જાનેતિ યન્

મમા જ્ઞાનનયૈષિણોઽપિ યદતિસ્વચ્છંદયંદોષમાઃ ।

વિશ્વસ્યોપરિ તે તરંતિ સતતં જ્ઞાનં ભવંતઃ સ્વયં

યે કુર્વંતિ ન કર્મ જાતુ ન વશં યાંતિ મમાદસ્ય ચ ॥ ૧૧૧ ॥

અર્થ:—કર્મનયના આલંબનમાં તાપર (અર્થાત્ કર્મનયના પદ્મપાતી) નો દૂષેષ છે કારણ કે તેઓ જ્ઞાનને જાણતા નથી. જ્ઞાનનયના હૃદય (અર્થાત્ પાતી) પુરુષો પણ દૂષેષ છે કારણ કે તેઓ સ્વચ્છંદથી અતિ મંદ-ઉદમી જ સ્વરૂપપ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કરતા નથી, પ્રમાદી છે અને વિષયકપાયમાં પતે છે). તે છતાં યના ઉપર તરં કે જેઓ પાતે નિરંતર જ્ઞાનરૂપ થતા—પરિણમતા થકા કર્મ કરતા થી અને ક્યારેય પ્રમાદને વશ પણ થતા નથી (સ્વરૂપમાં ઉદમી રહે છે).

આવાર્ય:—અહીં સર્વથા એકાંત અભિપ્રાયનો નિષેધ કર્યો છે કારણ કે યથા એકાંત અભિપ્રાય જ મિથ્યાત્વ છે.

કેટલાક લોકો પરમાર્થજ્ઞાન જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને તે જાણતા નથી અને બ્ય-કાર દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ દિવાકાંડના આલંબરને પ્રાણનું કારણ જાણી તેમાં તાપર રહે-તેનો પદ્મપાત્ર કરે છે. આવા કર્મનયના પદ્મપાતી લોકો—જેઓ જ્ઞાનને નો જાણતા થી અને કર્મનયમાં જ એકબિંબ છે તેઓ—સંસારમાં દૂષે છે.

વળી કેટલાક લોકો આત્મસ્વરૂપને યથાર્થ જાણતા નથી અને સર્વથા એવાદી ત્રિધાદિત્રિઓના ઉપદેશથી અથવા પોતાની એવે જ અંતરંગમાં જ્ઞાનરૂપ જોડી રીતે કંઈપી તેમાં પદ્મપાત કરે છે. પોતાની પરિણતિમાં જરાય ફેર પાડતાં તેઓ પોતાને સર્વથા અખંડ માને છે અને વ્યવહાર દર્શનજ્ઞાનચારિત્રના નિષ્કાર નિરર્થક જાણી છાડી દે છે. આવા જ્ઞાનનયના પદ્મપાતી લોકો જેઓ સ્વરૂપને પુરુષાર્થ કહેતા નથી અને શુભ પરિણામોને છાડી સ્વચ્છંદી થઈ વિષયનિષ્ઠામાં છે તેઓ પણ સંસારસમુદ્રમાં ડૂબે છે.

માત્રમાર્ગી હોયો જ્ઞાનરૂપે પરિણમતા થકા શુભાશુભ કર્મને હેવ જો અને શુદ્ધ પરિણતિને જ ઉપદેશ જાણે છે. તેઓ માત્ર અશુભ કર્મને જ નહિ પણ શુભ કર્મને પણ છાડી, સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાને નિરંતર ઉદ્યમવંત છે—સંપૂર્ણ સ્થિરતા થતાં સુધી તેના પુરુષાર્થ ક્યાં જ કરે છે. બ્યાંસુધી, પુરુષાર્થની સીધે, શુભાશુભ પરિણામોથી છૂટી સ્વરૂપમાં સંપૂર્ણપણે ફકી રાકાતું નથી તો એને લોકે સ્વરૂપસ્થિરતાનું અંતર-આસંબન તો શુદ્ધ પરિણતિ પાતે જ છે. આસંબન લેનારને જેઓ બાહ્ય આસંબનરૂપ થાય છે એવા (શુદ્ધ સ્વરૂપને આદિ) શુભ પરિણામોમાં તે હોયો હેવબુદ્ધિએ પ્રવર્તે છે, પરંતુ શુભ કર્મને નહિ જાણી છાડી દર્શન સ્વચ્છંદપણે અશુભ કર્મોમાં પ્રવર્તવાની બુદ્ધિ તેમને હી જ નથી. આવા હોયો—જેઓ એકાંત અભિપ્રાય રહિત છે તેઓ—કર્મના નાશ મંગલારથી નિવૃત્ત થાય છે.

હવે પુણ્ય-પાપ અધિકારને પૂર્ણ કરતાં આચાર્ય દેવ જ્ઞાનનો મહિમા ગો

(મંદારાંતા)

મૈદંન્માદં ભ્રમરસમરાત્રાત્પત્વીતમોદં
મૂળોન્મૂલં સપ્તમપિ તત્કર્મ કૃત્વા પલેન ।
દેવોન્મીઝત્વમકલયા સાર્થમારમ્પકેદિ
જ્ઞાનયોનિઃ કવચિત્તત્તમઃ પ્રોક્તનૃમ્મે મરેણ ॥ ૧૧૧ ॥

અર્થ:—જેને માદરૂપી મહિમા પીધા દેવાથી જે જામના સમય છે (અનિવાર્યપણથી) શુભાશુભ કર્મના દેશરૂપી ઉન્માદને (ગાંડપણને) નાશ કરવા સ્વસ્થ કર્મને પાળના બગ વડે મુગથી ઉમેરી નાખીને જ્ઞાનમંદિર આ સ્થાનને સ્વદેશ પ્રમાણે જોડેલી છે ને જ્ઞાનમંદિર? જે અજ્ઞાનરૂપી અવિદ્યાને દેશરૂપી મંદિર અર્થે જેને અજ્ઞાનરૂપી અવેશરૂપે નાશ કરે છે, એ સ્થાન

પુણ્ય-પાપ અધિકાર

પુરુષાર્થથી) ઉચ્ચતી—વિકસતી જાય છે અને જેણે પરમ કળા અર્થાત્ પે કીડા શરૂ કરી છે એવી તે જ્ઞાનભ્યેતિ છે.

સાવાર્થ:—પાતાને (જ્ઞાનભ્યેતિને) પ્રતિબંધક કર્મ કે જે શુભ અને મેવા બેદરૂપ થઈને નાચતું હતું અને જ્ઞાનને જુડાવી દેતું હતું તેને પાતાની હિંમેદી નાખીને જ્ઞાનભ્યેતિ સંપૂર્ણ સામર્થ્ય સહિત પ્રકાશિત થઈ. આ અથવા જ્ઞાનકળા કેવળજ્ઞાનથી પરમકળાનો અંશ છે અને કેવળજ્ઞાનના વરૂપને તે જાણે છે તેમ જ તે તરફ પ્રગતિ કરે છે, તેથી એમ કહ્યું છે કે એનિએ કેવળજ્ઞાન સાથે કીડા માંડી છે.” જ્ઞાનકળા સદૃશપણે વિકાસ પામતી અને ઉચ્ચ પરમકળા અર્થાત્ કેવળજ્ઞાન થઈ જાય છે.

ટીકા:—પુણ્ય-પાપરૂપે બે પાત્રરૂપ થયેલું કર્મ એક પાત્રરૂપ થઈને (રંગ-રંગી) બહાર નીકળી ગયું.

સાવાર્થ:—કર્મ સામાન્યપણે એક જ છે તોપણ તેણે પુણ્ય-પાપરૂપી બે તો રંગાંગ પારજી કરીને રંગભૂમિમાં પ્રવેશ કર્યો હતો. તેને જ્ઞાને યથાર્થપણે એક લીધું ત્યારે તે એક પાત્રરૂપ થઈને રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયું, નાત્ય અપ્રકી ગયું. ૧૬૧—૧૬૩.

આમય, કારણ, રૂપ, સવાદમું એક વિચારી ગિને ટાકી ન્યારે, પુણ્ય કે પાપ શુભાશુભલાવનિ બધે બધે શુભદુઃખકારા રે; જ્ઞાન બધે ટાકી એક લબે બુધ આમય અર્થે સમાન વિચારે, બધેકે કારણ હું ટાકી રૂપ, કંઈ તલિ જિનમુનિ શાસ્ત્ર પધારે.

આમ આ સમયસારમયની આત્મભ્યેતિ નામની ટીકાની પડિત જયચંદ્રલક્ષ્મીના પાત્રચરિત્રમાં ત્રીજે પુણ્ય-પાપ અધિકાર પૂર્વ થયા.



ટીકા:—આ જીવમાં રાગ, દ્વેષ અને મોહ—એ આત્મવેદન નિમિત્તે થાય છે. મોટે તેઓ જડ નહિ હોવાથી ચિદાત્મા છે (—એમાં ભાસ છે એવા છે, ચિદિકાર છે).

મિથ્યાત્વ, અવિશ્તિ, ક્ષાય અને યોગ—એ પુદ્ગલપરિણામ, પુદ્ગલકર્મના આત્મવલ્લભાં (—આવચાનાં) નિમિત્ત હોવાથી, ખરેખર છે; અને તેમને (મિથ્યાત્વાદિ પુદ્ગલપરિણામોને) કર્મ-આત્મવલ્લભાં નિમિત્ત રાગદ્વેષમોહ છે—કે જેઓ અજ્ઞાનમય આત્મપરિણામો છે. મોટા (પુદ્ગલપરિણામોને) આત્મવલ્લભાં નિમિત્તપણાના નિમિત્તભૂત હોવાથી રાગ આત્મવેદ છે. અને તે તો (—રાગદ્વેષમોહ તો) અજ્ઞાનીને જ હોય છે એમ જ નીકળે છે. (ગાથામાં સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહ્યું નથી તોપણ ગાથાના જ આશય નીકળે છે.)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મોના આત્મવલ્લભાં (—આત્મવલ્લભાં) મિથ્યાત્વાદિકર્મના ઉદયરૂપ પુદ્ગલનાં પરિણામ છે, મોટે તે ખરેખર આત્મવેદન તેમને કર્મ-આત્મવલ્લભાં નિમિત્તભૂત થવાનું નિમિત્ત જીવનાં રાગદ્વેષમોહાં (મય) પરિણામ છે. મોટે રાગદ્વેષમોહ જ આત્મવેદ છે. તે રાગદ્વેષમોહને જ કહેવામાં આવે છે. તે રાગદ્વેષમોહ જીવને અજ્ઞાન-અવસ્થામાં જ હોય છે સહિત જ્ઞાન જ અજ્ઞાન કહેવાય છે. મોટે મિથ્યાત્વને અર્થાત્ અજ્ઞાનીને મોહરૂપી આત્મવેદ હોય છે. ૧૬૪—૧૬૫.

હવે જ્ઞાનીને તે આત્મવેદના (ભાવાત્મવેદના) અભાવ છે એમ જ નિર્ણયિત છે. આસવવંધો સમ્પાદિદ્વિસ્સ આસવનિરોહો સંતે પુલ્વણિવદ્દે જાણદિ સો તે અવંધંતો ॥ ૧૬૬ ॥

નાસ્તિ ત્વાસવવંધઃ સમ્યગ્દષ્ટેરાસવનિરોધઃ ।

સંતિ પૂર્વનિષ્ઠાનિ જ્ઞાનાતિ સ તાન્વચગ્નઃ ॥ ૧૬૬ ॥

અન્વયાર્થ:—[સમ્યગ્દષ્ટેઃ તુ] સમ્યક્દષ્ટિને [આસવવંધઃ] અસવવંધો નથી, [નાસ્તિ] નથી, [આસવનિરોધઃ] (કાલ્પ) નિમિત્ત છે એવો ખરેખર [નાસ્તિ] નથી, [આસવનિરોધઃ] (કાલ્પ) નથી.

મુદ્દષ્ટિને આસવનિમિત્ત ન બાંધે, આસવવેદન છે; નહિ બાંધે, જાણે જ પૂર્વનિષ્ઠાને સત્તા વિશે.

આશ્રયનો) નિરોધ છે; [જ્ઞાતિ] નવાં કર્મોને [અજ્ઞાત] નહિ બાંધતો [સા] તે, [તિ] સત્તામાં રહેલાં [પૂર્વનિષ્ઠાતિ] પૂર્વે બંધાયેલાં કર્મોને [જ્ઞાતિ] બાંધે જ છે.

ટીકા—અરેઅર જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય બાવો વડે અજ્ઞાનમય બાવો અવશ્યમેવ પ્રાપ્ત છે—રહેણાં છે—અભાવરૂપ થાય છે (કારણ કે પરસ્પર વિરોધી બાવો સાથે રહે નહિ); તેથી અજ્ઞાનમય બાવોરૂપ રાગદ્વેષભ્રાદુ—કે જેઓ આસ્રવભૂત પ્રસવસ્વરૂપ) છે—તેમનો નિરોધ હોવાથી, જ્ઞાનીને આસ્રવનો નિરોધ હોય જ છે. જ્ઞાની, આસ્રવો જેમનું નિમિત્ત છે એવાં (જ્ઞાનાવરૂપાદિ) પુદ્ગલકર્મોને બાંધતો છે—સદાય અર્તપણું હોવાથી નવાં કર્મો નહિ બાંધતો થકે સત્તામાં રહેલાં પૂર્વ-કર્મોને, પોતે જ્ઞાનસ્વભાવવાળો હોઈને, કેવળ બાંધે જ છે. (જ્ઞાનીનો જ્ઞાન જ માત્ર છે, કર્ત્ત્વપણું સ્વભાવ નથી; કર્ત્ત્વપણું હોય તો કર્મ બાંધે, જ્ઞાનાપણું હોવાથી બાંધતો નથી.)

સાચાર્થ:—જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય બાવો હોતા નથી, અજ્ઞાનમય બાવો નહિ હોય (અજ્ઞાનમય) રાગદ્વેષભ્રાદુ અર્થાત્ આસ્રવો હોતા નથી અને આસ્રવો નહિ હોય તો બંધ થતો નથી. આ રીતે જ્ઞાની સદાય અકર્તા હોવાથી નવાં કર્મો બાંધતો અને પૂર્વે બંધાયેલાં જે કર્મો સત્તામાં રહેલાં છે તેમનો જ્ઞાન જ રહે છે.

અવિરતસમ્યક્દષ્ટિને પણ અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષભ્રાદુ હોતા નથી. મિથ્યાત્વ સહિત પ્રતિક હોય તે જ અજ્ઞાનના પક્ષમાં ગણાય છે, સમ્યક્ત્વ સહિત રાગાદિક અજ્ઞાનનામાં નથી. સમ્યક્દષ્ટિને નિરંતર જ્ઞાનમય પરિકુમ્ભ જ હોય છે. તેને સ્પર્શિતભ્રાદુનાની બળભેદીથી જે રાગાદિક થાય છે તેનું સ્વામીપણું તેને નથી; તે રાગાદિકને સમાન ભણીને પ્રવર્તે છે અને પોતાની શક્તિ અનુસાર તેમને કાપતો જાય છે. જ્ઞાનીને જે રાગાદિક હોય છે તે વિષમાન ક્રતાં અવિષમાન જેવાં છે; તેઓ માત્ર સામાન્ય સંસારનો બંધ કરતાં નથી, માત્ર અદ્ય સ્થિતિ-અનુભાગવાળો બંધ છે. આવા અદ્ય બંધને અહીં ગણવામાં આવ્યો નથી.

આ રીતે જ્ઞાનીને આસ્રવ નહિ હોવાથી બંધ થતો નથી. ૧૬૬.

હવે, રાગદ્વેષભ્રાદુ જ આસ્રવ ■ એવો નિયમ કરે છે.—

ભાવો રાગાદિજુદો જીવેણ કદો દુ વંધગો મણિદો ।

રાગાદિવિષ્ણુમુક્તો અવંધગો જાણગો જવરિ ॥ ૧૬૭ ॥

રાગાદિયુત જે ભાવ જીવંત નેહને બંધક કહ્યો;

રાગાદિથી પ્રવિમુક્ત તે બંધક નહિ, જ્ઞાયક નરો. ૧૬૭.

અન્વયાર્થ:—[યથા] જેમ [એકે ફાલે] પાકું ફળ [પતિતે] ખરી પડતાં
[ફરીને] ફાલે [ફળ] પૂતે:] ડીઠા સાથે [ન થાયતે] જોડાતું નથી, તેમ
[અવસ્થા] જીવને [વર્તમાને] કર્મભાવ [પતિતે] ખરી જતાં (અર્થાત્ જૂઠા થતાં)
[ફરીને] ઉદય ન ઉપેતિ] ઉત્પન્ન થતો નથી (અર્થાત્ જીવ સાથે જોડાતો નથી).

ટીકા:—જેમ પાકું ફળ ડીઠાથી એકવાર છૂટું પડ્યું થકું ફરીને ડીઠા સાથે
પામતું નથી, તેમ કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતો ભાવ જીવભાવથી એકવાર છૂટો
થકો ફરીને જીવભાવને પામતો નથી. આ રીતે જ્ઞાનમય એવે, રાગાદિક સાથે
મળેલો ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ:—જે જ્ઞાન એકવાર (અપ્રતિપાતી ભાવે) રાગાદિકથી છુટું પરિણમે
ફરીને તે ફરી રાગાદિક સાથે ભેગસેગ થઈ જતું નથી. આ રીતે ઉત્પન્ન થયેલો,
દિક સાથે નહિ મળેલો જ્ઞાનમય ભાવ સદાકાળ રહે છે. પછી જીવ અસ્થિતરૂપે
દિકમાં જોડાય તે નિશ્ચયદષ્ટિમાં જોડાય છે જ નહિ અને તેને જે અવસ્થા બંધ થાય
જો નિશ્ચયદષ્ટિમાં બંધ છે જ નહિ, કારણ કે અવ્યક્તરૂપે પરિણમન નિરંતર
જ રહે છે. વળી તેને ત્રિધાત્વની સાથે રહેનારી પ્રકૃતિઓના બંધ થતો નથી
અન્ય પ્રકૃતિઓ સામાન્ય સંસારનું કારણ નથી; મૂળથી કપાયેલા વૃક્ષનાં લીસાં
તેથી તે પ્રકૃતિઓ શીખ મુકાવાપોખ છે.

હવે, 'જે જ્ઞાનમય ભાવ છે તે જ ભાવાત્મવના અભાવ છે' એવા અર્થનું
અર્થ કાઢ્યું છે:—

(શાંતિની)

માત્રો રાગદોષમોદૈર્વિના યો
જીવસ્ય સ્પાદ જ્ઞાનનિર્વૃત્ત એવં ।
ચંચન્ સર્વાન્ દ્રવ્યકર્માસવીપાન્
અપોઽમાવઃ સર્વભાવાસ્તવાણામ્ ॥ ૨૧૪ ॥

અર્થ:—જીવને જે રાગદોષમોહ વગરનો, જ્ઞાનથી જ રચાયેલો ભાવ છે અને
તે દ્રવ્યકર્મના આત્મવના ધરાવે (અર્થાત્ જ્યાંયંધ દ્રવ્યકર્મના પ્રવાહને) રોકે
છે, તે (જ્ઞાનમય) ભાવ સર્વ ભાવાત્મવના અભાવસ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ:—ત્રિધાત્વ રહિત ભાવ જ્ઞાનમય છે. તે જ્ઞાનમય ભાવ રાગદોષમોહ
નો છે અને દ્રવ્યકર્મના પ્રવાહને રોકનારો છે; તેથી તે ભાવ જ ભાવ-આત્મવના
સ્વરૂપ છે.

મમ્માનુઃ કાલેષુ ત્રિપ્પાત્ર જ હેઃ તેથી ત્રિપ્પાત્રમયપી કાલેઃ
 થતું. મર્તિ બાચામયનો અમાર થવો એમ અર્થો ૩૫ ૧૧.

દરે, પ્રાનીને પ્રજાસયનો અમાર છે એમ અર્થો ૨૦-

પુત્રીન્દિમમાણા પુત્રાણિત્તા રૂ પુત્રાયા તમા ૧
 તમ્મમીમેગ રૂ ને તજા મને નિ જાણિમ ૨ ૧૧

પુત્રીન્દિમમાણા: પુત્રાણિત્તા રૂ પુત્રાયા તમા ૧

તમ્મમીમેગ રૂ ને તજા: મને નિ જાણિમ ૨ ૧૧

અન્યથાપી—[અન્ય પ્રાણિના] ને પ્રાનીને [પુત્રનિવરણ] પી ૧૧
 ૧. કહે સર્વે; ૨. અન્યથા [અન્યથા]; ૩. પી ૧૧ [પુત્રીન્દિમમાણા]; ૪. મને
 ૫. નિ [જાણિમ]; ૬. તમા [તમા]; ૭. તજા [તજા]; ૮. તમા [તમા]; ૯. તમા [તમા]; ૧૦. તમા [તમા]; ૧૧. તમા [તમા]

૧૧. તમા [તમા] ૧૨. તમા [તમા] ૧૩. તમા [તમા] ૧૪. તમા [તમા] ૧૫. તમા [તમા] ૧૬. તમા [તમા] ૧૭. તમા [તમા] ૧૮. તમા [તમા] ૧૯. તમા [તમા] ૨૦. તમા [તમા]

૨૧. તમા [તમા] ૨૨. તમા [તમા] ૨૩. તમા [તમા] ૨૪. તમા [તમા] ૨૫. તમા [તમા] ૨૬. તમા [તમા] ૨૭. તમા [તમા] ૨૮. તમા [તમા] ૨૯. તમા [તમા] ૩૦. તમા [તમા]

હવે આ અર્થનું દર્શન હાલ્યું હતું છે:—

(ઉપનિ)

ભાવાશ્રવાભાવમયં મપન્નો

દ્રવ્યાસ્રવેભ્યઃ સ્વત એવ મિદ્યઃ ।

જ્ઞાની સદા જ્ઞાનમયૈરુભાવો

નિરાશ્રવો જ્ઞાયક એક એવ ॥ ૧૧૫ ॥

અર્થ:—ભાવાશ્રવેના અભાવને પામેલો અને દ્રવ્યાશ્રવેથી તે સ્વભાવથી
અવે જ્ઞાની—કે જે સદા એક જ્ઞાનમય ભાવવાળો છે તે—નિરાશ્રવ જ છે,
એક જ્ઞાયક જ છે.

ભાવાર્થ:—શબ્દરૂપભાદરૂપ ભાવાશ્રવેના જ્ઞાનીને અભાવ થયો છે અને
યથી તે ને સદા સ્વમયેવ વિજ્ઞ જ છે કારણ કે દ્રવ્યાશ્રવ પુરુષાદપરિણામ-
છ અને જ્ઞાની એવમ્સ્વરૂપ છે. આ રીતે જ્ઞાનીને ભાવાશ્રવ તેમ જ દ્રવ્યા-
અભાવ દ્વારાથી તે નિરાશ્રવ જ છે. ૧૧૬

હવે પછી છે કે જ્ઞાની નિરાશ્રવ હઈ રીતે છે? તેના ઉત્તરની આશા હતી છે:—

ચતુર્વિદ્ અણેયમેયં વંધંતે જ્ઞાણદંમણગુણેહિ ।

મમગ્ મમગ્ જહ્યા તેજ અવંધોત્તિ જ્ઞાણી દુ ॥ ૧૭૦ ॥

ચતુર્વિદ્યા અનેકમેદં વર્જંતિ જ્ઞાનદર્શનગુણાભ્યામ્ ।

મમયે મમયે યન્માત્ તેનારંધ્ર ઇતિ જ્ઞાની નુ ॥ ૧૭૦ ॥

અન્યથાર્થ:—[યન્માત્] કારણ કે [ચતુર્વિદ્યા:] આર પ્રકારના દ્રવ્યાશ્રવે
[જ્ઞાનદર્શનગુણાભ્યામ્] જ્ઞાનદર્શનગુણો વડે [મમયે મમયે] સમયે સમયે [અનેકમેદં]
પ્રકારનું હર્મ [વર્જંતિ] બંધે છે [તેજ] તેથી [જ્ઞાણી નુ] જ્ઞાની તે [મમયે:
અમયે] છે.

ટીકા:—પ્રથમ, જ્ઞાની તે આશ્રવભાવની ભાવનાના અભિપ્રાયના અભાવને

ચોવિધ પ્રત્યય સમયસમયે જ્ઞાનદર્શનગુણથી
અહુભેદ આંધિ હર્મ, તેથી જ્ઞાની નો અમયક નથી. ૧૭૦.

લીધે નિરાશ્ચ જ છે; પરંતુ જે તેને પણ દ્રવ્ય પ્રત્યયો સમય સમાપ્ત પ્રકારનું પુદ્ગલકર્મ આપે છે, ત્યાં જ્ઞાનગુણનું પરિણમન કારણ છે. ૧૬.

હવે વળી પૂછે છે કે જ્ઞાનગુણનું પરિણમન બંધનું કારણ કઈ રીતે ઉત્તરની ગાથા કહે છે:—

જહ્યા દુ જહણ્ણાંદો જાણગુણાદો પુણોવિ પરિણમદિ ।
અણ્ણતં જાણગુણો તેણ દુ સો વંધગો મણિદો ॥ ૧૭ ॥

યસ્માત્તુ જયન્પાત્ જ્ઞાનગુણાત્ પુનરપિ પરિણમતે ।

અન્યત્વં જ્ઞાનગુણઃ તેન તુ સ વંધકો મણિતઃ ॥ ૧૭ ॥

અન્યવાર્થ:—[યસ્માત્ તુ] કારણ કે [જ્ઞાનગુણઃ] જ્ઞાનગુણ [જયન્પાત્] જયન્ જ્ઞાનગુણને લીધે [પુનરપિ] ફરીને પણ [અન્યત્વં] [પરિણમતે] પરિણમે છે, [તેન તુ] તેથી [સઃ] તે (જ્ઞાનગુણ) [વંધક] બંધક [મણિતઃ] કહેવામાં આવ્યો છે.

ટીકા:—જ્ઞાનગુણનો જ્યાંસુધી જયન્ ભાવ છે (—જ્ઞાપોપરામિ જ ત્યાંસુધી તે (જ્ઞાનગુણ) અંતર્મુદ્ધર્ત્તમાં વિપરિણામ પામતો હોવાથી ફરી તે અન્યપણે પરિણમન થાય છે. તે (જ્ઞાનગુણનું જયન્ ભાવે પરિણમન), આરિત-અવસ્થાની નીચે અવશ્યભાવી રાગનો સદ્ભાવ હોવાથી, બંધનું મણિ.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાપોપરામિજ્ઞાન એક જોય પર અંતર્મુદ્ધર્ત્ત જ થયે કે અવશ્ય અન્ય જોયને અવસર છે; સ્વરૂપમાં પણ તે અંતર્મુદ્ધર્ત્ત જ કરી શકે વિપરિણામ પામે છે. માટે એમ અનુમાન પણ થઈ શકે કે સમ્યક્ષિ જ્યોતિષ દશામાં હો કે નિર્વિકલ્પ અનુભવદશામાં હો—યથાખ્યાત્યારિત-અન્ય પદેસાં તેને અવશ્ય રાગભાવનો સદ્ભાવ હોય છે; અને રાગ હોવાથી બંધ છે. માટે જ્ઞાનગુણના જયન્ ભાવને બંધનો હેતુ કહેવામાં આવ્યો છે. ૧૭.

હવે વળી ફરી પૂછે છે કે—એ આમ (અર્થાત્ જ્ઞાનગુણને જયન્ બંધનું કારણ છે) તો પછી જ્ઞાની નિરાશ્ચ કઈ રીતે છે? તેના ઉત્તરની ગાથા

જે જ્ઞાનગુણની જયન્તામાં વર્તતો ગુણ જ્ઞાતનો,
કરીકરી પ્રણમનો અન્યરૂપમાં, તેથી તે બંધક કમો. ૧૮

દંસણનાણચરિત્તં જં પરિણમદે જહણભાવેણ ।

નાણી તેણ દુ વજ્જદિ પુગ્ગલકમ્મેણ વિવિહેણ ॥ ૧૭૨ ॥

દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં યત્પરિણમતે જઘન્યભાવેન ।

જ્ઞાની તેન તુ વખ્યતે પુદ્ગલકર્મણા વિવિધેન ॥ ૧૭૨ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યત્] કારણ કે [દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર
ભાવેન] જઘન્ય ભાવે [પરિણમતે] પરિણમે છે [તેન તુ] તેથી [જ્ઞાની] જ્ઞાની
વિધેન] અનેક પ્રકારના [પુદ્ગલકર્મણા] પુદ્ગલકર્મથી [વખ્યતે] બધાય છે.

ટીકા—જે ખરેખર જ્ઞાની છે તે, બુદ્ધિપૂર્વક (હજીપૂર્વક) રાગદ્વેષમોહરૂપી
ભાવોના તેને અભાવ હોવાથી, નિરાશ્રય જ છે. પરંતુ ત્યાં એટલું વિશેષ છે
કે જ્ઞાની જ્યાંમુઘી જ્ઞાનને સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવે રૂપવાને, જાણવાને અને આચરવાને
ન વળતો થકો જઘન્ય ભાવે જ જ્ઞાનને રૂપે છે, જાણે છે અને આચરે છે ત્યાંમુઘી
પણ, જઘન્યભાવની અન્યથા અનુપપત્તિ વડે (અર્થાત્ જઘન્ય ભાવ અન્ય રીતે
બનતો હોવાને લીધે) જેમ્મું અનુમાન થઈ શકે છે એવા અબુદ્ધિપૂર્વક કર્મ-
ના વિપાકનો સૂક્ષ્મ હોવાથી, પુદ્ગલકર્મના બધે થાય છે. માટે ત્યાંમુઘી જ્ઞાનને
જે, જાણવું અને આચરવું કે જ્યાંમુઘીમાં જ્ઞાનનો જેવડો પૂર્ણ ભાવ છે તેવડો
વાર્મા, જાણવામાં અને આચરવામાં બરાબર આવી જાય. ત્યારથી સાક્ષાત્ જ્ઞાની
થકો (આત્મા) સર્વથા નિરાશ્રય જ હોય છે.

આપાર્થઃ—જ્ઞાનીને બુદ્ધિપૂર્વક (અજ્ઞાનમય) રાગદ્વેષમોહનો અભાવ હોવાથી
ની નિરાશ્રય જ છે. પરંતુ જ્યાંમુઘી ક્ષેપાપરામજ્ઞાન છે ત્યાંમુઘી તે જ્ઞાની જ્ઞાનને
સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવે રૂપી, જાણી અને આચરી શકતો નથી—જઘન્ય ભાવે રૂપી, જાણી
ને આચરી શકે છે; તેથી એમ જણાય છે કે તે જ્ઞાનીને હજી અબુદ્ધિપૂર્વક કર્મ-
ક્રમો વિપાક (અર્થાત્ ચારિત્રમોહસંબંધી રાગદ્વેષ) વિષયમાં છે અને તેથી તેને
પણ થાય છે. માટે તેને એમ ઉપદેશ છે કે—જ્યાંમુઘી કેવળજ્ઞાન ન ઉપર ત્યાંમુઘી
નું જ નિરંતર ધ્યાન કરવું, જ્ઞાનને જ રૂપવું, જ્ઞાનને જ જાણવું અને જ્ઞાનને જ
આચરવું. આ જ માર્ગ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનું પરિણમન વળતું જાય છે અને એમ
માં કરનાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. કેવળજ્ઞાન પ્રગટે ત્યારથી આત્મા સાક્ષાત્ જ્ઞાની છે
સર્વ પ્રકારે નિરાશ્રય છે.

ચારિત્ર, દર્શન, જ્ઞાન જેથી જઘન્ય ભાવે પરિણમે,
તેથી જ જ્ઞાની વિવિધ પુદ્ગલકર્મથી બધાય છે. ૧૭૨.

ત્યાંમુધી ક્ષાયોપશમિક્ત જ્ઞાન છે ત્યાંમુધી અબુદ્ધિપૂર્વક (અર્થઃ મોહનો) રાગ હોવા છતાં, બુદ્ધિપૂર્વક રાગના અભાવની અપેક્ષાએ જ્ઞાનીને પશું કશું અને અબુદ્ધિપૂર્વક રાગનો અભાવ થતાં અને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ નિરાશ્રયપણું કશું. આ, વિવક્ષાનું વિચિત્રપણું છે. અપેક્ષાથી સમજતાં એ સ્વયંચાલુ છે.

હવે આ જ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(ચારૂલવિદીકૃત)

સંન્યસ્યન્નિજ્જબુદ્ધિપૂર્વમનિર્ણયં રાગં સમગ્રં સ્વયં
વારંવારમબુદ્ધિપૂર્વમપિ તં જેતું સ્વશક્તિ સ્પૃશત્ ।
ઉચ્છિન્નપરહૃત્તિમેવ સક્ત્યાં જ્ઞાનસ્ય પૂર્ણો ભવ-
ત્તમા નિત્યનિરાશ્રયો ભવતિ હિ જ્ઞાની યદા સ્પાદતા ॥

અર્થ:—આત્મા જ્યારે જ્ઞાની થાય ત્યારે, પોતે પોતાના સમસ્ત જ્ઞાનને નિરંતર છોડતો થકો અર્થાત્ નહિ કરતો થકો, વળી જે અબુદ્ધિપૂર્વક તેને પણ જ્ઞાનને વારંવાર (જ્ઞાનાનુભવનરૂપ) સ્વશક્તિને સ્પર્શતો થકો જ્ઞાનીને) સમસ્ત પરહૃત્તિને—પરપરિબુદ્ધિને—ઉછેડતો જ્ઞાનના પૂર્ણભાવને જોઈએ એ નિરાશ્રય છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીએ સમસ્ત રાગને ત્યજી દેવાનો છે. તે રાગને આશ્રય કરે છે; તેને આશ્રયભાવની ભાવનાનો અભિપ્રાય નથી; તેથી તે આશ્રય કરેવાય છે.

પરહૃત્તિ (પરપરિબુદ્ધિ) એ પ્રકારની છે—અપ્રકાર્ય અને અર્થઃ જ્ઞાનીએ અપ્રકાર્ય પરહૃત્તિ છોડી છે અને અસ્થિરનરૂપ પરહૃત્તિ જ્ઞાનથી જુદાઈને વારંવાર સ્પર્શે છે અર્થાત્ પરિબુદ્ધિને સ્વરૂપ પ્રતિ વારંવાર જાણતો રહે છે એવા પરહૃત્તિને ઉછેડીને કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે.

‘બુદ્ધિપૂર્વક’ અને ‘અબુદ્ધિપૂર્વક’ના અર્થ આ પ્રમાણે છે—જે જ્ઞાનને અર્થઃ અર્થિય થાય તે બુદ્ધિપૂર્વક છે અને જે જ્ઞાનપરિણામ જેવું જ્ઞાનનિર્ણયને અનુભવીથી થાય તે અબુદ્ધિપૂર્વક છે. જ્ઞાનીને જે જ્ઞાનપરિણામ છે તે જ્ઞાન અબુદ્ધિપૂર્વક જ છે; અર્થઃકર્ય દ્વારામાં થતાં જ્ઞાનપરિણામ અબુદ્ધિપૂર્વક છે કારણ કે ક્રમશઃ વિના થાય છે.

(જે જ્ઞાનપરિણામ આ કળામાં દીકા ક્રમમાં ‘બુદ્ધિપૂર્વક’ અને ‘અબુદ્ધિપૂર્વક’ અર્થઃ દર્શાવે છે:—જે જ્ઞાનપરિણામ અર્થઃકર્ય દ્વારામાં થાય છે તે જ્ઞાન અબુદ્ધિપૂર્વક છે અને જે જ્ઞાનપરિણામ અર્થઃકર્ય દ્વારામાં થાય છે તે જ્ઞાન બુદ્ધિપૂર્વક છે.)

બીને, પ્રવર્તે છે અને જેઓ પ્રવર્તતાં થકાં જીવને પાલાને જણાય છે તેમ જ તે પદ્મ અનુમાનથી જણાય છે તે પરિણામે શુદ્ધિપૂર્વક છે; અને જે સમાધિ મ ઉદ્વિગ્નનના બ્યાપાર સિવાય કેવળ મોહના ઉદયના નિમિત્તે થાય છે અને જણાતાં નથી તે અશુદ્ધિપૂર્વક છે. આ અશુદ્ધિપૂર્વક પરિણામને પ્રત્યક્ષ જાની છે અને તેમના અવિનાશાવી ચિદ્ર વડે તેઓ અનુમાનથી થતું જણાય છે.)

હવે શિવની આશાંકાનો સ્થોક કહે છે:—

(અનુક્રુપ)

સર્વસ્યામેવ જીવંત્યાં દ્રવ્યમન્યયમંતરી ।

કૃતો નિરાશ્વતો જ્ઞાની નિન્યમેવેનિ ચંન્મતિઃ ॥ ૧૧૭ ॥

અર્થ:—‘જ્ઞાનીને સમસ્ત દ્રવ્યાશ્રયની ચાંતનિ વિગ્રહાન દેવા થકાં જાની નિરાશ્રય છે એમ શા કારણે કહે?—એમ જે તારી શુદ્ધિ છે (અર્થાત્ એ બીવી આશાંકા થાય છે) તે હવે તેના ઉત્તર કહેવામાં આવે છે. ૧૭૨.

હવે, પૂર્વોક્ત આશાંકાના ઉત્તરની બાબા કહે છે:—

સર્વે પુલ્કણિચદ્વા દુ પષપા મંતિ મમ્મદિટ્ટિમ્મ ।

ઉચ્ચોગ્મ્યાઓગં ધંધંતે વમ્મભાષેણ ॥ ૧૭૩ ॥

મંતી દુ ણિલ્લભોજ્ઞા ઘાલ્લ ક્કથી જદ્દે પુરિમમ્મ ।

ધંધદિ તે ઉચ્ચોજ્જે તરણી ક્કથી જદ્દ ણમમ્મ ॥ ૧૭૪ ॥

હોદ્દા ણિલ્લભોજ્ઞા તદ્ધ ધંધદિ જદ્દ દરંતિ ઉચ્ચોજ્જા ।

મત્તટ્ટવિહા મૂદ્ધા ણાણાવરણાદિભાષેત્તિ ॥ ૧૭૫ ॥

જે સર્વ પૂર્વનિબદ્ધ પ્રત્યય વર્તતા મુદ્ધિને, ઉપયોગને પ્રાપ્તિય બધન કર્મબાધ વડે ૧૨૧. સત્તા વિધે તે નિરૂપબાધ્ય જ, બાળ સ્ત્રી જ્યમ પુરુષને ઉપબોધ્ય બનતાં તેમ બાંધે. મુક્તી તેમ પુરુષને. ૧૭૪. અબુબોધ્ય બની ઉપબોધ્ય જે રીત થાય તે રીત બાંધવા. ૧૭૫. જ્ઞાનાવબોધ પ્રત્યાહિ ૧૭૬ મધ્ય અદ્ય પ્રત્યાહિ. ૧૭૬

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अवंगमो भणितो ।
आसवभावाभावे ण पचया वंगमा भणित ॥ १३१ ॥

सर्वे पूर्वनिरुद्धास्तु प्रत्ययाः संति सम्पादयतेः ।

उपयोगमायोग्यं चञ्चति कर्मभावेन ॥ १३२ ॥

मंति तु निरूपभोग्यानि बाजा गी तपेद पुराण ।

चञ्चति तानि उपभोग्यानि तच्छी गी यथा तप्य ॥ १३३ ॥

भूता निरूपभोग्यानि तथा चञ्चति यथा धर्माभोग्यानि ।

मन्तादृशानि भूतानि ज्ञानादृशानिभौः ॥ १३४ ॥

एतेन कारणेन तु सम्पादयितोपको भणितः ।

भावाभावाभावे न चञ्चया चञ्चता भणितः ॥ १३५ ॥

आन्वयाभावेः—[सम्पादयते] समयारम्भे [संति] अत्र [पूर्वनिरुद्धास्तु] पूर्वनिरुद्धास्तु [उपयोगमायोग्यं] उपयोगमायोग्यं [चञ्चति] चञ्चति [कर्मभावेन] कर्मभावेन [सम्पादयते] सम्पादयते [मन्तादृशानि] मन्तादृशानि [भूतानि] भूतानि [ज्ञानादृशानिभौः] ज्ञानादृशानिभौः

अन्वयाभावेः—[सम्पादयते] समयारम्भे [संति] अत्र [पूर्वनिरुद्धास्तु] पूर्वनिरुद्धास्तु [उपयोगमायोग्यं] उपयोगमायोग्यं [चञ्चति] चञ्चति [कर्मभावेन] कर्मभावेन [सम्पादयते] सम्पादयते [मन्तादृशानि] मन्तादृशानि [भूतानि] भूतानि [ज्ञानादृशानिभौः] ज्ञानादृशानिभौः

આસ્રવ અધિકાર

એકી એવી તે પહેલાંની પરવેલી ત્રી ચૌવનઅવસ્થામાં જે રીતે ઉપબોધ્ય
 મનુસારે, પુરુષના રાગભાવને લીધે જ, પુરુષને બંધન કરે છે—વશ કરે છે,
 જેઓ પ્રથમ તે સત્તા-અવસ્થામાં અનુપબોધ્ય છે પરંતુ વિષાક-અવસ્થામાં
 થાય છે એવા પુરુષકર્મરૂપ દ્રવ્યપ્રત્યયો હોવા છતાં તેઓ જે રીતે ઉપ-
 બોધ્ય તે અનુસારે (અર્થાત્ ઉપયોગના પ્રયોગ અનુસારે), કર્મોદયના કાર્યરૂપ
 વના સદ્ભાવને લીધે જ, બંધન કરે છે. મારે જ્ઞાનીને જો પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યપ્રત્યયો
 ન છે, તે બંધે હોય તથાપિ તે (જ્ઞાની) તે નિરાસ્રવ જ છે, કારણ કે કર્મોદયનું
 જે રાગદ્વેષભાદરૂપ આસ્રવભાવ તેના અભાવમાં દ્રવ્યપ્રત્યયો બંધતાં કારણ નથી.
 પુરુષને રાગભાવ હોય તે જ જીવાની પામેલી ત્રી તેને વશ કરી શકે છે તેમ
 આસ્રવભાવ હોય તે જ ઉદયપ્રાપ્ત દ્રવ્યપ્રત્યયો નવો બંધ કરી શકે છે.)

ભાવાર્થ:—દ્રવ્યાસ્રવોના ઉદયને અને ઇવના રાગદ્વેષભાવોને નિમિત્ત-
 તિભાવ છે. દ્રવ્યાસ્રવોના ઉદય વિના ઇવને આસ્રવભાવ થઈ શકે નહિ અને
 પિં પજુ થઈ શકે નહિ. દ્રવ્યાસ્રવોના ઉદય થતાં ઇવ જે પ્રકારે તેમાં જોડાય
 (જે પ્રકારે તેને ભાવાસ્રવ થાય તે પ્રકારે દ્રવ્યાસ્રવો નવીન બંધનાં કારણ થાય
 તે ભાવાસ્રવ ન કરે તે તેને નવો બંધ થતો નથી.)

સમ્યગ્દષ્ટિને મિથ્યાત્વનો અને અનંતાનુભૂતિ કયાવનો ઉદય નહિ દોષાથી
 તે પ્રકારના ભાવાસ્રવો તે થતા જ નથી અને મિથ્યાત્વ તેમ જ અનંતાનુભૂતિ
 સંબંધી બંધ પજુ થતો નથી. (કાલિક સમ્યગ્દષ્ટિને સત્તામાંથી મિથ્યાત્વનો કાય
 વખતે જ અનંતાનુભૂતિ કયાવનો તથા તે સંબંધી અવિરતિ અને યાગભાવનો
 કાય થઈ ગયો હોય છે તેથી તેને તે પ્રકારનો બંધ થતો નથી; આંતરિક સમ્ય
 ધિને મિથ્યાત્વ તેમ જ અનંતાનુભૂતિ કયાવો આવ ઉપરામમાં—સત્તામાં—જ દોષાથી
 તામાં શોધું દ્રવ્ય ઉદયમાં આવ્યા વિના તે પ્રકારના બંધનું કારણ થતું નથી; અને
 આંતરિક સમ્યગ્દષ્ટિને પજુ સમ્યક્ત્વભાદનીય સિવાયની છ પ્રકૃતિઓ વિષાક-ઉદયમાં
 ભાવની નથી તેથી તે પ્રકારના બંધ થતો નથી.)

અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ પાંચેમ જ આકિર્યાદનો ઉદય પતે છે તેમાં જે પ્રકારે
 ઉદય જોડાય છે તે પ્રકારે તેને નવો બંધ થાય છે; તેથી મુલ્કસ્થાનોના વર્તનમાં અવિરત
 સમ્યગ્દષ્ટિ આકિ મુલ્કસ્થાનોના અનુક અનુક પ્રકૃતિના બંધ હશે છે. પરંતુ આ બંધ
 સમ્ય દોષાથી તેને આભાવ મંગાળની અપેક્ષાને બંધમાં ગજુવામાં આવતો નથી.
 સમ્યગ્દષ્ટિ આકિર્યાદના ઉદયમાં કયાવનાવખાને નોંડાતો જ નથી, આવ અવિરતના
 પે જોડાય છે; અને અવિરતનારૂપ કયાવ તે નિરુપગામિમાં જોડાયું જ નથી. અને
 સમ્યગ્દષ્ટિને સમ્યક્ત્વભાદનો અભાવ કયાવના અભાવ છે. અનંતાનુભૂતિ કર્મનું
 રૂપીન કર્મના ઉદયમાં ઉદય પરિણમ છે ત્યાંથી જ ઉદય કર્મના

જ્ઞાતાદ્રષ્ટા થઈને પરના નિમિત્તથી માત્ર અસ્થિતરૂપે પરિણમે ત્યારે તેમાં નથી જ છે. આ અપેક્ષાએ, સમ્યગ્દષ્ટિ થયા પછી આસ્થિતરૂપના ઉદયરૂપ થઈ તેને જ્ઞાની અને અજ્ઞાન કહેવામાં આવ્યો છે. જ્યાંસુધી ત્રિવિધતાનો ઉપર તેમાં જોડાઈને જીવ રાગદ્વેષમોહભાવે પરિણમે છે ત્યાંસુધી જ તેને અજ્ઞાની અને કહેવામાં આવે છે. જ્ઞાની-અજ્ઞાનીનો અને બધે-અજ્ઞાનનો આ ત્રિવિધ જડરૂપે રાજ સ્વરૂપમાં હીન રહેવાના અવ્યાસદ્વારા કેવળજ્ઞાન પ્રગાવાથી જો સંપૂર્ણ સંપૂર્ણજ્ઞાની થાય છે ત્યારે તો તે સર્વથા નિરાશય થઈ અપ કો એવું કહેવાઈ ગયું છે.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માલિની)

વિજહતિ ન હિ સત્તાં મત્યયાઃ પૂર્વવદ્ધાઃ

સમયમનુસરંતો યદ્યપિ દ્રવ્યરૂપાઃ ।

ઇદપિ સત્ત્વરાગદ્વેષમોહવ્યુદાસા-

દવતરતિ ન જાતુ જ્ઞાનિનઃ કર્મવંધઃ ॥ ૧૧૮ ॥

અર્થ:—જોકે પાતપાનાના સમયને અનુસરતા (અર્થાત્ પાતપાનાના ઉદયમાં આવતા) એવા પૂર્વવદ્ધ (પૂર્વે અજ્ઞાન-અવસ્થામાં બંધાયેલા) જ પ્રત્યેક પાતપાની રાત્રી છોડતા નથી (અર્થાત્ સત્તામાં છે—દ્રવ્ય છે), તેમાં રાગદ્વેષમોહનો અભાવ હોવાથી જ્ઞાનીને કર્મબંધ કદાપિ અવગણ્ય પડતો નથી—એવું કહેવાય છે.

સાચા અર્થ:—જ્ઞાનીને પત્તુ પૂર્વે અજ્ઞાન-અવસ્થામાં બંધાયેલા દ્રવ્ય અવસ્થામાં દ્રવ્ય ॥ અને તેમના ઉદયકાળે ઉદયમાં આવતા થાય છે. પરંતુ તે જ જ્ઞાનીને કર્મબંધનું કારણ થતા નથી, કેમ કે જ્ઞાનીને રાગ રાગદ્વેષમોહ અભાવ છે. આથી જો રાગદ્વેષમોહનો અભાવ જુદાપૂર્વક રાગદ્વેષમોહની અવસ્થામાં મન્ય થાય.

હવે, આ જ અર્થ કહીને કહેનારી એ નાયાએ આપે છે તેની વચ્ચે કહે છે:—

(અનુદય)

રાગદ્વેષમોહનાં જ્ઞાનિનો યદ્યપિ વરઃ ।

તત્ત્વ જ ન વંશોદય ને હિ વંશજ કારણમ્ ॥ ૧૧૯ ॥

અર્થ:—જ્ઞાનીને રાગદ્વેષમોહનો અભાવ છે તેથી તેને વંશ કે ને (રાગદ્વેષમોહ) જ બંધનું કારણ છે. ૧૧૭—૧૧૯.

હવે આ અર્થના સમર્થનની બે ગાથાઓ કહે છે:—

રાગો દોસો મોહો ય આસ્રવા ણત્થિ સમ્મદિટ્ઠિસ્સ ।

તદ્ધા આસ્રવભાવેણ વિના હેદ્દુ ણ પચ્ચયા દ્ધાંતિ ॥ ૧૭૭ ॥

હેદ્દુ ચદુવિયપ્પો અટ્ટવિયપ્પસ્સ કારણં મણિદં ।

તેસિં પિ ય રાગાદી તેસિમભાવે ણ વજ્ઝંતિ ॥ ૧૭૮ ॥

રાગો દ્રેપો મોહથ આસ્રવા ન સંતિ સમ્પગ્ધે: ।

તસ્માદાસ્રવભાવેન વિના હેતવો ન પ્રત્યયા મયંતિ ॥ ૧૭૭ ॥

હેતુચતુર્વિધત્વ: અષ્ટવિધત્વસ્ય કારણં મણિતમ્ ।

તેષામપિ ચ રાગાદયસ્તેષામભાવે ન વચ્યંતે ॥ ૧૭૮ ॥

અન્યથાથી:—[રાગ:] રાગ, [દ્રેપ:] દ્રેષ [ચ મોહ:] અને મોહ—
[પ્રયા:] એ આસ્રવો [સમ્પગ્ધે:] સમ્યગ્દષ્ટિને [ન સંતિ] નથી [તસ્માન્]
[આસ્રવભાવેન વિના] આસ્રવભાવ વિના [પ્રત્યયા:] દ્રવ્યપ્રત્યયો [હેતવ:]
અર્થનાં કારણ [ન મયંતિ] થતા નથી.
[ચતુર્વિધત્વ: હેતુ:] (ભિધ્યાત્વાદિ) ચાર પ્રકારના હેતુઓ [અષ્ટવિધત્વ:]
પ્રકારનાં કર્મોનાં [કારણં] કારણ [મણિતં] કહેવામાં આવ્યા છે, [ચ] અને
તેમણે [તેમને] પછી [રાગાદય:] (૯૫ના) રાગાદિ ભાવો કારણ છે; [તેષાં
અર્થે] તેથી રાગાદિ ભાવોના અભાવમાં [ન વચ્યંતે] કર્મ અર્થનાં નથી. (ખરે
દષ્ટિને બધે નથી.)

ટીકા:—સમ્યગ્દષ્ટિને રાગદ્રેષમોહ નથી કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિપટ્ટાની અન્યથા
પણી છે (અર્થાત્ રાગદ્રેષમોહના અભાવ વિના સમ્યગ્દષ્ટિપણી બની શકતું નથી);
દ્રેષમોહના અભાવમાં તેને (સમ્યગ્દષ્ટિને) દ્રવ્યપ્રત્યયો પુરુષસકર્મણું (અર્થાત્
સકર્મણા અર્થનણું) હેતુપણી પાડતા નથી કારણ કે દ્રવ્યપ્રત્યયોને પુરુષસકર્મણા
પણીના હેતુઓ રાગાદિક છે; ખરે હેતુના અભાવમાં હેતુમાનનો (અર્થાત્ કારણના
ભાવમાં કાર્યનો) અભાવ પ્રસિદ્ધ દોષાથી જ્ઞાનીને બધે નથી.

નદિ રાગદ્રેષ, ન મોહ—એ આસ્રવ નથી મુદષ્ટિને.

તેથી જ આસ્રવભાવ વિણ નદિ પ્રત્યયો હેતુ બને; ૧૭૭.

હેતુ ચતુર્વિધ અષ્ટવિધ કર્મોત્પન્નું કારણ કહ્યા,

તેનાંય રાગાદિક કહ્યા, રાગાદિ નદિ ત્યાં બધે ના. ૧૭૮.

ભાવાર્થ:—અહીં, રાગદ્વેષમોહના અભાવ વિના સમ્યક્દષ્ટિપૂર્વક નહિ એવો અવિનાશાવી નિયમ કહ્યો ત્યાં મિથ્યાત્વસંબંધી રાગાદિકને જ જ્યેષ્ઠ મિથ્યાત્વસંબંધી રાગાદિકને જ અહીં રાગાદિક ગણવામાં આવ્યા છે. યથા પડી કોઈક ચારિત્રમોહસંબંધી રાગ રહે છે તેને અહીં ગણ્યો નથી; આ રીતે સમ્યક્દષ્ટિને ભાવાભવનો અર્થાત્ રાગદ્વેષમોહનો અભાવ છે. બંધના હેતુ યથામાં હેતુભૂત એવા રાગદ્વેષમોહનો સમ્યક્દષ્ટિને અભાવ હોય તેવો બંધના હેતુ થતા નથી, અને દ્રવ્યાભવો બંધના હેતુ નહિ થતા હોય તેવો દષ્ટિને—જ્ઞાનીને—બંધ થતો નથી.

સમ્યક્દષ્ટિને જ્ઞાની કહેવામાં આવે છે તે થોડા જ છે. 'જ્ઞાની' શબ્દ ત્રણ અર્થોમાં વપરાય છે:—(૧) પ્રથમ તો, જેને જ્ઞાન હોય તે જ્ઞાની કહેવામાં આવે છે. (૨) સમ્યક્ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. (૩) સંપૂર્ણ જ્ઞાન અને અપૂર્ણ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. કેવળી ભગવાન જ્ઞાની અને જુદા જુદા જ્ઞાની નિર્દાનમાં પાંચ ભાગોનું કથન કરતાં બારમા ગુણસ્થાન સુધી અજ્ઞાનભાવ પ્રમાણે અનેકાંતથી અર્થમાં ત્રણ વિધિનિયેષ નિર્ણયપણે સિદ્ધ થાય છે; સર્વજ્ઞાન પૂર્ણ સિદ્ધ થતું નથી.

દષ્ટિ, જ્ઞાનીને બંધ થતો નથી એ શુદ્ધતત્ત્વનું આધાર છે અને અર્થમાં કહે છે:—

(વચનનિર્ણય)

અધ્યાસ્ય શુદ્ધતત્ત્વમુદ્ધતરોપચિદ્-

મૈત્રામ્યમેવ કલ્પયન્તિ તદૈવ યે તે ।

રાગાદિમુક્તમનસઃ મનતે ધર્મતઃ

વચ્ચન્તિ ચંદ્રચિત્તુરં મમયમ્પ મારમ્ ॥ ૧૨૦ ॥

અર્થ:—શુદ્ધ જ્ઞાન (કેવળ) જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. જેને જ્ઞાન હોય તે જ્ઞાની કહેવામાં આવે છે. (૨) સમ્યક્ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. (૩) સંપૂર્ણ જ્ઞાન અને અપૂર્ણ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. કેવળી ભગવાન જ્ઞાની અને જુદા જુદા જ્ઞાની નિર્દાનમાં પાંચ ભાગોનું કથન કરતાં બારમા ગુણસ્થાન સુધી અજ્ઞાનભાવ પ્રમાણે અનેકાંતથી અર્થમાં ત્રણ વિધિનિયેષ નિર્ણયપણે સિદ્ધ થાય છે; સર્વજ્ઞાન પૂર્ણ સિદ્ધ થતું નથી.

અર્થ:—શુદ્ધ જ્ઞાન (કેવળ) જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. જેને જ્ઞાન હોય તે જ્ઞાની કહેવામાં આવે છે. (૨) સમ્યક્ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. (૩) સંપૂર્ણ જ્ઞાન અને અપૂર્ણ જ્ઞાનના અર્થમાં આવે છે. કેવળી ભગવાન જ્ઞાની અને જુદા જુદા જ્ઞાની નિર્દાનમાં પાંચ ભાગોનું કથન કરતાં બારમા ગુણસ્થાન સુધી અજ્ઞાનભાવ પ્રમાણે અનેકાંતથી અર્થમાં ત્રણ વિધિનિયેષ નિર્ણયપણે સિદ્ધ થાય છે; સર્વજ્ઞાન પૂર્ણ સિદ્ધ થતું નથી.

શુદ્ધનય શ્રુતજ્ઞાનનો અંશ છે અને શ્રુતજ્ઞાન તો પરોક્ષ છે તેથી તે અપેક્ષાએ શુદ્ધનય દ્વારા થતો શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ પણ પરોક્ષ છે. વળી તે અનુભવ એકદેશીય છે તે અપેક્ષાએ તેને બ્યવહારથી પ્રત્યક્ષ પણ કહેવામાં આવે છે. સાક્ષાત્ શુદ્ધનય કેવળજ્ઞાન થયે થાય છે.

હવે કહે છે કે જ્યોત્ શુદ્ધનયથી શ્રુત થાય તેઓ કર્મ બાંધે છે:—

(વસંતતિમાસ)

મચ્યુત્ય શુદ્ધનયતઃ પુનરેવ યે તુ
રાગાદિયોગમુપયાંતિ વિમુક્તવૌધાઃ ।
તે કર્મવંધમિદ ચિન્તિતિ પૂર્વવદ્-

દ્રવ્યાસ્રવૈઃ કૃતવિચિત્રવિવલ્પજાલમ્ ॥ ૧૨૧ ॥

અર્થ:—જગતમાં જ્યોત્ શુદ્ધનયથી શ્રુત થઈને ફરીને રાગાદિના સંબંધને ધારી છે એવા જોવા, જેમજે જ્ઞાનને ઊપદ્રુ છે એવા થયા થકા, પૂર્વવદ્ દ્રવ્યાસ્રવો કારણે કર્મબંધને પારખી કરે છે (-કર્મને બાંધે છે)—કે જે કર્મબંધ અનેક પ્રકારના વેકરણોની ભગ કરે છે (અર્થાત્ જે કર્મબંધ અનેક પ્રકારનો છે).

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયથી શ્રુત થતું એટલે ‘હું શુદ્ધ છું’ એવા પરિભ્રમનથી રહીને અશુદ્ધિ પરિભ્રમણ તે અર્થાત્ મિથ્યાદૃષ્ટિ બની જતી તે. એમ થતાં, જવને મિથ્યાત્વ સંબંધી રાગાદિક ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી દ્રવ્યાસ્રવો કર્મબંધનાં કારણ થાય છે અને તેથી અનેક પ્રકારનાં કર્મ બંધાય છે. આ રીતે અહીં શુદ્ધનયથી શ્રુત થવાનો અર્થ શુદ્ધતાના જ્ઞાનથી (સમ્યક્ત્વથી) શ્રુત થતું એમ કરવો. ઉપયોગની અપેક્ષા અહીં ગૌરવ છે, અર્થાત્ શુદ્ધનયથી શ્રુત થતું એટલે શુદ્ધ ઉપયોગથી શ્રુત થતું એવો અર્થ અહીં મુખ્ય નથી; કારણ કે શુદ્ધોપયોગરૂપ રહેવાનો કાળ અદ્ય હોવાથી માત્ર અદ્યકાળ શુદ્ધોપયોગરૂપ રહીને પછી તેનાથી છૂટી જ્ઞાન અન્ય ક્ષેત્રોમાં ઉપયુક્ત થાય તેવા મિથ્યાત્વ વિના જે રાગનો અંશ છે તે અભિપ્રાયપૂર્વક નહિ હોવાથી જ્ઞાનીને માત્ર અદ્ય બંધ થાય છે અને અદ્ય બંધ સંસારનું કારણ નથી. મારે અહીં ઉપયોગની અપેક્ષા મુખ્ય નથી.

હવે જે ઉપયોગની અપેક્ષા લઈએ તો આ પ્રમાણે અર્થ થશે:—જવ શુદ્ધ સ્વરૂપના નિર્વિકલ્પ અનુભવથી છૂટે પરંતુ સમ્યક્ત્વથી ન છૂટે તો તેને અવિરતમાદના રાગથી કાંઈક બંધ થાય છે. તે બંધ જોકે અજ્ઞાનના પક્ષમાં નથી તોપણ તે બંધ તો જ. મારે તેને મટાડવાને સમ્યક્દૃષ્ટિ જ્ઞાનીને શુદ્ધનયથી ન છૂટવાનો અર્થાત્ શુદ્ધોપયોગમાં સ્તીન રહેવાનો ઉપદેશ છે. કેવળજ્ઞાન થતાં સાક્ષાત્ શુદ્ધનય થાય છે. ૧૭૭-૧૭૮.

હવે આ જ અર્થને દર્શાવવા ૬૬ કહે છે:—

જહ પુરિસેનાહારો ગહિદો પરિણમદિ સો ॥ ૧૭૫ ॥
 માંસવસારુહિરાદી ભાવે ઉદરગ્ગિસંજુતો ॥ ૧૭૬ ॥
 તહ જાણિસ્સ દુ પુવ્વં જે વદ્ધા પચયા વહુવિય
 વજ્જંતે કમ્મં તે જયપરિહીણા દુ તે જીવા ॥ ૧૭૭ ॥
 યયા પુરુષેનાહારો ઘટીતઃ પરિણમતિ સોડનેરુવિય્ ॥ ૧૭૮ ॥
 માંસવસારુહિરાદીન ભાવાન્ ઉદરાગ્નિસંયુક્તઃ ॥ ૧૭૯ ॥
 તયા જ્ઞાનિનસ્તુ પૂર્વં યં વદ્ધાઃ પ્રત્યયા વહુવિકલ્પ ॥ ૧૮૦ ॥
 વજ્જંતિ કર્મં તે નપરિહીનામ્તુ તે જીવાઃ ॥ ૧૮૦ ॥

અન્યથાર્થ:—[યયા] એમ [પુરુષેણ] પુરુષ વડે [ઘટીતઃ] ઉદરગ્નિથી સંજુત
 [આહારઃ] જે આહાર [સઃ] તે [ઉદરાગ્નિસંયુક્તઃ] માંસ, વસા, રૂધિર અને
 [વનેકવિયં] અનેક પ્રકારે [માંસવસારુહિરાદીન] માંસ, વસા, રૂધિર અને
 [પરિણમતિ] પરિણમે છે, [તયા તુ] તેમ [જ્ઞાનિનઃ] જ્ઞાનીને
 [વદ્ધા] આપેલા [પ્રત્યયાઃ] જે પ્રત્યયા છે [તે] તે [વહુવિકલ્પ] ના
 [કર્મ] કર્મ [વજ્જંતિ] બાંધે છે;—[તે જીવાઃ] એવા જીવો [નપરિહી]
 શુદ્ધનયથી સ્થિત થયેલા છે. (જ્ઞાની શુદ્ધનયથી સ્થિત થાય તે તેને સમગ્રદિશાએ
 ટીકા:—ન્યારે જ્ઞાની શુદ્ધનયથી સ્થિત થાય તે તેને સમગ્રદિશાએ
 થયાથી, પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યપ્રત્યયો, પોતાને (-દ્રવ્યપ્રત્યયોને) કર્મબદ્ધતા હેતુએ
 સદ્ભાવ થતાં હેતુમાન ભાવનું (-કાર્યભાવનું) અનિવાર્યપણું હોવાથી તે
 ભાવે પુરુષગતકર્મને બદલે પરિણમતા છે. અને આ અપ્રસિદ્ધ પદ્ધતિ
 આનું દર્શાવતી નગતમાં પ્રસિદ્ધ—અણીતું છે); કારણ કે ઉદરગ્નિ, પુરુષ
 હારને રસ, રૂધિર, માંસ આદિ ભાવે પરિણમતા છે એમ જોવામાં આવે છે.
 ભાવાર્થ:—જ્ઞાની શુદ્ધનયથી છૂટે ત્યારે તેને સમગ્રદિશાએ
 , સમગ્રદિશાએના નિમિત્તે દ્રવ્યપ્રત્યયો અવરથ કર્મબદ્ધતાં કારણ થાય છે.
 પુરુષે મહેલ અહાર જે, ઉદરગ્નિને મયોગ ને
 બહુવિધ માંસ, વસા અને રૂધિરાદિ ભાવે પરિણમઃ ૧
 ત્યમ જ્ઞાનીને પણ પ્રત્યયો જે પૂર્વકાગ્નિબદ્ધ ૧
 વિધ બાંધે કર્મ, જે જીવ શુદ્ધનયપરિસ્થિત અને ૧

જો અર્થે પરિણમિ છે. ટીકામાં જે એમ કહ્યું છે કે “દ્રવ્યપ્રત્યયો પ્રગત-
ર્થે પરિણમ્ય છે”, તે નિમિત્તથી કહ્યું છે. ત્યાં એમ સમજવું કે “દ્રવ્ય-
નિમિત્તભૂત થતાં કાર્મણ્યવર્ગિણા રવયં અર્થે પરિણમિ છે.”

-હવે આ સર્વ કથનના તાત્પર્ય રીતે કહે છે:—

(અબ્રુપ)

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि ।

नास्ति चेषस्तद्व्यागात्तस्यागाद्धं एव हि ॥ ૧૨૨ ॥

અર્થ:—અહીં આ જ તાત્પર્ય છે કે શુદ્ધનય ત્યાગવાયોગ્ય નથી; કારણ કે ત્યાગથી (કર્મના) બંધ થતો નથી અને તેના ત્યાગથી બંધ જ થાય છે.

ફરી, ‘શુદ્ધનય છાડવાયોગ્ય નથી’ એવા અર્થને દૃઢ કરનારું કાવ્ય કહે છે:—

(શાસ્ત્રવિદિગ્ધિત)

पीरोदारमहिम्न्यनादिनिषने बोधे निचग्रन्धृतिं

त्याग्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वरूपः कर्मणाम् ।

तत्रस्याः स्वमरीचिचक्रमचिरात्સંહત્ય નિર્યદ્વહિ:

पूर्ण ज्ञानपनौयमेकमचलं पश्यति ज्ञातं महः ॥ ૧૨૩ ॥

અર્થ:—પીર (અગાધગતિ રહિત) અને ઉદાર (સર્વ પદાર્થોમાં વિસ્તારબુદ્ધિ) મહિમા છે એવા અનાદિનિષન જ્ઞાનમાં સ્થિરતા બાંધેલો (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં પરિ-
સ્થિત રાખેલો) શુદ્ધનય—કે જે કર્મોને મૂળથી નાશ કરનારો છે તે—પવિત્ર ધર્મો
(શુદ્ધિ) પ્રરૂપેએ કદી પણ છાડવાયોગ્ય નથી. શુદ્ધનયમાં સ્થિત તે પ્રરૂપે, બહાર
ના એવા ધોનાના જ્ઞાનકિરણોના સમૂહને (અર્થાત્ કર્મોના નિમિત્તે પરમાં જતી
તે વિશેષ વ્યજિઓને) અદ્ય કાળમાં સમેટીને, પૂર્ણ, જ્ઞાનઘનતા પ્રજ્ઞા, એક,
૧, શાંત તેજને—તેજ:પ્રજ્ઞને—દેખે છે અર્થાત્ અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનય, જ્ઞાનના સમસ્ત વિશેષોને ગૌણ કરી તથા પરનિમિત્તથી
સમસ્ત બાંધેને ગૌણ કરી, આત્માને શુદ્ધ, નિત્ય, અભેદરૂપ, એક ચેતન્યમાત્ર
કરે છે અને તેથી પરિણમિ શુદ્ધનયના વિષયસ્વરૂપ ચેતન્યમાત્ર શુદ્ધ આત્મામાં
—સ્થિત—થતી બળ છે. જે પ્રમાણે શુદ્ધનયનો આભય કરનારા એવા અદ્ય
તે બહાર નીકળતી જ્ઞાનની વિશેષ વ્યજિઓને સંકેટીને, શુદ્ધનયમાં (આત્માની
ના અનુભવમાં) નિર્વિકલ્પપણે કરતાં સર્વ કર્મોથી બિન્ન, કેવળજ્ઞાનસ્વરૂપ,
તે પ્રરૂપેએ, વીતરંગ જ્ઞાનમૂર્તિસ્વરૂપ ધોનાના આત્માને દેખે છે અને શુદ્ધ-

સંવર અધિકાર

મોહરામરૂપ ફર કરી, સમિતિ ગુમિ મત પાળી;
સંવરમય આત્મા કંઈ, નમું તેહ, મન ધારી.
પ્રથમ ટીકાકાર આચાર્યમહારાજ કહે છે કે “હવે સંવર પ્રવેશ કરે છે.”
સવ રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયા પછી હવે સંવર રંગભૂમિમાં પ્રવેશ છે.
ત્યાં પ્રથમ તો ટીકાકાર આચાર્યદેવ સર્વ સ્વાંગને બાબુનારા સમ્પ્રદાનના
મારૂપ મંગળ કરે છે:—

(સાદ્વર્ણિતિ)

આસંસારવિરોપિસંવરજયૈકાંતાવલિપ્તાસવ-
ન્યકારાત્મતિલગ્નનિત્યવિનયં સંપાદયત્સંવરમ્ ।
વ્યાવૃત્તં પરરૂપતો નિયમિતં સમ્યક્સ્વરૂપે સ્ફુર-
ગ્ગ્યોતિશિન્મયમુગ્ધવલં નિજરસમાગ્ધારમુગ્ધૃમથે ॥ ૧૨૫ ॥

અર્થ:—અનાદિ સંસારથી માંડીને પાતાના વિરોધી સંવરને છનવાથી જે
કાંઈ ગર્વિન (અત્યંત આદરણ્ય) થયો છે એવો જે આસવ તેનો નિરસ્તાર
વાથી જેણે સદા વિજય મેળવ્યો છે એવા સંવરને ઉત્પન્ન કરતી, પરરૂપથી ભુલી
પરદવ્ય અને પરદવ્યના નિમિત્તે થતા ભાવોથી ભુલી, પાતાના સમ્પદ
માં નિશ્ચયપણે પ્રકાશાતી, ચિન્મય, ઉન્નતજ (નિરાગ્રાહ, નિર્મળ, દરીદ્રમાન)
નિજરસના (પાતાના કૌન્યરસના) ભારવાગી—અતિશયપ્રભુવાગી કથેદિન મગ
છે, દેજાય છે.

બાવાર્થ:—અનાદિ કાળથી જે આસવનો વિરોધી છે એવા સંવરને છતીને
માથી ગર્વિન થયો છે. તે આસવનો નિરસ્તાર કરીને તેના પર જેણે હંમેશા
વિજય મેળવ્યો છે એવા સંવરને ઉત્પન્ન કરના, સમસ્ત પરરૂપથી ભુલે અને પાતાના

ધ્યાનમાં પ્રવૃત્તિ કરીને અંતર્બુદ્ધિમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે. શુદ્ધનયનું આનંદ હોત્તે છે. આરે શુદ્ધનયના આસન્નન વડે જ્યાંગુધી કેવળજ્ઞાન ઉપર નિર્મલ સમ્યક્દષ્ટિ જીવેએ શુદ્ધનય છોડવાગોચર નથી એમ શ્રી ગુરુએનો ઉપદેશ છે.

હવે, આશ્ત્રવેનો સર્વથા નાશ કરવાથી જે જ્ઞાન પ્રગટ થયું તે નિરુપમાનું કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાકાંના)

રાગાદીનાં પ્રગિતિ વિગમાત્સર્વતોડ્વ્યામ્નવાણાં
નિત્યોદ્યોતં કિમપિ પરમં વસ્તુ સંપદ્યતોડ્વન્તઃ ।
સ્ફારસ્ફારૈઃ સ્વરસવિસૈરઃ પ્રાવયત્સર્વમાર્વા-
નાન્નોકાંતાદચન્મતુલ્લં જ્ઞાનમુન્મદમૈતત્ ॥ ૧૨૪ ॥

અર્થ:—જેનો ઉદ્યોત (પ્રકાશ) નિત્ય છે એવી કોઈ પરમ વસ્તુને રંગમાં રૂપનારા પુરુષને, રાગાદિક આશ્ત્રવેનો રીધ સર્વ પ્રકારે નાશ થવાથી પ્રગટ થયું—કે જે જ્ઞાન અત્યંત અત્યંત (અનંત અનંત) વિસ્તાર પામ્યા નિર્મલ ફેલાવથી સર્વ ભાવોને તરબોળ કરી દે છે અર્થાત્ સર્વ પદાર્થોને જાણે છે એ પ્રગટ થયું ત્યારથી સદાકાળ અચળ છે અર્થાત્ પ્રગટ્યા પછી સદા એવું ને એવું રહે છે—ચળતું નથી, અને જે જ્ઞાન અતુલ છે અર્થાત્ જેના તુલ્ય બીજું કોઈ નથી.

ભાવાર્થ:—જે પુરુષ અંતરંગમાં ચૈતન્યમાત્ર પરમ વસ્તુને રૂપે શુદ્ધનયના આસન્નન વડે તેમાં એકાદ્ર થતો જાય છે તે પુરુષને, તત્કાળ સર્વ જગત્ આશ્ત્રવભાવેનો સર્વથા અભાવ થઈને, સર્વ અતીત, અનાગત ને વર્તમાન જગત્ જાણનારું નિશ્ચળ, અતુલ કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે. તે જ્ઞાન સર્વથી મહાન ને સમાન અન્ય કોઈ નથી.

ટીકા:—આ રીતે આશ્ત્રવ (રંગભૂતિમાંથી) બહાર નીકળી ગયે.

ભાવાર્થ:—આશ્ત્રવનો સ્વાંગ રંગભૂતિમાં આવ્યો હતો તેને જ્ઞાને તેના સ્વરૂપે જાણી લીધો તેથી તે બહાર નીકળી ગયો. ૧૭૬—૧૮૦.

યોગ કથાય ચિત્થાત્વ અસંયમ આશ્ત્રવ દ્રવ્ય ત આગમ ગાયે
રાગ વિરોધ વિગ્રહ વિભાવ અજ્ઞાનમયી યહ ભાવ જતાયે;
જે મુનિરાજ કરે ધનિ પાત્ર મુરિદિ સમાજ લયે સિવ યાયે
કાય નવાય નમ્ર ચિત્ત લાય કરૂં જય પાય લહૂં મન ભાયે.

આમ આ સમયસારમંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પડિત અવધાન ભાષાવચનિકામાં યાચો આશ્ત્રવ અધિકાર પૂર્ણ થયો.

[નોકર્મણિ] નોકર્મમાં [ઉપયોગઃ] ઉપયોગ [નાસ્તિ] નથી [ચ] અને યોગે [ઉપયોગમાં] [કર્મ] કર્મ [ચ અપિ] તેમ જ [નોકર્મ] નોકર્મ [નો] નથી. — [ઇતદ્ તુ] આપું [અવિપરીત] અવિપરીત [જ્ઞાન] જ્ઞાન [યદા] જ્યારે [જીવસ્ય] જીવને [મયતિ] થાય છે, [તદા] ત્યારે [ઉપયોગનુદ્ધાત્મા] ઉપયોગસ્વરૂપ શુદ્ધાત્મા [કિંચિદ્ માયં] ઉપયોગ સિવાય અન્ય કશું પણ જાણતે નથી કરોતિ] કરતો નથી.

ટીકા—ખરેખર એક વસ્તુની બીજી વસ્તુ નથી. (અર્થાત્ એક વસ્તુની જીવ વસ્તુ કંઈ સંબંધી નથી) કારણ કે બન્નેના પ્રકારો ભિન્ન હોવાથી તેમને એક ની અનુપપત્તિ છે (અર્થાત્ બન્નેની સત્તા જુદી જુદી છે); અને એ રીતે એક ની બીજી વસ્તુ નહિ હોવાથી એક સાથે બીજીને આધારાધિયસંબંધ પણ નથી જ. (દરેક વસ્તુને) પાતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠાપ (દૃષ્ટ્યે સ્વરૂપાપ) જ આધારાધિયસંબંધ છે. માટે જ્ઞાન કે જે જાગૃત્કિયાસ્વરૂપ પાતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત (સ્વરૂપ) છે જાગૃત્કિયાનું જ્ઞાનથી અભિન્નપણું હોવાને લીધે, જ્ઞાનમાં જ છે; કોષાદિક કે જે પ્રતિષ્ઠિતિયાસ્વરૂપ પાતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત છે તે, કોષાદિકિયાનું કોષાદિકી અભિન્નપણું જાને લીધે, કોષાદિકમાં જ છે. (જ્ઞાનનું સ્વરૂપ જાગૃત્કિયા છે, માટે જ્ઞાન આધિય અને જાગૃત્કિયા આધાર છે. જાગૃત્કિયા આધાર હોવાથી એમ કહ્યું કે જ્ઞાન જ આધાર છે, કારણ કે જાગૃત્કિયા અને જ્ઞાન જુદાં નથી. આ રીતે એમ સિદ્ધ થયું કે જ્ઞાનમાં જ છે. એવી જ રીતે કોષ કોષમાં જ છે.) વગી કોષાદિકમાં, કર્મમાં નોકર્મમાં જ્ઞાન નથી અને જ્ઞાનમાં કોષાદિક, કર્મ કે નોકર્મ નથી કારણ કે તેમને સ્વરૂપ અત્યંત સ્વરૂપ-વિપરીતતા હોવાથી (અર્થાત્ જ્ઞાનનું સ્વરૂપ અને કોષાદિક ન જ કર્મ-નોકર્મનું સ્વરૂપ અત્યંત વિરુદ્ધ હોવાથી) તેમને પરમાર્થજન આધારાધિયસંબંધ નથી. વગી જ્ઞાનનું સ્વરૂપ જેમ જાગૃત્કિયા છે તેમ (જ્ઞાનનું સ્વરૂપ) પ્રતિષ્ઠિતિયા પણ છે એમ, અને કોષાદિકનું સ્વરૂપ જેમ કોષાદિકિયા છે તેમ (કોષાદિકનું સ્વરૂપ) જાગૃત્કિયા પણ છે એમ કહી રીતે સ્થાપી શકાતું નથી; કારણ કે જાગૃત્કિયા અને કોષાદિકિયા ભિન્ન ભિન્ન સ્વભાવે પ્રકાશી છે અને એ રીતે સ્વભાવો ભિન્ન હોવાથી વસ્તુઓ ભિન્ન જ છે. આ રીતે જ્ઞાનને અને અજ્ઞાનને (કોષાદિકને) આધારાધિયસંબંધ નથી.

વગી વિરુદ્ધ સમજાવવામાં આવે છે:—જ્યારે એક જ આકારને પાતાની પ્રતિમાં સ્થાપીને (આકારને) આધારાધિયભાવ વિચારવામાં આવે ત્યારે આકારને પાતાના અન્ય દ્રવ્યોમાં આધારાધિયભાવે નિરોધ જ હોવાથી (અર્થાત્ અન્ય દ્રવ્યોમાં સ્થાપવાનું અશક્ય જ હોવાથી) જુદાં ભિન્ન આકારની અપેક્ષા પ્રભવતી નથી. સ્થાપી શકતી નથી, ફરી ભય છે, દૃઢભવતી નથી); અને તે નહિ પ્રભવતાં, એક

સ્વરૂપમાં નિશ્ચય એવો આ ચૈતન્યપ્રકાશ નિજરસની અતિશયતાપૂર્વક ઉદય પામે છે.

ત્યાં (સંવર અધિકારની)-સરૂપ્યાતમાં જ, (ભગવાન કુંડુકાચી કર્મના સંવર કરવાનો ઉત્કૃષ્ટ ઉપાય જે બેઢવિજ્ઞાન તેની પ્રશંસા કરે છે-

ઉવઓગે ઉવઓગો કોહાદિસુ નત્થિ કો વિ ઉવઓગો
કોહો કોહે ચેવ હિ ઉવઓગે નત્થિ સ્વલુ કોહો ॥ ૧૮૧
અટ્ટવિયપ્પે-કમ્મે ઓકમ્મે ચાવિ નત્થિ ઉવઓગો ॥
ઉવઓગમ્મિ ય કમ્મં નોકમ્મં ચાવિ નો અત્થિ ॥ ૧૮૨
એયં તુ અવિવરીદં નાણં જહયા દુ હોદિ જીવસ્સ ॥
તહયા ન કિંચિ કુન્વદિ ભાવં ઉવઓગસુદ્ધપ્પા ॥ ૧૮૩

ઉપયોગે ઉપયોગઃ ક્રોધાદિષુ નાસ્તિ કોડપ્પુપયોગઃ ।

ક્રોધઃ ક્રોધે ચૈવ હિ ઉપયોગે નાસ્તિ સ્વલુ ક્રોધઃ ॥ ૧૮૧

અટ્ટવિકલ્પે કર્મણિ નોકર્મણિ ચાપિ નાસ્ત્યુપયોગઃ ।

ઉપયોગે ચ કર્મ નોકર્મ ચાપિ નો અસ્તિ ॥ ૧૮૨ ॥

एतच्चविपरीतं ज्ञानं यदा तु भवति जीवस्य ।

तदा न किंचित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा ॥ ૧૮૩ ॥

અન્યથાર્થઃ—[ઉપયોગઃ] ઉપયોગ [ઉપયોગે] ઉપયોગમાં છે, [ક્રોધાદિકમાં] [કોડપિ ઉપયોગઃ] કેઈ ઉપયોગ [નાસ્તિ] નથી; [ચ] વળી ક્રોધ [ક્રોધે યવ હિ] ક્રોધમાં જ છે, [ઉપયોગે] ઉપયોગમાં [સ્વલુ] [ક્રોધઃ] ક્રોધ [નાસ્તિ] નથી. [અટ્ટવિકલ્પે કર્મણિ] આઠ પ્રકારનાં કર્મ

ઉપયોગમાં ઉપયોગ, કેા ઉપયોગ નહિ ક્રોધાદિમાં,
છે ક્રોધ ક્રોધ મર્દા જ, નિશ્ચય ક્રોધ નહિ ઉપયોગમાં.
ઉપયોગ છે નહિ અટ્ટવિધ કર્મો અને નોકર્મમાં,
કર્મો અને નોકર્મ કંઈ પણ છે નહિ ઉપયોગમાં.
આવું અવિપરીત જ્ઞાન જ્યારે ઉદભવે છે જ્યારે,
જ્યારે ન કંઈ પણ ભાવ તે ઉપયોગશુદ્ધાત્મા કરે.

ને કામદિનાં બેર પાપાનો નીચ અવધાન દેવાથી બેરજ્ઞાન થતર થાય છે
 મ વળાય છે કે જ્ઞાનનો કવચાથ નો ખાત્ર લગવૃત્તાનો જ છે, જ્ઞાનમાં બેર કામ-
 વૃત્તના—આકૃત્તનારૂપ કાંઈકથિતરૂપ—આમે છે ને કાર્ય પુરુષચરિતરૂપ છે, જરૂર
 મ જ્ઞાન અને કામદિનાં બેરનો કવચ અર્થ છે અર્થાત્ અનુભવ થાય છે.
 પાપું બેરજ્ઞાન થાય ત્યારે આ-આ આનંદિન થાય છે કાણુ કે નેને વળાય છે
 ને બેર જ્ઞાનવૃત્ત જ રહ્યો છે, કામદિરૂપ ફરી થયો નથી.” આરે આભાર્ય
 રહ્યું છે કે “હે કા-પુરુષા! હવે નમં શુદ્ધિ થાએ.”

ટીકા—આ દીને આ બેરવિજ્ઞાન ત્યારે જ્ઞાનને અવધાન થયું (કામદિ-
) વિષદીનતા નહિ પમારુ” થયું અર્થવૃત્તપણું ફરે છે, ત્યારે શુદ્ધ-ઉપચાર-
 વૃત્ત થો જ્ઞાન દેવજ્ઞ જ્ઞાનરૂપ જ બેરુ” થયું જરા થયું કામદેવમાદરૂપ આવને
 થી; નેથી (એમ મિઠ થયું કે) બેરવિજ્ઞાનથી શુદ્ધ આ-આની ઉપસંખિ
) થાય છે અને શુદ્ધ આ-આની ઉપસંખિથી રામદેવમાદનો (અર્થાત્ આ-
) અભાવ બેરુ” લગતુ છે એવાં કાવર થાય છે. ૧૮૧—૧૮૩.

હવે પૂછ છે કે બેરવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આ-આની ઉપસંખિ (અનુભવ) કય
 થ છે? તેના ઉત્તરૂપ આપા કહે છે:—

જહ કણયમગ્ગિતવિયં પિ કણયભાવં ણ તં પરિચયદિ ।
 નહ કમ્મોદયતવિદો ણ જહદિ ણાણી દુ ણાણિતં ॥ ૧૮૪ ॥

एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं ।
 अण्णाणतमोच्छण्णो आदमहावं अयाणंतो ॥ १८५ ॥

यथा कनकमप्रितप्तमपि कनकभावं न सं परित्यजति ।

तथा कर्मोदयनक्षो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानिन्सम् ॥ १८४ ॥

एवं जानाति ज्ञानी भक्षानी मनुते रागमेवात्मानम् ।

अज्ञानतमोऽवगच्छः आत्मस्वभावात्मज्ञानम् ॥ १८५ ॥

ત્યમ અગ્નિતપ્ત મુવર્ણ પણુ નિજ સ્વર્ણભાવ નહિ તજે,
 ત્યમ કર્મઉદયે તપ્ત પણુ જ્ઞાની ન જાનીપણું તજે. ૧૮૪.
 છવ જાની જાણે આમ, પણુ અજાની રાગ જ છવ ગણે,
 આત્મસ્વભાવ-અજ્ઞાણ જે અજ્ઞાનતમ-આચ્છાદને. ૧૮૫.

આકાશ જ એક આકાશમાં જ પ્રતિષ્ઠિત છે' એમ બરાબર સમજી જવાય છે એવું સમજી જનારને પર-આધારાધેયપણું લાસતું નથી. એવી રીતે જ્યારે એક પોતાની બુદ્ધિમાં સ્થાપીને (જ્ઞાનતા) આધારાધેયભાવ વિચારવામાં આવે ત્યારે બાકીનાં અન્ય દ્રવ્યોમાં આરોપવાનો નિરોધ જ હોવાથી બુદ્ધિમાં ભિન્ન આધારની પ્રભવતી નથી; અને તે નહિ પ્રભવતાં, 'એક જ્ઞાન જ એક જ્ઞાનમાં જ પ્રતિ-એમ બરાબર સમજી જવાય છે અને તેથી એવું સમજી જનારને પર-આધારાધેયપણું લાસતું નથી. માટે જ્ઞાન જ જ્ઞાનમાં જ છે, કોધાદિક જ કોધાદિકમાં જ છે.

આ પ્રમાણે (જ્ઞાનનું અને કોધાદિક તેમ જ કર્મ-નોકર્મનું) સેદ્ધી સિદ્ધી રીતે સિદ્ધ થયું.

ભાવાર્થ:—ઉપયોગ તો ચૈતન્યનું પરિણમન હોવાથી જ્ઞાનરૂપી કોધાદિક ભાવકર્મ, જ્ઞાનાવરણાદિ દ્રવ્યકર્મ, શરીરાદિ નોકર્મ—એ બધાંય પુનઃપરિણામ હોવાથી જડ છે; તેમને અને જ્ઞાનને પ્રદરભેદ હોવાથી અત્યંત ભેદ ઉપયોગમાં કોધાદિક, કર્મ તથા નોકર્મ નથી અને કોધાદિકમાં, કર્મમાં તથા નોકર્મમાં ઉપયોગ નથી. આ રીતે તેમને પારમાર્થિક આધારાધેયસંબંધ નથી; કોધાદિક પોતપોતાનું આધારાધેયપણું પોતપોતામાં જ છે. માટે ઉપયોગ ઉપયોગમાં જ કોધમાં જ છે. આ રીતે ભેદવિજ્ઞાન બરાબર સિદ્ધ થયું. (ભાવકર્મ વગેરેને ઉપયોગનો ભેદ જાણવો તે ભેદવિજ્ઞાન છે.)

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાંદલવિકીરિત)

ચૈત્ર્યં જડરૂપતાં ચ દષતોઃ કૃત્વા વિભાગં દ્વયો-

રન્તર્દાણદારણેન પરિતો જ્ઞાનસ્ય રાગસ્ય ચ ।

ભેદજ્ઞાનમુદેનિ નિર્મલમિદં મોદધ્વમધ્યાસિતાઃ

શુદ્ધજ્ઞાનચતૌષ્ઠમેકમધુના સંતો દ્વિતીયચ્યુતાઃ ॥ ૧૨૬ ॥

અર્થ:—ચૈત્ર્યના (ચૈતન્યરૂપના) ધરતું જ્ઞાન અને જડરૂપના પરતો એ બેને, અંતરંગમાં દારણ વિદારણ વડે (અર્થાત્ ભેદ પાડવાના ઉપાય વડે), જ્ઞાનરૂપી વિભાગ કરીને (—સમસ્ત પ્રકારે બંનેને જુદાં કરીને—), આ ભેદજ્ઞાન દેવ પામ્યું છે; માટે હવે એક શુદ્ધ જ્ઞાનપ્રપન્ના પુષ્પમાં વિનવીતથી એટલે નામથી સંદેવ એવા તે સતપુરુષા! તમે મુનિ ધર્મા-

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન તો ચૈતન્યરૂપ ॥ અને રાગાદિક પુનઃપરિણામ જડ છે; પરંતુ અજ્ઞાનથી, જ્યારે કે જ્ઞાન પત્તુ રાગાદિક ધર્મ મનુ રૂપ એક છે અર્થે જ્ઞાન અને જડાદિ બંને એકરૂપ—જડરૂપ—ભાગે છે. આથી અંતરંગમાં

સુદં તુ વિયાણંતો સુદં ચેવણ્યં લહૃદ્ જીવો ।

જાણંતો દુ અસુદં અસુદમેવણ્યં લહૃદ્ ॥ ૧૮૬ ॥

શુદં તુ વિજાનન્ શુદં ચૈવાત્માનં યથતે જીવઃ ।

જાનંસ્વશુદ્ધમશુદ્ધમેવાત્માનં યથતે ॥ ૧૮૬ ॥

અન્યથાથે:—[શુદં તુ] શુદ્ધ આત્માને [વિજાનન્] જાણતો—અનુભવતો
[શુદં ચ વચ આત્માનં] શુદ્ધ આત્માને જ [યથતે] પામે છે [તુ]
[અશુદં] અશુદ્ધ [આત્માનં] આત્માને [જાનન્] જાણતો—અનુભવતો છવ
[અશુદં વચ] અશુદ્ધ આત્માને જ [યથતે] પામે છે.

ટીકા:—જે સદાય અચ્છિન્નધારાવાદી જ્ઞાનથી શુદ્ધ આત્માને અનુભવ્યા કરે
, 'જ્ઞાનમય ભાવમાંથી જ્ઞાનમય ભાવ જ થાય છે' એ ન્યાયે આગામી કર્મના
'વળગુ' નિમિત્ત જે શમદ્વેષભાદુરની સંતતિ (પરપરા) તેના નિરોધ થવાથી, શુદ્ધ
માને જ પામે છે; અને જે સદાય અજ્ઞાનથી અશુદ્ધ આત્માને અનુભવ્યા કરે છે
'અજ્ઞાનમય ભાવમાંથી અજ્ઞાનમય ભાવ જ થાય છે' એ ન્યાયે આગામી કર્મના
'વળગુ' નિમિત્ત જે શમદ્વેષભાદુરની સંતતિ તેના નિરોધ નહિ થવાથી, અશુદ્ધ આ-
ત્માને જ પામે છે. માટે શુદ્ધ આત્માની ઉપસંખિધી (અનુભવથી) જ સંવર થાય છે.

ભાવાર્થ:—જે છવ અખંડધારાવાદી જ્ઞાનથી આત્માને નિરંતર શુદ્ધ અનુ-
ભવે છે તેને શમદ્વેષભાદુરથી ભાવાશયો રોકાય છે તેથી તે શુદ્ધ આત્માને પામે
અને જે છવ અજ્ઞાનથી આત્માને અશુદ્ધ અનુભવે છે તેને શમદ્વેષભાદુરથી ભાવા-
રોકાના નથી તેથી તે અશુદ્ધ આત્માને જ પામે છે. આ રીતે સિદ્ધ થયું કે શુદ્ધ
આત્માની ઉપસંખિધી (અનુભવથી) જ સંવર થાય છે.

હવે આ અર્થનું કોશસૂચક કાવ્ય કહે છે:—

(માત્રિની)

યદિ કયમપિ ધારાવાદિના ધોષનેન

ધ્રુવમુપન્યમયાનઃ શુદ્ધમાત્માનમાસ્તે ।

તદયમુદયદાત્મારામમાત્માનમાત્મા

પરપરિણતિરોધાચ્છુદ્ધમેવાભ્યુપૈતિ ॥ ૧૨૭ ॥

જે શુદ્ધ જાણે આત્માને તે શુદ્ધ આત્મ જ મેળવે;

અજાણુશુદ્ધ જાણે આત્માને અજાણુશુદ્ધ આત્મ જ ને સારે. ૧૮૬.

અન્યથાર્થ:—[યથા] જેમ [કનકં] સુવર્ણ [અગ્નિતત્ત્વં મયિ] તત્ત્વ થયું થકું પણ [તં] તેના [કનકમાવં] સુવર્ણપણાને [ન] નથી [તથા] તેમ [જ્ઞાનો] જ્ઞાની [કર્મોદયતત્ત્વઃ તુ] કર્મના ઉદયથી તેમ થકો પણ [જ્ઞાનિત્વં] જ્ઞાનીપણાને [ન] જઘાતિ] છાડતો નથી.—[જ્ઞા] [જ્ઞાનો] જ્ઞાની [જ્ઞાનાતિ] જાણે છે, [અજ્ઞાનો] અને અજ્ઞાની [અજ્ઞાન-અધિકારથી] આચ્છાદિત હોવાથી [આત્મસ્વભાવં] આત્માના [અજ્ઞાન] નહિ જાણતો થકો [રાગં યથા] રાગને જ [આત્મા] આત્મા માને છે.

ટીકા:—જેને ઉપર કહ્યું તેવું ભેદવિજ્ઞાન તે જ તેના (ભેદ) સદ્ભાવથી જ્ઞાની થયો થકો આ પ્રમાણે જાણે છે:—જેમ પ્રયત્ન અગ્નિ વડે તંબુ થકું પણ સુવર્ણ સુવર્ણત્વ છાડતું નથી તેમ પ્રયત્ન કર્મોદય વડે ધરણ થકું (અર્થાત્ વિષ્ણુ કરવામાં આવતાં છતાં પણ) જ્ઞાન જ્ઞાનત્વ છાડતું નથી, કેમકે કારણો ભેગા થવા છતાં સ્વભાવને છાડવો અશક્ય છે; કારણ કે તેને છાડવામાં માત્ર વસ્તુનો જ ઉચ્છેદ થાય, અને વસ્તુનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી કારણ કે નાશનો અસંભવ છે. આત્મ જાણતો થકો જ્ઞાની કર્મથી આકાંક્ષા (ચેષ્ટા, અપાર્થક્ય) હોવા છતાં પણ રાગી થતો નથી, દ્વેષી થતો નથી, મોહી થતો નથી. શુદ્ધ આત્માને જ અનુભવે છે. અને જેને ઉપર કહ્યું તેવું ભેદવિજ્ઞાન નથી તે તેના ભાવથી અજ્ઞાની થયો થકો, અજ્ઞાન-અધિકાર વડે આચ્છાદિત હોવાથી સ્વભાવમાં આત્મસ્વભાવને નહિ જાણતો થકો, રાગને જ આત્મા માનતો થકો, રાગ છે, દ્વેષી થાય છે, મોહી થાય છે, પરંતુ શુદ્ધ આત્માને ત્રિસકુલ અનુભવનો મારે એમ સિદ્ધ થયું કે ભેદવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉપસંજ્ઞા (અનુભવ) થાય છે. ૧૮૬—૧૮૫.

ભાવાર્થ:—જેને ભેદવિજ્ઞાન થયું છે તે આત્મા જાણે છે કે 'આત્મા જ્ઞાનસ્વભાવથી છૂટતો નથી.' આત્મ જાણતો હોવાથી તે, કર્મના ઉદય વડે તંબુ થકો પણ, રાગી, દ્વેષી, મોહી થતો નથી પરંતુ નિરંતર શુદ્ધ આત્માને અનુભવે છે. જેને ભેદવિજ્ઞાન નથી તે આત્મા, આત્માના જ્ઞાનસ્વભાવને નહિ જાણતો થકો જ આત્મા માને છે તેથી તે રાગી, દ્વેષી, મોહી થાય છે પરંતુ કરી શકે અનુભવતો નથી. મારે એ નક્કી થયું કે ભેદવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉપસંજ્ઞા થાય છે. ૧૮૬—૧૮૫.

દ્વેષ પછે છે કે શુદ્ધ આત્માની ઉપસંજ્ઞાથી જ સંપરક રહેલો થતો નથી. ૧૮૬—૧૮૫.

આત્માનામાત્મના રુચ્યા દ્વિપુણ્યપાપયોગયોઃ ।

દર્શનપ્રાપ્તે સ્થિતઃ રુચ્યાવિરતથાન્યસ્મિન્ ॥ ૧૮૭ ॥

યઃ સર્વસંગમુક્તો ધ્યાયત્યાત્માનામાત્મનાત્મા ।

નાપિ કર્મ નોકર્મ ચેતયિતા ચિંતયન્યેકત્વમ્ ॥ ૧૮૮ ॥

આત્માનં ધ્યાયન્ દર્શનજ્ઞાનમયોઽનન્યમયઃ ।

લખતેઽચિરેણાત્માનામેવ ન કર્મમવિમુક્તમ્ ॥ ૧૮૯ ॥

અન્યથાર્થઃ—[આત્માનં] આત્માને [આત્મના] આત્મા વડે [દ્વિપુણ્ય-પાપયોઃ] બે પુણ્ય-પાપરૂપ શુભાશુભયોગોધી [રુચ્યા] રોકીને [દર્શનપ્રાપ્તે] જ્ઞાનમાં [સ્થિતઃ] સ્થિત થયો થકો [ચ] અને [અન્યસ્મિન્] અન્ય (વસ્તુ)ની [રુચ્યાવિરતઃ] રુચ્યાધી વિરમ્યો થકો, [યઃ આત્મા] બે આત્મા, [સર્વસંગમુક્તઃ] સર્વ સંગધી રહિત થયો થકો, [આત્માનં] (પાનાના) આત્માને [આત્મા] આત્મા વડે [ધ્યાયતિ] ધ્યાવે છે—[કર્મ નોકર્મ] કર્મ અને નોકર્મને [ચેતયિ] ધ્યાનો નથી, [ચેતયિતા] (પાને) ચેતયિતા (હોવાથી) [એકત્વમ્] એક [ચિંતયતિ] ચિંતવે છે—ચેતે છે—અનુભવે છે, [નઃ] તે (આત્મા), [આત્માનં ધ્યાયન્] આત્માને ધ્યાનો, [દર્શનજ્ઞાનમયઃ] દર્શનજ્ઞાનમય [અનન્યમયઃ] અનન્યમય થયો થકો [અચિરેણ વય] અલ્પ કાળમાં જ [કર્મમવિમુક્તમ્] કર્મથી [આત્માનં] આત્માને [લખતે] પામે છે.

ટીકા:—સંગદ્વેષમોહ જેનું મૂળ છે એવા શુભાશુભ યોગમાં વર્તતો બે હવ, તે (વધારે ૬૬) બેઠવિજ્ઞાનના અવલંબનથી આત્માને આત્મા વડે જ અત્યંત ને, શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનરૂપ આત્મદ્રવ્યમાં સારી રીતે પ્રતિષ્ઠિત (સ્થિર) કરીને, સમસ્ત અધ્યત્મી રુચ્યાના ત્યાગ વડે સર્વ સંગધી રહિત થઈને, નિરંતર અતિ નિષ્કલ્પ વર્તતો કર્મનોકર્મનો જરા પણ સ્પર્શ કર્યા વિના પાનાના આત્માને જ આત્મા વડે તો થકો, પાનાને સદૃશ ચેતયિતાપણું હોવાથી એકત્વને જ ચેતે છે (જ્ઞાનધીના-રૂપે છે), તે હવ ખરેખર, એકત્વ-ધીન વડે અર્થાત્ એકત્વના અનુભવન વડે નિદ્રાધી) અત્યંત બિન્ન ધીન-અધ્યત્મકારમાય આત્માને ધ્યાનો, શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનમય

ચેતયિતા = ચેતનાર; રેખનાગ્ન્યભુનાર.

અન-અમય = અ-અમય નહિ એવા

ચેતનું = અનુભવનું; રેખનું જાણનું

અર્થ:—જો કોઈ પણ રીતે (તીવ્ર પુરુષાર્થ કરીને) આત્માને નિઃશ્વયપણે અનુભવ્યા કરે તો આ આત્મા, જેનો જાણ છે (અર્થાત્ જેની આત્મસ્થિતતા વધતી જાય છે) એવા નિરોધથી શુદ્ધ જ પ્રાપ્ત કરે છે.

ભાવાર્થ:—ધારાવાહી જ્ઞાન વડે શુદ્ધ આત્માને અનુભવ પરપરિણતિનો (ભાવાસ્થવોનો) નિરોધ થાય છે અને તેથી શુદ્ધ આત્મા

ધારાવાહી જ્ઞાન એટલે પ્રવાહરૂપ જ્ઞાન—અનૂદક જ્ઞાન છે:—એક તો, જેમાં વચ્ચે મિથ્યાજ્ઞાન ન આવે એવું સમયસાર થીજી; એક જ જ્ઞેયમાં ઉપયોગના ઉપયુક્ત રહેવાની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવે છે, અર્થાત્ જ્યાંસુધી ઉપયોગ એક જ્ઞેયમાં ઉપયોગ ધારાવાહી જ્ઞાન કહેવાય છે; આની સ્થિતિ (હ્રદસ્થિત) અંતર્મુખ પ્રાપ્ત થાય છે. આ બે અર્થમાંથી જ્યાં જેવી વિવક્ષા હોય તે અવિરતસમ્યક્દષ્ટિ વગેરે નીચેનાં ગુણસ્થાનવાળા જીવોને મુખ્યત્વે પડે. એણી ચડનાર જીવને મુખ્યત્વે બીજી અપેક્ષા લાગુ પડે શુદ્ધ આત્મામાં જ ઉપયુક્ત છે. ૧૮૬.

હવે પૂછ છે કે સંવર કયા પ્રકારે થાય છે? તેનો ઉત્તર

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोएसु ।

दंसणणाणहि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णसि

जो सव्वसंगमुक्को ज्ञायदि अप्पाणमप्पणा अ

णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चित्तेदि एयत्तं ॥

अप्पाणं ज्ञायंतो दंसणणाणमओ अण्णमओ

लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं

પુરુષપાપયોગથી રોકીને નિઃશ્વ આત્મને આત્મા દર્શન અને જાણે કરી, પરદ્રવ્યક્રમણ પરિકર જે સર્વમંગલિભુક્ષ, ધ્યાવે આત્મને આત્મા વે - નદિ કર્મ કે નોકર્મ, એતક એતનો એકત્વ ને આત્મ ધ્યાનો, જ્ઞાનદર્શનમય, અનન્યમયી ખ અમ અત્ય કાળે કર્મથી પ્રવિભુક્ષ આત્માને વ

આત્મદ્રવ્યને પ્રાપ્ત થયો થકો, શુદ્ધ આત્માની ઉપસંખિય (પ્રાપ્તિ) થયો
દ્રવ્યમયપણાથી અતિકાંત થયો થકો, અલ્પ કાળમાં જ સર્વ કર્મથી મુક્તિ
પામે છે. આ સંવરનો પ્રકાર (રીત) છે.

સાવાર્થ:—જે છવ પ્રથમ તો રાગદ્વેષમોહ સાથે મગેલા મન
શુભાશુભ યોગોથી પોતાના આત્માને ભેદજ્ઞાનના બળ વડે ચળવળ ન
શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનમય આત્મસ્વરૂપમાં નિશ્ચય કરે અને સમસ્ત બાહ્ય-અંતર્ય
રહિત થઈને કર્મ-નોકર્મથી સિત્ત પોતાના સ્વરૂપમાં એકાગ્ર થઈ તેને
કરે અર્થાત્ તેના જ ધ્યાનમાં રહે, તે છવ આત્માને ધ્યાનાથી દર્શનજ્ઞાન
અને પરદ્રવ્યમયપણાને ઓળંગી ગયો થકો અલ્પ કાળમાં જ સમસ્ત
થાય છે. આ સંવર થવાની રીત છે.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માસિની)

નિગમહિમરતાનાં મેદવિજ્ઞાનશત્પા
ભવતિ નિયતમેષાં શુદ્ધતત્ત્વોપભંગઃ ।
અગમિતમસ્તિભાન્યદ્રવ્યદૂરેસ્થિતાનાં
ભવતિ મતિ ચ તસ્મિન્નસપઃ કર્મમોહઃ ॥ ૧૨૮

અર્થ:—જેઓ મેદવિજ્ઞાનની શક્તિ વડે નિજ (સ્વરૂપના) મન
મદ છે તેમને નિયમથી (ધ્યાનમાં) શુદ્ધ તત્ત્વની ઉપસંખિય થાય છે;
ઉપસંખિય થતાં, અચિન્ત્યપદને સમસ્ત અન્યદ્રવ્યોથી દૂર પર્વતા એવા
કર્મનાશ થાય છે (અર્થાત્ ફરીને કદી કર્મજન્ય ન થાય એવો મન
થાય છે). ૧૮૭—૧૮૮.

હવે પૂછે છે કે સંવર કયા કર્મ થાય છે? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

તેમિ દેઃ મણિયા અજ્ઞવમાણાણિ મનાદગમોર્ધિ
મિચ્છનં અજ્ઞાણં અવિમ્બમાવો ય જોમો ય ॥

ગતિરિત્યાદિનું દેનું કહે મનના અવિમ્બમાનને.
અવિમ્બમાન ને અજ્ઞાન, અચિન્ત્યમાન ને મન જ માન્ય.

ભાવાર્થ:—જવને જ્યારે બેદવિજ્ઞાન થાય છે અર્થાત્ જવ જ્યારે આત્માને અને કર્મને યથાર્થપણે વિગત જાણે છે ત્યારે તે શુદ્ધ આત્માને અનુભવે છે, શુદ્ધ આત્માના અનુભવથી આસ્રવભાવ રોકાય છે અને અનુક્રમે સર્વ પ્રકારે સંવર થાય છે. આટલે બેદવિજ્ઞાનને અત્યંત ભાવનાનો ઉપદેશ કર્યો છે.

હવે, બેદવિજ્ઞાન ક્યાં મુધી ભાવવું તે કાવ્યદ્વારા કહે છે:—

(અનુક્ર.૫)

માવયેદ્રેદવિજ્ઞાનમિદમચ્છિન્નપારયા ।

તાવધાવત્પરાચ્ચુત્વા જ્ઞાનં જ્ઞાને પ્રતિષ્ઠતે ॥ ૧૩૦ ॥

અર્થ:—આ બેદવિજ્ઞાન અચ્છિન્ન-ધારાથી (અર્થાત્ જેમાં વિચ્છેદ ન પડે એવા અખંડ પ્રવાહરૂપે) ત્યાંમુધી ભાવવું કે જ્યાંમુધી પરભાવોથી છૂટી જ્ઞાન જ્ઞાનમાં જ (પોતાના સ્વરૂપમાં જ) કરી જાય.

ભાવાર્થ:—આહી જ્ઞાનનું જ્ઞાનમાં કરવું એ પ્રકારે જાણવું. એક તો, મિથ્યાત્વનો અભાવ થઈ સમ્યક્જ્ઞાન થાય અને ફરી મિથ્યાત્વ ન આવે ત્યારે જ્ઞાન જ્ઞાનમાં ઠકું કહેવાય; બીજું, જ્યારે જ્ઞાન મુદ્ધોપયોગરૂપે સ્થિર થઈ જાય અને ફરી અન્ય-વિકારરૂપે ન પરિવ્રજે ત્યારે તે જ્ઞાનમાં કરી ગયું કહેવાય. જ્યાંમુધી બન્ને પ્રકારે જ્ઞાન જ્ઞાનમાં ન કરી જાય ત્યાંમુધી બેદવિજ્ઞાન ભાવ્યા કરવું.

ફરીને બેદવિજ્ઞાનનો અદ્વિભા કહે છે:—

(અનુક્ર.૫)

બેદવિજ્ઞાનનઃ સિદ્ધાઃ સિદ્ધા યે કિલ્લ કેવન ।

અસ્યૈવામાત્રતો વદ્દા વદ્દા યે કિલ્લ કેવન ॥ ૧૩૧ ॥

અર્થ:—જે કોઈ સિદ્ધ થયા છે તે બેદવિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થયા છે; જે કોઈ બંધાયો છે તે તેના જ (બેદવિજ્ઞાનના જ) અભાવથી બંધાયો છે.

ભાવાર્થ:—અનાદિ કાળથી આંત્રીને જ્યાંમુધી જવને બેદવિજ્ઞાન નથી ત્યાંમુધી ને કર્મથી બંધાયો જ કરે છે—સંસારમાં રજાળ્યા જ કરે છે; જે જવને બેદવિજ્ઞાન થાય છે તે કર્મથી છૂટે જ છે—મોક્ષ પામે જ છે. આટલે કર્મબંધનું—સંસારનું—મૂળ બેદવિજ્ઞાનનો અભાવ જ છે અને મોક્ષનું પ્રથમ કારણ બેદવિજ્ઞાન જ છે. બેદવિજ્ઞાન વિના કોઈ સિદ્ધિ પામી શકતું નથી.

આહી આમ પણ જાણવું કે—વિજ્ઞાનાદૈતવાદી બૌદ્ધો અને વેદાન્તીઓ કે જેઓ વસ્તુને અદૈત કહે છે અને અદૈતના અનુભવથી જ સિદ્ધિ કહે છે તેમને, બેદવિજ્ઞાનથી જ સિદ્ધિ કહેવાથી, નિરોધ થયો; કારણ કે સર્વથા અદૈત વસ્તુનું સ્વરૂપ

વિદ્યમાન છે, તેઓ રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવનાં કારણ છે; આસ્રવભાવ કારણ છે; કર્મ નોકર્મનું કારણ છે; અને નોકર્મ સંસારનું કારણ છે. મટે—સદા. આત્મા, આત્મા ને કર્મના એકપણાના અધ્યાસથી મિથ્યાત્વ-અજ્ઞાન-અવિરતિને આત્માને માને છે (અર્થાત્ મિથ્યાત્વાદિ અધ્યવસાન કરે છે); તેથી રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવને લાવે છે; તેથી કર્મ આસ્રવે છે; તેથી નોકર્મ થાય છે; અને તેથી ઉત્પન્ન થાય છે. પરંતુ જ્યારે (તે આત્મા), આત્મા ને કર્મના ભેદવિજ્ઞાન થોડો થાય ત્યારે મિથ્યાત્વ, અધ્યવસાન, અવિરતિ અને યોગરૂપ અધ્યવસાનો કે જે આસ્રવભાવનાં કારણો છે તેમનો અસ્રવ ધાય છે; અધ્યવસાનોનો અભાવ થતાં રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવનો અભાવ થાય છે; આસ્રવભાવનો અભાવ થતાં કર્મનો અભાવ થાય છે; કર્મનો અભાવ થતાં અભાવ થાય છે; અને નોકર્મનો અભાવ થતાં સંસારનો અભાવ થાય છે. આ પ્રમાણે સંવરનો ફળ છે.

ભાવાર્થ:—જીવને જ્યાંસુધી આત્મા ને કર્મના એકપણાનો આશય ભેદવિજ્ઞાન નથી ત્યાંસુધી મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન, અવિરતિ અને યોગરૂપ અધ્યવસાન થતો છે, અધ્યવસાનથી રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવ થાય છે, આસ્રવભાવથી અધ્યાસ થાય છે, કર્મથી શરીરાદિ નોકર્મ ઉત્પન્ન થાય છે અને નોકર્મથી સંસાર છે. જ્યારે તેને આત્મા ને કર્મનું ભેદવિજ્ઞાન થાય છે ત્યારે શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિથી મિથ્યાત્વાદિ અધ્યવસાનોનો અભાવ થાય છે, અધ્યવસાનનો અભાવથી રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવનો અભાવ થાય છે, આસ્રવનો અભાવથી કર્મ અધ્યાસથી શરીરાદિ નોકર્મ ઉત્પન્ન થતાં નથી અને નોકર્મનો અભાવથી સંસારનો અભાવ થાય છે.—આ પ્રમાણે સંવરનો અનુક્રમ જાણવો.

સંવર થવાના ક્રમમાં સંવરનું પહેલું જ કારણ ભેદવિજ્ઞાન કયું છે? જાણનાના ઉપદેશનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(ઉપનિષદ)

સંપચતે સંવર एव साक्षा-

च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलंभात् ।

स भेदविज्ञानत एव तस्मात्

तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥ ૧૨૯ ॥

અર્થ:—આ સાક્ષાત્ (સર્વ પ્રકારે) સંવર ખરેખર શુદ્ધ આત્મતત્ત્વના ઉપલબ્ધિથી થાય છે; અને તે શુદ્ધ આત્મતત્ત્વની ઉપલબ્ધિ ભેદવિજ્ઞાનથી જ થાય છે. મટે તે ભેદવિજ્ઞાન અત્યંત ભાવવાર્થીય છે.

❧ નિર્જરા અધિકાર ❧

રાગાદિકના શૈલધી, નવો બંધ હણી સંત;
પૂર્વ દેહમાં સમ રહે, નમું નિર્જરાવંત.

પ્રથમ ટીકાકાર આચાર્યમહારાજ કહે છે કે “હવે નિર્જરા પ્રવેશ કરે છે.”
હીં તત્વોનું નૃત્ય છે; તેથી જેમ નૃત્યના આખાડામાં નૃત્ય કરનાર સ્વાંગ ધારણ કરીને
વેશ કરે છે તેમ અહીં રંગભૂમિમાં નિર્જરાનો સ્વાંગ પ્રવેશ કરે છે.

હવે, સર્વ સ્વાંગને યથાર્થ જાણનારું જે સમ્યક્જ્ઞ છે તેને મંગળરૂપ જાણીને
આચાર્યદેવ મંગળ અર્થે પ્રથમ તેને જ—નિર્ભય જ્ઞાનજ્યોતિને જ—પ્રગટ કરે છે:—

(શાઈલવિદીડિત)

રાગાયાસ્રવરોષતો નિમધુરાં ધૃત્વા પરઃ સંવરઃ
કર્માગામિ સમસ્તમેવ ભરતો દૂરાચિરંધન સ્થિતઃ ।
માગ્યદં તુ તદેવ દગ્ધુમધુના વ્યાનૃમ્પતે નિર્નરા
જ્ઞાનજ્યોતિરપાટૃતં ન દિ યતો રાગાદિભિર્મૂર્છતિ ॥ ૧૩૩ ॥

અર્થ:—પરમ સંવર, રાગાદિ આસ્રવોને શૈલધી પોતાની કાર્ય-પુરાને ધારણ
કરીને (પોતાના કાર્યને બરાબર સંભાળીને), સમસ્ત આગામી કર્મને અત્યંતપણે
ધી જ શક્તો ઊભો છે; અને જે પૂર્વે (સંવર થયા પહેલાં) બંધાયેલું કર્મ છે તેને
જાળવાને હવે નિર્જરા (—નિર્જરારૂપી અક્ષિ—) દેશાય છે કે જેથી જ્ઞાનજ્યોતિ નિરા-
રૂપ થઈ ધડી (ફરીને) રાગાદિભાવો વડે મૂર્છિત થતી નથી—સદા અમૂર્છિત રહે છે.

સાવાર્થ:—સંવર થયા પછી નવાં કર્મ તો બંધાયાં નથી. જે પૂર્વે બંધાયાં
તાં તે કર્મો ન્યારે નિર્જરા છે ત્યારે જ્ઞાનનું આવરણ દૂર થવાથી જ્ઞાન એવું થાય છે
ફરીને રાગાદિરૂપે પરિભ્રમનું નથી—સદા પ્રકાશરૂપ જ રહે છે.

નદિ દોવા છતાં લેઓ સર્વથા અદ્વૈત માને છે તેમને બોધિજ્ઞાન પોઈ રીતે જ
જ નથી; જ્યાં દ્વૈત જ—એ વસ્તુઓ જ—માનવા નથી ત્યાં બોધિજ્ઞાન જ
હવ અને અહવ—એ વસ્તુઓ માનવામાં આવે અને તેમનો સંબંધ બલ
ને જ બોધિજ્ઞાન બની શકે અને સિદ્ધિ થઈ શકે. આરે સ્વપ્નાદિએ
નિર્ધારણ સિદ્ધ થાય છે.

દેવે, સંવર અધિકાર પૂર્ણ કરતાં, સંવર થવાથી જે જ્ઞાન થાય છે.
અદિમાનું જ્ઞાન કહે છે:—

(મંદામાં ૫)

ભેદજ્ઞાનોન્મલ્લનકલનાન્દુલ્લતરોપક્રમા-

દ્રાગધ્રામમજ્જયકરુણાત્કર્મણાં સંતરેણ ।

ચિખગોપં પરમમમ્માજોઠ્ઠમજ્ઞાનમેઠં

જ્ઞાને જ્ઞાને નિયતમુદિતં જ્ઞાજ્ઞોગોગમેગત્ ॥ ૧૧૧ ॥

અર્થ:—ભેદજ્ઞાન પ્રથમ કરવાના અભ્યાસથી શુદ્ધતાની પ્રાપ્તિ
જ, જ ન્યાની ઉપધિઓથી મગના સમુદ્ધતા વિદ્યા થયે, રાગના સમુદ્ધતા વિદ્યા
કર્મના માર્ગમાં અને કર્મના સંવર થવાથી, જ્ઞાનમાં જ નિયત માર્ગમાં
જ્ઞાન પોઈ જ્ઞાન—એ જ જ્ઞાન પરમ સંતરણે (અર્થાત્ પરમ અર્થોપદેશ
જ નથી કરે, જેના પ્રકાર નિર્મળ ॥ (અર્થાત્ રાગાદિને કીર્તિ મળિયા
જ નથી) જ અભ્યાસ છે (અર્થાત્ સાંપ્રત્યક્ષિક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરવાને
જ નથી, જેના પ્રકાર અનુભવ છે), જે એક છે (અર્થાત્ ક્રોધાદિગુણો
જ નથી) અને જેના પ્રકાર જ્ઞાન છે (અર્થાત્ જેના પ્રકાર અધિકાર છે)

કીડા:—આ કીડા સંવર (કંન્યુનિમાંથી) અદ્યત્ત નીકળી ને

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

અ. ૧. ૨. ૩. ૪. ૫. ૬. ૭. ૮. ૯. ૧૦. ૧૧. ૧૨. ૧૩. ૧૪. ૧૫. ૧૬. ૧૭. ૧૮. ૧૯. ૨૦.

બાવાર્થ:—જેમ વેદ મંત્ર, તંત્ર, ઔષધ આદિ ધોનાની વિધાના સામર્થ્યથી
 'ત્રી મરજ કરવાની શક્તિનો અભાવ હરે છે તેથી વિષ ખાવા છતાં તેનું મરજ થતું
 નથી, તેમ જ્ઞાનીને જ્ઞાનનું સામર્થ્ય એટલું છે કે કર્મોદયની બધી કરવાની શક્તિનો
 અભાવ હરે છે અને તેથી કર્મના ઉદયને લોગવવા છતાં જ્ઞાનીને આગામી કર્મબંધન
 નથી. આ પ્રમાણે સમ્યજ્ઞાનનું સામર્થ્ય હતું. ૧૮૫.

હવે વેશ્યાનું સામર્થ્ય બતાવે છે:—

જહ મજ્જં પિવમાણો અરદિભાવેણ મજ્જદિ ણ પુરિસો ।

દબ્બુવમોગે અરદો ણાણો વિ ણ વજ્જદિ તદેવ ॥ ૧૯૬ ॥

યથા મયં પિવન્ અરતિભાવેન માયતિ ન પુરુષઃ ।

દ્રવ્યોપમોગેઽવતાં જ્ઞાન્યપિ ન વ્યયતે તથેવ ॥ ૧૯૬ ॥

અન્યથાર્થ:—[યથા] જેમ [પુરુષઃ] દેહી પુરુષ [મયં] અરિશને [માયતિ
 અરતિભાવે (અપ્રીતિથી) [પિવન્] પીતો થશે [ન માયતિ] મન થતો
 નથી, [તથા વય] તેથી જ રીતે [જ્ઞાતો અપિ] જ્ઞાની પણ [દ્રવ્યોપમોગે] દ્રવ્યના
 ઉપમા પ્રત્યે [માયતિ] અવન (અર્થાત્ વેશ્યાબાવે) વર્તતો થશે [ન વ્યયતે]
 નથી] બચતો નથી.

ટીકા:—જેમ દેહી પુરુષ, અરિશ પ્રત્યે જેને તીવ્ર અરતિભાવ પ્રવર્ત્યો છે
 તેણે વર્તતો થશે, અરિશને પીતાં છતાં પણ, તીવ્ર અરતિભાવના સામર્થ્યને દીધે
 ન થતો નથી, તેમ જ્ઞાની પણ, શમદિભાવોના અભાવથી મર્ચ દ્રવ્યના ઉપમાના
 પ્રત્યે જેને તીવ્ર વેશ્યાબાવ પ્રવર્ત્યો છે એવો વર્તતો થશે, વિષધાને લોગવતાં છતાં
 જ, તીવ્ર વેશ્યાબાવના સામર્થ્યને દીધે (કર્મથી) બચતો નથી.

બાવાર્થ:—એ વેશ્યાનું સામર્થ્ય છે કે જ્ઞાની વિષધાને લોગવે છે તે પણ
 ક્ષીયો બચતો નથી.

હવે આ અર્થનું અન્ય આગમની બાધાના અર્થની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે —

(અધિકાર)

માશુતે વિષયમેવમેઽપિ યત્

તત્ત્વં વર્તે વિષયમેવમત્ય સા ।

અન્યમ અનંતિભાવે મય પીતાં મન વન બનતો નથી.

દ્રવ્યોપમાગ વિધે અનંત જ્ઞાનીય બચતો નથી. ૧૯૬.

ખંધ કર્યા વિના જ તે લાવ નિર્જરી બાય છે તેથી તેને નિર્જરી કહી
માટે સમ્યક્દષ્ટિને પરદ્રવ્ય ભોગવતાં નિર્જરી જ થાય છે. આ રીતે
નિર્જરી થાય છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુક્રુપ)

તજ્ઞાનસ્યૈવ સામર્થ્યં વિરાગસ્ય ચ વા કિલ ।

યત્કોઽપિ કર્મભિઃ કર્મ મુંજાનોઽપિ ન વ્યયતે ॥ ૧૧૩ ॥

અર્થ:—ખરેખર તે (આશ્ચર્યકારક) સામર્થ્ય જ્ઞાનનું જ છે અને
જ છે કે કોઈ (સમ્યક્દષ્ટિ છત્વ) કર્મને ભોગવતો છતો કર્મોથી બચતો નથી
જ્ઞાનીને તે આશ્ચર્ય ઉપજાવે છે અને જ્ઞાની તેને યથાર્થ જાણે છે.) ૧૧૩

હવે જ્ઞાનનું સામર્થ્ય બતાવે છે:—

જહ વિસમુવમુંજંતો વેજો પુરિસો ણ મરણમુવયાદિ ।
પુગ્ગલકમ્મસ્સુદયં તહ મુંજદિ ણેવ વજ્જાણ ણાણી ॥ ૧૧૪ ॥

યથા વિપમુવમુંજાનો વૈયઃ પુરુષો ન મરણમુવયાતિ ।

પુગ્ગલકર્મણ ઉદયં તથા મુંજે નૈવ વ્યયતે જ્ઞાની ॥ ૧૧૪ ॥

અન્યવાર્થ:—[યથા] જેમ [વૈયઃ પુરુષઃ] વૈય પુરુષ [વિપમુવ
વિપને ભોગવતો અર્થાત્ જ્ઞાનો છતો [મરણં ન ઉપયાતિ] મરણ પામતો નથી
તેમ [જ્ઞાની] જ્ઞાની [પુગ્ગલકર્મણઃ] પુગ્ગલકર્મના [ઉદયં] ઉદયને [મુંજે
છતોપજુ [ન વ્ય વ્યયતે] બચતો નથી.

ટીકા:—જેમ કોઈ વિપવૈય, બીજાઓના મરણનું કારણ છે તો તે
વનો છતો પત્તુ, અર્થાત્ (સામર્થ્ય) વિધાના સામર્થ્ય વડે વિપની રક્તિ
દોષથી, મરતો નથી, તેમ અજ્ઞાનીઓને સામાન્યતાવેળા સામાન્યથી જોઈ
પ્રદાનકર્મને કારણ તેને જ્ઞાની ભોગવતો છતો પત્તુ, અર્થાત્ જ્ઞાન
સામાન્યતાવેળા અત્યંત દોષ (દોષને) કર્મોદયની રક્તિ રોગ
બચતો નથી.

જ્યમ ઝરના ઉપભોગથી પત્તુ વૈય જન મરતો નથી.

જ્યમ કર્મોદયના ભોગવે પત્તુ જ્ઞાની બચતો નથી. ૧૧૪

વને લીધે વિષયસેવનના ફળનું સ્વામીપણું નહિ હોવાથી અંગેવક જ છે (અર્થાત્ નથી) અને મિથ્યાદષ્ટિ વિષયને નહિ સેવના હોવા છતાં સગાદિભાવોના ૨ લીધે વિષયસેવનના ફળનું સ્વામીપણું હોવાથી સેવક જ છે.

બાવાર્થ:—કોઈ શેઠે પોતાની દુકાન પર કોઈને નોકર રાખ્યો. દુકાનનો ખર્ચો જજ—ખરીદણું, વેચણું વગેરે સર્વ કામકાજ—નોકર કરે છે તોપણ તે વેપારી રજા કે તે વેપારનો અને વેપારના લાભ-નુકસાનનો સ્વામી નથી; તે તો માત્ર , શેઠનો કરામતો ખર્ચું કામકાજ કરે છે. જે શેઠ છે તે વેપાર સંબંધી કાંઈ કરતો નથી, પરંતુ જેથી રહે છે તોપણ તે વેપારનો અને વેપારના લાભ-નુક-ષણી હોવાથી તે જ વેપારી છે. આ દષ્ટાંત સમ્યગ્દષ્ટિ અને મિથ્યાદષ્ટિ પર લેણું. જેમ નોકર વેપાર કરનારો નથી તેમ સમ્યગ્દષ્ટિ વિષય સેવનારો નથી, ૪મ શેઠ વેપાર કરનારો છે તેમ મિથ્યાદષ્ટિ વિષય સેવનારો છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાંતા)

સમ્યગ્દષ્ટેર્ભવતિ નિયતં જ્ઞાનવૈરાગ્યનૃત્તિઃ

સ્વં વસ્તુત્વં કમ્પયિતુમયં સ્વાન્યરૂપાત્તિમુક્તયા ।

યસ્માઽજ્ઞાત્વા વ્યતિકરમિદં તત્ત્વતઃ સ્વં પરં ચ

સ્વસ્મિન્નાસ્તે વિરમતિ પરાન્સર્વતો રાગયોગાત્ ॥ ૧૩૬ ॥

અર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિને નિયમથી જ્ઞાન અને વૈરાગ્યની શક્તિ હોય છે; કારણ (સમ્યગ્દષ્ટિ છવ) સ્વરૂપનું અદુલ્લ અને પરનો ત્યાગ કરવાની વિધિ વડે પોતાના ત્વનો (યથાર્થ સ્વરૂપનો) અભ્યાસ કરવા માટે, ‘આ સ્વ છે (અર્થાત્ આત્મ-પ છે) અને આ પર છે’ એવો બેઠ પરમાર્થ જાણીને સ્વમાં રહે છે (નકે છે) પરથી—રાગના યોગથી—સર્વ પ્રકારે વિરમે છે. (આ રીત જ્ઞાનવૈરાગ્યની શક્તિ ૧ કોઈ શેઠ નહિ). ૧૬૭.

હવે પ્રથમ, સમ્યગ્દષ્ટિ આત્માન્યપણે સ્વને અને પરને આ પ્રમાણે જાણે છે—
‘ગાથામાં કહે છે:—

ઉદયવિવાગો વિવિહો કમ્માણં વણિઓ જિજવરેહિ ।

ણ દુ તે મજ્ઝ સહાવા જાણગભાવો દુ અહમિક્કો ॥ ૧૯૮ ॥

કમેતિણો જે વિવિધ ઉદયવિવાક જિનવર વણીઓ,
તે મુજ સ્વભાવો છે નહિ, હું એક જ્ઞાતકભાવ છું. ૧૯૮.

જ્ઞાનવૈભવવિરાગતાવ્રલોભ

સેવકોઽપિ તદસાવસેવકઃ ॥ ૧૩૫ ॥

અર્થઃ—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પુરુષ વિષયોને સેવતા હોય તે વેલવના અને વિરાગતાના બળથી વિષયસેવનના નિગ્રહને (રજિત કરી) ભોગવતો નથી—પામતો નથી, તેથી આ (પુરુષ) સેવક છતાં અસેવક છે (વિષયોને સેવતાં છતાં નથી સેવતો).

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાન અને વિરાગતાનું એકું કોઈ અધિક્ય સામર્થ્ય કે હૃદયોના વિષયોને સેવતા હોવા છતાં તેને સેવનારો કહી શકાતો નથી, કારણ સેવનનું ફળ જે રજિત પરિણામ તેને જ્ઞાની ભોગવતો નથી—પામતો નથી.

હવે આ જ પાતને પ્રગટ દર્શાવતો બતાવે છે—

સેવંતો વિ ન સેવહ અસેવમાણોવિ સેવગો કોઈ ।

પ્રકરણત્રેષ્ટા કસ્સ વિ ન ય પાયરણોત્તિ સો હોઈ ॥

સેવમાનોઽપિ ન સેવતે અસેવમાનોઽપિ મેરુઃ કથિત ।

પ્રકરણત્રેષ્ટા કસ્યાપિ ન ન પ્રાકરણં ઇતિ ન મર્તા ॥

અન્યાર્થઃ—[કથિત] કોઈ તો [સેવમાનઃ અપિ] વિષયોને સેવ [ન મેરુઃ] નથી સેવતો [અસેવમાનઃ અપિ] અને કોઈ નહિ સેવતો હોય [કસ્યાપિ] જેમ કોઈ પુરુષને [પ્રકરણત્રેષ્ટા] પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે—[કથિત] કોઈ તો [સેવમાનઃ અપિ] વિષયોને સેવ [ન મેરુઃ] નથી સેવતો [અસેવમાનઃ અપિ] અને કોઈ નહિ સેવતો હોય [કસ્યાપિ] જેમ કોઈ પુરુષને [પ્રકરણત્રેષ્ટા] પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે—[કથિત] કોઈ તો [સેવમાનઃ અપિ] વિષયોને સેવ [ન મેરુઃ] નથી સેવતો [અસેવમાનઃ અપિ] અને કોઈ નહિ સેવતો હોય [કસ્યાપિ] જેમ કોઈ પુરુષને [પ્રકરણત્રેષ્ટા] પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે.

ટીકા—જેમ કોઈ પુરુષ કોઈ પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે તેમ જ્ઞાની સેવક સેવકની જેમ નહિ સેવતો પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે અને જીને પુરુષ પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે તેમ જ્ઞાની સેવક સેવકની જેમ નહિ સેવતો પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે. તેથી જ્ઞાની સેવક સેવકની જેમ નહિ સેવતો પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે.

* પ્રકરણ = ૩૫

† પ્રકરણ = ૩૫ ૩૫ ૩૫

સેવક છતાં નહિ સેવતો, આસેવકો સેવક અને પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે તેમ જ્ઞાની સેવક સેવકની જેમ નહિ સેવતો પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તે છે.

તો હોય છે, તેમને સમ્યક્ત્વ કેમ છે ? તેનું સમાધાન—અહીં મિથ્યાત્વ સહિત
 જાન્યથી રાગ પ્રધાનપણે કહ્યો છે. જેને એવો રાગ હોય છે અર્થાત્ જેને પર-
 માં તથા પરદ્રવ્યથી થતા ભાવોમાં આત્મશુદ્ધિપૂર્વક પ્રીતિ-અપ્રીતિ થાય છે, તેને
 તે જ્ઞાનમદાન નથી—ભેદજ્ઞાન નથી એમ સમજવું. એવ મુનિપદ હર્ષ મત-
 તે પામે તોપણ જ્યાંમુખી (મન-સમિતિ પાળતાં) પર જીવેલી રક્ષા, શરીર સંબંધી
 માધી પ્રવર્તે છે હતાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પીતાના
 ભાવોથી પીતાને મોક્ષ માને છે અને પર જીવેલો ઘાત થતો, અપત્તાચારણે
 પિતૃ હતાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પીતાના અશુભ
 થી જ પીતાને બચ થતો માને છે ત્યાંમુખી તેને સ્વપરનું જ્ઞાન થયું નથી એમ
 જુ; કારણ કે બચ-મોક્ષ તો પીતાના અશુભ તથા શુભ ભાવોથી જ થતા હતા,
 અશુભ ભાવો તો બધાનાં જ કારણ હતા અને પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર જ હતું,
 તેણે વિપર્યયરૂપ માન્યું. આ રીતે જ્યાંમુખી એવ પરદ્રવ્યથી જ ભણ્યું બુદ્ધિ મળી
 દેવ કરે છે ત્યાંમુખી તે સમ્યક્દષ્ટિ નથી. સમ્યક્દષ્ટિ એવ તો જ્યાંમુખી પીતાને આદિત્ત-
 સંબંધી રાગાદિક રહે છે ત્યાંમુખી તે રાગાદિક વિષે તથા રાગાદિકની પ્રેરણાથી
 પરદ્રવ્યસંબંધી શુભાશુભ ક્રિયામાં તે પ્રવર્તે છે તે પ્રવૃત્તિઓ વિષે એમ માને છે કે—
 હર્ષનું જોર છે; તેનાથી નિવૃત્ત થયે જ મારું ભણું છે. તે તેમને રોગવત્ બળે છે.
 ૨ સહી રાજાતી નથી તેથી તેમનો હક્ષાજ કરવારૂપે પ્રવર્તે છે તોપણ તેને તેમના
 ૨ રાગ કહી રાજાનો નથી; કારણ કે જેને રોગ માને તેના પ્રત્યે રાગ કેવો ? તે તેને
 ઇલાનો જ ઉપાય કરે છે અને તે મહત્ત્વ પળ પીતાના જ જ્ઞાનપરિણામરૂપ પરિણ-
 થી માને છે. આ રીતે સમ્યક્દષ્ટિને રાગ નથી. આ પ્રમાણે પરમાર્થ અધ્યાત્મદષ્ટિથી
 હી વ્યાખ્યાન જાણવું. અહીં મિથ્યાત્વ સહિત રાગને જ રાગ કહ્યો છે, મિથ્યાત્વ
 ના આદિત્તભેદસંબંધી ઉદયના પરિણામને રાગ કહ્યો નથી; મારે સમ્યક્દષ્ટિને જ્ઞાન-
 પરશક્તિ અવશ્ય હોય જ છે. મિથ્યાત્વ સહિત રાગ સમ્યક્દષ્ટિને હોતો નથી અને
 પ્યાત્વ સહિત રાગ હોય તે સમ્યક્દષ્ટિ નથી. આચા (મિથ્યાદષ્ટિના અને સમ્યક્દષ્ટિના
 વિના) તર્કાવનને સમ્યક્દષ્ટિ જ જાણે છે. મિથ્યાદષ્ટિના અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં પ્રથમ તો
 રોગ નથી અને જે પ્રવેશ કરે તો વિપરીત સમજે છે—વ્યવહારને સર્વથા હાડી બ્ર-
 મ્મ છે અથવા તો નિશ્ચયને સારી રીતે જાણ્યા વિના વ્યવહારથી જ મોક્ષ માને છે,
 માર્થ તત્ત્વમાં મૂક રહે છે. જે કોઈ વિરલ એવ વધાર્થ સ્વાદવાદ્યાપથી સત્યાર્થ
 મળી જાય તો તેને અવશ્ય સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય જ છે—તે અવશ્ય સમ્યક્દષ્ટિ
 ની જાય છે. ૨૦૦.

હવે પૂછે છે કે રાગી (એવ) કેમ સમ્યક્દષ્ટિ ન હોય ? તેના ઉત્તર કહે છે—

(મંદરાંત્રા)

સમ્યગ્દષ્ટિઃ સ્વયમયમહં જાતુ ચંચો ન મે સ્યા-
દિત્યુત્તાનોત્પુન્નકવદના રાગિણોઽપ્યાચરંતુ ।

આલંબંતાં સમિતિપરતાં તે યતોઽપિ પાપા

આત્માનાત્માવગમવિરહાત્સંતિ સમ્યક્ત્વરિક્તાઃ ॥ ૧૩૭ ॥

અર્થઃ—“આ હું પોતે સમ્યગ્દષ્ટિ છું, મને કદી બંધ થતો નથી (જો શાસ્ત્રમાં સમ્યગ્દષ્ટિને બંધ કહ્યો નથી)” એમ માનીને જેમણે મુખ મંદીરો તથા પુલકિત (રોમાંચિત) થયું છે એવા રાગી છવો (—પરદ્રવ્ય પ્રત્યે સ્વયં ભાવવાળા છવો—) ભડે મહાનતાદિતું આચરણ કરે તથા “સમિતિની” આલંબન કરે તોપણ તેઓ પાપી (મિથ્યાદષ્ટિ) જ છે, કારણ કે આત્મા અને આત્મા જ્ઞાનથી સંહિત હોવાથી તેઓ સમ્યક્ત્વથી સંહિત છે.

ભાવાર્થઃ—પરદ્રવ્ય પ્રત્યે રાગ હોવા છતાં જે છવ ‘હું’ સમ્યગ્દષ્ટિ બંધ થતો નથી’ એમ માને છે તેને સમ્યક્ત્વ કેવું? તે યત-સમિતિ અને સ્વપરણું જ્ઞાન નહિ હોવાથી તે પાપી જ છે. પોતાને બંધ નથી થતો એ જ સ્વચ્છેદ પ્રવર્તે તે વળી સમ્યગ્દષ્ટિ કેવો? કારણ કે જ્યાંમુખી વધાખ્યાન જે થાય ત્યાંમુખી ચારિત્રમોહના રાગથી બંધ તો થાય જ છે અને જ્યાંમુખી ત્યાંમુખી સમ્યગ્દષ્ટિ તો પોતાની નિંદા-ગર્હ કરતો જ રહે છે. જ્ઞાન થવાઆરંભે પ્રકાશ નથી, જ્ઞાન થવા પછી તેમાં જ સ્તીનતારૂપ—શુદ્ધોપયોગરૂપ—ચારિત્ર્યે કપાય છે. માટે રાગ હોવા છતાં, ‘બંધ થતો નથી’ એમ માનીને સ્વચ્છેદ છવ મિથ્યાદષ્ટિ જ છે.

અહીં કોઈ પૂછે કે “યત-સમિતિ તો શુભ કાર્ય છે. તો પછી પ્રકાર પાપતાં છતાં તે છવને પાપી કેમ કહ્યો?” તેનું સમાધાન—સિદ્ધાંતમાં યાચિકા જ કહ્યું છે; જ્યાંમુખી મિથ્યાત્વ રહે ત્યાંમુખી શુભ-અશુભ સર્વ ક્રિયાને અશુભ પરમાર્થ પાપ જ કહેવાય છે. વળી વ્યવહારનયની પ્રધાનતામાં, વ્યવહારી દષ્ટિ અશુભ હોવાની શુભમાં લગાડવા શુભ ક્રિયાને કથચિત્ત પુણ્ય પણ કહેવાય છે. કહેવાથી સ્વાદવાદ મતમાં કાંઈ વિરોધ નથી.

વળી કોઈ પૂછે છે કે—“પરદ્રવ્યમાં રાગ રહે ત્યાંમુખી છવને મિથ્યા” તેને યાગમાં અને સમજવા નહિ. અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ વગરને ચારિત્રમોહના રાગથી ને

* સમિતિ = વચન, સિદ્ધાંત અને આદર્શની વિષામતા જનનાથી પ્રવર્તે છે

તો હોય છે, તેમને સમ્યક્ત્વ કેમ છે? તેનું સમોદાન—અહીં મિથ્યાત્વ સહિત
 પ્રાપ્તિથી રાગ પ્રધાનપણે કહ્યો છે. જેને એવો રાગ હોય છે અર્થાત્ જેને પર-
 માં તથા પરદ્રવ્યથી થતા ભાવોમાં આત્મચુદ્ધિપૂર્વક પ્રીતિ—અપ્રીતિ થાય છે, તેને
 તેનું જ્ઞાનમદાન નથી—જેદજ્ઞાન નથી એમ સમજવું. છત્ર મુનિપદ લઈ મત-
 તે પાળે તોપણ જ્યાંમુખી (મન-સમિતિ પાળતાં) પર હવેની રક્ષા, શરીર સંજ્ઞાથી
 પ્રવર્તવું કત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના
 ભાવોથી પોતાના મોક્ષ માને છે અને પર હવેનો ઘાન થવો, અવતનાચારરૂપે
 ક્રિયા કત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના અશુભ
 થી જ પોતાને બચે થવો માને છે ત્યાંમુખી તેને સ્વપરનું જ્ઞાન થયું નથી એમ
 વૃં; કારણ કે બચ-મોક્ષ તો પોતાના અશુભ તથા શુભ ભાવોથી જ થતા હતા,
 અશુભ ભાવો તો બચનાં જ કારણ હતા અને પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર જ હતું,
 તેણે વિપર્યયરૂપ માન્યું. આ રીતે જ્યાંમુખી છત્ર પરદ્રવ્યથી જ બહુબુદ્ધિ મળી
 દેવ કરે છે ત્યાંમુખી તે સમ્યક્દષ્ટિ નથી. સમ્યક્દષ્ટિ છત્ર તો જ્યાંમુખી પોતાને આરિ-
 સંજ્ઞાથી રાગાદિક રહે છે ત્યાંમુખી તે રાગાદિક વિષે તથા રાગાદિકની પ્રેરણાથી
 પરદ્રવ્યસંજ્ઞાથી શુભાશુભ ક્રિયામાં તે પ્રવર્તે છે તે પ્રવૃત્તિઓ વિષે એમ માને છે કે—
 કર્મવૃં જોર છે; તેનાથી નિવૃત્ત થયે જ માનું બહુ છે. તે તેમને રોગાવત્ જણે છે.
 ૨ સહી રાક્ષસી નથી તેથી તેમનો કલાજ કરવારૂપે પ્રવર્તે છે તોપણ તેને તેમના
 ૩ રાગ સહી રાક્ષસો નથી; કારણ કે જેને રોગ માને તેના પ્રત્યે રાગ કેવો? તે તેને
 પ્રાપ્તો જ ઉપાય કરે છે અને તે મહત્ત્વ પાળી પોતાના જ જ્ઞાનપરિણામરૂપ પરિણ-
 ાથી માને છે. આ રીતે સમ્યક્દષ્ટિને રાગ નથી. આ પ્રમાણે પરમાર્થ અધ્યાત્મદષ્ટિથી
 હીં વ્યાખ્યાન બહુવું. અહીં મિથ્યાત્વ સહિત રાગને જ રાગ કહ્યો છે, મિથ્યાત્વ
 તા અરિસંજ્ઞાસંજ્ઞાથી ઉદયના પરિણામને રાગ કહ્યો નથી; મારે સમ્યક્દષ્ટિને જ્ઞાન-
 અરણિ અવરણ હોય જ છે. મિથ્યાત્વ સહિત રાગ સમ્યક્દષ્ટિને હોતો નથી અને
 મિથ્યાત્વ સહિત રાગ હોય તે સમ્યક્દષ્ટિ નથી. આત્મા (મિથ્યાદષ્ટિના અને સમ્યક્દષ્ટિના
 વિના) તદ્વાતને સમ્યક્દષ્ટિ જ બંધુ છે. મિથ્યાદષ્ટિનો અધ્યાત્મરાત્રમાં પ્રથમ તો
 રોગ નથી અને જે પ્રવેશ કરે તો વિપરીત સમજે છે—વ્યવહારને સર્વથા છાડી બ્રહ્મ
 ય છે અથવા તો નિશ્ચયને સારી રીતે જાણ્યા વિના વ્યવહારથી જ મોક્ષ માને છે,
 માર્થ તત્ત્વમાં મૂક રહે છે. જે કોઈ વિરક્ત છત્ર યથાર્થ સ્વાદવાદન્યાયથી સત્યાર્થ
 મજા જાય તો તેને અવરણ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય જ છે—તે અવરણ સમ્યક્દષ્ટિ
 ની જાય છે. ૨૦૦.

હવે પૂછ છે કે રાગી (છત્ર) કેમ સમ્યક્દષ્ટિ ન હોય? તેના ઉત્તર મહે છે:—

પરમાણુમિત્તયંપિ હુ રાયાદીનં તુ વિજ્ઞદે જસ્ય ।
 ણ વિ સો જાણદિ અપ્પાણયં તુ સન્વાગમધરો વિ ॥
 અપ્પાણમયાણંતો અણપ્પયં ચાવિ સો અયાણંતો ।
 કહ હોદિ સમ્પદિટ્ટી જીવાજીવે અયાણંતો ॥ ૨૦૧ ॥

પરમાણુમાત્રમપિ સ્વલુ રાગાદીનાં તુ વિચિત્તે યસ્ય ।
 નાપિ સ જાનાત્યાત્માનં તુ સર્વાગમધરોઽપિ ॥ ૨૦૧ ॥
 આત્માનમજાનન્ અનાત્માનં ચાપિ સોઽજાનન્ ।
 કથં ભવતિ સમ્યગ્દષ્ટિર્જીવાજીવાત્વજાનન્ ॥ ૨૦૨ ॥

અન્વયાર્થઃ—[સ્વલુ] ખરેખર [યસ્ય] જે જીવને [રાગાદીનાં] તુ
 માત્રં અપિ] પરમાણુમાત્ર—લેશમાત્ર—પણ રાગાદિક [વિચિત્તે] વર્તે છે [સ]
 [સર્વાગમધરઃ અપિ] ભક્તે સર્વ આગમ ભણેલો હોય તોપણ [આત્માનં] તુ
 [ન અપિ જાનાતિ] નથી જાણતો; [ચ] અને [આત્માનં] આત્માને
 નહિ જાણતો થકો [સઃ] તે [અનાત્માનં અપિ] અનાત્માને (પરને) પણ
 નથી જાણતો; [જીવાજીવો] એ રીતે જે જીવ અને અજીવને [મજાનન્]
 તે [સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [કથં ભવતિ] કેમ હોઈ શકે?

ટીકાઃ—જેને રાગાદિ અજ્ઞાનમય ભાવોના લેશમાત્રનો પણ સંભાવ
 શ્રુતકેવળી જેવો હો તોપણ જ્ઞાનમય ભાવોના અભાવને લીધે આત્માને નથી
 અને જે આત્માને નથી જાણતો તે અનાત્માને પણ નથી જાણતો કારણ
 સત્તા અને પરસ્પરે અસત્તા—એ બન્ને વડે એક વસ્તુનો નિશ્ચય થાય છે;
 આત્માનો—રાગનો—નિશ્ચય થયો હોય તેને અનાત્મા અને આત્મા—મને
 હોયો જોઈએ). એ રીતે જે આત્મા અને અનાત્માને નથી જાણતો તે જ
 અજીવને નથી જાણતો; અને જે જીવ-અજીવને નથી જાણતો તે સમ્યગ્દષ્ટિ
 માટે રાગી (જીવ) જ્ઞાનના અભાવને લીધે સમ્યગ્દષ્ટિ હોતો નથી.

અણુમાત્ર પણ રાગાદિનો સદ્ભાવ વર્તે જોડને,
 તે સર્વઆગમધર ભક્તે પણ જાણતો નહિ આત્માને;
 નહિ જાણતો જ્યાં આત્માને જ, અનાત્મ પણ નહિ જાણતો,
 તે કેમ હોય સુદષ્ટિ જે જીવ-અજીવને નહિ જાણતો!

ભાવાર્થ:—અહીં ‘રાગ’ શબ્દથી અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષમોહ કહેવામાં આવ્યા ‘અજ્ઞાનમય’ કહેવાથી ત્રિધાત્વ-અનંતાનુબંધી થયેલા રાગાદિક સમજવા, વિના ચારિત્રમોહના ઉદયનો રાગ ન લેવો; કારણ કે અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ વગેરેને મોહના ઉદય સંબંધી રાગ છે તે જ્ઞાનસહિત છે; તે રાગને સમ્યગ્દષ્ટિ કર્મોદયથી રોગ જાણે છે અને તેને મટાડવા જ હજી છે; તે રાગ પ્રત્યે તેને રાગ નથી. સમ્યગ્દષ્ટિને રાગનો લેશમાત્ર સ્પર્શાવ નથી એમ કહ્યું છે તેનું કારણ આ પ્રમાણે સમ્યગ્દષ્ટિને અશુભ રાગ તો અત્યંત ગૌણ છે અને જે શુભ રાગ થાય છે તેને સારો (સારો) સમજતો નથી—તેના પ્રત્યે લેશમાત્ર રાગ કરતો નથી. વળી તે તો તેને રાગનું સ્વામિત્વ જ નથી. માટે તેને લેશમાત્ર રાગ નથી.

જે કોઈ જીવ રાગને લેલો જાણી તેના પ્રત્યે લેશમાત્ર રાગ કરે તો—લેશમાત્ર જાણી ચૂક્યા હોય, યુતિ હોય, વ્યવહારચારિત્ર પણ પાળતો હોય—એમ સમજવું કે તેણે પોતાના આત્માનું પરમાર્થસ્વરૂપ નથી જાણ્યું, કર્મોદયનું રાગને જ સારો માન્યો છે, અને તેનાથી જ પોતાનો મોક્ષ માન્યો છે. આ પોતાના અને પરના પરમાર્થ સ્વરૂપને નહિ જાણતો હોવાથી જીવ-અજીવના પરમાર્થ સ્વરૂપને જાણતો નથી. અને જ્યાં જીવ અને અજીવ—એ પદાર્થોને જ જાણતો હોય તે સમ્યગ્દષ્ટિ કેવો? માટે રાગી જીવ સમ્યગ્દષ્ટિ હોઈ શકે નહિ.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે, જે કાવ્યકારા આચાર્યદેવ અના-રાગાદિને પોતાનું પદ જાણી સ્તેષા રાગી પ્રાણીઓને ઉપદેશ કરે છે:—

(મંદાંતા)

આસંસારાત્મતિપદમમી રાગિણો નિત્યમત્તા:

મુખ્તા યસ્મિન્નપદમપદં તદ્વિષુધ્યધ્વમંધાઃ ।

एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यघातुः

शुद्धः शुद्धः स्वरसमरतः स्थायिभावत्वमेति ॥ ૧૩૮ ॥

અર્થ:—(ઓ ગુરુ સંસારી ભવ્ય જીવોને સંબોધે છે કે:) હું અથ પ્રા-
ણી અનાદિ સંસારથી માંડીને પર્યાયે પર્યાયે આ રાગી જીવો સદાય મત વર્તતા
જે પદમાં સૂતા છે—ઊંધે છે તે પદ અર્થાત્ સ્થાન અપદ છે—અપદ છે, (તમારું
નથી,) એમ તમે સમજો. (જે વાર કહેવાથી અતિ કરુણાભાવ સચિત થાય છે.)
તરફ આવો—આ તરફ આવો, (અહીં નિવાસ કરો,) તમારું પદ આ છે—આ
માં શુદ્ધ—શુદ્ધ ચૈતન્યઘાતુ નિર્જ રસની અનિશયતાને લીધે સ્થાયીભાવપણાને
છે અર્થાત્ સ્થિર છે—અવિનાશી છે. (અહીં ‘શુદ્ધ’ શબ્દ જે વાર કહ્યો છે તે
અને ભાવ બન્નેની શુદ્ધતા સૂચવે છે. સર્વ અન્યદ્રવ્યોથી લુપ્ત હોવાને લીધે

કે, બ્યભિચારી ભાવો છે, તે બધાય પાતે અસ્થાયી હોવાને લીધે સ્થાનાનું સ્થાન ન રહેનારનું રહેલાવું નહિ થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી અપદબૂત છે; અને જે ભાવો (અર્થાત્ આત્માના સ્વભાવરૂપે) અનુભવનાં, નિયત અવસ્થાવાળાં, એક, અબ્યભિચારી ભાવ (ચેતન-અમાત્ર જ્ઞાનભાવ) છે, તે એક જ પાતે સ્થાયી અને લીધે સ્થાનાનું સ્થાન અર્થાત્ રહેનારનું રહેલાવું થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી મૂન છે. તેથી સમસ્ત અસ્થાયી ભાવોને છાડી, જે સ્થાયીભાવરૂપ છે એવું પરમાર્થ-રૂપે સ્વાદમાં આવતું આ જ્ઞાન એક જ આસ્વાદવાયોગ્ય છે.

ભાવાર્થ:—પૂર્વે વર્ણાદિક શુદ્ધસ્થાનપર્યંત ભાવો કદા દુઃખ તે બધાય, આમાં અનિયત, અનેક, શબ્દિક, બ્યભિચારી ભાવો છે. આત્મા સ્થાયી છે (—સદા જ્ઞાન છે) અને તે બધા ભાવો અસ્થાયી છે (—નિત્ય કદા નથી), તેથી તેઓ આત્માનું સ્થાન-રહેલાવું-થઈ શકના નથી અર્થાત્ તેઓ આત્માનું પદ નથી. જે આત્મા સ્વેદનરૂપ જ્ઞાન છે તે નિયત છે, એક છે, નિત્ય છે, અબ્યભિચારી છે. આત્મા સ્થાયી છે અને આ જ્ઞાન પણ સ્થાયી ભાવ છે તેથી તે આત્માનું પદ છે. તે એક જ નીતિ વડે આસ્વાદ લેવા યોગ્ય છે.

હવે આ અર્થના કાશીરૂપ સ્તોત્ર કહે છે:—

(અનુક્રમ)

एकमेव हि तत्तत्वाद्यं विषयपदं पदम् ।

अपदान्पेव यातते पदान्यन्यानि यत्पुरा ॥ ૧૨૧ ॥

અર્થ:—તે એક જ પદ આસ્વાદવાયોગ્ય છે કે જે વિષયિયાનું અપદ છે અર્થાત્ જેમાં આપદાઓ સ્થાન પામી શકતી નથી) અને જેની આગળ અન્ય સર્વ) પોતા અપદ જ ભારે છે.

ભાવાર્થ:—એક જ જ્ઞાન જ આત્માનું પદ છે. તેમાં કોઈ પણ આપદા કહેલી શકતી નથી અને તેની આગળ અન્ય સર્વ પદો અપદસ્વરૂપ ભારે છે (—પદો કે જે આત્માના અપદ છે—આપદિરૂપ છે)

વળી કહે છે કે આત્મા જ્ઞાનનો અનુભવ કરે છે ત્યારે આત્મ કરે છે:—

(સાંકેતિકાગ્રંથ)

एकहायवभावनिर्भरमहापदाद् सदागाददम्

एवाद् दृढमपे विषयपदमतः यदा यत्पुरा हि ददम् ।

આત્માત્માનુભવાનુભાવવિવચો ભ્રમ્યદ્વિશેષોદયં
સામાન્યં કલયન્ કલૈષ સકલં જ્ઞાનં નયત્પેક્ષત્

અર્થ:—એક જ્ઞાપકભાવથી ભરેલા મહાસ્વાદને લેતો, (એ રીતે એકાગ્ર થતાં બીજો સ્વાદ આવતો નથી માટે) દ્વંદ્વમય સ્વાદને લેવા અર્થાત્ વર્ણાદિક, રાગાદિક તથા ક્ષયોપશમિક જ્ઞાનના ભેદોનો સ્વાદ લેખને આત્માના અનુભવના—સ્વાદના—પ્રભાવને આધીન થયો હોવાથી નિષ્ (આત્માની શુદ્ધ પરિણતિને) જાણતો—આસ્વાદતો (અર્થાત્ આત્મા સ્વાદના અનુભવનમાંથી બહાર નહિ આવતો) આ આત્મા જ્ઞાનના ગૌણ કરતો, સામાન્યમાત્ર જ્ઞાનને અવ્યાસતો, સકળ જ્ઞાનને એકપક્ષાંશ એકરૂપે પ્રાપ્ત કરે છે.

ભાવાર્થ:—આ એક સ્વરૂપજ્ઞાનના રસીલા સ્વાદ આગમ છે. બીજી સ્વરૂપજ્ઞાનને અનુભવતાં સર્વ ભેદભાવો મટી જાય છે. જ્ઞાનના નિમિત્તે થાય છે. જ્યારે જ્ઞાનસામાન્યનો સ્વાદ લેવામાં આવે ત્યારે જ્ઞાન પણ ગૌણ થઈ જાય છે, એક જ્ઞાન જ સ્વેચ્છ થાય છે.

અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે છદ્મસ્થને પૂર્ણરૂપ કેવળજ્ઞાનનો સ્વાદ કયો આ પ્રશ્નનો ઉત્તર પહેલાં શુદ્ધનયન કથન કરતાં કેવાઈ ગયો છે કે શુદ્ધ શુદ્ધ પૂર્ણ સ્વરૂપ જણાવતો હોવાથી શુદ્ધનય દ્વારા પૂર્ણરૂપ કેવળજ્ઞાનનો આવે છે. ૨૦૩.

હવે, કર્મના ક્ષયોપશમના નિમિત્તે જ્ઞાનમાં ભેદ હોવા છતાં કે વિચારવામાં આવે તો જ્ઞાન એક જ છે અને તે જ્ઞાન જ મોક્ષનો ઉપાય અર્થની ગાથા કહે છે:—

આભિણિવોહિયમુદોધિમણકેવલં ચ તં હોદિ દુર્મદો
સો દસો પરમદ્રો જં લહિદું ણિવુદિં જાદિ ॥ ૨૦૪ ॥

આભિણિવોધિકચુતાવધિમનઃપર્યયકેવલં ચ તત્તસંયેમદો દાર
જ એવ પરમાર્થો યં મદ્વા નિર્વૃત્તિં યાતિ ॥ ૨૦૪ ॥

મનિ, શુન, અવધિ, મનઃ, કેવલ તેદ પદ એક જ પદ.
આ જ્ઞાનપદ પરમાર્થ છે જે પામી એવ મુક્તિ કરે.

અન્યથા—[આમિનિવોધિકથુતાવધિમનઃપર્યવલેચ] મનિજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન, મનપર્યવજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાન—[તત્] તે [ઇકં ઇવ] એકમયતિ] પદ છે (કારણ કે જ્ઞાનના મર્ત બેટા જ્ઞાન જ છે); [સઃ ઇવઃ પરમાર્થ] મા પરમાર્થ છે (અનુભવના વિષયભૂત જ્ઞાનસામાન્ય જ આ પરમાર્થ છે—લગ્યા) કે જેને પામીને [નિર્વૃત્તિ યાતિ] આત્મા નિર્વાણને પ્રાપ્ત થાય છે.

ટીકા:—આત્મા ખરેખર પરમાર્થ (પરમ પદાર્થ) છે અને તે (આત્મા) પગી આત્મા એક જ પદાર્થ છે; તેથી જ્ઞાન પણ એક જ પદ છે. જે આત્મા એક પદ છે તે આ પરમાર્થસ્વરૂપ સાક્ષાર પ્રાક્ષ-ઉપાય છે. અર્થો, મનિ-પ્રિ (જ્ઞાનના) બેટા આ એક પદને બેટા નથી પરંતુ તેઓ પણ આ જ આમિનિ-કે છે (—ટોકા-આપિ છે). તે દર્શનથી સમજાવવામાં આવે છે:—જે આ જગતમાં વાદગાંના પાલથી હંધેલો સૂર્ય કે જે વાદગાંના વિષયના પ્રગટપણ પામે છે, તેના (અર્થાત્ સૂર્યના) પ્રકાશનની (પ્રકાશવાની) નાધિકતારૂપ બેટા તેના (સામાન્ય) પ્રકાશસ્વભાવને બેટા નથી, તેવી રીતે કર્મ-જ્ઞાનના હંધેલો આત્મા કે જે કર્મના વિષય (કાર્યાપશમ) અનુસારે પ્રગટ-પામે છે, તેના જ્ઞાનની હિનાધિકતારૂપ બેટા તેના (સામાન્ય) જ્ઞાનસ્વભાવને નથી પરંતુ હિસા અમિનિ-કે છે. મારે જેમાં સમસ્ત બેટ ફર થયા છે અંધા મરવભાવજૂત જ્ઞાનનું જ એકનું આલંબન કરેલું. તેના આલંબનથી જ (નિર્જ) પ્રાપ્તિ થાય છે, આંતિનો નાશ થાય છે, આત્માના લાભ થાય છે, અના-માના નિર્જ થાય છે, (એમ થવાથી) કર્મ બેસવર થઈ જાયું નથી, રાગદ્વેષમાદ થવા નથી, (રાગદ્વેષમાદ વિના) ફરી કર્મ આસવનું નથી, (આસવ વિના) કર્મ બેસવું નથી, પૂરે બેસવું કર્મ બેસવું નથી, (આસવ વિના) કર્મના અભાવ થવાથી સાક્ષાર પ્રાક્ષ થાય છે. (આત્મા જ્ઞાનના આસવનું

આવાર્થ:—કર્મના કાર્યાપશમ અનુસારે જ્ઞાનમાં જે બેટા થયા છે તે જ જ્ઞાનને અજ્ઞાનરૂપ નથી કરેલા, હિસા જ્ઞાનને પ્રગટ કરે છે. આટલે જ્ઞાનને જ્ઞાનસામાન્યનું આલંબન લઈ આત્માનું કલ્યાણ કરેલું; તેનાથી સર્વ વિલંબ આ અર્થનું કારણરૂપ કાન્ય કરે છે:—

કર્મ પાતું તે વિષયના જનુ તે. નહ

(શાસ્ત્રવિદીગિત)

અચ્છાચ્છાઃ સ્વયમુચ્છલંતિ યદિમાઃ સંવેદનવ્યક્તયો
નિષ્પીતાશિલભાવમંડલરસપ્રાગ્ભારમષ્ટા ઇવ ।

યસ્યાભિન્નરસઃ સ ઇપ ભગવાનેકોઽપ્યનૈકીભવત્

વલ્ગલ્યુત્કલિકાભિરદ્ભુતનિધિધૈતન્યરત્નાકરઃ ॥ ૧૪૧ ॥

અર્થઃ—પી જવામાં આવેલો જે સમસ્ત પદાર્થોના સમુદાયે સ
અતિશયનાથી જાણે કે મત્ત થઈ ગઈ હોય એવી જેની આ નિર્ભયથી ૧૧
સંવેદનવ્યક્તિઓ (જ્ઞાનપર્યાયો, અનુભવમાં આવતા જ્ઞાનના ભોગ) આ
હોઈએ છે, તે આ ભગવાન અદ્ભુત નિધિવાળો ચૈતન્યરત્નાકર, જ્ઞાનપર્યાય
સાથે જેનો રસ અભિન્ન છે એવો, એક હોવા છતાં અનેક થતો, જ્ઞાનપર્યાય
૫૨ જ્ઞાતૈયમાન થાય છે—હોઈએ છે.

ભાવાર્થઃ—જેમ ઘણા રત્નોવાળો સમુદ્ર એક જગથી જ ભરેલો
તેમાં નાના મોટા અનેક તરંગો હોઈએ છે તે એક જગથી જ છે, તેમ આ
ભગવાન આ જ્ઞાનસમુદ્ર આત્મા એક જ્ઞાનજગથી જ ભરેલો છે અને જ્ઞાનના
જ્ઞાનના અનેક બેસા—વ્યક્તિઓ આપોઆપ પ્રગટ થાય છે તે વ્યક્તિઓ આ
જગજગથી, ખંડખંડથી ન અનુભવથી.

.. હવે વળી વિશેષ કહે છે:—

(શાસ્ત્રવિદીગિત)

ત્રિશ્યતાં સ્વયમેવ દુષ્કરતૈર્મોક્ષોન્મુત્રીઃ કર્મભિઃ ।

ત્રિશ્યતાં ચ પરે મહાવ્રતવ્રતપોષારેણ મપ્રાપિત્વ ।

માતાન્મોક્ષાદે નિરામયપદે મંચેયમાન સ્વયે

જ્ઞાન જ્ઞાનગૂર્ણ વિના કયમપિ માત્તુ શમંતે ન રિ ॥ ૧૪૨ ॥

અર્થઃ—કેઈ હશે તો દુષ્કર (દુષ્કર કરી શકાય એવો) અને
૫૨ જ્ઞાન એવા કરો ૫૨ સ્વયમેવ (અર્થાત્ જિનપદ્ધતિ વિના) કોઈ પણ કે
અને ત્રિશ્યતાં હશે (જ્ઞાનની મનુષ્ય અર્થાત્ કયમિત્ત જિનપદ્ધતિ
અને જ્ઞાન જાણી થવા વખત મુખી ભાગ થવા થતા (મુખી મનુષ્ય
અને તે જ્ઞાન) જે માત્ર માત્રસ્વરૂપ છે, નિમગ્ન (જેનાં
વિષય) ૫૨ કે અને અર્થ અવિષય છે (અર્થાત્ જિનપદ્ધતિ જે છે)

વે છે) એવું આ જ્ઞાન તો જ્ઞાનગુણ વિના હોઈ પણ રીતે તેઓ પ્રાપ્ત થતા જ નથી.

આવાર્થ:—જ્ઞાન છે તે સાક્ષાત્ પ્રાપ્ત છે; તે જ્ઞાનથી જ મળે છે, અન્ય કોઈ કાંઈ તેની પ્રાપ્તિ થતી નથી. ૨૦૪.

હવે આ જ ઉપદેશ ગાથામાં કરે છે:—

જ્ઞાનગુણેણ વિદીના એવં તુ પયં વહ વિ જ લહંતે ।
તં ગિણ્હ ણિયદમેદં જદિ ઇચ્છસિ કર્મપરિમોક્ષયં ॥ ૨૦૫ ॥

જ્ઞાનગુણેન વિદીના એતત્તુ પદં વહવોઽપિ ન લહંતે ।
નદ્ શુદ્ધાણ નિયતમેતદ્ ચદીન્તિ કર્મપરિમોક્ષમ્ ॥ ૨૦૫ ॥

અર્થ:—[જ્ઞાનગુણેન વિદીના:] જ્ઞાનગુણથી સંહિત [વહય: અપિ] થાય હોય (વહુ પ્રકારનાં કર્મ કરવા છતાં) [એતત્તુ પદં તુ] આ જ્ઞાનસ્વરૂપ પડને [લહંતે] પામતા નથી; [તદ્] મારે હો અન્ય! [ચદિ] જો તું [કર્મપરિમોક્ષયં] સર્વથા મુક્ત થવા [ઇચ્છસિ] ઇચ્છતો હો તો [નિયતં એતત્તુ] નિયત એવા (જ્ઞાનને) [શુદ્ધાણ] મદ્દળ કર.

ટીકા:—કર્મમાં (કર્મકાંડમાં) જ્ઞાનનું પ્રકાશનું નહિ હોવાથી સઘળાં જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થતી નથી; જ્ઞાનમાં જ જ્ઞાનનું પ્રકાશનું હોવાથી કેવળ (એક) જ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. મારે જ્ઞાનશૂન્ય ઘણાં જીવો, પુષ્કળ (વહુ પ્રકારનાં) થાય પણ આ જ્ઞાનપડને પામતા નથી અને આ પડને નહિ પામતા થકા તેઓ મુક્ત થતા નથી; મારે કર્મથી મુક્ત થવા હ્મ્હનારે કેવળ (એક) જ્ઞાનનાથી, નિયત જ એવું આ એક પદ પ્રાપ્ત કરવાયોગ્ય છે.

આવાર્થ:—જ્ઞાનથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, કર્મથી નહિ; મારે પ્રાપ્તિથી જ્ઞાનનું સ્વરૂપ એમ ઉપદેશ છે.

વે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

લોક જ્ઞાનગુણે સંહિત આ પદ નહિ પામી શકે;
મદ્દળ કર તું નિયત આ, જો કર્મપ્રેક્ષા તને. ૨૦૫.

પદમિદં નનુ કર્મદુરાસદં
સહજબોધકલામુલભં કિલ ।
તત્ત્વં નિજબોધકલાવલાત્
કલયિતું યતતાં સતતં જગત્ ॥ ૧૪૩ ॥

અર્થ:—આ (જ્ઞાનસ્વરૂપ) પદ કર્મથી ખરેખર દુરાસદ છે; સહજજ્ઞાનની કળાના બળથી અભ્યાસવાને જગત સતત પ્રયત્ન કરે.

ભાવાર્થ:—સર્વ કર્મને છોડાવીને જ્ઞાનકળાના બળ વડે જ જ્ઞાનને કરવાનો આચાર્યદેવે ઉપદેશ કર્યો છે. જ્ઞાનની 'કળા' કહેવાથી એમ સ્પષ્ટ છે:—જ્યાંસુધી પૂર્ણ કળા (કેવળજ્ઞાન) પ્રગટ ન થાય ત્યાંસુધી જ્ઞાન હીનજ્ઞાન મતિજ્ઞાનાદિરૂપ છે; જ્ઞાનની તે કળાના આસન્ન વડે જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવાથી જ્ઞાન અર્થાત્ પૂર્ણ કળા પ્રગટે છે. ૨૦૫.

હવેની ગાથામાં આ જ ઉપદેશ વિશેષ કરે છે:—

एदक्षि रदो निचं संतुष्टो होहि निचमेदक्षि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं मोक्षं ॥ २०६ ॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तप्तो भविष्यति तवोत्तमं मौक्ष्यम् ॥ २०६ ॥

અન્યથાર્થ:—(હે ભવ્ય પ્રાણી!) તું [એતસ્મિન્] આમાં (નિત્ય) નિત્ય [રતો] રત અર્થાત્ પ્રીતિવાગી થા, [એતસ્મિન્] આમાં [નિત્ય] નિત્ય [સંતુષ્ટઃ મય] સંતુષ્ટ થા અને [એતેન] આનાથી [ત્વતઃ મય] ત્વતઃ મય [મોક્ષ] મોક્ષ [ઉત્તમં મોક્ષ] ઉત્તમ મુખ [ભવિષ્યતિ] થશે.

આમાં સદા પ્રીતિવંત બન, આમાં સદા મંતુષ્ટ ને આનાથી બન તું તૃપ્ત, તુજને મુખ અર્થાત્ ઉત્તમ મુખ. ૨૦૬

ટીકા:—(તે બચ્ચ!) એટલો જ સત્ય (પરમાર્થસ્વરૂપ) આત્મા છે જેટલું જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવમાં જ સદાય રતિ (—પ્રીતિ, રુચિ) પામ; ૧' જ સત્ય કહ્યાનું છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવથી જ સંતોષ પામ; એટલું જ સત્ય અનુભવનીય (અનુભવ દરવાયા) છે જેટલું જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવથી જ સદાય તૃપ્તિ પામ. એમ સદાય મામાં રત. આત્માથી સંતુષ્ટ અને આત્માથી તૃપ્ત એવા તને વચનથી અગાધર મુખ થશે; અને તે મુખ તે કાંઈ જ તું જ સ્વયમેવ દેખશે, બીજાએ તને ન (તે મુખ પોતાને જ અનુભવનાથર છે, બીજાને શા મારે પૂછવું પડે?)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનભાવ આત્મામાં હીન થવું, તેનાથી જ સંતુષ્ટ થવું અને થી જ તૃપ્ત થવું—એ પરમ ધ્યાન છે. તેનાથી વર્તમાન આત્મિક અનુભવાય છે ધ્યાન જ હાથમાં જ્ઞાનનું સ્વરૂપ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્મ કરનાર જ તે મુખને બાંહે છે, બીજાને એમાં પ્રવેશ નથી.

હવે જ્ઞાનાનુભવના મહિમાનું અને આગમની ગાથાની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપભાનિ)

અર્ચિત્યશક્તિઃ સ્વયમેવ દેવ-

ચિન્માર્ચિતામણિરેષ યમ્માત્ ।

સર્વાર્થસિદ્ધાત્મતયા વિપતે

જ્ઞાની કિમન્યસ્ય પરિગ્રહેણ ॥ ૧૪૪ ॥

અર્થ:—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પોતે જ અર્ચિત્ય શક્તિવાળો દેવ છે અને માત્ર ચિન્માર્ચિ છે (અર્થાત્ ચૈતન્યરૂપ ચિન્માર્ચિ રત્ન છે), મારે જેના સર્વ અર્થ (પ્રયોજન) સિદ્ધ છે એવા સ્વરૂપ હોવાથી જ્ઞાની અન્યના પરિમહત્ત્વ મું કરે? કંઈ જ કરવાનું નથી).

ભાવાર્થ:—આ જ્ઞાનશ્રુતિ આત્મા પોતે જ અનંત શક્તિનો ધારક દેવ છે પોતે જ ચૈતન્યરૂપી ચિન્માર્ચિ હોવાથી વાંછિત કાર્યની સિદ્ધિ કરનારો છે; મારે તો સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ હોવાથી તેને અન્ય પરિમહત્ત્વ સેવન કરવાથી મું સાધ્ય અર્થાત્ કંઈ જ સાધ્ય નથી. આમ નિશ્ચયનયનો ઉપદેશ છે. ૨૦૬.

હવે પૂછે છે કે જ્ઞાની પરને કેમ મહત્ત્વ નથી? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

(કુતવિગતિ)

પદમિદં નનુ કર્મદુરાગદં
મદનચોષાભ્યાગુલભં કિલ્લ ।

તત્ત્વં નિત્યચોષાભ્યાગુલભં

કલ્પિતું મનતાં મતનં મનત્ ॥ ૧૪૩ ॥

અર્થ:—આ (જ્ઞાનરવરૂપ) પદ કર્મથી ખરેખર *દુરાગમ છે અને મન
જ્ઞાનની કળા વડે ખરેખર મુક્તિ છે; આરે નિત્યજ્ઞાનની કળાના અગાથી આ પદ
અભ્યાસવાને જગત સતત પ્રયત્ન કરે.

ભાવાર્થ:—સર્વ કર્મને છાયાવીને જ્ઞાનકળાના અગ વડે જ જ્ઞાનને અભ્યાસ
કરવાનો આચાર્યદેવે ઉપદેશ કર્યો છે. જ્ઞાનની 'કળા' કરેવાથી એમ મુચ્ચ થાય છે.
કે:—જ્યાંગુપ્તી પૂર્ણ કળા (કેવળજ્ઞાન) પ્રગટ ન થાય ત્યાંગુપ્તી જ્ઞાન દ્વીનકળાસ્વરૂપ—
મતિજ્ઞાનાદિરૂપ છે; જ્ઞાનની તે કળાના આસંબન વડે જ્ઞાનને અભ્યાસ કરવાથી કેવળ
જ્ઞાન અર્થાત્ પૂર્ણ કળા પ્રગટે છે. ૨૦૫.

હવેની ગાથામાં આ જ ઉપદેશ વિશેષ કરે છે:—

एदस्मि रदो णिवं संतुष्टो होहि णिवमेदस्मि ।

एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सौख्यं ॥ ૨૦૬ ॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।

एतेन भव तप्तो भविष्यति तवोत्तमं सौख्यम् ॥ ૨૦૬ ॥

અન્યથાર્થ:—(હે ભવ્ય પ્રાણી!) તું [એતસ્મિન્] આમાં (—જ્ઞાનમાં)
[નિત્યં] નિત્ય [રત:] રત અર્થાત્ પ્રીતિવાગે થા, [એતસ્મિન્] આમાં [નિત્યં]
નિત્ય [સંતુષ્ટ: મય] સંતુષ્ટ થા અને [એતેન] આનાથી [તુપ્ત: મય] વૃપ્ત થા;
(આમ કરવાથી) [તવ] તને [ઉત્તમં સૌખ્યં] ઉત્તમ સુખ [મવિવ્યતિ] થશે.

* દુરાગમ = દુઃપ્રાપ્ત; અપ્રાપ્ત; ન જીતી શકાય એવું.

૧ અહીં 'અભ્યાસવાને' એવા અર્થને બદલે 'અનુભવવાને', 'પ્રાપ્ત કરવાને' એમ અર્થ
પણ થાય છે.

આમાં સદા પ્રીતિવંત બન, આમાં સદા સંતુષ્ટ ને
આનાથી બન તું વૃપ્ત, તુજને સુખ અહો! ઉત્તમ થશે. ૨૦૬.

ટીકા:—(તે બાબત!) એટલો જ સત્ય (પરમાર્થસ્વરૂપ) આત્મા છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવમાં જ સદાય રહી (-પ્રીતિ, રશ્મિ) પામ; એટલું જ સત્ય દેખાવું છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવથી જ સદાય સતોષ પામ; એટલું જ સત્ય અનુભવનીય (અનુભવ કરવાપાત્ર) છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનભાવથી જ સદાય તમિ પામ. એમ સદાય આત્મામાં રત, આત્માથી સંપૂર્ણ અને આત્માથી વૃષ્ટિ એવા તને વચનથી અગાથર એટલું શુભ થશે; અને તે શુભ તે શત્રુ જ વૃં જ સ્વયંમેવ દેખશે, બીજાએને ન પૂ. (તે શુભ પાત્રને જ અનુભવનાથર છે, બીજાને શા મરે પૂછવું પડે?)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનભાવ આત્મામાં સ્તીન થવું, તેનાથી જ સંપૂર્ણ થવું અને નાથી જ વૃષ્ટિ થવું—એ પરમ ધ્યાન છે. તેનાથી વર્તમાન આત્મક અનુભવાય છે ને ધ્યાન જ શાગમાં જ્ઞાનનિરવરૂપ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્મ કરનાર 'ય જ તે શુભને જાણે છે, બીજાને એમાં પ્રવેશ નથી.

હવે જ્ઞાનાનુભવના મદ્દિમાત્ર અને આગળની ગાથાની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપનતિ)

અર્વિન્દ્યગતિઃ સ્વયમેવ દેવ-

ચિન્માત્રચિન્તામણિરેષ યસ્માન્ ।

તર્વાર્થસિદ્ધાત્મવત્પા વિપત્તે

જ્ઞાની ચિમ્ન્યસ્ય પરિગ્રહેણ ॥ ૧૪૪ ॥

અર્થ:—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પાત્રે જ અર્ચિત્ય શક્તિવાળો દેવ છે અને ચિન્માત્ર ચિન્તામણિ છે (અર્થાત્ ચિન્મયરૂપ ચિન્તામણિ રત છે), મરે જેના સર્વ અર્થ (પ્રયોજન) સિદ્ધ છે એવા સ્વરૂપે હોવાથી જ્ઞાની અન્યના પરિમલ્લથી શુ કરે? (કાંઈ જ કરવાનું નથી).

ભાવાર્થ:—આ જ્ઞાનમૂર્તિ આત્મા પાત્રે જ અનંત શક્તિનો ધારક દેવ છે અને પાત્રે જ ચિન્મયરૂપી ચિન્તામણિ હોવાથી વાંછિત કાર્યની સિદ્ધિ કરનારો છે; મરે જ્ઞાનીને સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ હોવાથી તેને અન્ય પરિમલ્લનું સેવન કરવાથી શુ સાધ્ય છે? અર્થાત્ કાંઈ જ સાધ્ય નથી. આમ નિશ્ચયનયનો ઉપદેશ છે. ૨૦૬.

હવે પૂછે છે કે જ્ઞાની પરને કેમ મહત્તો નથી? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

કો નામ મળિજ વુહો પરદવ્યં મમ દમં હવદિ દવ્યં ।
અપ્પાણમણ્ણો પરિગ્ગહં તુ નિયદં વિચાળંતો ॥ ૨૦૭ ॥

કો નામ મળેદુ વુપઃ પરદવ્યં મમેદં મવતિ દવ્યમ ।

આપ્પાણમણ્ણનઃ પરિગ્ગહં તુ નિયદં વિજાનન ॥ ૨૦૭ ॥

અન્યથાર્થઃ—[આપ્પાણં તુ] પાનાના આપ્પાણે જ [નિયદં] નિયમથી [આપ્પાણઃ પરિગ્ગહં] પાનાનો પરિગ્રહ [વિજાનન્] જાણતો થકો [કઃ નામ વુપઃ] કયો જ્ઞાની [મળેન્] એમ કહે કે [દમં પરદવ્યં] આ પરદવ્ય [મમ દવ્યં] મારું દ્રવ્ય [મવતિ] છે ?

ટીકા:—જે જેનો સ્વ ભાવ છે તે તેનું ‘સ્વ’ છે અને તે તેનો (સ્વ ભાવનો) સ્વામી છે—એમ સૂક્ષ્મ તીક્ષ્ણ તત્ત્વદષ્ટિના આત્મજનથી જ્ઞાની (પાનાના) આપ્પાણે જ આત્માનો પરિગ્રહ નિયમથી જાણે છે, તેથી “આ મારું ‘સ્વ’ નથી, હું આનો સ્વામી નથી” એમ જાણતો થકો પરદવ્યને પરિગ્રહનો નથી (અર્થાત્ પરદવ્યને પાનાનો પરિગ્રહ કરતો નથી).

ભાવાર્થઃ—લોકમાં એવી રીત છે કે સમજદાર ડાહ્યો માણસ પૈની વસ્તુને પાતાની જાણતો નથી, તેને પ્રહણ કરતો નથી. તેવી જ રીતે પરમાર્થજ્ઞાની પાનાના સ્વભાવને જ પાતાનું ધન જાણે છે, પૈના ભાવને પાતાનો જાણતો નથી, તેને પ્રહણ કરતો નથી. આ રીતે જ્ઞાની પરતું પ્રહણ—સેવન કરતો નથી. ૨૦૭.

“માટે હું પણ પરદવ્યને નહિ પરિગ્રહું” એમ હવે (ચાક્રાભિસાધી જીવ) કહે છે:—

મજ્ઞં પરિગ્ગહો જહ તદો અહમજીવદં તુ ગચ્છેજ્ઞ ।
ણાદેવ અહં જહ્મા તહ્મા ન પરિગ્ગહો મજ્ઞ ॥ ૨૦૮ ॥

* ૨૧ = ધન; મિલકત; માલિકાની સ્ત્રીજ.

‘પરદવ્ય આ મુજ દ્રવ્ય’ એવું કોણ જ્ઞાની કહે અરે !
નિજ આત્મને નિજનો પરિગ્રહ જાણતો જે નિશ્ચયે ? ૨૦૭.
પરિગ્રહ કદી મારો અને તો હું અજીવ બનું ખરે,
હું તો ખરે જ્ઞાતા જ, તેથી નહિ પરિગ્રહ મુજ અને. ૨૦૮.

મમ પરિગ્રહો ષદિ તનોડમજીવતાં તુ ગચ્છેયમ્ ।
તૌતૈવાહં યસ્માન્નસ્માન્ન પરિગ્રહો મમ ॥ ૨૦૮ ॥

અન્યથાર્થ:—[યદિ] બે [પરિગ્રહ:] પરદ્રવ્ય-પરિમિદ્ધ [મમ] મારો હોય [તત:] તો [અદમ્] હું [અજીવતાં તુ] અણુવપણુને [ગચ્છેયં] પામું. [યસ્માન્] હારણ કે [અહં] હું તો [જ્ઞાતા યત્] જ્ઞાતા જ છું [તસ્માત્] તેથી [પરિગ્રહ:] (પરદ્રવ્યરૂપ) પરિમિદ્ધ [મમ મ] મારો નથી.

ટીકા:—બે અણુ પરદ્રવ્યને હું પરિમિદ્ધ તો અવશ્યમેવ તે અણુ મારું 'સ્વ' થાય, હું પણ અવશ્યમેવ તે અણુનો સ્વામી થાઉં; અને અણુનો બે સ્વામી તે ખરેખર અણુ જ હોય. એ રીતે અવશે (લાચારીથી) પણ અને અણુવપણુ આવે પડે. મારું તો એક ક્ષાયક ભાવ જ બે 'સ્વ' છે, તેનો જ હું સ્વામી છું; મારે અને અણુવપણુ ન હોય, હું તો જ્ઞાતા જ રહીશ, પરદ્રવ્યને નહિ પરિમિદ્ધ.

ભાવાર્થ:—નિશ્ચયનયથી એ સિદ્ધાંત છે કે અણુ ભાવ અણુ જ છે, તેની સાથે અણુને સ્વ-સ્વામી સંબંધ છે; અને અણુનો ભાવ અણુ જ છે, તેની સાથે અણુને સ્વ-સ્વામી સંબંધ છે. બે અણુને અણુનો પરિમિદ્ધ માનવામાં આવે તો અણુ અણુવપણુને પામે; મારે અણુને અણુનો પરિમિદ્ધ પરમાર્થ માનવો તે બિધ્યા-બુદ્ધિ છે. જ્ઞાનીને એવી બિધ્યાબુદ્ધિ હોય નહિ. જ્ઞાની તો એમ માને છે કે પરદ્રવ્ય મારો પરિમિદ્ધ નથી, હું તો જ્ઞાતા છું. ૨૦૮.

‘વળી આ (નીચે પ્રમાણે) મારો નિશ્ચય છે ’ એમ દહે કરે છે:—

છિન્નદુ વા મિન્નદુ વા ણિન્નદુ વા અહ્ય જાદુ વિપ્પલયં ।
જત્થા તત્થા ગચ્છદુ તદ્દવિ દુ ણ પરિગ્ગહો મજ્ઞા ॥ ૨૦૯ ॥

છિન્નતાં વા મિન્નતાં વા મીયતાં વાયવા વાતુ વિપચ્ચયમ્ ।

યસ્માન્નસ્માદ્ ગચ્છતુ તથાપિ ચ્વલુ ન પરિગ્રહો મમ ॥ ૨૦૯ ॥

અન્યથાર્થ:—[છિન્નતાં વા] છદાર્થ બાબો, [મિન્નતાં વા] અપવા બાબો, [મીયતાં વા] અપવા કેાર્થ લાઈ બાબો, [અવવા વિપચ્ચયં વાતુ] અપવા નષ્ટાર્થ બાબો, [યસ્માન્ તસ્માદ્ ગચ્છતુ] અપવા તો અમે તે રીતે બાબો, [તથાપિ]

છેદાવ, વા બેદાવ, કેા લાઈ ભાવ, નષ્ટ બનો ભાવે,

વા અન્ય કેા રીત ભાવ. પણ પરિમિદ્ધ નથી મારો ખરે. ૨૦૯.

તોપણ [નાહુ] ખરેખર [પરિગ્રહઃ] પરિગ્રહ [મમ જ] મારો નથી.

ટીકા:—પરદ્રવ્ય છેદાઓ, અથવા બેદાઓ, અથવા કેઈ તેને સહ જાઓ, અથવા નષ્ટ થઈ જાઓ, અથવા ગમે તે રીતે જાઓ, તોપણ હું પરદ્રવ્યને નહિ પરિગ્રહું; કારણ કે ‘પરદ્રવ્ય મારું સ્વ નથી,—હું પરદ્રવ્યનો સ્વામી નથી, પરદ્રવ્ય જ પરદ્રવ્યનું સ્વ છે,—પરદ્રવ્ય જ પરદ્રવ્યનો સ્વામી છે, હું જ મારું સ્વ છું,—હું જ મારો સ્વામી છું’—એમ હું જાણું છું.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને પરદ્રવ્યના જગડવા-ગુપ્તવાનો હર્ષવિષાદ દોનો નથી.

હવે આ અર્થના કળશરૂપે અને આગળના કથનની મુચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતનિધા)

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव

सामान्यतઃ स्वपरयोरविवेकहेतुम् ।

अज्ञानमुज्झितुमना अघुना विशेषाद्

भूयस्तमेव परिहर्तुमयं मष्टतઃ ॥ ૧૪૫ ॥

* અર્થ:—આ રીતે સમસ્ત પરિગ્રહને સામાન્યતઃ છોડીને હવે સ્વ-પરના અવિવેકના કારણરૂપે અજ્ઞાનને છોડવાનું જેનું મન છે એવો આ ફરીને તેને જ (પરિગ્રહને જ) વિશેષતઃ છોડવાને પ્રવૃત્ત થયો છે.

ભાવાર્થ:—સ્વપરને એકરૂપ જાણવાનું કારણ અજ્ઞાન છે. તે અજ્ઞાનને સમસ્તપણે છોડવા હચ્છતા હવે પ્રથમ તો પરિગ્રહનો સામાન્યતઃ ત્યાગ કર્યો અને હવે (હવેની ગાથાઓમાં) તે પરિગ્રહને વિશેષતઃ (બુદ્ધિ બુદ્ધિ નામ સમિતિ) છોડ છે. ૨૦૬

જ્ઞાનીને ધર્મના (પુણ્યનો) પરિગ્રહ નથી એમ પ્રથમ કહે છે:—

अपरिग्रहो अणिच्छो भणितो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।

अपरिग्रहो दु धम्मस्स जाणमो तेण सो होदि ॥ ૨૧૦ ॥

* આ કળશનો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે:—આ રીતે સ્વ-પરના અવિવેકના કારણરૂપે સમસ્ત પરિગ્રહને સામાન્યતઃ છોડીને હવે, અજ્ઞાનને છોડવાનું જેનું મન એવો આ, ફરીને તેને જ વિશેષતઃ છોડવાને પ્રવૃત્ત થયો છે.

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન હચ્છે પુણ્યને,

તેથી ન પરિગ્રહી પુણ્યનો તે, પુણ્યનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૦.

અપરિગ્રહોઽનિચ્છો મણિતો જ્ઞાની ચ નેચ્છતિ ધર્મમ્ ।

અપરિગ્રહસ્ય ધર્મસ્ય જ્ઞાયવસ્તેન ચ ધરતિ ॥ ૨૧૦ ॥

અન્યથાર્થઃ—[અનિચ્છઃ] અનિચ્છકને [અપરિગ્રહઃ] અપરિગ્રહી [મણિતઃ] હૃદ્યો ॥ [ચ] અને [જ્ઞાની] જ્ઞાની [ધર્મ] ધર્મને (પુણ્યને) [ન રચ્છતિ] હૃષ્ણતો નથી, [તેન] તેથી [સઃ] તે [ધર્મસ્ય] ધર્મનો [અપરિગ્રહઃ સુ] પરિગ્રહી નથી, [જ્ઞાયકા] (ધર્મનો) જ્ઞાયક જ [ધરતિ] છે.

ટીકા:—હૃષ્ણ પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—એને હૃષ્ણ નથી. હૃષ્ણ તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ હોય હૃષ્ણ તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની ધર્મને હૃષ્ણતો નથી; મારે જ્ઞાનીને ધર્મનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના શરૂભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) ધર્મનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે. ૨૧૦.

હવે, જ્ઞાનીને અધર્મનો (પાપનો) પરિગ્રહ નથી એમ કહે છે:—

અપરિગ્રહો અણિચ્છો મણિતો જ્ઞાની ચ નિચ્છદિ અધર્મમ્ ।

અપરિગ્રહો અધર્મસ્ય જાણગો તેણ સો હોદિ ॥ ૨૧૧ ॥

અપરિગ્રહોઽનિચ્છો મણિતો જ્ઞાની ચ નેચ્છત્યધર્મમ્ ।

અપરિગ્રહોઽધર્મસ્ય જ્ઞાયવસ્તેન ચ ધરતિ ॥ ૨૧૧ ॥

અન્યથાર્થઃ—[અનિચ્છઃ] અનિચ્છકને [અપરિગ્રહઃ] અપરિગ્રહી [મણિતઃ] હૃદ્યો ॥ [ચ] અને [જ્ઞાની] જ્ઞાની [અધર્મ] અધર્મને (પાપને) [ન રચ્છતિ] હૃષ્ણતો નથી, [તેન] તેથી [સઃ] તે [અધર્મસ્ય] અધર્મનો [અપરિગ્રહઃ] પરિગ્રહી નથી, [જ્ઞાયકા] (અધર્મનો) જ્ઞાયક જ [ધરતિ] છે.

ટીકા:—હૃષ્ણ પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—એને હૃષ્ણ નથી. હૃષ્ણ તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ હોય હૃષ્ણ તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની અધર્મને હૃષ્ણતો નથી; મારે જ્ઞાનીને અધર્મનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન હૃષ્ણે પાપને,

તેથી ન પરિગ્રહી પાપનો ને, પાપનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૧.

સદ્ભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) અધર્મનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે. એ જ પ્રભાણે ગાથામાં 'અધર્મ' શબ્દ પસંદીને તેની જગ્યાએ રાગ, દ્વેષ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, કર્મ, નાકર્મ, મન, વચન, કાય, શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ધાતુ, રસન અને સ્પર્શન—એ સોળ શબ્દો મૂકી, સોળ ગાથાસૂત્રો વ્યાખ્યાનરૂપ કરવાં અને આ ઉપદેશથી બીજાં પણ વિચારવાં. ૨૧૧.

હવે, જ્ઞાનીને આહારનો પણ પરિમલ નથી એમ કહે છે:—

અપરિગ્રહો અણિચ્છો મણિદો જાણી ચ ણિચ્છદે અસળં ।
અપરિગ્રહો દુ અસળસ્સ જાણગો તેજ સો હોદિ ॥ ૨૧૨ ॥

અપરિગ્રહોઽનિચ્છો મણિતો જ્ઞાની ચ નેચ્છત્યજનમ્ ।

અપરિગ્રહસ્ત્વજનસ્ય જ્ઞાયકસ્તેન સ ભવતિ ॥ ૨૧૨ ॥

અન્યથાર્થ:—[અનિચ્છ:] અનિચ્છકને [અપરિગ્રહ:] અપરિમલ [મણિત:] કહ્યો છે [ચ] અને [જ્ઞાની] જ્ઞાની [મજનં] અશનને (ભોજનને) [ન ચ્છતિ] હજીતો નથી, [તેન] તેથી [સ:] તે [અજનસ્ય] અશનનો [અપરિગ્રહ:] તુ પરિમલ નથી, [જ્ઞાયક:] (અશનનો) જ્ઞાયક જ [ભવતિ] છે.

ટીકા:—હજી પરિમલ છે. તેને પરિમલ નથી—એને હજી નથી. હજી તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ જે હજી તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની અશનને હજીતો નથી; માટે જ્ઞાનીને અશનનો પરિમલ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના શરૂભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) અશનનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને આહારની પણ હજી નથી તેથી જ્ઞાનીને આહાર કરવો તે પણ પરિમલ નથી. આહાર પ્રશ્ન થાય છે કે—આહાર તો મુનિ પણ કરે છે, તેમને હજી છે કે નહિ? હજી વિના આહાર કેમ કરે? તેનું સમાધાન:—અશાન્તવેદનીય કર્મના ઉદયથી જડશક્તિરૂપ શુદ્ધા ઉપજે છે, વીર્યાંતરાયના ઉદયથી તેની વેદના સારી શક્તિ નથી અને ચારિત્રમાલુના ઉદયથી આહારમલજની હજી ઉત્પન્ન થાય છે. તે હજીને જ્ઞાની કર્મના ઉદયનું કાર્ય જાણે છે, રોગ સમાન જાણી તેને મટાડવા ચાહે છે. હજી પ્રત્યે અનુરોધરૂપ હજી જ્ઞાનીને નથી અર્થાત્ તેને એમ હજી નથી કે ખાદી આ હજી સદા રહે. માટે તેને અજ્ઞાનમય હજીનો અભાવ છે. પરજન્ય હજીનું

અનિચ્છક કહ્યો અપરિમલ, જ્ઞાની ન હજી અશનને,
તેથી ન પરિમલ અશનનો ને, અશનનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૨.

૨૫ામીપણે જ્ઞાનીને નથી મારે જ્ઞાની ઇચ્છાને પણ જાયક જ છે. આ પ્રમાણે શુદ્ધનયની પ્રધાનતાથી કથન ભગ્નુ. ૨૧૨.

દરે, જ્ઞાનીને પાનને (પાણી વગરે પીવાને) પણ પરિમદ નથી એમ કહે છે:—

અપરિગ્મહો અણિચ્છો મણિદો ણાણી ય ણિચ્છદં પાણં ।

અપરિગ્મહો દુ પાણસ્મ જાણમો તેણ સો હોદિ ॥ ૨૧૩ ॥

અપરિગ્મહોઽનિચ્છો મણિદો જ્ઞાની ય નેચ્છતિ પાનમ્ ।

અપરિગ્મહસ્તુ પાનસ્ય દ્રાવકસ્મેન ન ભવતિ ॥ ૨૧૩ ॥

અન્યથાર્થ:—[અનિચ્છા] અનિચ્છાને [અપરિગ્મહઃ] અપરિમદી [મણિતઃ] કહ્યો છે [ય] અને [જ્ઞાની] જ્ઞાની [પાનં] પાનને [ન ચ્છતિ] ઇચ્છતો નથી, [તેન] તેથી [નઃ] તે [પાનસ્ય] પાનને [અપરિગ્મહઃ સુ] પરિમદી નથી, [દ્રાવકા] (પાનને) જાયક જ [ભવતિ] છે.

ટીકા:—ઇચ્છા પરિમદ છે. તેને પરિમદ નથી—એને ઇચ્છા નથી. ઇચ્છા તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ છે ઇચ્છા તેના અભાવને કીધે જ્ઞાની પાનને ઇચ્છતો નથી; મારે જ્ઞાનીને પાનને પરિમદ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જાયકભાવના કાભાવને કીધે આ (જ્ઞાની) પાનને કેવળ જાયક જ છે.

ભાવાર્થ:—આદારની વ્યથાના ભાવાર્થ પ્રમાણે અહીં પણ સમજવું. ૨૧૩.

એ રીતે બીજા પણ અનેક પ્રકારના પરિગ્મ્ય ભાવોને જ્ઞાની ઇચ્છતો નથી એમ દરે કહે છે:—

ત્માદિણ દુ વિવિદે સઘ્વે ભાવે ય ણિચ્છદં ણાણી ।

જાણમભાવો ણિયદો ણીરાલંબો દુ સઘ્વત્ય ॥ ૨૧૪ ॥

અનિચ્છક કહ્યો અપરિમદી, જ્ઞાની ન ઇચ્છે પાનને, તેથી ન પરિમદી પાનને ને, પાનને જાયક રહે. ૨૧૩.
એ આદિ વિધવિધ ભાવ બહુ જાની ન ઇચ્છે સર્વને;
સર્વત્ર આતંબન રહિત બસ નિયત જાયકભાવ તે. ૨૧૪.

एवमादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावांश्च नेच्छति ज्ञानी ।

ज्ञायकभावो नियतो निरालंबस्तु सर्वत्र ॥ २१४ ॥

અન્યથાર્થ:—[એવમાદિકાન્ તુ] ઇત્યાદિક [વિવિધાન્] અનેક પ્રકારના [સર્વાન્ ભાવાન્ ચ] સર્વ ભાવોને [જ્ઞાની] જ્ઞાની [ને] નેચ્છતિ [ઇચ્છતો નથી,] [સર્વત્ર નિરાલંબઃ તુ] સર્વત્ર (બધામાં) નિરાલંબ એવો તે [નિયતઃ જ્ઞાયકભાવઃ] નિશ્ચિત જ્ઞાયકભાવ જ છે.

ટીકા:—ઇત્યાદિક બીજા પણ ઘણા પ્રકારના જે પરદ્રવ્યના ભાવો છે તે બધાયને જ્ઞાની ઇચ્છતો નથી તેથી જ્ઞાનીને સમસ્ત પરદ્રવ્યના ભાવોના પરિમલ નથી એ રીતે જ્ઞાનીને અત્યંત નિષ્પરિમલપણું સિદ્ધ થયું.

હવે એ પ્રમાણે આ, સમસ્ત અન્યભાવોના પરિમલથી શૂન્યપણાને લીધે જેને સમસ્ત અજ્ઞાન વગેરે નાંખ્યું છે એવો, સર્વત્ર અત્યંત નિરાલંબ થઈને, નિયત ટંકો તરીકે એક જ્ઞાયકભાવ રહેતો, સાક્ષાત્ વિજ્ઞાનવત આત્માને અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—પુણ્ય, પાપ, અશન, પાન વગેરે સર્વ અન્યભાવોના જ્ઞાનીને પરિમલ નથી કારણ કે સર્વ પરભાવોને હેય બાજુ ત્યારે તેની પ્રાપ્તિની ઇચ્છા થતી નથી.*

હવે આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સ્વામતા)

पूर्ववदनिजकर्मविपाकात्

જ્ઞાનિનો યદિ ભવત્યુપભોગઃ ।

तद्भवत्वथ च रागवियोगात्

नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥ १४६ ॥

અર્થ:—પૂર્વે બધાએજા પાતાના કર્મના વિપાકને લીધે જ્ઞાનીને જે ઉપભોગ હોય તેો હો, પરંતુ રાગના વિયોગને લીધે (-અજ્ઞાનને લીધે) અરેબર તે ઉપભોગ પરિમલભાવને પામતો નથી.

ભાવાર્થ:—પૂર્વે બધાએજા કર્મના ઉદય આવતાં ઉપભોગસામગ્રી પ્રાપ્ત થાય તેને જે અજ્ઞાનમય રાગભાવે ભોગવવામાં આવે તો તે ઉપભોગ પરિમલપણાને

* પ્રથમ, ભોજ્યાભિજ્ઞાની સર્વ પશ્ચિમને છોડવા પ્રવૃત્ત થયો હતો, તેણે આ ગાથા સુધીમાં સમગ્ર પરિમલભાવને છોડ્યો, એ રીતે સમસ્ત અજ્ઞાનને દૂર કર્યું અને જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને અનુભવ્યો.

પામે. પરંતુ જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય રાગભાવ નથી. તે જાણે છે કે જે પૂર્વે બાંધ્યું હતું તે ઉદયમાં આવી ગયું અને છૂટી ગયું; હવે હું તેને ભવિષ્યમાં વાંછતો નથી. આ રીતે જ્ઞાનીને રાગરૂપ હઝા નથી તેથી તેનો ઉપભોગ પરિમદપણાને પામતો નથી. ૨૧૪.

હવે, જ્ઞાનીને ત્રણે કાળ સંબંધી પરિમદ નથી એમ કહે છે:—

उत्पण्णोदयभोगो वियोगबुद्धिर् ए तस्स सो णिञ्चं ।

कंत्तामणागयस्स य उदयस्स ण कुब्बाण् णाणी ॥ २१५ ॥

उत्पण्णोदयभोगो वियोगबुद्धिर् ए तस्य स निग्यम् ।

कांतामणागतस्य च उदयस्य न करोति ज्ञानी ॥ २१५ ॥

અન્યથાર્થ:—[ઉત્પન્નોદયભોગ:] જે ઉત્પન્ન (અર્થાત્ વર્તમાન કાળના) ઉદયનો ભોગ [સ:] તે, [તસ્ય] જ્ઞાનીને [નિગ્યં] સહા [વિયોગબુદ્ધિર્] વિયોગ-બુદ્ધિએ હોય છે [ચ] અને [મનાગતસ્ય ઉદયસ્ય] આગામી (અર્થાત્ ભવિષ્ય કાળના) ઉદયની [જ્ઞાનો] જ્ઞાની [કાંતાં] વાંછા [ન કરોતિ] કરતો નથી.

ટીકા:—કર્મના ઉદયનો ઉપભોગ ત્રણ પ્રકારનો હોય—અતીત (ગયા કાળનો), પ્રત્યુત્પન્ન (વર્તમાન કાળનો) અને અનાગત (ભવિષ્ય કાળનો). તેમાં પ્રથમ, જે અતીત ઉપભોગ તે અતીતપણાને લીધે જ (અર્થાત્ પીતી મધો દોરાને લીધે જ) પરિમદભાવને પારનો નથી. અનાગત ઉપભોગ જે વાંછામાં આવેલો હોય તે જ પરિમદભાવને (પરિમદપણાને) પારે; અને જે પ્રત્યુત્પન્ન ઉપભોગ તે રાગબુદ્ધિએ પ્રવર્તેલો હોય તે જ પરિમદભાવને પારે.

પ્રત્યુત્પન્ન ઉપભોગ જ્ઞાનીને રાગબુદ્ધિએ પ્રવર્તેલો જોવામાં આવેલો નથી કારણ કે જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય ભાવ જે રાગબુદ્ધિ તેનો અભાવ છે; અને કેવળ વિયોગ-બુદ્ધિએ જ (દેયબુદ્ધિએ જ) પ્રવર્તેલો તે ખરેખરે પરિમદ નથી. આર પ્રત્યુત્પન્ન કર્મોદય-ઉપભોગ જ્ઞાનીને પરિમદ નથી (—પરિમદરૂપ નથી).

જે અનાગત ઉપભોગ તે તો ખરેખર જ્ઞાનીને વાંછેલ જ નથી (અર્થાત્ જ્ઞાનીને તેની વાંછા જ નથી) કારણ કે જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય ભાવ જે વાંછા તેનો અભાવ છે. આર અનાગત કર્મોદય-ઉપભોગ જ્ઞાનીને પરિમદ નથી (—પરિમદરૂપ નથી)

ઉત્પન્ન ઉદયનો ભોગ નિત્ય વિયોગભાવે જ્ઞાનીને,

ને ભાવી કર્મોદયતબ્ધી કાંતા નહિ, જ્ઞાની કરે. ૨૧૫.

ભાવાર્થ:—અતીત કર્મોદય-ઉપભોગ તો વીતી જ ગયો છે. અનાગત ઉપભોગની વાંછા નથી; કારણ કે જે કર્મને જ્ઞાની અહિતરૂપ જાણે છે તેના આચારો ઉદયના ભોગની વાંછા તે કેમ કરે? વર્તમાન ઉપભોગ પ્રત્યે રાગ નથી; કારણ કે જે હેય જાણે છે તેના પ્રત્યે રાગ કેમ હોય? આ રીતે જ્ઞાનીને જે ત્રણ કાળ સંબંધે કર્મોદયનો ઉપભોગ તે પરિચલુ નથી. જ્ઞાની જે વર્તમાનમાં ઉપભોગના સાંધનો ભોગ કરે છે તે તો પીણ સહી શકાતી નથી તેના ઇલાજ કરે છે—રોગી જેમ રોગનો ઇલાજ કરે તેમ. આ, નબળાઈનો દાવ છે. ૨૧૫.

હવે પૂછે છે કે અનાગત કર્મોદય-ઉપભોગને જ્ઞાની કેમ વાંછતો નથી? તેનો ઉત્તર કહો છે:—

જો વેદદિ વેદિજ્ઞદિ સમય સમય વિણસ્સદે ઉભયં ।
તં જાણગો દુ ણાણી ઉભયંપિ ણ કંઘઈ કયાંવિ ॥ ૨૧૬ ॥

યો વેદયતે વેદયતે સમયે સમયે વિનશ્યત્યુભયમ્ ।

તદ્ગ્માયકસ્તુ જ્ઞાની ઉભયમપિ ન કાંસતિ કદાપિ ॥ ૨૧૬ ॥

અન્યથાર્થ:—[ય: વેદયતે] જે ભાવ વેદ છે (અર્થાત્ વેદકભાવ) અને [વેદયતે] જે ભાવ વેદાય છે (અર્થાત્ વેદભાવ) [ઉભયં] તે બંને ભાવો [સમયે સમયે] સમયે સમયે [વિનશ્યતિ] વિનાશ પામે છે—[તદ્ગ્માયક: તુ] એવું જાણનાર [જ્ઞાની] જ્ઞાની [ઉભયં અપિ] તે બંને ભાવોને [કદાપિ] કદાપિ [ન કાંસતિ] વાંછતો નથી.

ટીકા:—જ્ઞાની તો, સ્વભાવભાવનું મુવપણું દોષાથી, હંકારકીર્તિ એક જાણનાર ભાવસ્વરૂપ નિત્ય છે; અને જે વેદ-વેદક (બે) ભાવો છે તેઓ, વિભાવભાવોનું કૌણિક ધર્માપણું અને વિનાશ ધર્માપણું દોષાથી, કલ્પિક છે. ત્યાં, જે ભાવ કાંક્ષાભાવ (અર્થાત્ વાંછા કરનાર) એવા વેદભાવને વેદ છે અર્થાત્ વેદભાવને અનુભવનાર છે તે (વેદાભાવ) જ્યાંમુઘીમાં ઉત્પન્ન થાય ત્યાંમુઘીમાં કાંક્ષાભાવ (અર્થાત્ વાંછા કરનાર) વેદાભાવ વિનાશ પામી જાય છે; તે વિનાશ પામી જતાં, વેદક ભાવ શું વેદ? જો એમ કહેવામાં આવે કે કાંક્ષાભાવ વેદભાવની પડી ઉત્પન્ન થતા બીજા વેદભાવને વેદ છે.

* વેદ = વેદાત્. ને ન. વેદક = વેદનર, અનુભવનાર.

રે! વેદ વેદક ભાવ બંને સમય સમયે વિનશે,
—એ જાણનાર જ્ઞાની કદાપિ ન ઉભયની કાંક્ષા કરે. ૨૧૬.

તો (ત્યાં એમ છે કે) તે બીજી વેદભાવ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં જ તે વેદભાવ નાશ પામી જાય છે; પછી તે બીજા વેદભાવને કોણ વેદ? જો એમ કહેવામાં આવે કે વેદભાવની પછી ઉત્પન્ન થતો બીજો વેદભાવ તેને વેદ છે, તો (ત્યાં એમ છે કે) તે બીજો વેદભાવ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં જ તે વેદભાવ વિખૂટી જાય છે; પછી તે બીજો વેદભાવ શું વેદ? આ રીતે કાંઈપણ ભાવના વેદનની અનવસ્થા છે. તે અનવસ્થાને જાણતો જ્ઞાની કાંઈ પણ વાંછતો નથી.

ભાવાર્થ:—વેદભાવ અને વેદભાવને કાળબેદ છે. જ્યારે વેદભાવ હોય છે ત્યારે વેદભાવ હોતો નથી અને જ્યારે વેદભાવ હોય છે ત્યારે વેદભાવ હોતો નથી. જ્યારે વેદભાવ આવે છે ત્યારે વેદભાવ વિખૂટી ગયા હોય છે; પછી વેદભાવ કોને વેદ? અને જ્યારે વેદભાવ આવે છે ત્યારે વેદભાવ વિખૂટી ગયા હોય છે; પછી વેદભાવ વિના વેદને કોણ વેદ? આવી અન્યવસ્થા જાણીને જ્ઞાની પોતે જાણનાર જ રહે છે, વાંછા કરતો નથી. અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—આદ્ય તો નિત્ય છે તેથી તે બંને ભાવોને વેદી શકે છે; તો પછી જ્ઞાની વાંછા કેમ ન કરે? તેનું સમાધાન:—વેદ-વેદ ભાવો વિભાવભાવો છે, સ્વભાવભાવ નથી, તેથી તેઓ વિનાશિક છે; આટલે વાંછા કરનારો એવો વેદભાવ જ્યાં આવે ત્યાંમુધીમાં વેદભાવ (ભોગ્યનારો ભાવ) નાશ પામી જાય છે; એ રીતે વાંછિત ભોગ તો થતો નથી. તેથી જ્ઞાની નિષ્કળ વાંછા કેમ કરે? જ્યાં મનોવાંછિત વેદાનું નથી ત્યાં વાંછા કરવી તે અશ્વપન છે.

હવે આ અર્થનું હજારોપ કાવ્ય કહે છે:—

(સ્વામી)

વેદવેદકવિભાવચલત્વાદ્
વેદયતે ન સલુ કાંક્ષિતયેવ ।
તેન કાંક્ષતિ ન કિંચન વિદ્વાન્
સર્વતોડ્વપતિવિરક્તિમુપૈતિ ॥ ૧૪૭ ॥

અર્થ:—વેદ-વેદકૃપ વિભાવભાવોનું ચળપણ (અસ્થિરપણું) દેવાથી ખરેખર વાંછિત વેદાનું નથી; આટલે જ્ઞાની કાંઈ પણ વાંછતો નથી, સર્વ પ્રત્યે અનિ વિરક્તપણને (વિરાગ્યભાવને) પામે છે.

ભાવાર્થ:—અનુભવગોચર જો વેદ-વેદક વિભાવો તેમને કાળબેદ છે, તેમનો મેગાપ નથી (કારણ કે તેઓ કર્મના નિમિત્તે થતા દેવાથી અસ્થિર છે); આટલે જ્ઞાની આત્માની કાળ સંબંધી વાંછા શા આટલે કરે? ૨૧૬.

એ રીતે જ્ઞાનીને સર્વ ઉપભોગા પ્રત્યે વૈરાગ્ય છે એમ કહે છે:—

વંધુવભોગણિમિત્તે અઙ્ગવમાણોદગમુ ણાણિમ્મ ।
સંસારદેહવિષયમુ ણેવ ઉપ્પજ્જદં રાગો ॥ ૨૧૭ ॥

વંધોપભોગણિમિત્તેષુ અઙ્ગવમાણોદયેષુ જ્ઞાનિનઃ ।

સંસારદેહવિષયેષુ નૈવોપ્પજ્જતે રાગઃ ॥ ૨૧૭ ॥

અન્યથાર્થ:—[વંધોપભોગણિમિત્તેષુ] બંધ અને ઉપભોગનાં નિમિત્ત એવા [સંસારદેહવિષયેષુ] સંસારસંબંધી અને દેહસંબંધી [અઙ્ગવમાણોદયેષુ] અધ્યવસાનના ઉદયોમાં [જ્ઞાનિનઃ] જ્ઞાનીને [રાગઃ] રાગ [ન યદ્ય ઉત્પજ્જતે] ઉપજ્જતો નથી.

ટીકા:—આ લોકમાં જે અધ્યવસાનના ઉદયો છે તેઓ કેટલાક તો સંસારસંબંધી છે અને કેટલાક શરીરસંબંધી છે. તેમાં, જેટલા સંસારસંબંધી છે તેટલા બંધનનાં નિમિત્ત છે અને જેટલા શરીરસંબંધી છે તેટલા ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે. જેટલા બંધનનાં નિમિત્ત છે તેટલા તો રાગદ્વેષભોદાદિક છે અને જેટલા ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે તેટલા સુખદુઃખાદિક છે. આ બંધાયમાં જ્ઞાનીને રાગ નથી; કારણ કે તેઓ બંધાય નાના દ્રવ્યોના સ્વભાવ હોવાથી, ટંકોટીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવ જેનો સ્વભાવ છે એવા જ્ઞાનીને તેમનો નિષેધ છે.

સાવાર્થ:—જે અધ્યવસાનના ઉદયો સંસાર સંબંધી છે અને બંધનનાં નિમિત્ત છે તેઓ તો રાગ, દ્વેષ, મોહ હત્યાદિ છે તથા જે અધ્યવસાનના ઉદયો દેહ સંબંધી છે અને ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે તેઓ સુખ, દુઃખ હત્યાદિ છે. તે બંધાય (અધ્યવસાનના ઉદયો), નાના દ્રવ્યોના (અર્થાત્ પુદ્ગલદ્રવ્ય અને છવદ્રવ્ય કે જેઓ સંયોગરૂપે છે તેમના) સ્વભાવ છે; જ્ઞાનીનો તો એક જ્ઞાયકસ્વભાવ છે. માટે જ્ઞાનીને તેમનો નિષેધ છે; તેથી જ્ઞાનીને તેમના પ્રત્યે રાગ-પ્રીતિ નથી. પરદ્રવ્ય, પરભાવ સંસારમાં ભ્રમણનાં કારણ છે; તેમના પ્રત્યે પ્રીતિ કરે તો જ્ઞાની રાતો?

હવે આ અર્થના કળશરૂપે તથા આગળના કથનની સ્વતંત્રરૂપે સ્લોક કહે છે:—

(સ્વાગતા)

જ્ઞાનિનો ન હિ પરિગ્રહમાવં
કર્મ રાગરસરિક્તતયૈતિ ।

સંસારદેહસંબંધી ને વંધોપભોગનિમિત્ત જે,
તે સર્વ અધ્યવસાનઉદયે રાગ થાય ન જ્ઞાનીને. ૨૧૭.

રંગયુક્તિરકપાપિતવસે

સ્વીકૃતૈવ હિ ચહિર્લટતીહ ॥ ૧૪૮ ॥

અર્થ:—લેખ લેખર, ફટકડી વગેરેથી જે કપાસિત કરવામાં ન આવ્યું હોય એવા વસ્ત્રમાં રંગનો સંયોગ, વસ્ત્ર પર અંગીકાર નહિ કરાયો થકો, બહાર જ લોટ છે—અંદર પ્રવેશ કરતો નથી, તેમ જ્ઞાની રાગરૂપી રસથી રહિત હોવાથી તેને કર્મ પરિમદુષ્ક્રાંતિને ધારણ નથી.

ભાવાર્થ:—લેખ લેખર, ફટકડી વગેરે લગાડ્યા વિના વસ્ત્ર પર રંગ ચડતો નથી તેમ રાગભાવ વિના જ્ઞાનીને કર્મના ઉદયનો ભોગ પરિમદુષ્ક્રાંતિને પામતો નથી.

ફરી કહે છે:—

(સ્વાત્મા)

જ્ઞાનવાન્ સ્વરસતોઽપિ યતઃ સ્યાત્

સર્વરાગરસવર્જનસીલઃ ।

લિપ્પતે સકલકર્મભિરેષઃ

કર્મમધ્યપતિતોઽપિ તતો ન ॥ ૧૪૯ ॥

અર્થ:—કારણ કે જ્ઞાની નિર્ગુણ રસથી જ સર્વ રાગરસના ત્યાગરૂપ સ્વભાવ-પાત્રો છે તેથી તે કર્મ મધ્યે પત્રો હોવા છતાં પણ સર્વ કર્મોથી લેપાતો નથી. ૧૧૭.

હવે આ જ અર્થનું બ્યાખ્યાન ગાથામાં કરે છે:—

જાણી રાગપ્પજહો સવ્વદલ્લેસુ કમ્મમજ્ઞગદો ।

જો લિપ્પદિ રજાણ દુ કદ્દમમજ્ઞે જહા કણયં ॥ ૨૧૮ ॥

અજાણી પુણ રત્તો સવ્વદલ્લેસુ કમ્મમજ્ઞગદો ।

લિપ્પદિ કમ્મરણ દુ કદ્દમમજ્ઞે જહા લોહં ॥ ૨૧૯ ॥

હા મર્વ દ્રવ્યે રાગવર્જક જ્ઞાની કર્મની મધ્યમાં.

પણ રજા થકી લેપાય નહિ, જ્યમ કનક દર્દમમધ્યમાં. ૨૧૮.

પણ મર્વ દ્રવ્યે રાગશીલ અજ્ઞાની કર્મની મધ્યમાં.

તે કર્મરજા લેપાય છે, જ્યમ લોહ દર્દમમધ્યમાં. ૨૧૯.

- જ્ઞાની રાગમદાયકઃ સર્વદ્રવ્યેષુ કર્મમધ્યગતઃ ।

નો લિપ્યતે રજગા તુ કર્મમધ્યે યગા વનક્મ્ ॥ ૨૧૮ ॥

અજ્ઞાની પુના રક્તઃ સર્વદ્રવ્યેષુ કર્મમધ્યગતઃ ।

લિપ્યતે કર્મરજગા તુ કર્મમધ્યે યગા ઝાંદમ્ ॥ ૨૧૯ ॥

અન્યથાર્થઃ—[જ્ઞાની] જ્ઞાની [સર્વદ્રવ્યેષુ] કે જે સર્વ દ્રવ્યો પ્રત્યે [તે] પ્રહાયકઃ] રાગ છાડનારો છે તે [કર્મમધ્યગતઃ] કર્મ મધ્યે રહેલો હોય [તુ] તે [રજસા] કર્મરૂપી રજાથી [નો લિપ્યતે] લેપાનો નથી—[યગા] જેમ [વનક્મ્] સોનું [કર્મમધ્યે] કાદવ મધ્યે રહેલું હોય તેપણુ લેપાનું નથી તેમ. [પુનઃ] અજ્ઞાની] અજ્ઞાની [સર્વદ્રવ્યેષુ] કે જે સર્વ દ્રવ્યો પ્રત્યે [રક્તઃ] રાગી છે તે [કર્મમધ્યગતઃ] કર્મ મધ્યે રહ્યો થકો [કર્મરજસા] કર્મરજાથી [લિપ્યતે તુ] લેપાય છે—[યગા] જેમ [ઝાંદમ્] લોખંડ [કર્મમધ્યે] કાદવ મધ્યે રહ્યું થકું લેપાય છે (અર્થાત્ તેને કાદ લાગે છે) તેમ.

ટીકાઃ—જેમ ખરેખર સુવર્ણ કાદવ મધ્યે પડ્યું હોય તેપણુ કાદવથી લેપાય નથી (અર્થાત્ તેને કાદ લાગતો નથી) કારણ કે તે અલિપ્ત રહેવાના સ્વભાવવાળું છે, તેવી રીતે ખરેખર જ્ઞાની કર્મ મધ્યે રહ્યો હોય તેપણુ કર્મથી લેપાતો નથી કારણ કે સર્વ પરદ્રવ્ય પ્રત્યે કરવામાં આવતો જે રાગ તેના ત્યાગરૂપ સ્વભાવપણું હોવાથી જ્ઞાની અલિપ્ત રહેવાના સ્વભાવવાળો છે. જેમ લોખંડ કાદવ મધ્યે પડ્યું થકું કાદવથી લેપાય છે (અર્થાત્ તેને કાદ લાગે છે) કારણ કે તે લેપાવાના સ્વભાવવાળું છે, તેવી રીતે ખરેખર અજ્ઞાની કર્મ મધ્યે રહ્યો થકો કર્મથી લેપાય છે કારણ કે સર્વ પરદ્રવ્ય પ્રત્યે કરવામાં આવતો જે રાગ તેના ગ્રહણરૂપ સ્વભાવપણું હોવાથી અજ્ઞાની લેપાવાના સ્વભાવવાળો છે.

ભાવાર્થઃ—જેમ કાદવમાં પડેલા સુવર્ણને કાદ લાગતો નથી અને લોખંડને કાદ લાગે છે, તેમ કર્મ મધ્યે રહેલો જ્ઞાની કર્મથી બાંધાતો નથી અને અજ્ઞાની કર્મથી બાંધાય છે. આ જ્ઞાન-અજ્ઞાનનો અભિમા છે.

હવે આ અર્થનું અને આગળના કથનની સૂચનાનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે—

(શાર્દૂલવિદ્યોડિન)

યાદક્ તાદગિહાસ્તિ તસ્ય વશતો યસ્ય સ્વભાવો ઠિ યઃ

કર્તુ નૈપ કથંચનાપિ હિ પરૈરન્યાદશઃ શક્યતે ।

અજ્ઞાનં ન કદાચનાપિ હિ ધવેજ્ઞાનં ધવત્સંતંતં

જ્ઞાનિન્ ધુંસ્વ પરાપરાધજનિતો નાસ્તીહ વંધસ્તવ ॥ ૧૫૦ ॥

અર્થ:—આ લોકમાં જે વસ્તુનો જેવો સ્વભાવ હોય છે તેનો તેવો સ્વભાવ તે વસ્તુના પોતાના વશથી જ (અર્થાત્ પોતાને આધીન જ) હોય છે. એવો વસ્તુનો જે સ્વભાવ તે, પરવસ્તુઓ વડે કોઈ પણ રીતે બીજા જેવો કરી શકતો નથી. માટે જે નિરંતર જ્ઞાનપણે પરિણમે છે તે કદી પણ અજ્ઞાન થતું નથી; તેથી હે જ્ઞાની! તું (કર્મોદયજનિત) ઉપભોગને ભોગવ, આ જગતમાં પરના અપરાધથી ઉપજતો બંધ તને નથી (અર્થાત્ પરના અપરાધથી તને બંધ થતો નથી).

ભાવાર્થ:—વસ્તુનો સ્વભાવ વસ્તુને પોતાને આધીન જ છે. માટે જે આત્મા પોતે જ્ઞાનરૂપે પરિણમે છે તેને પરદ્રવ્ય અજ્ઞાનરૂપે કદી પરિણુભાવી શકે નહિ. આમ હોવાથી અહીં જ્ઞાનીને કહ્યું છે કે—તને પરના અપરાધથી બંધ થતો નથી તેથી તું ઉપભોગને ભોગવ. ઉપભોગ ભોગવવાથી અને બંધ થશે એવી શંકા ન કર. જે એવી શંકા કરીશ તો ‘પરદ્રવ્ય વડે આત્માનું બૂઝું ધાય છે’ એવું માનવાનો પ્રસંગ આવે છે. આ રીતે અહીં જીવને પરદ્રવ્યથી પોતાનું બૂઝું થતું માનવાની શંકા મઠાડી છે; ભોગ ભોગવવાની પ્રેરણા કરી સ્વચ્છંદી કર્યો છે એમ ન સમજવું. સ્વેચ્છાચારી થવું તે તો અજ્ઞાનભાવ છે એમ આગળ કહેયો. ૨૧૮—૨૧૯.

હવે આ જ અર્થને દૃષ્ટાંતથી દર્શ કરે છે:—

મુંજંતસ્સ વિ વિવિહે સચ્ચિતાચિત્તમિસ્સિણ દબ્બે ।

સંલસ્સ સેદભાવો ણધિ સફાદિ કિણ્હગો કાઠં ॥ ૨૨૦ ॥

તહ ણાણિસ્સ વિ વિવિહે સચ્ચિતાચિત્તમિસ્સિણ દબ્બે ।

મુંજંતસ્સ વિ ણાણં ણ સફમણ્ણાણદં જેદું ॥ ૨૨૧ ॥

જહયા સુ એવ સંલો સેદસહાવં તયં પજહિદ્દણ ।

ગચ્છેજ્જ કિણ્હમાવં તહયા સુફત્તણં પજહે ॥ ૨૨૨ ॥

જ્યમ શંખ વિવિધ સચિત્ત, મિથ્ર, અચિત્ત દ્રવ્યો ભોગવે,
પણ શંખના શુક્લત્વને નહિ કૃષ્ણ કોઈ કરી શકે; ૨૨૦.
ત્યમ જ્ઞાની વિવિધ સચિત્ત, મિથ્ર, અચિત્ત દ્રવ્યો ભોગવે,
પણ જ્ઞાન જ્ઞાનીતણું નહિ અજ્ઞાન કોઈ કરી શકે. ૨૨૧.
જ્યારે સ્વયં તે શંખ સ્વેતસ્વભાવ નિર્જનો ઊડીને
પામે સ્વયં કૃષ્ણત્વ, ત્યારે ઊડીને શુક્લત્વને: ૨૨૨.

તહ જાણી વિ હુ જડયા જાણસહાયં તયં પજહિદૂણં ।
અજ્ઞાણેણ પરિણદો તદયા અજ્ઞાણઃ ગચ્છે ॥ ૨૨૩ ॥

મુંજાનસ્યાપિ વિવિધાનિ સચિન્તાનિતમિથિતાનિ દ્રવ્યાણિ ।
જંત્રસ્ય શ્વેતમાત્રો નાપિ જન્યતે કૃષ્ણકઃ કર્તુમ્ ॥ ૨૨૦ ॥
તથા જ્ઞાનિનોઽપિ વિવિધાનિ મવિતાનિતમિથિતાનિ દ્રવ્યાણિ ।
મુંજાનસ્યાપિ જ્ઞાનં ન જન્યમજ્ઞાનતાં નૈતુમ્ ॥ ૨૨૧ ॥
યદા સ જન જંત્રઃ શ્વેતસ્વમાત્રં તત્કં પ્રદાય ।
ગચ્છેત્ કૃષ્ણમાત્રં તદા મૃકત્વં પ્રજયાત ॥ ૨૨૨ ॥
તથા જ્ઞાન્યપિ સ્વલુ યદા જ્ઞાનસ્વમાત્રં તત્કં પ્રદાય ।
અજ્ઞાનેન પરિણતસ્તદા અજ્ઞાનતાં ગચ્છેત્ ॥ ૨૨૩ ॥

અન્વયાર્થઃ—[જાણસ્ય] જેમ શંખ [વિવિધાનિ] અનેક પ્રકારનાં [સચિન્તાચિન્તામિથિતાનિ] સચિત, અચિત અને મિશ્ર [દ્રવ્યાણિ] દ્રવ્યોને [મુંજાનસ્યાપિ] ભોગવે છે—ખાત્ર છે તોપણ [શ્વેતમાત્રઃ] તેવું શ્વેતપણું [કૃષ્ણકઃ કર્તુમ્] નાપિ જન્યતે [કોઈથી] કૃષ્ણ કરી શકાતું નથી, [તથા] તેમ [જ્ઞાનિનોઽપિ] જ્ઞાની પણ [વિવિધાનિ] અનેક પ્રકારનાં [સચિન્તાચિન્તામિથિતાનિ] સચિત, અચિત અને મિશ્ર [દ્રવ્યાણિ] દ્રવ્યોને [મુંજાનસ્યાપિ] ભોગવે તોપણ [જ્ઞાનં] તેવું જ્ઞાન [અજ્ઞાનતાં નૈતુમ્] ન જન્યં [કોઈથી] અજ્ઞાન કરી શકાતું નથી.

[યદા] જ્યારે [સઃ જન જંત્રઃ] તે જ શંખ (પોતે) [તત્કં શ્વેતસ્વમાત્રં] તે શ્વેત સ્વભાવને [પ્રદાય] છોડીને [કૃષ્ણમાત્રં ગચ્છેત્] કૃષ્ણભાવને પામે (અર્થાત્ કૃષ્ણભાવે પરિણમે) [તદા] ત્યારે [મૃકત્વં પ્રજયાત્] શ્વેતપણાને છોડે (અર્થાત્ કાળો ખને), [તથા] તેવી રીતે [સ્વલુ] ખરેખર [જ્ઞાનોઽપિ] જ્ઞાની પણ (પોતે) [યદા] જ્યારે [તત્કં જ્ઞાનસ્વમાત્રં] તે જ્ઞાનસ્વભાવને [પ્રદાય] છોડીને [અજ્ઞાનેન] અજ્ઞાનરૂપે [પરિણતઃ] પરિણમે [તદા] ત્યારે [અજ્ઞાનતાં] અજ્ઞાનપણાને [ગચ્છેત્] પામે.

ટીકાઃ—જેમ શંખ પરદ્રવ્યને ભોગવે—ખાત્ર તોપણ તેવું શ્વેતપણું પર કૃષ્ણ કરી શકાતું નથી કારણ કે પર અર્થાત્ પરદ્રવ્ય કોઈ દ્રવ્યને પરભાવસ્વરૂપ કરવા

ત્યમ જ્ઞાની પણ જ્યારે સ્વયં નિજ છોડી જ્ઞાનસ્વભાવને

અજ્ઞાનભાવે પરિણમે, અજ્ઞાનતા ત્યારે લહે. ૨૨૩.

નિમિત્ત (અર્થાત્ કારણ) બની શકતું નથી, તેવી રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યને ભોગવે તોપણ તેનું જ્ઞાન પર વડે અજ્ઞાન કરી શકતું નથી કારણ કે પર અર્થાત્ પરદ્રવ્ય કોઈ દ્રવ્યને પરભાવસ્વરૂપ કરવાનું નિમિત્ત બની શકતું નથી. આટે જ્ઞાનીને પરના અપરાધના નિમિત્તે બંધ થતો નથી.

વળી જ્યારે તે જ શબ્દ, પરદ્રવ્યને ભોગવતો અથવા નહિ ભોગવતો થકે, સ્વેતભાવને છાડીને સ્વયંમેવ કૃષ્ણભાવે પરિણમે ત્યારે તેના સ્વેતભાવ સ્વયંકૃત કૃષ્ણભાવ થાય (અર્થાત્ પાતાથી જ કરવામાં આવેલા કૃષ્ણભાવરૂપ થાય), તેવી રીતે જ્યારે તે જ જ્ઞાની, પરદ્રવ્યને ભોગવતો અથવા નહિ ભોગવતો થકે, જ્ઞાનને છાડીને સ્વયંમેવ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમે ત્યારે તેનું જ્ઞાન સ્વયંકૃત અજ્ઞાન થાય. આટે જ્ઞાનીને જો (બંધ) થાય તો પાતાના જ અપરાધના નિમિત્તે (અર્થાત્ પાતે જ અજ્ઞાનપણે પરિણમે ત્યારે) બંધ થાય છે.

ભાવાર્થ:—જેમ શબ્દ કે જે સ્વેત છે તે પરના બાફણથી કાળો થતો નથી પરંતુ જ્યારે પાતે જ કાલિભાવે પરિણમે ત્યારે કાળો થાય છે, તેવી રીતે જ્ઞાની પરના ઉપભોગથી અજ્ઞાની થતો નથી પરંતુ જ્યારે પાતે જ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમે ત્યારે અજ્ઞાની થાય છે અને ત્યારે બંધ કરે છે.

હવે આનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાંદિભવિકીર્તિન)

જ્ઞાનિન્ કર્મ ન જાતુ કર્તુમ્યચિત્તં કિંચિત્તથાપ્યુચ્યતે
 મુંક્ષે હંત ન જાતુ મે યદિ પરં દુર્ધક્ત વ્વાસિ મોઃ ।
 વંધઃ સ્યાદુપભોગતો યદિ ન તત્તિકં કામચારોઽસ્મિ ને
 જ્ઞાનં સન્વસ વંધમેષ્યપરથા સ્વસ્થાપરાધાદુષ્ટવમ્ ॥ ૧૫૧ ॥

અર્થ:—હું જ્ઞાની, તારે કરી કોઈ પણ કર્મ કરવું થાય નથી તોપણ જો તું એમ કહે છે કે “પરદ્રવ્ય આનું તો કરી નથી અને હું તેને ભોગવું છું,” તો તને કહેવામાં આવે છે (અર્થાત્ એમ કહીએ છીએ) કે હું ભાઈ, તું ખોટી (અસત્ય) રીતે ભોગવનાર છે; જે તારું નથી તેને તું ભોગવે છે એ મદા એક છે! એ તું કહે કે “પરદ્રવ્યના ઉપભોગથી બંધ થતો નથી એમ સિદ્ધાંતમાં કદ્યું છે આટે ભોગવું છું,” તો શું તને ભોગવવાની હક્ક છે? જ્ઞાનરૂપ થઈને વસ (—શુદ્ધ સ્વરૂપમાં નિવાસ કરે), નહિ તો (અર્થાત્ જો ભોગવવાની હક્ક કરીશ—અજ્ઞાનરૂપે પરિણમીશ તો) તું શાક્રસ પાતાના અપરાધથી બંધને પામીશ.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને કર્મ તો કરવું જ હિચિત નથી. જે પરદ્રવ્ય બહીને પ તેને ભોગવે તો એ ધોઅ નથી. પરદ્રવ્યના ભોગવનારને તો જગતમાં ચાર કહેવામાં આવે છે, અન્યાથી કહેવામાં આવે છે. વળી ઉપભોગથી બંધ કહ્યો નથી તે તો જ્ઞાની ઇચ્છા વિના પરની બળભેરીથી ઉદયમાં આવેલાને ભોગવે ત્યાં તેને બંધ કહેવામાં નથી. જે પોતે ઇચ્છાથી ભોગવે તો તો પોતે અપરાધી થયે, ત્યાં બંધ કેમ ન થાય.

હવે આગળની ગાથાની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(ચાર્દસવિદીડિત)

ક્ષતારં સ્વક્ષેન યત્કલ લલાત્કર્મ્મં નો યોજયેત્

કુર્વાણઃ ફલલિપ્સુરેવ હિ ફલં પ્રાપ્નોતિ યત્કર્મ્મણઃ ।

જ્ઞાનં સંસ્તદપાસ્તરાગરચનો નો વધ્યતે કર્મણા

કુર્વાણોઽપિ હિ કર્મ તત્કલપરિત્યાગૈકશીલો મુનિઃ ॥ ૧૫૨ ॥

અર્થ:—કર્મ જ તેના કર્તાને પાતાના ફળ સાથે બળભેરીથી ભોગવે તો (કે તું મારા ફળને ભોગવ), *ફળની ઇચ્છાવાળો જ કર્મ કરતો થકો કર્મના પામે છે; મારે જ્ઞાનરૂપે સહેતો અને જેણે કર્મ પ્રત્યે રાગની રચના દૂર કરી છે એણે મુનિ, કર્મના ફળના પરિત્યાગરૂપ જ જેના એક સ્વભાવ છે એવો હોવાથી, કર્મ કરતો છતો પણ કર્મથી બંધાતો નથી.

ભાવાર્થ:—કર્મ તો કર્તાને જબરદસ્તીથી પાતાના ફળ સાથે ભોગવે તો પરંતુ જે કર્મને કરતો થકો તેના ફળની ઇચ્છા કરે તે જ તેણે ફળ પામે છે. મારે જ્ઞાનરૂપે વર્તે છે અને રાગ વિના કર્મ કરે છે એવો મુનિ કર્મથી બંધાતો નથી. જે તેને કર્મના ફળની ઇચ્છા નથી. ૨૨૦—૨૨૩.

હવે આ અર્થને દશાંતથી દર્શ કરે છે:—

પુરિસો જહ કોવિ ઇહ વિત્તિણિમિત્તં તુ સેવણ રાયં ।

તો મોવિ દેહ રાયા વિવિદે ભોણ મુહુણ્ણા ॥ ૨૨૪ ॥

* કર્મનું ફળ એટલે (૧) રગિન પરિણામ, અથવા તો (૨) મુખ (—રગિન પરિણામ ઉપર કરનારા આગ્રાથી ભોગો.

જ્યેષ્ઠ જગતમાં કેા પુરુષ વૃત્તિનિમિત્ત સેવે ભુખને,
તેા ભુખ પાનુ મુખજનક વિધવિધ ભોગ આપે પુરુષને; ૨૨૧.

एमेव जीवपुरिमो कम्मरयं सेवणं मुहणिमित्तं ।
 तो मोवि देह कम्मो विविहे भोणं मुहुण्णाय ॥ २२५ ॥
 जण पुण मो चिय पुरिमो वित्तिणिमित्तं ण सेवणं रायं ।
 तो मो ण देह राया विविहे भोणं मुहुण्णाय ॥ २२६ ॥
 एमेव सम्मदिट्ठी विमयत्वं सेवणं ण कम्मरयं ।
 तो मो ण देह कम्मो विविहे भोणं मुहुण्णाय ॥ २२७ ॥

पुरुषो यथा कोऽप्यहं हृत्तिनिमित्तं तु मेवमेव राजानम् ।
 तन्मोऽपि ददाति राजा विविधान भोगान् मुखोत्पादकान् ॥ २२५ ॥
 एवमेव जीवपुरुषः कर्मरजः मेवमेव मुखनिमित्तम् ।
 तगदपि ददाति कर्म विविधान भोगान् मुखोत्पादकान् ॥ २२५ ॥
 यथा पुनः स एव पुरुषो हृत्तिनिमित्तं न मेवमेव राजानम् ।
 तन्मोऽपि न ददाति राजा विविधान भोगान् मुखोत्पादकान् ॥ २२६ ॥
 एवमेव सम्मदिष्टी विमयत्वं मेवमेव न कर्मरजः ।
 तगदपि ददाति कर्म विविधान भोगान् मुखोत्पादकान् ॥ २२७ ॥

अन्वयार्थः—[एवमेव] अर्थ [देह] आ जन्मभा [कोऽपि पुरुषः] के [पुरुष] [हृत्तिनिमित्तं तु] आह्वयि [अर्थ] [राजानं] शब्दे [सेवने] सेवे [तद्]
 तो [सः राजा कवि] ते राजा पायु तेने [मुखोत्पादकान्] मुख उत्पन्न करनेवाले
 [विविधान्] अनेक प्रकारके [भोगान्] भोग [ददाति] आपे [एवमेव एव]

त्यम एवपुरुष पायु कर्मरजनं मुखरय सेवन करे,
 तो कर्म पायु मुखजनक विधिविध योग आये एवने. २२५.
 वशी ने न नर जन्म त्रिनि अर्थ भूपने सेवे नहि,
 तो भूप पायु मुखजनक विधिविध योगने आये नहि: २२६.
 मुहणिते त्यम विषय अर्थ कर्मरजसेवन नथी,
 तो कर्म पायु मुखजनक विधिविध योगने हेतां नथी. २२७.

તેવી જ રીતે [જીવપુણ્ય:] જીવપુણ્ય [ગુણનિમિત્ત] ગુણ અર્થ [કર્મગત:] કર્મગતે [સેવતે] સેવે છે [તદ્] તો [તદ્ કર્મ અપિ] તે કર્મ પણ મને [સુચોત્પાદકાન્] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [ચિચિવાન્] અનેક પ્રકારના [મોગાન્] બોળા [સત્ત્વ] આપે છે.

[પુનઃ] પછી [યથા] જેમ [સઃ] તથા પુણ્ય:] તે જ પુણ્ય [નૃતિનિમિત્ત] આશયિકા અર્થ [રાજાને] રાજાને [ન સેવતે] નથી સેવતો [તદ્] તો [સઃ] અપિ] તે રાજા પણ તેને [સુચોત્પાદકાન્] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [ચિચિવાન્] અનેક પ્રકારના [મોગાન્] બોળા [ન દદાતિ] નથી આપતો, [તથા] તેવી જ રીતે [સમ્યગ્દષ્ટિ:] સમ્યગ્દષ્ટિ [ચિચિવાન્] વિષય અર્થ [કર્મગત:] કર્મગતે [ન સેવતે] નથી સેવતો [તદ્] તો (અર્થાત્ તેથી) [તદ્ કર્મ] તે કર્મ પણ તેને [સુચોત્પાદકાન્] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [ચિચિવાન્] અનેક પ્રકારના [મોગાન્] બોળા [ન દદાતિ] નથી આપતું.

ટીકા:—જેમ કેઈ પુરુષ ફળ અર્થે રાજાને સેવે છે તો તે રાજા તેને આપે છે, તેમ જીવ ફળ અર્થે કર્મને સેવે છે તો તે કર્મ તેને ફળ આપે છે. જો જેમ તે જ પુરુષ ફળ અર્થે રાજાને નથી સેવતો તો તે રાજા તેને ફળ નથી આપે તેમ સમ્યગ્દષ્ટિ ફળ અર્થે કર્મને નથી સેવતો તો (અર્થાત્ તેથી) તે કર્મ તેને ફળ નથી આપતું. એમ તાત્પર્ય (અર્થાત્ કહેવાનો આશય) છે.

ભાવાર્થ:—અહીં એક આશય તો આ પ્રમાણે છે:—અજ્ઞાની વિષયમય અર્થ અર્થાત્ રંજિત પરિણામ અર્થે ઉદયાગત કર્મને સેવે છે તેથી તે કર્મ (વર્તમાનમાં) રંજિત પરિણામ આપે છે. જ્ઞાની વિષયમય અર્થ અર્થાત્ પરિણામ અર્થે ઉદયાગત કર્મને સેવતો નથી તેથી તે કર્મ તેને રંજિત ઉત્પન્ન કરતું નથી.

બીજો આશય આ પ્રમાણે છે:—અજ્ઞાની સુખ (સગાદિપરિણામ) ફળ કરનારા આગામી ભોગોની અભિજ્ઞાયાથી વ્રત, તથા વગેરે શુભ કર્મ કરે તેથી કર્મ તેને સગાદિપરિણામ ઉત્પન્ન કરનારા આગામી ભોગો આપે છે. જ્ઞાનીની જ આથી વિપરીત સમજવું.

આ રીતે અજ્ઞાની ફળની વાંછાથી કર્મ કરે છે તેથી તે ફળને પામે છે. જ્ઞાની ફળની વાંછા વિના કર્મ કરે છે તેથી તે ફળને પામતો નથી.

હવે, “જેને ફળની વાંછા નથી તે કર્મ શા માટે કરે?” એવી આજ્ઞા દર દરવાને કાવ્ય કહે છે:—

(સાદૃશ્યવિગોડિત)

ત્યક્તં યેન ફલં સ કર્મ કુરુતે નેતિ પ્રતીતો વયં
કિંત્વસ્યાપિ કુતોડપિ કિંચિદપિ તત્કર્માવશેનાપતેત્ ।
તસ્મિન્નાપતિતે ત્વકંપપરમજ્ઞાનસ્વભાવે સ્થિતો
જ્ઞાની કિં કુરુતેડય કિં ન કુરુતે કર્મેતિ જાનાતિ કઃ ॥ ૧૫૩ ॥

અર્થઃ—જેણે કર્મનું ફળ છાડ્યું છે તે કર્મ કરે એમ તો અમે પ્રતીતિ કરી શકતા નથી. પરંતુ ત્યાં એટલું વિશેષ છે કે—તેને (જ્ઞાનીને) પણ કોઈ કારણે કોઈક એવું કર્મ અવશપણે (-તેના વશ વિના) આવી પડે છે. તે આવી પડતાં પણ, જે અકંપ પરમજ્ઞાનસ્વભાવમાં સ્થિત છે એવો જ્ઞાની કર્મ કરે કે નથી કરતો તે કોણ જાણે ?

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનીને પરવશે કર્મ આવી પડે છે તોપણ જ્ઞાની જ્ઞાનથી અસાય-માન પતો નથી. મોટે જ્ઞાનથી અવસાયમાન તે જ્ઞાની કર્મ કરે છે કે નથી કરતો તે કોણ જાણે ? જ્ઞાનીની વાત જ્ઞાની જ જાણે. જ્ઞાનીનાં પરિભ્રામ જાણવાનું સામર્થ્ય અજ્ઞાનીનું નથી.

અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિથી માંડીને ઉપરના બધાજ જ્ઞાની જ સમજવા. તેમાં, અ-વિરત સમ્યગ્દષ્ટિ, દેશવિરત સમ્યગ્દષ્ટિ અને આદારવિહાર કરના યુનિઓને બાદક્રિયાકર્મ પ્રવર્તે છે, તોપણ જ્ઞાનસ્વભાવથી અચલિત હોવાને લીધે નિશ્ચયથી તેઓ બાદક્રિયા-કર્મના કર્તા નથી, જ્ઞાનતા જ કર્તા છે. અંતરંગ મિથ્યાત્વના અભાવથી તથા યથા-સંભવ કથાયના અભાવથી તેમનાં પરિભ્રામ ઉચ્ચત્ત્વ છે. તે ઉચ્ચત્ત્વજ્ઞાને તેઓ જ (-જ્ઞાનીઓ જ-) જાણે છે, મિથ્યાદષ્ટિઓ તે ઉચ્ચત્ત્વજ્ઞાને જાણતા નથી. મિથ્યાદષ્ટિ તો બહિરાત્મા છે, બહારથી જ લક્ષ્ય બૂરું ખાને છે; અંતરાત્માની ગતિ બહિરાત્મા શું જાણે ?

હવે, આ જ અર્થના સમર્થનરૂપે અને આગળની ગાથાની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(સાદૃશ્યવિગોડિત)

સમ્યગ્દષ્ટય एव सादृશमिदं कर्तुं समंते परं
पद्मेऽपि पतत्पद्मी भयचमत्त्रैर्लोचयमुक्ताध्वनि ।
सर्वमेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानंतः स्वयवध्यवोधवपुषं बोधाच्छयवन्ते न हि ॥ १५४ ॥

અર્થ:—જેના લયથી ચક્રાયમાન થતા—ખજાણી જતા—ત્રણે લોક પાતાને માર્ગ છોડી દે છે એવો વજ્રપાત થવા છતાં, આ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવો, સ્વભાવથી નિર્ભય હોવાને લીધે, સમસ્ત શંકા છોડીને, પોતે પોતાને (અર્થાત્ આત્માને) જેનું જ્ઞાનરૂપી શરીર અવધ્ય (અર્થાત્ કેમકે હજી શકાય નહિ એવું) છે એવો જાણ થકા, જ્ઞાનથી મ્યુત થતા નથી. આત્મ પરમ સાહુસ કરવાને માત્ર સમ્યગ્દષ્ટિઓ સમર્થ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિ નિઃશંકિતગુણ સહિત હોય છે તેથી ગમે તેવા શુભાશુભ કર્મના ઉદય વખતે પણ તેઓ જ્ઞાનરૂપે જ પરિણમે છે. જેના લયથી ત્રણે લોકના જીવો કંપી ઊઠે છે—ખજાણી જાય છે અને પોતાનો માર્ગ છોડી દે છે એવો વજ્રપાત થવા છતાં સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પોતાના સ્વરૂપને જ્ઞાનશરીરવાળું માનતો થકા જ્ઞાનથી ચક્રાયમાન થતો નથી. તેને એમ શંકા નથી થતી કે આ વજ્રપાતથી મારો નાશ થઈ જશે; પર્યાપ્ત વિનાશ થાય તો ઠીક જ છે કારણ કે તેનો તો વિનાશિક સ્વભાવ જ છે. ૨૨૪-૨૨૬

હવે આ અર્થને ગાથા દ્વારા કહે છે:—

સમ્મદ્વિટ્ટી જીવા નિસ્સંકા હોંતિ નિર્ભયા તેણ ।

મત્તમયવિષ્ણુમુક્તા જન્મા તદ્વા દુ નિસ્સંકા ॥ ૨૨૮ ॥

મમ્મગદ્વયો જીવા નિઃશંકા મર્ષતિ નિર્ભયાસ્તેન ।

મત્તમયવિષ્ણુમુક્તા મમ્માનમ્માનુ નિઃશંકાઃ ॥ ૨૨૮ ॥

અન્વયાર્થ:—[મમ્મગદ્વયઃ જીવાઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ જીવો [નિઃશંકાઃ મર્ષતિ] નિઃશંક હોય છે [તેન] તેથી [નિર્ભયાઃ] નિર્ભય હોય છે; [તુ] અને [મમ્માન] કારણ કે [મત્તમયવિષ્ણુમુક્તાઃ] સંપત્તિ લયથી રહિત હોય છે [તદ્વા] તેથી [નિર્ભયાઃ] નિર્ભય હોય છે (અર્થાત્ હોય છે).

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિઓ સત્ય સર્વ કર્મોનાં ફળ પ્રત્યે નિર્ભયા પોતાથી કર્મ પ્રત્યે અત્યંત નિર્ભયપૂર્વક વર્તે છે, તેથી ખરેખર તેઓ અત્યંત નિર્ભય હોય (૨૨) નિર્ભયતાના દોષથી અત્યંત નિર્ભય છે એમ સંભાવના કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ એમ ધ્યાનપૂર્વક મનુષ્યમાં આવે છે).

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવો નિઃશંકિત, નેથી છે નિર્ભય અને

છે મત્તમયવિષ્ણુમુક્તા જેથી, નેથી ને નિઃશંક છે. ૨૨૮.

હવે સાત ભયનાં કળશરૂપ કાવ્યો કહેવામાં આવે છે, તેમાં પ્રથમ આ લોકના તથા પરલોકના એમ બે ભયનું એક કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિહીનિત)

લોકઃ સાન્નત એક એવ સકલવ્યક્તો વિવિક્તાત્મન-
શ્ચિલ્લોકં સ્વયમેવ કેવલમયં ચલ્લોકયત્યેકકઃ ।
લોકોડ્યં ન ત્વાપરસ્તદપરસ્તસ્યાસ્તિ તદ્ગ્રીઃ કુતો
નિરૂપકઃ સતતં સ્વયં સ સદ્ગં જ્ઞાનં સદા વિદતિ ॥ ૧૫૫ ॥

અર્થ:—આ ચિત્સ્વરૂપ લોક જ સિત્ત આત્માનો (અર્થાત્ પરથી સિત્તપણે પરિણમના આત્માનો) સાન્નત, એક અને સકલવ્યક્ત (—સર્વ કાળે પ્રગટ એવો) લોક છે; કારણ કે માત્ર ચિત્સ્વરૂપ લોકને આ જ્ઞાની આત્મા સ્વયમેવ એકલો આવડાકે છે—અનુભવે છે. આ ચિત્સ્વરૂપ લોક જ તારો છે, તેનાથી બીજો કોઈ લોક—આ લોક કે પરલોક—તારો નથી એમ જ્ઞાની વિચારે છે, જાણે છે, તેથી જ્ઞાનીને આ લોકનો તથા પરલોકનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સદ્ગં જ્ઞાનને (પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવને) સદા અનુભવે છે.

સાવાર્થ:—‘આ ભયમાં જીવન પર્યંત અનુકૂળ સામગ્રી શરૂથી કે નહિ?’ એવી ચિંતા શરૂ તે આ લોકનો ભય છે. ‘પરમવમાં મારું શું થશે?’ એવી ચિંતા શરૂ તે પરલોકનો ભય છે. જ્ઞાની જાણે કે—આ શ્વેતન્ય જ મારો એક, નિત્ય લોક છે કે જે સર્વ કાળે પ્રગટ છે. આ સિવાયનો બીજો કોઈ લોક મારો નથી. આ મારો શ્વેતન્યસ્વરૂપ લોક તો કોઈથી બગાડ્યો બગડતો નથી. આવું જાણના જ્ઞાનીને આ લોકનો કે પરલોકનો ભય ક્યાંથી હોય? કદી ન હોય. તે તો પોતાને સ્વાભાવિક જ્ઞાનરૂપ જ અનુભવે છે.

હવે વેદનાભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિહીનિત)

એવૈરૈવ ઠિ વેદના યદચં જ્ઞાનં સ્વયં વેદતે
નિર્મેદોદિતવેદવેદકલ્પાદેકઃ સદાનાકુપૈઃ ।
નેરાન્યાગતવેદૈવ ઠિ મવેતદ્ગ્રીઃ કુતો જ્ઞાનિનો
નિરૂપકઃ સતતં સ્વયં સ સદ્ગં જ્ઞાનં સદા વિદતિ ॥ ૧૫૬ ॥

અર્થ:—અભેદસ્વરૂપ વર્તતા વેધ-વેદકના બળથી. (અર્થાત્ વેધ અને વેદ અભેદ જ હોય છે એવી વસ્તુસ્થિતિના બળથી) એક અચળ જ્ઞાન જ સ્વયં નિરૂપણ પુરુષો વડે (-જ્ઞાનીઓ વડે) સદા વેદાય છે, તે આ એક જ વેદના (જ્ઞાનરસ) જ્ઞાનીઓને છે. (આત્મા વેદનાર છે અને જ્ઞાન વેદાવાયોગ્ય છે). જ્ઞાનીને બીજા કે આલેક્ષી (-પુદ્ગલથી થયેલી) વેદના હોતી જ નથી, તેથી તેને વેદનાનો ભય કદા હોય? તે તો પાતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—સુખેન્દુઃખને ભોગવતું તે વેદના છે. જ્ઞાનીને પાતાના એક જ જ્ઞાન સ્વરૂપનો જ ભોગવરો છે. તે પુદ્ગલથી થયેલી વેદનાને વેદના જ અનુભવે નથી. માટે જ્ઞાનીને વેદનાભય નથી. તે તો સદા નિર્વય વર્તતો થકો જ્ઞાનને અનુભવે છે. હવે અરજાભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(સાદૃશ્યવિશિષ્ટ)

યત્સન્નાશમુપૈતિ તન્ન નિયતે વ્યક્તેતિ વસ્તુસ્થિતિ-

જ્ઞાને સત્સ્વયમેવ તત્કલ્લ તત્તરણતે કિમસ્પાપરૈઃ ।

‘અસ્પાપાણમતો ન કિંચન મયેત્તદ્વીઃ કુતો જ્ઞાનિનો

નિર્ગતઃ સતતે સર્પે સ સદર્શ જ્ઞાને સદા રિંદતિ ॥ ૧૫૭ ॥

અર્થ:—નંદ મત્ છે તે નાશ પામતું નથી એવી વસ્તુસ્થિતિ નિયતપણે થાય છે. આ જ્ઞાન પણ સ્વયમેવ સત્ (અર્થાત્ સત્સ્વરૂપ વસ્તુ) છે (માટે નાશ પામતું નથી). તેથી જાણી પર થકે તેનું નેશનું શું? આ રીતે (જ્ઞાન પાતાથી જ હોય તેવાથી) તેનું જગત્તે પણ અગ્રણ્ય થઈ શકતું નથી. માટે (આત્મ જ્ઞાનના) જ્ઞાનીને અસ્પાપાનો ભય કદાં હોય? તે તો પાતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—વત્સાલ્યરૂપ વસ્તુનો કદી નાશ થતો નથી. જ્ઞાન પણ પોતે અસ્પાપીય વસ્તુ છે; તેથી તે કદાં નથી કે તેની બીજાના વડે નાશ કરવામાં આવે તે. માટે એક નો નાશ થઈ શકે. જ્ઞાની આત્મ અનુભવે તેવાથી તેને અસ્પાપાનો ભય નથી. તે તો નિરંતર વર્તતો થકો જ્ઞાને પાતાના સ્વાભાવિક જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે. હવે અરજાભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(સાદૃશ્યવિશિષ્ટ)

સા જગત્ સિદ્ધ વસ્તુનોઽસ્મિ વચ્ચા મૃતિઃ સતતે ન વ-

ચક્રતઃ કોઽપિ વચઃ પ્રેરેન્નુવદ્યત્ જ્ઞાને સતતે જ ત્વઃ ।

અપ્યાગમિત્તો ન જાગત મહેનતીઃ કુતો જ્ઞાનિનો
નિર્ગુણઃ મતનં સ્વયં ન મદનં જ્ઞાનં મદા વિંદતિ ॥ ૧૫૮ ॥

અર્થ:—અરેખર વસ્તુનું સ્વરૂપ જ (અર્થાત્ નિર્ગુણ સ્વરૂપ) વસ્તુની પરમ
'મુમિ' છે. કારણ કે સ્વરૂપમાં કોઈ બીજું પ્રવેશ કરી શકતું નથી; અને અમૂળ જ્ઞાન
(એ કોઈથી સ્વરૂપમાં આત્મનું નથી એવું સ્વાભાવિક જ્ઞાન) પુરુષનું અર્થાત્
આત્માનું સ્વરૂપ છે; (તેથી જ્ઞાન આત્માની પરમ મુમિ છે.) મારે આત્માનું જરા પણ
અગુણપણું નહિ દેવાથી જ્ઞાનીને અમુમિતા બધા કયાંથી હોય? તે તો પાને નિરંતર
નિર્ગુણ વર્તતો થશે. અદૃશ જ્ઞાનને શદ્દ અનુભવે છે.

બાવાર્થ:—'મુમિ' એટલે જેમાં કોઈ કાર વગરે પ્રવેશ ન કરી શકે એવો
કિલ્લો, આંધળું વગરે; તેમાં પ્રાણી નિર્ભયપણું વગી શકે છે. એવો ગુણ પ્રદેશ ન હોય
પણ ખુલ્લો પ્રદેશ હોય તો તેમાં સરેનાર પ્રાણીને અગુણપણાને લીધે બધા શકે છે.
જ્ઞાની બળે ॥ ૧—વસ્તુના નિર્ગુણ સ્વરૂપમાં કોઈ બીજું પ્રવેશ કરી શકતું નથી મારે
વસ્તુનું સ્વરૂપ જ વસ્તુની પરમ મુમિ અર્થાત્ અભેદ કિલ્લો છે. પુરુષનું અર્થાત્
આત્માનું સ્વરૂપ જ્ઞાન છે; તે જ્ઞાનસ્વરૂપમાં શકેલા આત્મા ગુણ છે. કારણ કે જ્ઞાન-
સ્વરૂપમાં બીજું કોઈ પ્રવેશી શકતું નથી. આત્મનું બળુતા જ્ઞાનીને અગુણપણાનો બધા
કયાંથી હોય? તે તો નિર્ગુણ વર્તતો થશે. જ્ઞાનાના સ્વાભાવિક જ્ઞાનસ્વરૂપને નિરંતર
અનુભવે છે.

હવે મરણબધનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાંતિપર્વત)

માર્જોષ્ટેદમુદાદરંતિ મરણં માણાઃ કિન્નાસ્પાત્મનો
જ્ઞાનં સત્સ્વયમેવ જામ્બવતયા નોચ્છિયતે જાતુચિત્ ।
તસ્માત્તો મરણં ન કિંચન મહેત્તત્ત્રીઃ કુતો જ્ઞાનિનો
નિર્ગુણઃ મતનં સ્વયં ન મદનં જ્ઞાનં સદા વિંદતિ ॥ ૧૫૯ ॥

અર્થ:—પ્રાણના નાશને (લોકો) મરણ કહે છે. આત્માના પ્રાણ તો
નિશ્ચયથી જ્ઞાન છે. તે (જ્ઞાન) સ્વયમેવ સાત્ત્વ હોવાથી તેના કદાપિ નાશ થતો નથી;
માટે આત્માનું મરણ બિલકુલ થતું નથી. તેથી (આત્મનું બળુતા) જ્ઞાની
બધા કયાંથી હોય? તે તો પાને નિરંતર નિર્ગુણ વર્તતો થશે.
અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—ઇંદ્રિયાદિ પ્રાણો નાશ પામે તેને લોકો મરણ કહે છે. પરંતુ આત્માને પરમાર્થે ઇંદ્રિયાદિ પ્રાણ નથી, તેને તો જ્ઞાન પ્રાણ છે. જ્ઞાન અવિનાશી છે—તેનો નાશ થતો નથી; તેથી આત્માને મરણ નથી. જ્ઞાની આમ જાણતો હોવાથી તેને મરણનો ભય નથી; તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપને નિરંતર અનુભવે છે.

હવે આકસ્મિકભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(સાદ્ભવિઠીઠિત)

एकं ज्ञानमनाद्यनंतमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भवेत्तद्वीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १६० ॥

અર્થ:—આ સ્વતઃ સિદ્ધ જ્ઞાન એક છે, અનાદિ છે, અનંત છે, અચળ છે. તે જ્યાંમુઘી છે ત્યાંમુઘી સદાય તે જ છે, તેમાં બીજાનો ઉદય નથી. મારે આ જ્ઞાનમાં આકસ્મિક (અણધાર્યું, એકાએક) કંઈ પણ થતું નથી. આત્મ જાણીને અસ્મરમાનનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સદૃજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—‘કંઈ અણધાર્યું અનિષ્ટ એકાએક ઉત્પન્ન થશે તો?’ એવો ભય રહે તે આકસ્મિકભય છે. જ્ઞાની જાણે છે કે—આત્માનું જ્ઞાન પોતાથી જ સિદ્ધ અનાદિ, અનંત, અચળ, એક છે. તેમાં બીજું કંઈ ઉત્પન્ન થઈ શકતું નથી; મારે તેમાં અણધાર્યું કંઈ પણ ક્યાંથી થાય અર્થાત્ અસ્મરમાત ક્યાંથી બને? આત્મ જાણીને અસ્મરમાનનો ભય હોતો નથી, તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતાના જ્ઞાનભાસે નિરંતર અનુભવે છે.

આ રીતે જ્ઞાનીને સાત ભય હોવા નથી.

પ્રશ્ન:—અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ આદિને પણ જ્ઞાની કદાચ છે અને તેમને તો ભય-પ્રવૃત્તિનો ઉદય દોષ તથા તેના નિમિત્તે તેમને ભય થતો પણ જોવામાં આવે છે, તો પછી જ્ઞાની નિર્જય કઈ રીતે છે?

સમજાવના:—ભયપ્રવૃત્તિના ઉદયના નિમિત્તથી જ્ઞાનીને ભય ઉપજે છે. વળી અંતરાયના પ્રમજ ઉદયથી નિર્જય દોષાને લીધે તે ભયની પીડા નહિ સહી શકવાથી

જ્ઞાની તે ભયનો ઇલાજ પણ કરે છે. પરંતુ તેને એવો ભય હોતો નથી કે લેથી જીવ સ્વરૂપના જ્ઞાનશ્રદ્ધાનથી ચ્યુત થાય. વળી જે ભય ઉપર છે તે મોહકર્મની ભય નામની પ્રકૃતિના કાષ્ટ છે; તેના પોતે સ્વામી થઈને કર્તા થતો નથી, જ્ઞાના જ રહે છે. માટે જ્ઞાનીને ભય નથી.

હવે આગળની (સમ્યગ્દષ્ટિના નિઃશંકિત આદિ ચિહ્નો વિષેની) ગાથાઓની સ્થનાશ્પે કાવ્ય કહે છે:—

(મંદારાંતા)

ટંકોત્કીર્ણસ્વરસનિચિતજ્ઞાનસર્વસ્વભાજઃ

સમ્યગ્દષ્ટેર્યદિદ્-સકલં પ્રંતિ લક્ષ્યાણિ કર્મ ।

નનસ્પાસ્મિન્પુનરપિ યનાકર્મણો માસ્તિ વંધઃ

પૂર્વોપાત્તં તદનુભવતો નિશ્ચિતં નિર્જરૈવ ॥ ૧૬૧ ॥

અર્થ:—૧.ટંકોત્કીર્ણ એવું જે નિર્જશ સહી ભરપૂર જ્ઞાન તેના સર્વસ્વને બોગવનાર સમ્યગ્દષ્ટિને જે નિઃશંકિત આદિ ચિહ્નો છે તે સમસ્ત કર્મને હજે છે; માટે, કર્મના ઉદય વર્તતાં છતાં, સમ્યગ્દષ્ટિને ફેરીને કર્મના બંધ જરા પણ થતો નથી, પરંતુ જે કર્મ પૂર્વે બંધાયું હતું તેના ઉદયને બોગવતાં તેને નિયમથી તે કર્મની નિર્જશ જ થાય છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિ પૂર્વે બંધાયેલી ભય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયને બોગવે છે તોપણ નિઃશંકિત આદિ ગુણો વર્તતા હોવાથી તેને શંકાદિહીન (શંકાદિના નિમિત્તે થતો) બંધ થતો નથી પરંતુ પૂર્વકર્મની નિર્જશ જ થાય છે. ૨૨૮.

હવે આ કથનને ગાથાઓ દ્વારા કરે છે, તેમાં પ્રથમ નિઃશંકિત અંગની (અથવા નિઃશંકિત ગુણની-ચિહ્નની) ગાથા કહે છે:—

જો ચત્તારિ વિ.પાણ લિંદદિ તે કમ્મવંધમોહકરે ।

સો જિસંકો ચેદા સમ્માદિટ્ટી મુણેયવ્વો ॥ ૨૨૧. ॥

૧ નિઃશંકિત = સંદેહ અથવા ભય રહિત.

૨ શંકા = સંદેહ; કલ્પિત ભય.

જે કર્મબંધનમોહકર્તા પાદ ચારે મેદનો,

ચિન્મૂર્તિ ને શંકાહિન સમક્ષિતદષ્ટિ વ્તાવ્વો. ૨૨૬.

યશ્ચતુરોઽપિ પાદાન્ છિન્નતિ તાન્ કર્મવંશમોદકતાન્ ।
સ નિઙ્ગંકથેનયિતા સમ્યગ્દષ્ટિર્જ્ઞાનવ્યઃ ॥ ૨૨૯ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યઃ ચેતયિતા] જે ચેતયિતા, [કર્મવંશમોદકતાન્] કર્મ-
સંબંધી મોહ કરનારા (અર્થાત્ જીવ નિશ્ચયથી કર્મ વડે બંધાયે છે એવો શ્રમ-
નારા) [તાન્ ચતુરઃ અપિ પાદાન્] મિથ્યાત્વાદિ ભાવોરૂપ ચારે પાયાને [છિન્ન-
છેદે છે, [સઃ] તે [નિઙ્ગંકથેનયિતાઃ] નિઃશંક [સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ]

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, ૮'કોડીકો એવા એક જ્ઞાયકભાવમયપણને
કર્મબંધ સંબંધી શંકા કરનારા (અર્થાત્ જીવ નિશ્ચયથી કર્મ વડે બંધાયે છે
સંદેહ અથવા ભય કરનારા) મિથ્યાત્વાદિ ભાવોના (તેને) અભાવ હોવાથી, નિઃ
છે તેથી તેને શંકાકૂલ બંધ નથી પરંતુ નિર્જશ જ છે.

ભાવાર્થઃ—સમ્યગ્દષ્ટિને જે કર્મના ઉદય આવે છે તેના તે, સ્વમિત્વના
ભાવને લીધે, કર્તા થતો નથી. મારે ભયપ્રકૃતિના ઉદય આવતાં છતાં પણ સમ્ય-
જીવ નિઃશંક રહે છે, સ્વરૂપથી ચ્યુત થતો નથી. આમ હોવાથી તેને શંકામ-
યતો નથી, કર્મ રસ આપીને ખરી ભય છે. ૨૨૯.

હવે નિઃકંક્ષિત શુભુની ગાથા કહે છેઃ—

જો દુ જ કરેદિ કંક્ષં કમ્મફલેસુ તહ સવ્વધમ્મેસુ ।
સો ણિકંક્ષો ચેદા સમ્માદિટ્ઠો મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૦ ॥

યસ્તુ ન કરોતિ કાંક્ષાં કર્મફલેષુ તથા સર્વધર્મેષુ ।

સ નિષ્કાંક્ષથેનયિતા સમ્યગ્દષ્ટિર્જ્ઞાનવ્યઃ ॥ ૨૩૦ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યઃ ચેતયિતા] જે ચેતયિતા [કર્મફલેષુ] કર્મોનાં ફળો
[તથા] તથા [સર્વધર્મેષુ] સર્વ ધર્મો પ્રત્યે [કાંક્ષાં] કાંક્ષા [ન તુ કરોતિ] ન
કરે નથી [સઃ] તે [નિષ્કાંક્ષઃ સમ્યગ્દષ્ટિઃ] નિષ્કાંક્ષ સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ] જ્ઞાતવ્યો.

૧ ચેતયિતા = ચેતનાર; જાણનાર-દેખનાર; આત્મા.

જે કર્મકાળ ને સર્વ ધર્મ તાણી ન કાંક્ષા રાખતો,
ચિન્મુર્તિ ને કાંક્ષાગદિન સમકિતદષ્ટિ જાણવો. ૨૩૦.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યક્દષ્ટિ, રંગોડીબૂં એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે બધાય કર્મફળો પ્રત્યે તથા બધા વસ્તુધર્મો પ્રત્યે કાંઈનાં (તેને) અભાવ હોવાથી, નિષ્કાંક્ષ (નિર્જીશ) છે, તેથી તેને કાંઈકાદું બધું નથી પરંતુ નિર્જીશ જ છે.

સાવાર્થ:—સમ્યક્દષ્ટિને સમસ્ત કર્મના ફળોની વાંછા નથી; વળી તેને સર્વ ધર્મોની વાંછા નથી, એટલે કે કનકપલ્લવ, પાપાલ્પપલ્લવ વગેરે તેમ જ નિંદા, પ્રશંસા આદિનાં વચન વગેરે વસ્તુધર્મોની અર્થાત્ પુનઃકલ્પસ્વભાવોની તેને વાંછા નથી—તેમના પ્રત્યે સમભાવ છે, અથવા તો અન્યમતીઓએ માનેલા અનેક પ્રકારના સર્વથા એકાંત-પણી બ્યવહારધર્મોની તેને વાંછા નથી—ને ધર્મોના આદર નથી. આ રીતે સમ્યક્દષ્ટિ વાંછારહિત હોવાથી તેને વાંછાથી થતો બધું નથી. વર્તમાન પીડા સહી શકાતી નથી તેથી તેને મદાદવાના હક્કાજની વાંછા સમ્યક્દષ્ટિને આશ્ચર્યભાવના ઉદયને લીધે હોય છે, પરંતુ તે વાંછાનો કત્તા પાને થતો નથી, કર્મનો ઉદય બળી તેને જ્ઞાતા જ રહે છે; માટે વાંછાદૃત બધું તેને નથી. ૨૩૦.

હવે નિર્વિચિકિત્સા ગુણની ગાથા કહે છે:—

જો જ કરેદિ જુગુપ્સાં ચેદા સન્વેસિમેવ ધમ્માણં ।

સો ચ્વલુ ણિવ્વિદિગિચ્છો સમ્માદિટ્ઠી મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૧ ॥

પો ન કરાંનિ જુગુપ્સાં ચેતયિતા સન્વેપામેવ ધર્માણામ્ ।

સ ચ્વલુ નિર્વિચિકિત્સાઃ સમ્યક્દષ્ટિર્ગ્રાંતવ્યઃ ॥ ૨૩૧ ॥

અન્યવાર્થ:—[જો ચેતયિતા] જે ચેતયિતા [સવયાં વય] બધાય [ધર્માણાં] ધર્મો (વસ્તુના સ્વભાવો) પ્રત્યે [જુગુપ્સાં] જુગુપ્સા (ગ્હાનિ) [ન કરેતિ] કરતો નથી [સ:] તે [ચ્વલુ] નિશ્ચયથી [નિર્વિચિકિત્સાઃ] નિર્વિચિકિત્સા (—વિચિકિત્સાદોષ રહિત) [સમ્યક્દષ્ટિઃ] સમ્યક્દષ્ટિ [ગ્રાંતવ્યઃ] બળવેલ.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યક્દષ્ટિ, રંગોડીબૂં એક જ્ઞાયકસ્વભાવમયપણાને લીધે બધાય વસ્તુધર્મો પ્રત્યે જુગુપ્સાનો (તેને) અભાવ હોવાથી, નિર્વિચિકિત્સા (—જુગુપ્સા રહિત) છે, તેથી તેને વિચિકિત્સાદૃત બધું નથી પરંતુ નિર્જીશ જ છે.

સાવાર્થ:—સમ્યક્દષ્ટિ વસ્તુના ધર્મો પ્રત્યે (અર્થાત્ ક્રુધા, વપા, રીત, ઉખ્ખ

સાં કોઈ ધર્મ વિષે જુગુપ્સાભાવ જે નદિ ધારેતો,

ચિન્મુર્તિ નિર્વિચિકિત્સ સમકિતદષ્ટિ નિશ્ચય બળવેલ. ૨૩૧.

આદિ ભાવો પ્રત્યે તથા વિષા આદિ મલિન ક્રમો પ્રત્યે) જુગુપ્સા કરતો નથી. જુગુપ્સા નામની કર્મપ્રકૃતિના ઉદય આવે છે તોપણ પાને નેનો કર્તા થતો નથી તેથી જુગુપ્સા જન બધે તેને થતો નથી, પરંતુ પ્રકૃતિ રસ કદને ખરી જાય છે તેથી નિર્જન થાય છે. ૨૩૧.

હવે અમૃદદષ્ટિ અંગની ગાથા કહે છે:—

જો હવહ અસમ્મદો ચેદા સદ્વિદિ સન્વભાવેષુ ।

સો સ્વહુ અમૃદદિટ્ટી સમ્માદિટ્ટી મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૨ ॥

યો ભવતિ અસંમદઃ ચેતયિતા મદદષ્ટિઃ સર્વભાવેષુ ।

ગ સ્વહુ અમૃદદષ્ટિઃ સમ્યગ્દષ્ટિજ્ઞાનવ્યઃ ॥ ૨૩૨ ॥

અન્યથાર્થ:—[યા ચેતયિતા] જે ચેતયિતા [સર્વભાવેષુ] સર્વ ભાવે [અસંમદઃ] અમૃદ છે—[સદ્દષ્ટિઃ] યથાર્થ દષ્ટિવાળો. ભવતિ] છે, [સઃ] તે [સ્વહુ] અરેખર [અમૃદદષ્ટિઃ] અમૃદદષ્ટિ [સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવો.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, ૬ કોડીબુદ્ધિ એક પ્રાયઃભાવમયપદ્ધતિ ક્ષીણ થાય ભાવોમાં ગ્રાહનો (તેને) અભાવ હોવાથી, અમૃદદષ્ટિ છે, તેથી તેને મૃદદષ્ટિ બધે નથી પરંતુ નિર્જન જ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિ સર્વ પદાર્થોના સ્વરૂપને યથાર્થ જાણે છે; તેને સમ્યગ્દેષગ્રાહનો અભાવ હોવાથી તેની કોઈ પદાર્થ પર અવધાર્થ દષ્ટિ પડતી નથી. આદિ ગ્રાહના ઉદયથી ઇલાનિષ્ઠ ભાવો ઉપર તોપણ તેને ઉદયનું અગવાનપણ જાણીને તે ભાવોનો પાતે કર્તા થતો નથી તેથી તેને મૃદદષ્ટિરૂપ બધે થતો નથી પરંતુ પ્રકૃતિ રસ કદને ખરી જતી હોવાથી નિર્જન જ થાય છે. ૨૩૨.

હવે ઉપગ્રહન ચુલની ગાથા કહે છે:—

જો સિદ્ધભત્તિજુતો ઉપગ્રહણગો દુ સન્વધમ્માણં ।

સો ઉવગ્રહણકારી સમ્માદિટ્ટી મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૩ ॥

સંમદ નહિ જે સર્વ ભાવે,—સત્ય દષ્ટિ ધારતો,
તે મૃદદષ્ટિરહિત સમકિતદષ્ટિ નિશ્ચય જાણવો. ૨૩૨.
જે સિદ્ધભક્તિસહિત છે, ઉપગ્રહક છે સૌ ધર્મનો,
ચિન્મૂર્તિ તે ઉપગ્રહનકર સમકિતદષ્ટિ જાણવો. ૨૩૩.

યઃ તિદ્ધભક્તિયુક્તઃ સ્વપ્રગ્દનકારતુ સર્વપર્માણામ્ ।

॥ સ્વપ્રગ્દનકારી સમ્પ્રદર્શિર્જાતમ્યઃ ॥ ૨૩૩ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યઃ] એ (ચેતયિતા) [તિદ્ધભક્તિયુક્તઃ] સિદ્ધની (મુક્તા-ભાની) ભક્તિ સહિત છે [તુ] અને [સર્વપર્માણાં સ્વપ્રગ્દનકારઃ] પર વસ્તુના સર્વ ધર્મેને ગ્રાપવનાર છે (અર્થાત્ સગાદિ પરભાવેમાં જોડાતો નથી) [યઃ] તે [સ્વ-પ્રગ્દનકારો] સ્વપ્રગ્દનકારી [સમ્પ્રદર્શિઃ] સમ્યગ્દર્શિ [જાતમ્યઃ] જાણ્યો.

ટીકા—સારત્ ક્રમે સમ્યગ્દર્શિ, સંકોચીજી એક જ્ઞાપકભાવમયપણાને લીધે સમસ્ત આત્મશક્તિઓની કૃત્તિ કરતો હોવાથી, ઉપશૃંઘલ અર્થાત્ આત્મશક્તિનો વધારનાર છે, તેથી તેને અવની શક્તિનો દુર્જગતાથી (અર્થાત્ મંદતાથી) થતો બચ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થઃ—સમ્યગ્દર્શિ ઉપશૃંઘલયુક્ત સહિત છે. ઉપશૃંઘલ એટલે ગ્રાપવતુ તે. અહીં નિશ્ચયનયને પ્રધાન કરીને કહ્યું છે કે સમ્યગ્દર્શિએ પાતાનો ઉપયોગ સિદ્ધભક્તિમાં જોડેલો છે, અને જ્યાં ઉપયોગ સિદ્ધભક્તિમાં જોડ્યો ત્યાં અન્ય ધર્મો પર દ્રષ્ટિ જ ન રહી તેથી તે સર્વ અન્ય ધર્મોના ગ્રાપવનાર છે અને આત્મશક્તિનો વધારનાર છે.

આ ગુણવૃંદ બીજી નામ 'ઉપશૃંઘલ' થયું છે. ઉપશૃંઘલ એટલે વધારવું તે. સમ્યગ્દર્શિએ પાતાનો ઉપયોગ સિદ્ધના સ્વરૂપમાં જોડેલો હોવાથી તેના આત્માની સર્વ શક્તિઓ વધે છે—આત્મા પુષ્ટ થાય છે મરિ તે ઉપશૃંઘલયુગ્મવાળો છે.

આ રીતે સમ્યગ્દર્શિને આત્મશક્તિની કૃત્તિ થતી હોવાથી તેને દુર્જગતાથી જે બચ થતો હતો તે થતો નથી, નિર્જરા જ થાય છે. એકે જ્યાંસુધી અંતરાયનો ઉદય છે ત્યાંસુધી નિર્જગતા છે તોપણ તેના અભિપ્રાયમાં નિર્જગતા નથી, પાતાની શક્તિ અવસાર કર્યા ઉદયને અવગણી મહાન ઉદય થતો છે. ૨૩૩.

હવે સ્થિતીકરણ યુગ્મની ગાથા કહે છે:—

ઉમ્મમગં મચ્છંતં સગંપિ મગ્ગે ઠવેદિ જો વેદા ।

સો ઠિદિકરણાજુતો સમ્પાદિટ્ટો મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૪ ॥

ઉન્માર્ગ મચ્છંતં સ્વકમપિ માર્ગે સ્થાપયતિ યથેતપિતા ।

મ સ્થિતીકરણયુક્તઃ સમ્પ્રદર્શિર્જાતમ્યઃ ॥ ૨૩૪ ॥

ઉન્માર્ગમને સ્વાત્મને પણ માર્ગમાં જે સ્થાપનો, ચિન્મર્તિ તે સ્થિતીકરણયુક્ત સમક્ષિતદર્શિ જાણ્યો. ૨૩૪.

અન્યથાર્થ:—[યઃ ચેતયિતા] જે ચેતયિતા [ઉન્માર્ગે ગચ્છંત] જે
જતા [સ્વકં અપિ] પાતાના આત્માને પણ [માર્ગે] માર્ગમાં [સ્થાપયતિ]
છે, [સઃ] તે [સ્થિતીકરણયુક્તઃ] સ્થિતીકરણયુક્ત (સ્થિતીકરણયુક્ત)
[સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવો.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, રંગકાંડીજી એક સાચકભાવમયપણને
જો પાતાતો આત્મા માર્ગથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર્ય)
ચ્યુત થાય તો તેને માર્ગમાં જ સ્થિત કરતો હોવાથી, સ્થિતિકારી છે, તેથી તેને
ચ્યુત થવાના કારણે થતો બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—જે, પાતાના સ્વરૂપથી મોક્ષમાર્ગથી ચ્યુત થતા પો
આત્માને માર્ગમાં (મોક્ષમાર્ગમાં) સ્થિત કરે તે સ્થિતીકરણયુક્તયુક્ત છે. તેને માર્ગ
ચ્યુત થવાના કારણે થતો બંધ નથી પરંતુ ઉદય આવેલાં કર્મ રસ ક્ષત્રિ ખરી
હોવાથી નિર્જરા જ છે. ૨૩૪.

હવે વાતસત્ય ગુણની ગાથા કહે છે:—

જો કુણદિ વચ્છલત્તં તિયેહ સાહુળ મોક્ષમગમ્ ગમિ ।
મો વચ્છલભાવજુદો સમ્માદિદ્ધો મુણેયવ્વો ॥ ૨૩૫ ॥

યઃ કરોતિ વચ્છલત્ત્વં ત્રયાણાં સાધુનાં મોક્ષમાર્ગે ।
ત યમમ્ભાવપુતઃ સમ્યગ્દષ્ટિર્જ્ઞાનવ્યઃ ॥ ૨૩૫ ॥

અન્યથાર્થ:—[યઃ] જે (ચેતયિતા) [મોક્ષમાર્ગે] મોક્ષમાર્ગમાં જે
[ત્રયાણાં સાધુનાં] સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર્યથી ત્રણ સાધકો—સાધનો પ્રત્યે (અર્થ
અવગારે આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને મુનિ—એ ત્રણ સાધુઓ પ્રત્યે) [યમમ્ભાવ
પુતઃ] વચ્છલભાવ કરે છે, [મો] તે [સમ્યગ્દષ્ટિયુક્તઃ] વાતસત્યભાવયુક્ત (વાતસત્યભાવ સંવિત)
[સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવો.

ટીકા:—માત્ર કે સમ્યગ્દષ્ટિ, રંગકાંડીજી એક સાચકભાવમયપણને સી
સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન-ચારિત્ર્યને પાતાથી અમરિતપ્રદિએ સમ્યક્ષરૂ રૂપનો (અનુભવનો)
રોચારો, અર્થવચ્છલ અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગ પ્રત્યે અતિ પ્રીતિપાતો છે, તેથી તેને માર્ગ

જે નેત્રમાને 'માધુ'ત્રયનું વ-મત્તવ કહે આપે!

નિવર્તન ને વાતસત્યપુત્ર મનકિનદષ્ટિ જ્ઞાતવ્યો. ૨૩૫.

અનુપસંધિ થતો બધે નથી પરંતુ નિર્જર જ છે.

ભાવાર્થ:—વસન્તપક્ષ* એકે પ્રીતિભાવ. જે છવ મેદભાગેથી પાતાના ચરૂ પ્રત્યે પ્રીતિવાળો—અનુરાગવાળો હોય તેને માર્ગની અપ્રાપ્તિ થતો બધેથી, કર્મ રસ હરિને ખરી જતાં હોવાથી નિર્જર જ છે. ૨૩૫.

હવે પ્રભાવના ગુણની ગાથા કહે છે:—

વિજારહમારુદો મળોરહપદેમુ ભમદ્ જો વેદા ।

સો જિણણપદાવી સમ્માદિટ્ટી મુણેચ્છો ॥ ૨૩૬ ॥

વિચારપમારુદઃ મનોરથપથેષુ ભ્રમતિ વધેનયિતા ।

જ મિનજ્ઞાનપ્રમાવી સમ્યગ્દષ્ટિપ્રાપ્તિવ્યઃ ॥ ૨૩૬ ॥

અર્થ:—[યઃ ચેતયિતા] જે ચેતયિતા [વિચારપં મારુદઃ] વિચારથી રથમાં આડે થયો થકો (—અથો થકો) [મનોરથપથેષુ] મનથી રથ-પથમાં (અર્થાત્ જ્ઞાનથી જે રથને ચાલવાનો માર્ગ તેમાં) [ભ્રમતિ] ભ્રમણ કરે છે, [સ્તઃ] તે [જિનજ્ઞાનપ્રમાવી] જિનેશ્વરના જ્ઞાનની પ્રભાવના કરનારે [સમ્યગ્દષ્ટિઃ] સમ્યગ્દષ્ટિ [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવે.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, રંગેકીર્ણ એક જ્ઞાતવાવમયપણાને કીધે જ્ઞાનની સમસ્ત શક્તિને પ્રગટ કરવા—વિકસાવવા—ફેલાવવા વડે પ્રભાવ ઉત્પન્ન કરતો હોવાથી, પ્રભાવના કરનાર છે, તેથી તેને જ્ઞાનની પ્રભાવનાના અપ્રકર્ષથી (અર્થાત્ જ્ઞાનની પ્રભાવના નહિ વધારવાથી) થતો બધે નથી પરંતુ નિર્જર જ છે.

ભાવાર્થ:—પ્રભાવના એકલે પ્રગટ કરવું, ઉઘોત કરવો વગેરે; મારે જે પાતાના જ્ઞાનને નિરંતર અવ્યાસથી પ્રગટ કરે છે—વધારે છે, તેને પ્રભાવના અંગ હોય છે. તેને અપ્રભાવનાકૃત કર્મબધ નથી, કર્મ રસ હરિને ખરી જાય છે તેથી નિર્જર જ છે.

આ ગાથામાં નિશ્ચયપ્રભાવનાનું સ્વરૂપ કહ્યું છે. જેમ જિનચિંતને રથમાં રથાથીને નગર, વન વગેરેમાં ફેરવી વ્યવહારપ્રભાવના કરવામાં આવે છે, તેમ જે વિધા-

* અનુપસંધિ = પ્રત્યક્ષ ન હોવું તે, અજ્ઞાન: અપ્રાપ્તિ.

ચિન્મૂર્તિ મન-રથપથમાં વિચારધાઈ ધ્રુમનો.

તે જિનજ્ઞાનપ્રભાવકર સમક્ષિતદષ્ટિ જાણવો. ૨૩૬.

આખ્યા છે. પરંતુ સિદ્ધાંતમાં ગુણસ્થાનોની પરિપાટીમાં અવિરત સમર્થ-
 હોવામાં આવ્યો છે. વળી ઘાતિકર્મોનું કાર્ય આત્માના ગુણોના ઘાત ક્રમ
 દર્શન, જ્ઞાન, મુખ, વીર્ય—એ ગુણોના ઘાત પણ વિદ્યમાન છે. ચારિત્ર્યને
 નવીન બંધ પણ કરે છે. જો મોહનના ઉદયમાં પણ બંધન માનવામાં આવે તેને
 દષ્ટિને મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધીના ઉદય હોવા છતાં બંધ નથી એમ પણ કેમ નહીં

સમાધાન:—બંધ થવામાં મુખ્ય કારણ મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધીના છે;
 અને સમ્યક્દષ્ટિને તો તેમના ઉદયનો અભાવ છે. ચારિત્ર્યમોહના કે
 મુખગુણનો ઘાત છે તથા મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધી સિવાય અને તેમની સાર
 અન્ય પ્રકૃતિઓ સિવાય બાકીની ઘાતિકર્મોની પ્રકૃતિઓના અદ્ય સ્થિતિ-અનુ
 બંધ તેમ જ બાકીની અઘાતિકર્મોની પ્રકૃતિઓના બંધ થાય છે, તોપણ જો
 અનંતાનુબંધી સંહિત થાય ■ તેવો નથી થતો. અનંત સંસારનું કારણ તો
 અનંતાનુબંધી જ છે; તેમના અભાવ થયા પછી તેમનો બંધ થતો નથી; એ
 આત્મા જાણી થયો ત્યાં અન્ય બંધની કોણ ગણતરી કરે? વૃક્ષની જાડ
 સીમાં પાંદડાં ફેરવાની અવધિ કેટલી? મારે આ અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં સામાન્ય
 જ્ઞાનીને હોવા વિશે જ પ્રશ્ન કયન છે. જાણી થયા પછી જે કાંઈ કરે તે
 સદૃશ જ પ્રાણી જાણનાં. નીચેના દૃષ્ટાંત પ્રમાણે જાણીનું રામજનું. જો
 દેવતાથી પુષ્ટીમાં ફેરવો હોય. તેને જાણના ઉદયથી થન સહિત પ્રાણી બને
 જ નથી તે મહેસમાં ફેરવા મળે. જોકે તે મહેસમાં ઘણા રિવસનો કયો
 નેપથ્ય જે રિવસ તેનું આવીને મહેસમાં પ્રવેશ કર્યો તે રિવસથી જ તે મહે
 સની. મહે, મહેસાવાન મહે મળે. હવે કયરો માણસો છે તે અનુક્રમે પાત
 જાણના માર છે. બધાને બધા કયરો મહેસ જશે અને મહેસ જાણના
 જાણ ને પદ્મવતી કેળવશે. આવી જ રીતે જાણીનું જાણનું.

ટીકા:—આ પ્રમાણે નિર્જલા (સંતત્ત્વનિર્માણ) બહાર નીકળી

જાણના:—એ રીત, નિર્જલા કે જેનું સંતત્ત્વનિર્માણ પ્રવેશ કર્યો
 જેનું ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ જાણીને બહાર નીકળી નહીં. ૧૩૧.

જાણના ૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧
 ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧
 ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧
 ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧

જાણના ૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧
 ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧ ૧૧૧૧

-ॐ अंघ्रि मधिरुतः ॐ-

सामग्रिकधी कर्मणा, जेव्हा जशी मुनिभाव,
तसे तेव्हा सामभावधी, नमु' सदा नमु' पाव.

પ્રથમ ટીકાકાર કહે છે કે 'હવે ત્યાં પ્રવેશ કરે છે.' જેમ નૃપના અખ્યાતામાં પ્રવેશ કરે તેમ રંગભૂમિમાં ત્યાગરજના સ્વાંગ પ્રવેશ કરે છે.

ત્યાં પ્રથમ જ, સારી તાલેને સમાધિ લખનારું કે અભ્યાસના કા ને જાહેર
પ્રગટ થાય છે એવા અર્થનું અંગતરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(शास्त्रभविष्यति)

रागोद्धारस्यारगेन सकलं कृत्वा प्रथमं भगवत्

प्रोदंते एतन्मावनिर्भरयदानाश्रेण वषं पुनतु ।

आनेदासतन्यभोमि गारमावर्था स्पृष्टं मादपद-

पीरोदायलायुः निरुपि ज्ञाने साधुग्यज्ञानि ॥ १६३ ॥

અર્થ:—એ (અર્થ) શાસ્ત્રના ઉત્પત્તિથી બહાર રસા (સા) થી શાસ્ત્રનું જન્મનું
 (જન્મવાળું, બાદેસ) હરિને, શાસ્ત્રના આપથી (અર્થાત્ શાસ્ત્રથી, બાદેસ)
 મારા નુત્તર થઈ બેઠી (નાથી) રહ્યો કે એવા અર્થને કીર્તી થયું—૩૧ ૩૨ ;
 ઉત્પત્તિ થાય છે, કેવું કે શાસ્ત્ર? આનંદથી અલગનું નિત્ય આપન શાસ્ત્ર ॥
 ની જાણના ઉત્પત્તિ શાસ્ત્ર અવરથાને પ્રમાણ આપી વડુ છે, પોતે કે શાસ્ત્ર
 ની મારા શિક્ષણવાળું, નિશ્ચય છે, અનાદિ (અર્થાત્ એ આ શાસ્ત્ર અવરથાને
 નથી એવું) છે, નિરુપચિ (અર્થાત્ અનિવર્ય સદિગ્ધ, એમાં શાસ્ત્ર અવરથાને
 આપ નથી એવું) છે.

ભાવાર્થ:—અવતત્ત્વે રંગભૂમિમાં પ્રવેશ કર્યો છે, તેને ડોઝની રીતે જો-
વાને પ્રગટ થઈ નૃત્ય કરશે તે જ્ઞાનનો અદિમા આ કાવ્યમાં પ્રગટ કર્યો છે.
અનંત જ્ઞાનસ્વરૂપ જે આત્મા તે સદા પ્રગટ રહેલ.

હવે અવતત્ત્વનું સ્વરૂપ વિચારે છે; તેમાં પ્રથમ, અવતતા કારણે :
રીતે કહે છે:—

જહ ણામ કો વિ પુરિસો ણેહમત્તો દુ રેણુવહુલમ્મિ ।
ઠાણમ્મિ ઠાઢદૂણ ય કરેહ સત્થેહિં વાયામં ॥ ૨૩૭ ॥
હિંદદિ મિંદદિ ય તહા તાલીતલકયલિંવંસપિંડીઓ ।
સચિત્તાચિત્તાણં કરેહ દઙ્ગાણમુવધાયં ॥ ૨૩૮ ॥
ઉવધાયં કુલ્લંતસસ તસસ ણાણાવિહેહિં કરણંહિં ।
ણિચ્છયદો ચિંતિજ્જ હુ કિંપચ્ચયગો દુ રયવંધો ॥ ૨૩૯ ॥
જો સો દુ ણેહભાવો તલ્લિ ણરે તેણ તસસ રયવંધો ।
ણિચ્છયદો વિણ્ણેયં ણ કાયચ્છેટ્ટાહિં સેસાહિં ॥ ૨૪૦ ॥
એવં મિચ્છાદિટ્ટી વટ્ટંતો વહુવિહાસુ ચિટ્ટાસુ ।
રાયાઈ ઉવઓગે કુલ્લંતો લિપ્પહ રયેણ ॥ ૨૪૧ ॥

જેવી રીતે કેા પુરુષ પોતે નેણનું મહાન કરી,
બ્યાયામ કરતો શાસ્ત્રથી બહુ રજભર્યા સ્થાને રહી: ૨૩૭
વળી તાર, કદળી, વાંસ આદિ છિન્નભિન્ન કરે અને
ઉપધાત તેહ સચિત્ત તેમ અચિત્ત દ્રવ્ય તાણે કરે. ૨૩૮
બહુ જાતનાં કરણો વડે ઉપધાત કરતા તેહને,
નિશ્ચય થઈ ચિંતન કરે, રજઅંધ થાય શું કારણે? ૨૩૯
એમ જાણવું નિશ્ચય થઈ—ચીકણાઈ જે તે નર વિષે
રજઅંધકારણ તે જ છે, નહિ કાયચેટ્ટા શેષ જે. ૨૪૦
ચેટ્ટા વિવિધમાં વર્તતો એ રીત મિથ્યાદષ્ટિ જે,
ઉપયોગમાં રાગાદિ કરતો રજ થઈ લેપાય ને. ૨૪૧.

યથા નામ કોઽપિ પુરુષઃ સ્નેહાભ્યક્તસ્તુ રેણુવદુલે ।
 સ્થાને સ્થિત્વા ચ કરોતિ શસૈર્વ્યાયામમ્ ॥ ૨૩૭ ॥
 ઊનતિ મિનતિ ચ તથા તાલીતલકદલીર્વશર્પિઢીઃ ।
 મચિત્તાચિત્તાનાં કરોતિ દ્રવ્યાણામુપઘાતમ્ ॥ ૨૩૮ ॥
 ઉપઘાતં કુર્વતસ્તસ્ય નાનાવિષૈઃ કરણૈઃ ।
 નિશ્ચયતશ્ચિત્પતાં સ્તલુ ક્ષિપત્યપિકસ્તુ રજોર્વંશઃ ॥ ૨૩૯ ॥
 યઃ સ તુ સ્નેહભાવસ્તસ્મિધરે તેન તસ્ય રજોર્વંશઃ ।
 નિશ્ચયતો વિદ્યેયં ન કાયચેષ્ટામિઃ શેષામિઃ ॥ ૨૪૦ ॥
 एवं મિથ્યાદષ્ટિર્વર્તમાનો बहुविधामु चेष्टामુ ।
 रागादीनुपयोगे कुर्वाणો लिप्यते रजसा ॥ ૨૪૧ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યથા નામ] જેવી રીતે—[કોઽપિ પુરુષઃ] કેઈ પુરુષ

[સ્નેહાભ્યક્તઃ તુ] (પાનાના પર અર્થોત્ પાનાના શરીર પર) તેણે આદિ સ્નેહ
 પદાર્થ લગાવીને [ચ] અને [રેણુવદુલે] બહુ રજવાળી (પૂજવાળી) [સ્થાને]
 જગ્યામાં [સ્થિત્વા] રહીને [તાલીઃ] શાસ્ત્રી થડે [વ્યાયામં કરોતિ] વ્યાયામ કરે છે,
 [તથા] અને [તાલીતલકદલીર્વશર્પિઢીઃ] તાલ, તમાલ, કેળ, વાંસ, અંદાક વગેરે
 વૃક્ષોને [ઊનતિ] ઊડે છે, [મિનતિ ચ] બેડે છે, [સચિત્તાચિત્તાનાં] સચિત્ત તથા
 અચિત્ત [દ્રવ્યાણાં] દ્રવ્યોનાં [ઉપઘાતં] ઉપઘાત (નાશ) [કરોતિ] કરે છે; [નાના-
 વિષૈઃ કરણૈઃ] એ રીતે નાના પ્રકારનાં કરણો થડે [ઉપઘાતં કુર્વતા] ઉપઘાત કરતા
 [તસ્ય] તે પુરુષને [રજોર્વંશઃ તુ] રજનો બધ (પૂજનું ધ્યાન) [જાતુ] ખરેખર
 [ક્ષિપત્યપિકા] ક્યા કારણે થાય ॥ [નિશ્ચયતઃ] તે નિશ્ચયથી [વિંચતાં] વિચારે
 [તસ્મિન્ મરે] તે પુરુષમાં [યઃ સઃ સ્નેહમાયઃ તુ] જે તેણે આદિનો સ્નેહમાય ॥
 [તેન] તેનાથી [તસ્ય] તેને [રજોર્વંશઃ] રજનો બધ થાય છે [નિશ્ચયતઃ વિશેષ]
 એમ નિશ્ચયથી બહુવું, [શેષામિઃ કાયચેષ્ટામિઃ] શેષ કાયાની કષ્ટાંત્રાથી [ન]
 નથી થતો. [વ્યં] એવી રીતે—[बहुविधामु चेष्टामु] બહુ પ્રકારની કષ્ટાંત્રામાં
 [વર્તમાનઃ] વર્તતો [મિથ્યાદષ્ટિઃ] મિથ્યાદષ્ટિ [ઉપયોગે] (પાનાના) ઉપયોગમાં
 [રાગાદીનુ કુર્વાણઃ] રાગાદિ ભાવોને કરતો થડે [રજસા] રજથી રજથી [ર]
 લેવાય છે—અર્થાય છે.

ટીકા—જેવી રીતે—આ જગતમાં ખરેખર કેઈ પુરુષ

તેણે આદિ સ્નેહમાય (પદાર્થોના) ખરેખર અર્થો, સ્વભાવો જ એ
 ... સી

છ (અર્થાત્ બહુ રજવાળી છે) એવી ભૂમિમાં રહેલો, શસ્ત્રોના વ્યાયામરૂપી (અર્થાત્ શસ્ત્રોના અભ્યાસરૂપી ક્રિયા) કરતો, અનેક પ્રકારનાં કરેલો વડે સ્ત્રિ અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાત કરતો, (તે ભૂમિની) રજથી બંધાય છે—લેપાય છે. (વિચારો કે) તેમાંથી તે પુરુષને બંધનું કારણ કયું છે? પ્રથમ, સ્વભાવથી જ જે રજથી ભરેલી છે એવી ભૂમિ રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય જેમણે તેણે આદિનું મર્દન નથી કર્યું એવા પુરુષો કે જેઓ તે ભૂમિમાં રહેલા છે તેમને પણ રજબંધનો પ્રસંગ આવે. શસ્ત્રોના વ્યાયામરૂપી કર્મ પણ રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો જેમણે તેણે આદિનું મર્દન નથી કર્યું તેમને શસ્ત્રવ્યાયામરૂપી ક્રિયા કરવાથી રજબંધનો પ્રસંગ આવે. અનેક પ્રકારનાં કરેલો રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો જેમણે તેણે આદિનું મર્દન કર્યું તેમને પણ અનેક પ્રકારનાં કરેલોથી રજબંધનો પ્રસંગ આવે. સચિત્ત તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાત પણ રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો આદિનું મર્દન નથી કર્યું તેમને પણ સચિત્ત તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાત રજબંધનો પ્રસંગ આવે. મારે ન્યાયના બગથી જ આ ફસિત થયું (નિસિદ્ધ થયું) જે તે પુરુષમાં સ્નેહમર્દનકરણ (અર્થાત્ તે પુરુષમાં જે તેણે આદિના મર્દનનું કર્યું તે બંધનું કારણ છે. તેવી રીતે—મિથ્યાદૃષ્ટિ પાતામાં રાગાદિક (-રાગાદિભાવો) સ્વભાવથી જ જે બહુ કર્મચોખ્ખ પુરુષોથી ભરેલો છે એવા લોકમાં કા. કર્મ (અર્થાત્ કાય-વચન-મનની ક્રિયા) કરતો, અનેક પ્રકારનાં કરેલો વડે તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાત કરતો, કર્મરૂપી રજથી બંધાય છે. (ત્યાં વિચારો) તેમાંથી તે પુરુષને બંધનું કારણ કયું છે? પ્રથમ, સ્વભાવથી જ જે બહુ કર્મ પુરુષોથી ભરેલો છે એવા લોક બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો જેણે તેણે લોકમાં રહેલા છે તેમને પણ બંધનો પ્રસંગ આવે. કાય-વચન-મનનું કર્મ (અર્થાત્ કાય-વચન-મનની ક્રિયાસ્વરૂપ યોગ) પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો યથાખ્યાત-સંયમીઓને પણ (કાય-વચન-મનની ક્રિયા હોવાથી) બંધનો પ્રસંગ આવે. અનેક પ્રકારનાં કરેલો પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો કેવળજ્ઞાનીઓને પણ (તે કરેલોથી) બંધનો પ્રસંગ આવે. સચિત્ત તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાત પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જે એમ હોય તો જેઓ તત્પર છે તેમને (અર્થાત્ જેઓ યત્નપૂર્વક પ્રવર્તે છે એવા સાધુઓને) પણ (સચિત્ત તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાતથી) બંધનો પ્રસંગ આવે. મારે ન્યાયબગથી જ આ ફસિત થયું કે, જે ઉપયોગમાં રાગાદિકરણ (અર્થાત્ ઉપયોગમાં જે રાગાદિકનું કર્યું તે બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થ:—અહીં નિશ્ચયનય પ્રધાન કરીને કથન છે. ત્યાં નિર્ભય રહે

સાધ્ય થાય તે જ નિશ્ચય છે. બંધનું કારણ વિચારનાં નિર્બંધપણે એ જ સિદ્ધ થયું
—મિથ્યાદષ્ટિ પુરુષ જે રાગદ્વેષમોહભાવેને પાતાના ઉપયોગમાં કરે છે તે રાગાદિક જ
બંધનું કારણ છે. તે સિવાય બીજા—અહુ કર્મચોગ્ય પ્રદગતોથી બદેસો લોક, મન-
ચલન-કાયના યોગ, અનેક કરણો તથા ચેતન—અચેતનનો ઘાત—બંધનો કારણ નથી;
જે તેમનાથી બંધ થતો હોય તો સિદ્ધોને, યથાખ્યાત ચારિત્રવાગ્દાઓને, કેવળજ્ઞાનીઓને
અને સમિનિરૂપે પ્રવર્તનારા મુનિઓને બંધનો પ્રસંગ આવે છે. પરંતુ તેમને તો બંધ
થતો નથી. તેથી આ હેતુઓમાં (કારણોમાં) અસિચાર આવ્યો. મારે બંધનું કારણ
રાગાદિક જ ॥ એ નિશ્ચય છે.

અહીં સમિનિરૂપે પ્રવર્તનારા મુનિઓનું નામ લીધું અને અવિરત, દેશ-
વિરતનું નામ ન લીધું તેનું કારણ એ છે કે—અવિરત તથા દેશવિરતને બાહ્યસમિનિરૂપ
અજ્ઞાતિ નથી તેથી ચારિત્રમોહ સંબંધી રાગથી કિચિત્ બંધ થાય છે; મારે સર્વથા
બંધના અભાવની અપેક્ષામાં તેમનું નામ ન લીધું. બાકી અંતરંગની અપેક્ષાએ તો
તેઓ પણ નિર્બંધ જ જાણવા.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(૫મી)

ન કર્મવદુર્લ જગત્ત્વળનાત્મકાં કર્ય ત્વા
ન નૈકકરણાનિ વા ન વિદવિદ્યયો વંપરુત્ ।

યદૈવયમુપયોગભૂઃ સમુપયાતિ રાગાદિભિઃ

સ એવ કિલ્લ કેવલં ધ્રુવતિ વંપરેતુર્નુપામ્ ॥ ૧૬૪ ॥

અર્થ:—કર્મબંધ કરનારું કારણ, નથી બહુ કર્મચોગ્ય પ્રદગતોથી બદેસો લોક,
નથી ચલનસ્વરૂપ કર્મ (અર્થાત્ કાય-ચલન-મનની ક્રિયારૂપ યોગ), નથી અનેક
મકારનાં કરણો જે નથી ચેતન—અચેતનનો ઘાત. ‘ઉપયોગભૂ’ અર્થાત્ આ-મા રાગાદિક
સાધે જે એકીય પામે છે તે જ એક (—માત્ર રાગાદિક સાધે એકપણ પામતું ન જ—)
મરેખા પુરુષને બંધનું કારણ છે.

બાવાર્થ:—અહીં નિશ્ચયનયથી એક રાગાદિકને જ બંધનું કારણ કહ્યું
છે. ૨૩૭-૨૪૧.

સમ્બંધિ ઉપયોગમાં રાગાદિક કરતો નથી, ઉપયોગનો અને રાગાદિકનાં બા-
બી, રાગાદિકનાં સ્વામી થતો નથી, તેથી તને પૂર્વોક્ત કારણથી બંધ થતો નથી—
એમ હવે કહે છે:—

પ્રકારનાં કરેછો વડે તે જ સચિત્ત-અચિત્ત વસ્તુઓનો ઘાત કરેતો, કર્મરૂપી રજાથી બંધ નથી, કારણ કે તેને બંધનું કારણ જે રાગનો યોગ (-રાગમાં બેડાણ) તેનો અભાવ ।

બાવાર્થ:—સમ્યક્દષ્ટિને પૂર્વોક્તિ સર્વ સંબંધો હોવા છતાં પણ રાગના સંબંધનો અભાવ હોવાથી કર્મબંધ થતો નથી. આના સમર્થનમાં પૂર્વે કહેવાઈ ગયું

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાદ્ધર્મવિંદીકૃત)

લોકઃ કર્મ તતોઽસ્તુ સોઽસ્તુ ચ પરિસ્પન્દાત્મકં કર્મ તત્

તાન્યસ્મિન્કરણાનિ સંતુ ચિદચિદ્વ્યાપાદનં ચાસ્તુ તત્ ।

રાગાદીનુપયોગભૂમિમનયન્ જ્ઞાનં ભવન્કેવલં

વંધં નૈવ કુનોઽપ્યુપૈત્યયમહો સમ્યક્દગાત્મા ધ્રુવમ્ ॥ ૧૬૫ ॥

અર્થ:—માટે તે (પૂર્વોક્તિ) બહુ કર્મથી (કર્મચોખ્ખ પુણ્યોથી) ભરેલો લોક છે તે ભણે હો, તે મન-વચન-કાયાના અસનસ્વરૂપ કર્મ (અર્થાત્ યોગ) છે તે પણ ભણે હો, તે (પૂર્વોક્તિ) કરેછો પણ તેને ભણે હો અને જ્યેષ્ઠ-અજ્યેષ્ઠનો થાત પણ ભણે હો, પરંતુ અહો! આ સમ્યક્દષ્ટિ આત્મા, રાગાદિકને ઉપયોગભૂમિમાં તકિ સાવતો થકો, કેવળ (એક) જ્ઞાનરૂપ થતો-પરિણમતો થકો, કોઈ પણ કારણથી બંધને શોધસ નથી જ પામતો. (અહો! કેવો! આ સમ્યક્દર્શનનો અદ્ભુત અભિમા છે.)

બાવાર્થ:—અર્થો સમ્યક્દષ્ટિનું અદ્ભુત આહુત્ય કહ્યું છે અને લોક, રાગ, કર્મ, જ્યેષ્ઠ-અજ્યેષ્ઠનો થાત—એ બંધનાં કારણ નથી એમ કહ્યું છે. આથી એમન સમજનું કે પરંતુની દિસાથી બંધ કદો નથી માટે સ્વચ્છંદી થઈ દિસા રહી. અર્થો તો એમ આશય છે કે અશુદ્ધિપૂર્વક કદાચિત્ પરંતુપનો પણ શાંતિ થાય તે તેનાથી બંધ થતો નથી. પરંતુ જ્યાં શુદ્ધિપૂર્વક જવ, જ્યાં જ્યાં ઉપયોગમાં રાગાદિકનો સંભાવ આવશે એ જ્યાં જ્યાં જવને જિજ્ઞાસવનો અભિપ્રાય હોય ત્યાં જ નિશ્ચયનયમાં મિથ્યાત્વ કહ્યું છે તો મારવાનો ન. માટે કથનને નવવિભાગથી ત્રણ સમજી શકા તે તો મિથ્યાત્વ છે.

હવે ઉપરના બા

સ્તવવાને, કાવ્ય કહે છે:—

(૪૫૧)

તથાપિ ન નિર્મલં ચરિત્રમિપ્યતે જ્ઞાનિનાં
તદાયતનમેવ સા કિલ નિર્મલા ન્યાપૃતિઃ ।

અકામકૃતકર્મ તન્યતમકારણં જ્ઞાનિનાં

દ્વયં ન હિ વિરુદ્ધતે કિમુ કરોતિ જાનાતિ ચ ॥ ૧૬૬ ॥

અર્થ:—તથાપિ (અર્થાત્ લોક આદિ કારણથી બધ દહો નથી અને શાગદિકથી જ બધ દહો છે તોપણ) જ્ઞાનીઓને નિર્મલ (—અર્થાદ્યદિન, સ્વચ્છંકપણે) પ્રવર્તવું પામ્ય નથી કહ્યું; કારણ કે તે નિર્મલ પ્રવર્તન અરેખર બનેલું જ હોય છે. જ્ઞાનીઓને વાંછા વિના કર્મ (કાર્ય) હોય છે તે બધનું કારણ કહ્યું નથી, કેમકે બધે પણ છે અને (કર્મને) કરે પણ છે—એ બધે ક્રિયા શું વિરોધાય નથી? (કરવું અને બળવું નિશ્ચયથી વિરોધાય જ છે.)

સાચાર્થ:—પહેલા કાવ્યમાં લોક આદિને બધનાં કારણ ન હતાં ત્યાં એમ ન સમજવું કે આદ્યબ્યવહારપ્રવૃત્તિને બધનાં કારણમાં સર્વથા જ નિવેધી છે; આદ્યબ્યવહારપ્રવૃત્તિ શાગદિ પરિણામે—બધના કારણ—નેનિમિત્તબળ છે, તે નિમિત્તબળના આદી નિવેધ ન સમજવો. જ્ઞાનીઓને અનુદિપ્તક—વાંછા વિના—પ્રવૃત્તિ થાય છે તેથી બધ દહો નથી, તેમને કાંઈ સ્વચ્છંદ પ્રવર્તવાનું કહ્યું નથી; કારણ કે અર્થાદ્યદિન (અર્થશ વિના) પ્રવર્તવું તે તો બધનું જ હોય છે. બળવામાં અને કરવામાં તો પરસ્પર વિરોધ છે; જ્ઞાના સ્તરે તો બધ નહિ થાય, કર્મ થયે તો અવરથ બધ થયે.

“એ બધે છે તે કરતો નથી અને એ કરે છે તે બળતો નથી; કરવું તે તો કરતો શકે છે, શકે છે તે અજ્ઞાન છે અને અજ્ઞાન છે તે બધનું કારણ છે.” આવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(વક્તવિયમ)

જાનાતિ યઃ સ ન કરોતિ કરોતિ યત્ન

જાનામ્યયં ન સ્વતુ તત્કિમ કર્મરાગઃ ।

રાગે સ્વર્ણમયમધ્યસ્થાપમાદુ-

ચિંધ્યાદત્તઃ સ નિપતે સ ય વંધેનુઃ ॥ ૧૬૭ ॥

અર્થ:—એ બધે છે તે કરતો નથી અને એ કરે છે તે બળતો નથી.

કરતું તે તો પરેખર કર્મરાગ છે અને રાગને (બુનિયોએ) અજ્ઞાનમય મન કહ્યો છે; તે (અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય) નિયમથી મિથ્યાદષ્ટિને હોય છે અને કારણ છે. ૨૪૨—૨૪૬.

હવે મિથ્યાદષ્ટિના આરાયને ગાથામાં સ્પષ્ટ રીતે કહે છે—

જો મળ્યાદિ હિંસામિ ય હિંસિજ્ઞામિ ય પરેહિ સંતેહિ ।
સો મૃદો અળ્લાણી ણાણી એતો દુ વિવરીદો ॥ ૨૪૭ ॥

યો મન્યમે દિનસ્મિ ન દિસ્યે ન પરીઃ સત્તૈઃ

મ મૃદોઽજ્ઞાની જ્ઞાન્યતસ્તુ વિપરીતઃ ॥ ૨૪૭ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યઃ] એ [મન્યતે] એમ માને છે કે [દિનસ્મિ ય] હવેને મારું જુ' (-હજુ' જુ') [પરીઃ સત્તૈઃ હિસ્યેષ્ઠ] અને પર હવેને મારું [જ્ઞઃ] તે [મૃદઃ] મૃદુ (-મોહી) છે, [અજ્ઞાની] અજ્ઞાની છે, [દુ] અને [વિવરીતઃ] આનાથી વિપરીત (અર્થાત્ આજુ' નથી માનતો) તે [જ્ઞાની] જ્ઞાની છે.

ટીકા:—પરહવેને હું હજુ' જુ' અને પરહવે મને જમાય મુજબને (-નિશિતપણે, નિયમથી) અજ્ઞાન છે. તે અજ્ઞાનીપણને કારણે મિથ્યાદષ્ટિ છે; અને જેને તે અધ્યવસાય હિંસામિ અજ્ઞાન છે.

આજ્ઞસ્વયેણ મરણં જીવાણં જિજ્ઞવેરેહિં પ્ણતં ।
 આઽં ણ હરેસિ તુમં કહ તે મરણં કયં તેસિ ॥ ૨૪૮ ॥
 આજ્ઞસ્વયેણ મરણં જીવાણં જિજ્ઞવેરેહિં પ્ણતં ।
 આઽં ણ હરંતિ તુહં કહ તે મરણં કયં તેહિ ॥ ૨૪૯ ॥

આયુઃક્ષયેણ મરણં જીવાનાં જિજ્ઞવૈરૈઃ પ્રશ્નમ્ ।
 આયુર્ન હરમિ ત્વં કયં ત્વયા મરણં કૃતં નેપામ્ ॥ ૨૪૮ ॥
 આયુઃક્ષયેણ મરણં જીવાનાં જિજ્ઞવૈરૈઃ પ્રશ્નમ્ ।
 આયુર્ન હરંતિ ત્વ કયં ને મરણં કૃતં નૈઃ ॥ ૨૪૯ ॥

અન્યથાર્થઃ—(હે ભાઈ! ‘હું પર જીવેને મારું કયું’ એમ લેવું માને છે, તે તારું અજ્ઞાન છે.) [જીવાનાં] જીવોનું [મરણ] મરણ [આયુઃક્ષયેણ] આયુઃક્ષયના ક્ષયથી થાય છે એમ [જિજ્ઞવૈરૈઃ] જિજ્ઞવૈરોએ [પ્રશ્ન] કર્યું છે; [ત્વં] તું [ત્વયા] ત્વ [ત્વયા] તો તે [તેણે મરણ] પર જીવોનું આયુઃક્ષય તો [ન હરતિ] હરતો નથી, [ત્વયા] તો તે [તેણે મરણ] તેમનું મરણ [કયં] કય રીતે [કૃતં] કર્યું?

(હે ભાઈ! ‘પર જીવે અને મારે છે’ એમ લેવું માને છે, તે તારું અજ્ઞાન એમ [જિજ્ઞવૈરૈઃ] જિજ્ઞવૈરોએ [પ્રશ્ન] કર્યું છે; પર જીવે [ત્વ આયુઃ] તારું આયુઃ-ક્ષય રીતે [કૃતં] કર્યું?

ટીકા—પ્રથમ તો, જીવેને મરણ ખરેખર સ્વ-આયુઃક્ષયના (પાત્રના આયુઃ-ક્ષયથી જ થાય છે, કારણ કે સ્વ-આયુઃક્ષયના ક્ષયના અભાવમાં (અર્થાત્ આયુઃક્ષયના ક્ષય ન હોય તો) મરણ કરાવું (-યત્) અસાધ્ય છે; વળી સ્વ-પીત્રથી પીત્રનું હરી શકાય નથી, કારણ કે તે (પાત્રનું આયુઃક્ષય)

આયુઃક્ષયથી મરણ જીવનું એમ જિજ્ઞવૈરે કર્યું. = ૮૮.
 આયુ નો હરતો નથી, તે મરણ જીવનું એમ જિજ્ઞવૈરે કર્યું. = ૮૯.
 આયુક્ષયથી મરણ જીવનું એમ જિજ્ઞવૈરે કર્યું.
 આયુ તુજ હરતો નથી, નો મરણ જીવનું એમ જિજ્ઞવૈરે કર્યું. = ૯૦.

પોતાના ઉપભોગથી જ ક્ષય પામે છે; મારે કેઈ પણ રીતે બીજે બીજાનું મરણ કરી શકે નહિ. તેથી 'હું' પરછવેને મારું હું' અને પરછવો મને મારે છે' એવો અધ્યક્ષ મુવપણે (-નિશ્ચિતપણે) અજ્ઞાન છે.

સાવાર્થ:—છવની જે માન્યતા હોય તે માન્યતા પ્રમાણે જગતમાં બધું ન હોય, તો તે માન્યતા અજ્ઞાન છે. પોતાથી પરનું મરણ કરી શકાતું નથી અને પર પોતાનું મરણ કરી શકાતું નથી, છતાં આ પ્રાણી વૃથા એવું માને છે તે અજ્ઞાન કે આ કથન નિશ્ચયનયની પ્રધાનતાથી છે.

વ્યવહાર આ પ્રમાણે છે:—પરસ્પર નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવથી પર્યાપિના ઉપવ્યય થાય તેને જન્મ-મરણ કહેવામાં આવે છે; ત્યાં જેના નિમિત્તથી મરણ (-પર્યાપિ વ્યય) થાય તેના વિષે એમ કહેવામાં આવે છે કે “આણે આને માર્યા,” કે વ્યવહાર છે.

અહીં એમ ન સમજવું કે વ્યવહારનો સર્વથા નિષેધ છે. જેઓ નિષેધ નથી જાણતા, તેમનું અજ્ઞાન મટાડવા અહીં કથન કર્યું છે. તે જાણ્યા પછી એ અવિરોધપણે જાણી યથાચોખ્ખ નયો માનવા. ૨૪૮—૨૪૯.

ફરી પૂછે કે “(મરણનો અધ્યવસાય અજ્ઞાન છે એમ કહ્યું તે બધું હવે) મરણના અધ્યવસાયનો પ્રતિપક્ષી જે છવનનો અધ્યવસાય તેની શી હિંમત છે?” તેના ઉત્તર કહે છે:—

જો મળ્લદિ જીવેમિ ય જીવિજ્ઞામિ ય પરેહિ સંતેહિ ।

મો મૃતો અળ્લાણી જાણી ગત્તો દુ વિવરીદો ॥ ૨૫૦ ॥

જો મરણને જીવવામિ ન જીવ્યે ન પરે: સર્વે: ।

મ મરોઃકાર્ત્તી જ્ઞાનવત્ત્વ વિવરીત: ॥ ૨૫૦ ॥

અન્વયાર્થ:—[ય:] જે છવ [મરણને] એમ માને છે કે [જીવવામિ].

પર છવેને જિવાડું જું [જ] અને [પરે: સર્વે:] પર છવો [જીવે] ન જિવાડું છે, [મ:] ને [મૃત:] મર (મારી) છે, [જ્ઞાતી] અજ્ઞાતી છે, [51] [મત: વિવરીત] આનાથી વિવરીત (અર્થાત્ જે આત્મ નથી માનતો, આત્મ દેહકદું મને છે) ને [જ્ઞાતી] જ્ઞાતી છે.

જે માનતો—જે જિવાડું ને પર છવ જિવાડું મુજને,

ને મર છે, અજ્ઞાતી છે, વિવરીત અર્થી જ્ઞાતી છે. ૨૫૦.

લીલા:—‘પરંતપોને છું’ જિજ્ઞાસું છું અને પરંતપો અને જિજ્ઞાસું છું’ એવો અપરમાય રૂપવર્ત્ત (અર્થ-વર્ત્ત દીક્ષા) અજ્ઞાન છે. તે અપરમાય જેને છે તે અપરમાણીપણને લીધે અિચારણ છે; અને જેને તે અપરમાય નથી તે અપરમાણીપણને લીધે સમ્યક્ષણ છે.

આચાર્ય:—‘પરં અને જિજ્ઞાસું છું અને તું’ પરંતપો જિજ્ઞાસું છું’ એમ માનવું તે અજ્ઞાન છે. જેને એ અજ્ઞાન છે તે અિચારણ છે; જેને એ અજ્ઞાન નથી તે સમ્યક્ષણ છે. ૨૫૦.

હવે ૧૭ છે કે આ (અવનના) અપરમાય અજ્ઞાન કઈ રીતે છે? તેના ઉત્તર કો છે:—

આહરણે જીવદિ જીવો ઈવં મળંતિ મચ્ચણ્ડ ।

આહં ચ ણ દેસિ તુમં કાં તણ જીવિયં કયં તેમિ ॥ ૨૫૧ ॥

આહરણે જીવદિ જીવો ઈવં મળંતિ મચ્ચણ્ડ ।

આહં ચ ણ દિતિ તુમં કાં ણુ તે જીવિયં કયં તેહિ ॥ ૨૫૨ ॥

આહરણે જીવદિ જીવ ઈવં મળંતિ મચ્ચણ્ડ ।

આહમ ન દદામિ ત્વં કયં ત્વચા જીવિત કૃત મેષામ્ ॥ ૨૫૧ ॥

આહરણે જીવદિ જીવ ઈવં મળંતિ મચ્ચણ્ડ ।

આહમ ન દદતિ મય કયં નુ તે જીવિત કૃત મેઃ ॥ ૨૫૨ ॥

અર્થ-અર્થ:—[જીવ:] અહ [આહરણે] આહરણના ઉદયથી [જીવતિ] એવે છે [ઈવં] એમ [મળંતિ] સર્વજ્ઞોએ [મળંતિ] કહે છે; [ત્વં] તું [આહમ] હું [પરંતપો] આહરણ તો [ન દદાતિ] દેતો નથી [ત્વચા] તો (હે આહમ!) તે [તેમં જીવિત] તેમનું જીવિત (અવન) [કયં કૃત] કઈ રીતે કર્યું?

છે આહરણે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,

તું આહમ તો દેતો નથી, તે જીવન એમ તેનું કર્યું? ૨૫૧.

છે આહરણે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,

તે આહમ તુમ દેતો નથી, તો જીવન એમ તારું કર્યું? ૨૫૨.

[જોવા] એવ [આયુરુદ્ધેન] આયુર્કર્મના ઉદયથી [જાંવતિ] છે [જ્યં] એમ [સર્વજ્ઞાઃ] સર્વજ્ઞિવો [મર્ણંતિ] કહે છે; પરંતુ [તત્ર] તત્તે [જ] આયુર્કર્મ તો [ન વ્યતિ] દેતા નથી [તૈઃ] તો (હે ભાઈ !) તેમણે [તત્તં] તારું અવિત [કથં નુ કુતં] કઈ રીતે કર્યું ?

ટીકા:—પ્રથમ તો, જ્યોતે અવિત ખરેખર પાતાના આયુર્કર્મના છે, કારણ કે પાતાના આયુર્કર્મના ઉદયના અભાવમાં અવિત કશું (-યતું) છે; વળી પાતાનું આયુર્કર્મ બીજાથી બીજાને કઈ શકાતું નથી, કારણ કે તે (પોતાના આયુર્કર્મ) પાતાના પરિણામથી જ ઉપાર્જિત થાય છે (-મેળવાય છે); મારે કહે રીતે બીજાને બીજાનું અવિત કરી શકે નહિ. તેથી ' હું' પરને જિવાડું છું' અને અને જિવાડે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે (નિયતપણે) અજ્ઞાન છે.

ભાવાર્થ:—પૂર્વે મરણના અધ્યવસાય વિષે કહ્યું હતું તે પ્રમાણે અહીં ભણ્યું. ૨૫૧-૨૫૨.

દુઃખ-મુખ કરવાના અધ્યવસાયની પણ આ જ ગતિ છે એમ હવે કહે

જો અપ્પણા દુ મણ્ણદિ દુક્ખિદસુહિદે કરેમિ સંતંતિ ।
સો મૂહો અણ્ણાણી ણાણી एतो દુ વિવરીદો ॥ ૨૫૩ ॥

ય આત્મના નુ મન્યતે દુઃખિતમુખિતાન કરોમિ મરવાનિતિ ।

મ મૂઢાંજ્ઞાની જ્ઞાન્યતમ્નુ વિપરીતઃ ॥ ૨૫૩ ॥

અન્વયાર્થ:—[યઃ] જે [જિતિ મન્યતે] એમ માને છે કે [આત્મના નુ] મારા પાતાથી [સત્તવાન] હું (૫૨) જ્યોતે [દુઃખિતમુખિતાન] દુઃખી-મુખી [કરોમિ] કરું છું, [સઃ] તે [મૂઢઃ] મૂઢ (-મોહી) છે, [અજ્ઞાની] અજ્ઞાની છે, [ઇ] [અતઃ વિપરીતઃ] આનાથી વિપરીત તે [જ્ઞાનો] જ્ઞાની છે.

ટીકા:—' પરંતુ જ્યોતે હું' દુઃખી તથા મુખી કરું છું' અને પરંતુ જ્યોતે અને તથા મુખી કરે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે અજ્ઞાન છે. તે અધ્યવસાય જેને એવ અજ્ઞાનીપણાને કીધે બિધ્યાદષ્ટિ છે; અને જેને તે અધ્યવસાય નથી તે જ્ઞાનીપણાને કીધે સમ્યદષ્ટિ છે.

જે માનના—મુજથી દુઃખીમુખી હું કરું પરંતુ જ્યોતે, ન મૂઢ છે, અજ્ઞાની છે, વિપરીત એથી જ્ઞાની છે. ૨૫૩.

ભાવાર્થ:—‘હું’ પરજીવેને સુખી-દુઃખી કહું છું અને પરજીવે અને સુ
દુઃખી કરે છે’ એમ માનવું તે અજ્ઞાન છે. જેને એ અજ્ઞાન છે તે મિથ્યાદષ્ટિ છે;
એ અજ્ઞાન નથી તે જ્ઞાની છે—સમ્યક્દષ્ટિ છે. ૨૫૩.

હવે પૂછે છે કે આ અધ્યવસાય અજ્ઞાન કઈ રીતે છે? તેના ઉત્તર કહે છે:—

કમ્મોદણ જીવા દુક્ખિવદસુહિદા હવંતિ જદિ સવ્વે ।
કમ્મં ચ ણ દેસિ તુમં દુક્ખિવદસુહિદા કહં કયા તે ॥ ૨૫૪ ॥

કમ્મોદણ જીવા દુક્ખિવદસુહિદા હવંતિ જદિ સવ્વે ।
કમ્મં ચ ણ દિત્તિ તુહં કદોસિ કહં દુક્ખિવદો તેહિં ॥ ૨૫૫ ॥

કમ્મોદણ જીવા દુક્ખિવદસુહિદા હવંતિ જદિ સવ્વે ।
કમ્મં ચ ણ દિત્તિ તુહં કહ તં સુહિદો કદો તેહિં ॥ ૨૫૬ ॥

કમ્મોદયેન જીવા દુઃગ્વિતગુગ્વિતા ભવંતિ યદિ સર્વે ।
કર્મં ચ ન દદાસિ ત્વં દુઃગ્વિતગુગ્વિતાઃ કથં કૃતાસ્મે ॥ ૨૫૭ ॥

કમ્મોદયેન જીવા દુઃગ્વિતગુગ્વિતા ભવંતિ યદિ સર્વે ।
કર્મં ચ ન દદાસિ ત્વ કૃતોઽસિ કથં દુઃગ્વિતસ્ત્રીઃ ॥ ૨૫૮ ॥

કમ્મોદયેન જીવા દુઃગ્વિતગુગ્વિતા ભવંતિ યદિ સર્વે ।
કર્મં ચ ન દદાસિ ત્વ કથં ત્વં ગુગ્વિતઃ કૃતર્મ્મઃ ॥ ૨૫૯ ॥

અન્યથાર્થ:—[યદિ] એ [સર્વે જીવાઃ] સર્વ જીવે [કમ્મોદયેન] કર્મના
થી [દુઃગ્વિતગુગ્વિતાઃ] દુઃખી-સુખી [મયંતિ] થાય છે, [ચ] અને [ત્વં] તું
[તેમને] કર્મ તો [ન દદાસિ] દેતો નથી, તો (હે ભાઈ!) તે [તે] તેમને

જ્યાં કર્મ ઉદયે જીવ સર્વ દુઃખિન નેમ સુખી થતા.
તું કર્મ તો દેતો નથી. તે કેમ દુઃખિન-સુખી કર્યા? ૨૫૮.

જ્યાં કર્મ ઉદયે જીવ સર્વ દુઃખિન નેમ સુખી થને.
કર્મ તુજ દેતા નથી, તો દુઃખિન કેમ કર્યા નને? ૨૫૯.

જ્યાં કર્મ ઉદયે જીવ સર્વ દુઃખિન નેમ સુખી થને.
કર્મ તુજ દેતા નથી, તો દુઃખિન કેમ કર્યા તને? ૨૬૦.

[દુઃખિતસુખિતા:] દુઃખી-સુખી [કયં કૃતાં:] કઈ રીતે કર્યા?

[યદિ] બે [સર્વે જીવા:] સર્વે જીવો [કર્મોદયેન] કર્મના દ્વારા
[દુઃખિતસુખિતા:] દુઃખી-સુખી [મવંતિ] થાય છે, [ચ] અને તેઓ [ત્રા-]
[કર્મ] કર્મ તો [ન દદતિ] દેતા નથી, તો (હે ભાઈ!) [તૈઃ] તેમણે [કુ-]
તને દુઃખી [કયં કૃતાં: અસિ] કઈ રીતે કર્યા?

[યદિ] બે [સર્વે જીવા:] સર્વે જીવો [કર્મોદયેન] કર્મના દ્વારા
[દુઃખિતસુખિતા:] દુઃખી-સુખી [મવંતિ] થાય છે, [ચ] અને તેઓ [ત્રા-]
[કર્મ] કર્મ તો [ન દદતિ] દેતા નથી, તો (હે ભાઈ!) [તૈઃ] તેમણે [તૈઃ]
[સુખિતા:] સુખી [કયં કૃતાં:] કઈ રીતે કર્યા?

ટીકા:—પ્રથમ તો, જીવોને સુખ-દુઃખ ખરેખર પાતાના કર્મના ઉદય-
થાય છે, કારણ કે પાતાના કર્મના ઉદયના અભાવમાં સુખ-દુઃખ થવાં અશક્ય
વળી પાતાનું કર્મ બીજાથી બીજાને કઈ સકાતું નથી, કારણ કે તે (પાતાનું) કર્મ
પાતાના પરિણામથી જ ઉપાર્જિત થાય છે; માટે કોઈ પણ રીતે બીજો બીજાને
દુઃખ કરી શકે નહિ. તેથી ‘દુઃ પરજીવોને સુખી-દુઃખી કરું છું’ અને પરજીવો
સુખી-દુઃખી કરે છે’ એવો અધ્યયસાય મુવપણે અજ્ઞાન છે.

ભાવાર્થ:—જીવો જીવો આશય હોય તે આશય પ્રમાણે જગતમાં
જનનાં ન હોય તો તે આશય અજ્ઞાન છે. માટે, સર્વ જીવો પાતપાતાના કર્મના દ્વારા
સુખી દુઃખી થાય છે ત્યાં એમ માનવું કે ‘હું પરને સુખી-દુઃખી કરું છું’ અને પર
સુખી દુઃખી કરે છે,’ તે અજ્ઞાન છે. નિમિત્તનિમિત્તિભાવના આશયે (મિત્તને)
સુખી અને કરનાર કરેલો તે વ્યવહાર છે; તે નિશ્ચયની દૃષ્ટિમાં ગૌણ છે.

હવે આ અર્થનું કાવ્યરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતનિવસા)

ગર્વં ગર્દેવ નિયતં ધવતિ સ્વસ્તીવ-

કર્મોદયાન્મરણજીરિતદુઃખગૌલ્ભયમ્ ।

મત્રાનમેતદિદં ગતુ વરઃ વરસ્ય

કુર્મોદયાન્મરણજીરિતદુઃખગૌલ્ભયમ્ ॥ ૧૬૮ ॥

અર્થ:—આ જનનનાં જીવન મનુષ્ય, સ્ત્રી, દુઃખ, સુખ—ગૌલ્ભય
સ્વસ્તી (સ્વસ્ત) પાતાના કર્મના ઉદયથી થાય છે; બીજો પૂરું બીજાને
દુઃખ, દુઃખ કે કંઈ આનંદ માનવું તે તો અજ્ઞાન છે.

ટીકા:—આ જ અર્થને ૧૬ કવચ અને આનંદના કથનની મધ્યમાં
૬૫ શ્લોકો છે:—

(તત્ત્વનિવચન)

મહાનમેતદ્વિગમ્ય પરાપરામ્ય
સત્યંતિ યે મરણમીચિત્તદુઃસ્વગૌભ્યમ્ ।
કર્માન્વર્તનિરતેન વિચીર્યન્તે
મિથ્યાદમો નિપતતામ્વરતો મરંતિ ॥ ૧૬૧ ॥

અર્થ:—આ (૫૧) સ્તોત્રી આચાર્ય (૧) અજ્ઞાનને પામીને જે પુરુષો પદનાં મરણ, દુઃખ, દુઃખ, શુભ રહે છે અર્થાત્ ખાને છે, તે પુરુષો—જે જેઓ દીને અદ્વૈતાનુસારી હતાં હરવાના હતાં છે (અર્થાત્ 'દુઃ' આ કર્મને કરું છું) જેઓ અદ્વૈતાનુસારી રસથી જેઓ કર્મ હરવાની—આરવા-વિવાદવાની, શુભી-દુઃખી હરવાની—પાંડા હરવાના છે) તેઓ—નિષકર્મથી મિથ્યાદિ છે, પાતાના આત્માનો ધાગ હરવાના છે.

આવાર્થ:—જેઓ પદને આરવા-વિવાદવાનો તથા શુભ-દુઃખ હરવાનો અભિ-માય હરે છે તેઓ મિથ્યાદિ છે. તેઓ પાતાના રસપથી શુભ થયા થયા રાગી, દ્વેષી, માણી થઈને પાતાથી જ પાતાનો ધાગ હરે છે, તેથી દિશ્વ છે. ૨૫૪-૨૫૬.

હવે આ અર્થને આપણાશ હવે છે:—
જો મરહ જો ય દુહિદો જાયદિ કમ્મોદયેણ મો મવ્વો ।
તદ્વા દુ મારિદો દે દુહાવિદો ચેદિ ણ હુ મિચ્છા ॥ ૨૫૭ ॥
જો ણ મરદિ ણ ય દુહિદો મોવિ ય કમ્મોદયેણ ચેવ સ્વહુ ।
તદ્વા ણ મારિદો ણો દુહાવિદો ચેદિ ણ હુ મિચ્છા ॥ ૨૫૮ ॥
યો પ્રિયતે પથ દુઃગિતો જાયતે કર્મોદયેન મ મર્વઃ ।
તમ્માણુ મારિતસ્સે દુઃગિતથેતિ ન સ્વહુ મિથ્યા ॥ ૨૫૭ ॥
યો ન પ્રિયતે ન ચ દુઃગિતઃ સોઽપિ ચ કર્મોદયેન ચેવ સ્વહુ ।
તમ્માણુ મારિતો નો દુઃગિતથેતિ ન સ્વહુ મિથ્યા ॥ ૨૫૮ ॥

મરેના અને જે દુઃખી થતો—સાં કર્મના ઉદયે અને, તેથી 'દુઃખે મે', દુઃખી કર્યા'—પુજ મળ શું નહિ મિથ્યા ખરે? ૨૫૭.
વળી નવ મરે, નવ દુઃખી અને, તે કર્મના ઉદયે ખરે, મેં નવ દુઃખે, નવ દુઃખી કર્યા'—પુજ મળ શું નહિ મિથ્યા ખરે? ૨૫૮.

અન્વયાર્થઃ—[યઃ ક્રિયતે] જે મરે છે [ચ યઃ દુઃખિતઃ જાયતે] અને દુઃખી થાય છે [સઃ સર્વઃ] તે સૌ [કર્મોદયેન] કર્મના ઉદયથી થાય છે; [તુ] તેથી [મારિતઃ ચ દુઃખિતઃ] ‘મેં માર્યો, મેં દુઃખી કર્યો’ [ઈતિ] તારે અભિપ્રાય [ન કલુ મિથ્યા] શું ખરેખર મિથ્યા નથી?

[ચં] વળી [યઃ ન ક્રિયતે] જે નથી મરતો [ચ ન દુઃખિતઃ] અને દુઃખી થતો [સઃ અપિ] તે પણ [કલુ] ખરેખર [કર્મોદયેન ચ યત્] ઉદયથી જ થાય છે; [તસ્માત્] તેથી [ન મારિતઃ ચ ન દુઃખિતઃ] ‘મેં ન માર્યો, મેં ન દુઃખી કર્યો’ [ઈતિ] એવો તારે અભિપ્રાય [ન કલુ મિથ્યા] શું મિથ્યા નથી?

ટીકાઃ—જે મરે છે અથવા જીવે છે, દુઃખી થાય છે અથવા સુખી થાય તે ખરેખર પોતાના કર્મના ઉદયથી જ થાય છે, કારણ કે પોતાના કર્મના અભાવમાં તેણે તે પ્રભાણે થવું (અર્થાત્ મરવું, જીવવું, દુઃખી થવું કે સુખી થવું) અશક્ય છે. માટે ‘મેં આને માર્યો, આને જિવાડ્યો, આને દુઃખી કર્યો, આને સુખી કર્યો’ એવું કહેનાર અર્થાત્ માનનાર મિથ્યાદષ્ટિ છે.

ભાવાર્થઃ—કોઈ કોઈનું માર્યું મરવું નથી, જિવાડવું જીવવું નથી, દુઃખી કર્યું સુખી-દુઃખી થવું નથી; તેથી જે મારવા, જિવાડવા આદિનો અર્થ કરે તે તો મિથ્યાદષ્ટિ જ હોય—એમ નિશ્ચયનું વચન છે. અહીં વ્યવહારનું માન

હવે આગળના કથનની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુક્રુપ)

મિથ્યાદષ્ટેઃ સ પ્વાસ્ય વંધહેતુર્વિપર્યયાત્ ।

ય પ્વાધ્યવસાયોડયમજ્ઞાનાત્માડસ્ય દૃશ્યતે ॥ ૧૭૦ ॥

અર્થઃ—મિથ્યાદષ્ટિને જે આ અજ્ઞાનસ્વરૂપ અધ્યવસાય લેવામાં આવે તે અધ્યવસાય જ, વિપર્યયસ્વરૂપ (વિપરીત, મિથ્યા) હોવાથી, તે મિથ્યાદષ્ટિ બનેનું કારણ છે.

ભાવાર્થઃ—મૂઠો અભિપ્રાય તે જ મિથ્યાત્વ, તે જ બંધનું કારણ—અનુક્રુ. ૨૪૭—૨૪૮.

• જે પદ્ધતિ મિથ્યા અભિપ્રાય સદિન દેવ (સ્વપરના એકત્વના અભિપ્રાય સદિન દેવ) અથવા તે જ સદિન દેવ તે પદ્ધતિ મારે અધ્યવસાય સજ્જ વપરાય છે. (મિથ્યા) નિષેધ, (મિથ્યા) નિષેધ—એવા અર્થમાં જનુ તે સજ્જ વપરાય છે.

હવે, આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ અર્થનું કારણ છે એમ માધામાં કહે છે:—

एसा दु जा मई दे दुक्खिदमुहिंदे करेमि सत्तेति ।

एसा दे मूढमई मुहामुहं वंधए कम्मं ॥ २५९ ॥

एषा तु या मतिस्ते दुःखितमुत्तितान् करोमि सत्त्वानिति ।

एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं कप्नानि कर्म ॥ २५९ ॥

અન્યવાર્થ:—[તે] તારી [ઇષા યા મતિઃ તુ] જે આ બુદ્ધિ છે કે હું [સત્ત્વાદ] હવેને [દુઃખિતમુત્તિતાન્] દુઃખી-શુખી [કરોમિ સત્ત્વ] કરું છું, [ઇષા તે મૂઢમતિઃ] તે આ તારી મૂઢ બુદ્ધિ જ (મોહસ્વરૂપ બુદ્ધિ જ) [શુભાશુભં કર્મ] શુભાશુભ કર્મને [કપ્નનિ] બાંધે છે.

ટીકા:—‘પરંહવેને હું હવું છું, નથી હણતો, દુઃખી કરું છું, શુખી કરું છું’ એવો જે આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય મિથ્યાદષ્ટિને છે, તે જ (અર્થાત્ તે અધ્યવસાય જ) પાને શગાદિરૂપ હોવાથી તેને (નિમિત્તાદષ્ટિને) શુભાશુભ અર્થનું કારણ છે.

બાવાર્થ:—મિથ્યા અધ્યવસાય અર્થનું કારણ છે. ૨૫૯.

હવે, અધ્યવસાયને અર્થના કારણ તરીકે બરાબર નક્કી કરે છે—કહે છે (અર્થાત્ મિથ્યા અધ્યવસાય જ અર્થનું કારણ ॥ એમ નિયમથી કહે છે):—

दुक्खिदमुहिंदे सत्ते करेमि जं एवमज्जवसिदं ते ।

तं पावबंधगं वा पुण्णस्म व वंधगं होदि ॥ २६० ॥

मारेमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्जवमिदं ते ।

तं पावबंधगं वा पुण्णस्म व वंधगं होदि ॥ २६१ ॥

આ બુદ્ધિ જે તુજ—‘દુઃખિત તેમ શુખી કરું છું હવેને,’ તે મૂઢ મતિ તારી અરે! શુભ અશુભ બાંધે કર્મને. ૨૫૯.

કરેનો તું અધ્યવસાન—‘દુઃખિત-શુખી કરું છું હવેને,’ તે પાપનું અર્થક અગર નો પુણ્યનું અર્થક બને. ૨૬૦.

કરેનો તું અધ્યવસાન—‘મારું જિવારું છું પરં હવેને,’ તે પાપનું અર્થક અગર નો પુણ્યનું અર્થક બને. ૨૬૧.

દુઃખિતસુખિતાન્ સત્ત્વાન્ કરોમિ યદેવમધ્યવસિતં તે ।
 તત્પાપવંધકં વા પુણ્યસ્ય વા વંધકં ભવતિ ॥ ૨૬૦ ॥
 મારયामિ જીવયામિ વા સત્ત્વાન્ યદેવમધ્યવસિતં તે ।
 તત્પાપવંધકં વા પુણ્યસ્ય વા વંધકં ભવતિ ॥ ૨૬૧ ॥

અન્યથાર્થ:—‘[સત્ત્વાન્] હું જીવોને [દુઃખિતસુખિતાન્] દુઃખી-સુખી
 [કરોમિ] કરું છું’ [एवं] આપું [यद् ते अध्यवसितं] જે તારું અધ્યવસાન, [तद्] તે જ [पापवंधकं वा] પાપનું બંધક [पुण्यस्य वंधकं वा] અથવા પુણ્યનું બંધક [भवति] થાય છે.

‘[સત્ત્વાન્] હું જીવોને [મારયામિ વા જીવયામિ] મારું છું અને જીવું છું’ [एवं] આપું [यद् ते अध्यवसितं] જે તારું અધ્યવસાન, [तद्] તે જ [पापवंधकं वा] પાપનું બંધક [पुण्यस्य वंधकं वा] અથવા પુણ્યનું બંધક [भवति] થાય છે.

ટીકા:—મિથ્યાદૃષ્ટિને જે આ અજ્ઞાનથી જન્મતો રાગમય અધ્યવસાય જે જ બંધનું કારણ છે એમ બરાબર નક્કી કરવું. અને પુણ્ય-પાપપણે (પુણ્ય-પાપ બંધનું બે-પણું હોવાથી બંધના કારણનો ભેદ ન શોધવો (અર્થાત્ એમ ન માનવું કે પુણ્યબંધનું કારણ બીજું છે અને પાપબંધનું કારણ કોઈ બીજું છે); કારણ કે જે આ અધ્યવસાય ‘દુઃખી કરું છું, મારું છું’ એમ અને ‘સુખી કરું છું, જીવું છું’ એમ બે પ્રકારે શુભ-અશુભ અહંકારરસથી ભરેલાપણા વડે પુણ્ય અને પાપ બંનેના બંધનું કારણ હોવામાં અવિરોધ છે (અર્થાત્ એક જ અધ્યવસાયથી અને પાપ—બંનેનો બંધ થવામાં કોઈ વિરોધ નથી).

ભાવાર્થ:—આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ બંધનું કારણ છે. તેમાં, ‘જીવું છું, સુખી કરું છું’ એવા શુભ અહંકારથી ભરેલો તે શુભ અધ્યવસાય અને ‘મારું છું, દુઃખી કરું છું’ એવા અશુભ અહંકારથી ભરેલો તે અશુભ અધ્યવસાય અહંકારરૂપ મિથ્યાભાવ તો બંનેમાં છે; તેથી અજ્ઞાનમયપણે બંને અધ્યવસાય જ છે. મારે એમ ન માનવું કે પુણ્યનું કારણ બીજું છે અને પાપનું કારણ બીજું. અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ બંનેનું કારણ છે. ૨૬૦—૨૬૧

‘આ રીતે બરાબર દિસાનો અધ્યવસાય જ દિસા છે એમ કહિતું છે એમ હવે કહે છે:—

* જે પશુનું નિષ્ઠા અભિપ્રાય સદિન દોષ (અવરના એકવના અભિપ્રાય સદિન એ અવર. રીત નિક દોષ તે પશુનું મારે અધ્યવસાન સબ વપરાય છે. (મિથ્યા) નિષ્ઠા (નિષ્ઠા) અભિપ્રાય કહે:—એવા અર્થમાં પણ તે સબ વપરાય છે.

અજ્ઞવસિદ્ધેણ વંધો મતં મારેઽ મા વ મારેઽ ।

एसो वंधसमासो जीवाणं निन्दयणयस्य ॥ २६२ ॥

મધ્યવસિતેન વંધઃ મધ્યાન્ મારયતુ મા વા મારયતુ ।

एष वंधसमासो जीवानां निन्दयणयस्य ॥ २६२ ॥

અન્યથાર્થઃ—[સત્યાન્] જીવોને [મારયતુ] મારે [મા મા મારયતુ]

અથવા ન મારે—[વંધઃ] કર્મબંધ [મારયવસિતેન] અધ્યવસાનથી જ થાય છે. [ઇષઃ] આ, [નિન્દયણયસ્ય] નિન્દયનથી, [જીવાનાં] જીવોના [વંધસમાસઃ] બંધને સંક્ષેપ છે.

ટીકા—પરજીવોને પોતાના કર્મના ઉદયની વિચિત્રતાના વશે પ્રાણોનો વ્યપરોપ (-ઉચ્છેદ, વિધોગ) કરાવિત થાઓ, કરાવિત ન થાઓ,—‘હું હું છું છું’ એવો જે અહઃકારસથી કરેલો હિંસામાં અધ્યવસાય (અર્થાત્ હિંસાનો અધ્યવસાય) તે જ નિન્દયથી તેને (હિંસાનો અધ્યવસાય કરનારા જીવને) બંધનું કારણ છે, કેમકે નિન્દયથી પરનો ભાવ એવો જે પ્રાણોનો વ્યપરોપ તે પરથી કરાવે અસાધ્ય છે (અર્થાત્ તે પરથી કરી શકાતો નથી).

ભાવાર્થઃ—નિન્દયનથી બીજાના પ્રાણોનો વિધોગ બીજાથી કરી શકાતો નથી; તેના પોતાના કર્મના ઉદયની વિચિત્રતાવશા કરાવિત થાય છે, કરાવિત નથી થતો. મારે જે એમ માને છે—અહઃકાર કરે છે કે ‘હું પરજીવને મારું છું,’ તેનો તે અહઃકારપ અધ્યવસાય અજ્ઞાનમય છે. તે અધ્યવસાય જ હિંસા છે—પોતાના વિશુદ્ધ ચૈતન્ય-પ્રાણોનો ઘાત છે, અને તે જ બંધનું કારણ છે. આ નિન્દયનથીનો મત છે.

અહીં વ્યવહારનથીને ગૌણ કરીને કહ્યું છે એમ જાણવું. મારે તે કથન કરાવિત (અર્થાત્ અપેક્ષાપૂર્વક) છે એમ સમજવું; સર્વથા એકાંતપક્ષ તો મિથ્યાત્વ છે. ૨૬૨.

હવે, (હિંસા—અહિંસાની) જેમ સર્વ કાર્યોમાં) અધ્યવસાયને જ પાપ-પુણ્યના બંધના કારણપણે દર્શાવે છે:—

મારો—ન મારો જીવને, છે બધે અધ્યવસાનથી,

—આ જીવકેરા બંધનો સંક્ષેપ નિન્દયનથી થકી. ૨૬૨.

एवमलिये अदत्तं अवमचेरे परिग्रहे चैव ।

कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पावं ॥ २६३ ॥

तह वि य सच्चे दत्तं वंमे अपरिग्रहतणे चैव ।

कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पुण्णं ॥ २६४ ॥

एवमलीकेऽदत्तेऽवमचरे परिग्रहे चैव ।

क्रियतेऽध्यवसानं यत्नेन तु वध्यते पापम् ॥ २६३ ॥

तथापि च सन्ये दत्ते ब्रह्मणि अपरिग्रहत्वे चैव ।

क्रियतेऽध्यवसानं यत्नेन तु वध्यते पुण्यम् ॥ २६४ ॥

અન્યથાર્થઃ—[એવં] એ રીતે (અર્થાત્ પૂર્વે હિંસાના અધ્યવસાય કર્યું તેમ) [અલીકે] અસત્યમાં, [અદત્તે] અદત્તમાં, [અગ્રહચર્યે] અગ્રહચર્યામાં [ચ એવ] અને [પરિગ્રહે] પરિગ્રહમાં [યદ્] જે [અધ્યવસાનં] અધ્યવસાન [ક્રિયામાં] આવે [તેન તુ] તેનાથી [પાવં વચ્યતે] પાપને બંધ થાય છે; [તથાપિ] અને તેવી જ રીતે [સત્યે] સત્યમાં, [દત્તે] દત્તમાં, [બ્રહ્મણિ] બ્રહ્મચર્યમાં [વત્] અને [અપરિગ્રહત્વે] અપરિગ્રહમાં [યદ્] જે [અધ્યવસાનં] અધ્યવસાન [ક્રિયામાં] આવે [તેન તુ] તેનાથી [પુણ્યં વચ્યતે] પુણ્યને બંધ થાય છે.

टीका:—એ રીતે (-પૂર્વોક્ત રીતે) અસાનથી આ જે હિંસામાં અધ્યવસ કરવામાં આવે છે તેમ અસત્ય, અદત્ત, અગ્રહચર્ય અને પરિગ્રહમાં પણ જે (અધ્યવસ કરવામાં આવે, તે બધાય પાપના બંધનું એકમાત્ર (-એકનું એક) કારણ છે; જે અહિંસામાં અધ્યવસાય કરવામાં આવે છે તેમ જે સત્ય, દત્ત, બ્રહ્મચર્ય અપરિગ્રહમાં પણ (અધ્યવસાય) કરવામાં આવે, તે બધાય પુણ્યના બંધનું એક કારણ છે.

भावार्थः—जैम हिंसाમાં અધ્યવસાય તે પાપબંધનું કારણ કર્યું છે. અસત્ય, અદત્ત (વગર દીધેલું લેવું તે, ચોરી), અગ્રહચર્ય અને પરિગ્રહ

એમ અલીકમાંથી, અદત્તમાં, અગ્રહ ને પરિગ્રહ વિષે
જે થાય અધ્યવસાન તેથી પાપબંધન થાય છે. ૨૬૩.
એ રીત સત્યે, દત્તમાં, વળી બ્રહ્મ ને અપરિગ્રહે
જે થાય અધ્યવસાન તેથી પુણ્યબંધન થાય છે. ૨૬૪.

અધ્યવસાય તે પણ પાપમથનું કારણ છે. વળી જેમ અહિંસામાં અધ્યવસાય તે પુણ્ય-મથનું કારણ છે તેમ સત્ય, દત્ત (દીધેલું લેવું તે), બ્રહ્મચર્ય અને અપરિમદુ—તેમનામાં અધ્યવસાય તે પણ પુણ્યમથનું કારણ છે. આ રીતે, પાંચ પાપોમાં (અપ્રતોમાં) અધ્યવસાય કરવામાં આવે તે પાપમથનું કારણ છે અને પાંચ (એકદેશ કે સર્વદેશ) પ્રતોમાં અધ્યવસાય કરવામાં આવે તે પુણ્યમથનું કારણ છે. પાપ અને પુણ્ય બંનેના બંધનમાં, અધ્યવસાય જ એકમાત્ર બંધ-કારણ છે. ૨૬૩-૨૬૪.

વળી એમ કહેવું શક્ય નથી કે બાહ્યવસ્તુ તે બીજું પણ બંધનું કારણ છે. (અધ્યવસાય તે બંધનું એક કારણ છે અને બાહ્યવસ્તુ તે બંધનું બીજું કારણ છે એમ પણ કહી શકાતું નથી; અધ્યવસાય જ એકનું એક બંધનું કારણ છે, બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી.) આપા અર્થની ગાથા હવે કહે છે:—

વત્થું પહુમ્મં જં પુણ અજ્ઞવસાણં તુ હોઈ જીવાણં ।

ળ ય વત્થુદો દુ વંધો અજ્ઞવસાણેણ વંધોત્થિ ॥ ૨૬૫ ॥

વસ્તુ મતીન્ય ચત્તુનરચ્ચવમાનં તુ મવતિ જીવાનામ્ ।

ન ચ વસ્તુતન્મુ વંધોઽચ્ચવમાનેન વંધોઽમ્મિ ॥ ૨૬૫ ॥

અન્યથાર્થ:—[પુનઃ] વળી, [જીવાનાં] જીવોને [વત્] જે [ચત્તવમાનં] અધ્યવસાન [મવતિ] થાય છે તે [વસ્તુ] વસ્તુને [મતીન્ય] અવસ્થાબીને થાય છે [ન તુ] તોપણ [ચત્તુત્થા] વસ્તુથી [ન વંધા] બંધ નથી, [ચત્તવમાનેન] અધ્યવસાનથી જ [વંધા] બંધિત] બંધ છે.

ટીકા:—અધ્યવસાન જ બંધનું કારણ છે; બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી, કેમ કે બંધનું કારણ જે અધ્યવસાન તેના કારણપટ્ટાથી જ બાહ્યવસ્તુને ચરિતાર્થપણ છે (અર્થાત્ બંધનું કારણ જે અધ્યવસાન તેનું કારણ થવામાં જ બાહ્યવસ્તુનું કાર્ય-ક્ષેત્ર પૂરું થાય છે, તે કાર્ય બંધનું કારણ થતી નથી). આદર્શ પ્રશ્ન થાય છે કે—જો બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી તો ('બાહ્યવસ્તુનો પ્રસંગ ન કરે, ત્યાગ કરે' એવું) બાહ્યવસ્તુનો પ્રતિષેધ (નિષેધ) શા માટે કરવામાં આવે છે? તેનું સમાધાન:—અધ્યવસાનના પ્રતિષેધ અર્થે બાહ્યવસ્તુનો પ્રતિષેધ કરવામાં આવે છે. અધ્યવસાનને બાહ્યવસ્તુ આશ્રયબળ છે; બાહ્યવસ્તુનો આશ્રય કર્યા વિના અધ્યવસાન ધાન્યના સ્વરૂપને

જે માય અધ્યવસાન લવને, વસ્તુઆધિન તે બને,

પણ વસ્તુથી નથી બંધ, અધ્યવમાનમાર્થથી બંધ છે. ૨૬૫.

પામતું નથી અર્થાત્ ઉપજતું નથી. જો બાહ્યવસ્તુનો આશ્રય કર્યા વિના પણ અંધ વસાન ઉપજતું હોય તો, જેમ આશ્રયભૂત એવા વીરજનનીના પુત્રના સદ્ગુણ (કોઈને) એવો અધ્યવસાય ઉપજે છે કે 'હું' વીરજનનીના પુત્રને હજી 'હું' તે આશ્રયભૂત એવા વંધ્યાપુત્રના અસદ્ભાવમાં પણ (કોઈને) એવો અધ્યવસાય કો (ઉપજવો જોઈએ) કે 'હું' વંધ્યાપુત્રને (ચાંચળીના પુત્રને) હજી 'હું.' પરંતુ એ અધ્યવસાય તો (કોઈને) ઉપજતો નથી. (જ્યાં વંધ્યાનો પુત્ર જ નથી ત્યાં આશ્રય અધ્યવસાય ક્યાંથી ઉપજે?) મારે એવો નિયમ છે કે (બાહ્યવસ્તુરૂપ) આશ્રય વિના અધ્યવસાન હોતું નથી. અને તેથી જ અધ્યવસાનને આશ્રયભૂત એવી જો બાહ્ય વસ્તુનો અત્યંત પ્રતિષેધ છે, કેમ કે કારણના પ્રતિષેધથી જ કાર્યનો પ્રતિષેધ થાય છે (બાહ્યવસ્તુ અધ્યવસાનનું કારણ છે તેથી તેના પ્રતિષેધથી અધ્યવસાનનો પ્રતિષેધ થાય છે). પરંતુ, જોકે બાહ્યવસ્તુ બંધના કારણનું (અર્થાત્ અધ્યવસાનનું) કારણ તોપણ તે (બાહ્યવસ્તુ) બંધનું કારણ નથી; કેમ કે ધર્મસામિતિમાં પરિચયેષા મુનીએ પગ વડે હજી જતા એવા કોઈ ઝડપથી આવી પડતા કાળપ્રેરિત ઊડતા જીવન માટે, બાહ્યવસ્તુ—કે જે બંધના કારણનું કારણ છે તે—બંધનું કારણ નહિ જ હોવાથી, બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણપણ માનવામાં અનેકાંતિક હેતુભાસપણું જોવાય છે. (આમ નિશ્ચયથી બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણપણું નિર્વાચ્ય નથી સિદ્ધ થતું નથી.) મારે બાહ્યવસ્તુ કે જે જીવને અતદ્ભાવરૂપ છે તે બંધનું કારણ નથી; અધ્યવસાન કે જે જીવને તદ્ભાવરૂપ છે તે જ બંધનું કારણ છે.

સાવાર્થ:—બંધનું કારણ નિશ્ચયથી અધ્યવસાન જ છે; અને જે બંધ વસ્તુઓ છે તે અધ્યવસાનનું આલંબન છે—તેમને આલંબીને અધ્યવસાન ઉપજે તેથી તેમને અધ્યવસાનનું કારણ કહેવામાં આવે છે. બાહ્યવસ્તુ વિના નિરાશ્રય અધ્યવસાન ઉપજતાં નથી તેથી બાહ્યવસ્તુઓનો ત્યાગ કરાવવામાં આવે છે. જો બંધ કારણ બાહ્યવસ્તુ કહેવામાં આવે તો તેમાં વ્યભિચાર આવે છે. (કારણ હોવાને કારણે કોઈ સ્થળે કાર્ય દેખાય અને કોઈ સ્થળે કાર્ય ન દેખાય તેને વ્યભિચાર કહે છે એવા કારણને વ્યભિચારી—અનેકાંતિક—કારણભાસ કહે છે.) કોઈ મુનિ ધર્મસામિતિ પૂર્વક યત્નાથી ગમન કરતા હોય તેમના પગ તળે કોઈ ઊડતું જીવન વગેરે પડીને મરી ગયું તો તેની હિંસા મુનિને લાગતી નથી. અહીં બાહ્ય દષ્ટિથી એ આવે તો હિંસા થઈ, પરંતુ મુનિને હિંસાનો અધ્યવસાય નહિ હોવાથી તેમને કશું થતો નથી. જેમ તે પગ નીચે મરી જતું જીવન મુનિને બંધનું કારણ નથી તેમ બાહ્યવસ્તુઓ વિષે પણ સમજવું. આ રીતે બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણ માનવું

અભિચાર આવનો હોવાથી બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી એમ સિદ્ધ થયું. વળી બાહ્ય-
વસ્તુ વિના નિરાશ્રયે અધ્યવસાન થતાં નથી તેથી બાહ્યવસ્તુનો નિર્ણય પણ છે જ. ૨૬૫.

આ રીતે બંધના કારણપણે (—કારણ તરીકે) નક્કી કરવામાં આવેલું જે
અધ્યવસાન તે પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું નહિ હોવાથી મિથ્યા છે—એમ હવે
શોધે છે:—

દુઃખિતદસુહિદે જીવે કરેમિ વંધેમિ તહ વિમોચેમિ ।

જાણેસા મૃદમઈ નિરર્થયા સા હુ દે મિચ્છા ॥ ૨૬૬ ॥

દુઃખિતમુલ્લિતાનુ જીવાનુ કરોમિ વંધયમિ તથા વિમોચયમિ ।

યા જણા મૃદમતિઃ નિરર્થિકા મા જાનુ ને મિચ્છા ॥ ૨૬૬ ॥

અન્યથાર્થ:—હે ભાઈ! ‘[જીવાનુ] હું’ જીવને [દુઃખિતમુલ્લિતાનુ] દુઃખી-
[મુખી] [કરોમિ] કરું છું, [વંધયમિ] બંધાવું છું [તથા વિમોચયમિ] તથા મુક્તિ
[યા જણા તે મૃદમતિઃ] એવી જે આ તારી મૂઠ મતિ (—મોહિત બુદ્ધિ) છે
[સા] તે [નિરર્થિકા] નિર્ણયક હોવાથી [જાનુ] ખરેખર [મિચ્છા] મિથ્યા (—ખોટી) છે.

ટીકા:—હું પરજીવને દુઃખી કરું છું, મુખી કરું છું કલ્યાણ તથા બંધાવું
કરું, મુક્તિ કરું કલ્યાણ જે આ અધ્યવસાન છે તે બંધન, પરમાવનો પરમાં વ્યાપાર
રહિ હોવાને લીધે પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું નહિ હોવાથી, ‘હું’ આકારના કૂતરે
‘દુઃખ’ એવા અધ્યવસાનની માફક મિથ્યારૂપ છે, કેવળ પોતાના અનર્થને મારે
છે (અર્થાત્ આવ પોતાને જ વૃક્ષાનનું કારણ થાય છે, પરને તેા હાંઈ કરી
પાકવું નથી).

ભાવાર્થ:—જે પોતાની અર્થક્રિયા (—પ્રયોજનભૂત ક્રિયા) કરી શકતું નથી
તે નિર્ણયક છે, અથવા જેનો વિષય નથી તે નિર્ણયક છે. જીવ પરજીવને દુઃખી-મુખી
બંધાવે કરવાની બુદ્ધિ કરે છે, પરંતુ પરજીવે તે પોતાના કર્યા દુઃખી-મુખી થતા નથી;
પોથી તે બુદ્ધિ નિર્ણયક છે અને નિર્ણયક હોવાથી મિથ્યા છે—ખોટી છે. ૨૬૬.

હવે પૂછે કે અધ્યવસાન પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું હઈ રીતે નથી?
પોતા ઉત્તર કહે છે:—

હું છું દુઃખીમુખી જીવને, વળી બદ્ધ-મુક્ત કરું અરે!
આ મદ મતિ તુજ છે નિર્ણયક, તેથી છે મિથ્યા ખરે. ૨૬૬.

અજ્ઞવસાનનિમિત્તં જીવા વજ્જંતિ કમ્મણા જદિ હિ ।
મુજ્જંતિ મોક્ષમગ્ગે ટિદા ય તા કિં કરેસિ તુમં ॥ ૨૬૭ ॥

અજ્ઞવસાનનિમિત્તં જીવા વજ્જંતે કમ્મણા યદિ હિ ।

મુજ્જંતે મોક્ષમાર્ગે સ્થિતાથ તન્ કિં કરોપિ ત્વમ્ ॥ ૨૬૭ ॥

અન્યવાર્થઃ—હે ભાઈ! [યદિ હિ] એ ખરેખર [. . .]
અધ્યવસાનના નિમિત્તે [જીવાઃ] જીવો [કમ્મણા વજ્જંતે] કર્મથી બંધાય છે.
અને [મોક્ષમાર્ગે સ્થિતાઃ] મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત [મુજ્જંતે] મુક્ત થઈ, [ત્વમ્]
[ત્વં કિં કરોપિ] તું શું કરે છે? (તારો તો બાંધવા-છાડવાનો અભિપ્રાય રાખે છે.)

ટીકાઃ—‘હું બંધાવું છું, મુક્તવું છું’ એવું જે અધ્યવસાન છે તેની
અર્થક્રિયા જીવોને બાંધવા, મુક્તવા (-મુક્ત કરવા, છાડવા) તે છે. પરંતુ જીવો
અધ્યવસાયનો સંભાવ હોવા છતાં પણ, પાતાના સરાગ-વીતરાગ પરિણામથી
અભાવથી નથી બંધાતો, નથી મુક્તો; અને પાતાના સરાગ-વીતરાગ
સંભાવથી, તે અધ્યવસાયનો અભાવ હોવા છતાં પણ, બંધાય છે, મુક્ત થઈ
પરંતુ અકિંચિત્કર હોવાથી (અર્થાત્ કંઈ નહિ કરી શકતું હોવાથી) આ અ-
પાતાની અર્થક્રિયા કરનારું નથી; અને તેથી ત્રિધ્યા જ છે.—આવો ભાવ (અર્થ)

ભાવાર્થઃ—જે હેતુ કંઈ પણ ન કરે તે અકિંચિત્કર કહેવાય છે. આ
છાડવાનું અધ્યવસાન પણ પરંતુ કંઈ કરતું નથી; કારણ કે તે અધ્યવસાન નથી
તોપણ જીવ પાતાનાં સરાગ-વીતરાગ પરિણામથી બંધ-મોક્ષને પામે છે, અને
અધ્યવસાન હોય તોપણ પાતાનાં સરાગ-વીતરાગ પરિણામના અભાવથી બંધ
નથી પામતો. આ રીતે અધ્યવસાન પરંતુ અકિંચિત્કર હોવાથી સ્વ-અર્થક્રિયા
નથી અને તેથી ત્રિધ્યા છે.

દ્વે આ અર્થના કળશરૂપે અને આગળના કથનની સૂચનિકારૂપે પ્રયોગ કરે છે.

(અનુક્રૂપ)

અનેનાધ્યવસાયેન નિષ્કલેષેન વિમોહિતઃ ।

નન્નિવનાપિ નૈવાસ્તિ નાન્માત્માનં કરોતિ યન્ ॥ ૧૭૧ ॥

ની જીવ અધ્યવસાનકારણ કર્મથી બંધાય જ્યાં
ને મોક્ષમાર્ગે સ્થિત જીવો મુક્ત થઈ, તું શું કરે ભાઈ? ૨૧૭.

અર્થ:—આં નિર્દુષ્ટ (નિર્દોષ) અધ્યવસાયથી ભાદિન થયો થયો આત્મા પાપાને સર્વરૂપ કરે છે,—એવું કાંઈ પણ નથી કે જે-રૂપ પાપાને જ કરતો હોય.

સાવાર્થ:—આ આત્મા મિથ્યા અભિપ્રાયથી ભૂલ્યો થયો ચતુર્ગુણિ-સંસારમાં જેટલી અવસ્થાઓ છે, જેટલા પદાર્થો ॥ તે સર્વરૂપ પાપાને થયેલા માને છે; પાપાના શુદ્ધ સ્વરૂપને નથી ઓળખતો. ૨૬૭.

હવે આ અર્થને ૨૫૯ રીતે ગાથામાં કહે છે:—

સન્ને કરેહ જીવો અજ્ઞવસાણેણ તિરિયણેરયિણ્ ।

દેવમણુયે ય સન્ને પુણ્ણં પાવં ચ નેયવિહં ॥ ૨૬૮ ॥

ધમ્માધર્મં ચ તથા જીવાજીવે અલોચલોયં ચ ।

સન્ને કરેહ જીવો અજ્ઞવસાણેણ અપ્પાણં ॥ ૨૬૯ ॥

મર્વાન કરોતિ જીવોઽધ્યવસાણેન તિર્યદનેરયિકાન્ ।

દેવમણુમાંથ મર્વાન પુણ્યં પાપં ચ નેકરિપમ્ ॥ ૨૬૮ ॥

ધર્માધર્મં ચ તથા જીવાજીવો ભગ્નોકલ્પોક્તં ચ ।

મર્વાન કરોતિ જીવઃ પ્રાધ્યવસાણેન પ્રાગ્માનમ્ ॥ ૨૬૯ ॥

અન્યથાર્થ:—[જીવઃ] એવ [અધ્યવસાણેન] અધ્યવસાનથી [તિર્યદનેરયિકાન્] તિર્યંચ, નારક, [દેવમણુમાન્ ચ] દેવ અને મનુષ્ય [મર્વાન] એ સર્વ પદાર્થો [ચ] તથા [નેકરિપમ્] અનેક પ્રકારનાં [પુણ્યં પાપં] પુણ્ય અને પાપ—[મર્વાન] એ અપારૂપ [કરોતિ] પાપાને કરે છે. [તથા ચ] વળી તેથી રીતે [જીવઃ] એ [અધ્યવસાણેન] અધ્યવસાનથી [ધર્માધર્મં] ધર્મ-અધર્મ, [જીવાજીવો] એ-અલ્પ [ચ] અને [ભગ્નોકલ્પોક્તં] હોય-અસૌક્ય—[મર્વાન] એ અપારૂપ [પ્રાગ્માનમ્] પાપાને કરે છે.

તિર્યંચ, નારક, દેવ, માનવ, પુણ્ય પાપ વિવિધ છે.

તે સર્વરૂપ નિજને કરે છે એવ અધ્યવસાનથી. ૨૬૮.

વળી એમ ધર્મ અધર્મ, એવ અલ્પ, સૌક્ય અસૌક્ય છે.

તે સર્વરૂપ નિજને કરે છે એવ અધ્યવસાનથી. ૨૬૯.

ટીકા:—જેવી રીતે આ આત્મા જિંદગી જેતો ગર્ભ ॥ એવા અધ્યવસાનથી પોતાને હિંસક કરે છે, (અહિંસાના અધ્યવસાનથી પોતાને ન કરે છે) અને અન્ય અધ્યવસાનોથી પોતાને અન્ય કરે છે, તેવી જ રીતે ઉદયમાં નારકના અધ્યવસાનથી પોતાને નારક (-નારકી) કરે છે, ઉદયમાં આવતા નિ અધ્યવસાનથી પોતાને તિર્થંચ કરે છે, ઉદયમાં આવતા મનુષ્યના અધ્યવસાનથી મનુષ્ય કરે છે, ઉદયમાં આવતા દેવના અધ્યવસાનથી પોતાને દેવ કરે છે, આવતા સુખ આદિ પુણ્યના અધ્યવસાનથી પોતાને પુણ્યરૂપ કરે છે અને આવતા દુઃખ આદિ પાપના અધ્યવસાનથી પોતાને પાપરૂપ કરે છે; વળી તેવી જાણવામાં આવતો જે ધર્મ (અર્થાત્ ધર્મસ્થિતકાય) તેના અધ્યવસાનથી પોતાને કરે છે, જાણવામાં આવતા અધર્મના (અર્થાત્ અધર્મસ્થિતકાયના) અધ્યવસાનથી પોતાને અધર્મરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા અન્ય જીવના અધ્યવસાનથી અન્યજીવરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા પુદ્ગલના અધ્યવસાનથી પોતાને પુદ્ગલરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા લોકાકારના અધ્યવસાનથી પોતાને લોકાકારરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા અલોકાકારના અધ્યવસાનથી પોતાને અલોકાકારરૂપ કરે છે. રીતે આત્મા અધ્યવસાનથી પોતાને સર્વરૂપ કરે છે.)

ભાવાર્થ:—આ અધ્યવસાન અજ્ઞાનરૂપ છે તેથી તેને પોતાનું પરમાત્મ ન જાણે. તે અધ્યવસાનથી જ આત્મા પોતાને અનેક અવસ્થારૂપ કરે છે તેમનામાં પાતાપણું માની પ્રવેશે છે.

દરે આ અર્થના કળારૂપ તથા આગંગના કથનની સૂચનાઓ છે. —

(ઈદમ્)

વિશ્વાદિમત્તોઽપિ દિ વત્સપાવા-
દાગ્માનમાગ્મા વિદ્યાતિ વિશ્વમ્ ।
યોરૈર્કર્ત્ત્વોઽશ્વવગાય વગ
માર્ગીદ યેર્ગા યનયન્ત વર ॥ ૧૭૨ ॥

અર્થ:—જિંદગી (અમર અવસ્થાથી) મિત્ર દેવતા છતાં આત્મા પ્રાણી જેવો જિંદગી કરે છે એવા આ અધ્યવસાન—કે જેનું પ્રાણ જ આત્મા

અર્થ:—જિંદગી (અમર અવસ્થાથી) મિત્ર દેવતા છતાં આત્મા પ્રાણી જેવો જિંદગી કરે છે એવા આ અધ્યવસાન—કે જેનું પ્રાણ જ આત્મા

જેમને નથી તે જ મુનિઓ છે. ૨૬૮—૨૬૯.

આ અધ્યવસાય જેમને નથી તે મુનિઓ કર્મથી લેવાના નથી—એમ હવે
માં કહે છે:—

एताणि णत्थि जेमि अज्जवसानाणि एवमादीणि ।
ते अमुहेण मुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पन्ति ॥ २७० ॥

एतानि न संति येषामध्यवसानान्पंचमादीनि ।
ते भग्नेन भग्नेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्पन्ते ॥ २७० ॥

અનુવાદ:—[एतानि] આ (પૂર્વે કહેલાં) [एवमादीनि] તથા આવાં
[णत्थि] [अज्जवसानाणि] અધ્યવસાન [येषां] જેમને [न संति] નથી, [ते
[कम्मेण] તે મુનિઓ [भग्नेन] અશુભ [वा भग्नेन] કે શુભ [कर्मणा] કર્મથી
[लिप्पन्ति] લેવાના નથી.

ટીકા:—આ જે ત્રણ પ્રકારનાં અધ્યવસાનો છે તે બધાંય પાતે અજ્ઞાનાદિરૂપ
વર્તી અજ્ઞાન, મિથ્યાદર્શન અને અચારિત્રરૂપ) હોવાથી શુભાશુભ કર્મબંધનનાં
નિર્મલ છે. તે વિશેષ સમજાવવામાં આવે છે:—‘હું (૫૨૯વેને) હજુ’ છું’ કૃત્યપદિ
આ અધ્યવસાન છે તે અજ્ઞાનમય છે; તેથી (તે અધ્યવસાનવાળા છવને) સત્તરૂપ
કેટલું સંતોષ જ લેની એક ક્રિયા છે એવા આત્માનો અને સગદેવતા ઉદયમય એવી
અન અપદિ ક્રિયાઓનો વિરોધ નહિ જાણવાને ક્ષીપે લિપ્ત આત્માનું અજ્ઞાન હોવાથી
અધ્યવસાન પ્રથમ તો અજ્ઞાન છે, લિપ્ત આત્માનું અદર્શન (અચરણ) હોવાથી
અધ્યવસાન) મિથ્યાદર્શન છે અને લિપ્ત આત્માનું અનાચરણ હોવાથી (તે

૧ સત્તરૂપ = સત્તાત્તરૂપ; અમિત્તરૂપરૂપ.

૨ અદેવતા = જેનું કોઈ કારણ નથી એવી; અકારણ; સ્વપ્રસિદ્ધ; સદજ.

૩ સંતોષ = નાજીતું તે; નાજીતિવા. (સંતોષિયા સત્તરૂપ છે, અને સત્તરૂપ હોવાથી અદેવતા છે.)

૪ દનન = હજીનું તે; હજીવારૂપ ક્રિયા. (હજીનું વચેરે ક્રિયાઓ સમદેવતા ઉત્પન્ન છે.)

૫ વિશેષ = તક્ષણ; તિલ લક્ષણ.

એ આદિ અધ્યવસાન વિધવિધ વર્તતા નહિ જે
તે મુનિવરો લેવાય નહિ શુભ કે અશુભ કર્મે

“અધ્યવસાન શબ્દ વારંવાર કહેતા આવ્યા છે, તે અધ્યવસાન શું છે? તેનું સ્વરૂપ બરાબર સમજવામાં નથી આવ્યું.” આમ પૂછવામાં આવતાં, હવે અધ્યવસાનનું સ્વરૂપ ગાથામાં કહે છે:—

બુદ્ધી વવસાઓ વિ ય અજ્ઞવસાણં મર્દ્યં ય વિષ્ણાણં ।
 એકદમેવ સત્ત્વં ચિત્તં ભાવો ય પરિણામો ॥ ૨૭૧ ॥

બુદ્ધિર્વવસાયોઽપિ ચ અજ્ઞવસાણં મનિશ્ચ વિજ્ઞાનમ્ ।
 એકાર્થમેવ સર્વં ચિત્તં ભાવશ્ચ પરિણામઃ ॥ ૨૭૧ ॥

અન્યવાર્થ:—[બુદ્ધિ:] બુદ્ધિ, [વ્યવસાય:] મનિ ચ [અજ્ઞવસાય, [અજ્ઞ-સાન] અધ્યવસાન, [મનિ:] મનિ, [વિજ્ઞાન] વિજ્ઞાન, [ચિત્તં] ચિત્ત, [માય:] માય [ચ] અને [પરિણામ:] પરિણામ—[સર્વં] એ બધા [એકાર્થ એકાર્થ] એકાર્થ છે (—નામ બુદ્ધિ છે, અર્થ બુદ્ધિ નથી).

ટીકા:—સ્વ-પરનો અવિવેક હોય (અર્થાત્ સ્વ-પરનું બેદજ્ઞાન ન હોય) જે છવની અધ્યવસિતિમાત્ર તે અધ્યવસાન છે; અને તે જ (અર્થાત્ જેને અધ્યવસાન કહ્યું તે જ) બેદજ્ઞનામાત્રપણાથી બુદ્ધિ છે, અધ્યવસાનમાત્રપણાથી વ્યવસાય છે, અમાત્રપણાથી મનિ છે, વિજ્ઞાનમાત્રપણાથી વિજ્ઞાન છે, ચિત્તનામાત્રપણાથી ચિત્ત છે, માયનામાત્રપણાથી માય છે, ચિત્તનામાત્રપણાથી પરિણામ છે. (—નામ બુદ્ધિ શબ્દો એકાર્થ છે.)

ભાવાર્થ:—આ જે બુદ્ધિ આદિ આઠ નામોથી કહ્યાં તે બધાંય ચિત્તનામાં પરિણામ છે. ત્યાંગુધી સ્વપરનું બેદજ્ઞાન ન હોય ત્યાંગુધી છવને જે પાનાના નામોએકપણાના નિશ્ચયરૂપ પરિણતિ વને છે તેને બુદ્ધિ આદિ આઠ નામોથી કહ્યાં આવે છે.

અધ્યવસિતિ = (એકમાં બીજાની માન્યતાપૂર્વક) પરિણતિ; (મિથ્યા) નિશ્ચિતિ. (ખેર)

અધ્યવસાન = કામમાં સાગ્યા રહેતું તે; ઉદ્ધમી હોતું તે; નિશ્ચય લેવો તે.

અજ્ઞવસાન = માનવું તે; જાણવું તે.

બુદ્ધિ, મનિ, વ્યવસાય, અધ્યવસાન, વળી વિજ્ઞાન પરિણામ, ચિત્ત ને ભાવ—શબ્દો મર્દ્ય આ એક.

‘અધ્યવસાન ત્યાગવાયોમ્ય કહ્યાં છે તેથી એમ સમજાય છે કે વ્યવહારને ત્યાગ કરાવ્યો છે અને નિશ્ચયનું પ્રહુણ કરાવ્યું છે’—એવા અર્થનું, આગળના કથનની સૂચનારૂપ કાવ્ય હવે કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

સર્વગ્રાધ્યવસાનમેવમશિલં ત્યાજ્યં યદુક્તં જિનૈ-
સ્તન્મન્યે વ્યવહાર એવ નિશ્ચિલોઽપ્યન્યાશ્રયસ્ત્યાજિતઃ ।
સમ્યક્નિશ્ચયમેકમેવ તદમી નિષ્કંપમાક્રમ્ય કિં
શુદ્ધજ્ઞાનધને મહિન્નિ ન નિજે વ્યવંતિ સંતો ધૃતિમ્ ॥ ૧૭૩ ॥

અર્થ:—આચાર્યદેવ કહે છે કે:—સર્વ વસ્તુઓમાં જે અધ્યવસાન થાય છે તે બધાંય (અધ્યવસાન) જિન ભગવાનેએ પૂર્વોક્ત રીતે ત્યાગવાયોમ્ય કહ્યાં છે તેથી અમે એમ માનીએ છીએ કે ‘પર જેનો આશ્રય છે એવો વ્યવહાર જ સધળોય છેડાવ્યો છે.’ તો પછી, આ સત્પુરુષો એક સમ્યક્ નિશ્ચયને જ નિષ્કંપપણે અંગીકાર કરીને શુદ્ધજ્ઞાનધનસ્વરૂપ નિજ મહિમામાં (આત્મસ્વરૂપમાં) સ્થિરતા કેમ કરતા નથી!

ભાવાર્થ:—જિનેશ્વરદેવે અન્ય પદાર્થોમાં આત્મભુક્તિરૂપ અધ્યવસાન છેડાવ્યું છે તેથી આ પરમિત વ્યવહાર જ બધાય છેડાવ્યો છે એમ ભણવું. મારે ‘શુદ્ધજ્ઞાન-સ્વરૂપ પાતાના આત્મામાં સ્થિરતા રાખો’ એવો શુદ્ધનિશ્ચયના પ્રહુણનો ઉપોદ્ધ આચાર્યદેવે કર્યો છે. વળી, “જે ભગવાને અધ્યવસાન છેડાવ્યું છે તો હવે સત્પુરુષો નિશ્ચયને નિષ્કંપપણે અંગીકાર કરી સ્વરૂપમાં કેમ નથી કરતા—એ અમને અચાર્ય છે” એમ કહીને આચાર્યદેવે આચાર્ય બતાવ્યું છે. ૨૭૨.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છે:—

एवं व्यवहारणो पटिमिद्धो जाण णिञ्जयणयेण ।
णिञ्जयणयामिदा पुण मुणिणो पावति णिञ्जाणं ॥ २७२ ॥

एवं व्यवहारणः पटिमिद्धो जानीति निश्चयनयेन ।

निश्चयनयाधिनाः पुनर्वचनः पान्नुवन्ति निर्वाणम् ॥ २७२ ॥

વ્યવહારનય એ પીન ભણુ નિપિદ નિશ્ચયનય થયા;
નિશ્ચયનયાધિના પુનર્વચને પ્રાપ્તિ કરે નિર્વાણની. ૨૭૨.

અન્યથાર્થોઃ—[સ્વ] એ રીતે (પૂર્વોક્ત રીતે) [વ્યવહારનયઃ] (પરામિત એવો) વ્યવહારનય [નિશ્ચયનયેષ] નિશ્ચયનય વગેરે [પ્રતિષિદ્ધઃ જ્ઞાતીદિ] નિષિદ્ધ અર્થઃ [દુઃ નિશ્ચયનયોદિતતા] નિશ્ચયનયને આમિત [મુનયઃ] મુનિઓ [નિર્વાણં] નિર્વાણને [પ્રાપ્નુવંતિ] પામે છે.

ટીકા—આ-આમિત (અર્થાત્ સ્વ-આમિત) નિશ્ચયનય છે, પરામિત (અર્થાત્ પરને આમિત) વ્યવહારનય છે. ત્યાં, પૂર્વોક્ત રીતે પરામિત સમસ્ત આધ્ય-વસાન (અર્થાત્ પાનાના ને પરના એકપણની આન્યનાપૂર્વક પરિભ્રમન) અર્થનું કારણ હોવાને લીધે મુખ્યત્વે તેનો (અધ્યવસાનનો) વિષય કરતા એવા નિશ્ચયનય વગેરે અર્થે વ્યવહારનયનો જ વિષય કરાયો છે, કારણ કે વ્યવહારનયને પણ પરામિતપણું સમાન જ છે (એમ આધ્યવસાન પરામિત છે તેમ વ્યવહારનય પણ પરામિત છે, તેમાં તફાવત નથી). અને આ વ્યવહારનય એ રીતે વિષયવાચીય જ છે; કારણ કે આ-આમિત નિશ્ચયનયનો આશય કરનારનો જ (કર્મથી) મુજબ થાય છે અને પરામિત વ્યવહારનયનો આશય તે એકાંતે નહિ મુજબ થતો એવો અભવ્ય પણ કરે છે.

બાવાર્થઃ—આ-આને પરના નિમિત્તથી જે અનેક ભાવો થાય છે તે બધા વ્યવહારનયના વિષય હોવાથી વ્યવહારનય તે પરામિત છે, અને જે એક પાતાનો સ્વાભાવિક ભાવ છે તે જ નિશ્ચયનયનો વિષય હોવાથી નિશ્ચયનય આ-આમિત છે. આધ્યવસાન પણ વ્યવહારનયનો જ વિષય છે તેથી અધ્યવસાનનો ત્યાગ તો વ્યવહાર-નયનો જ ત્યાગ છે, અને પાદુલાંની ગાથાઓમાં અધ્યવસાનના ત્યાગનો ઉપદેશ છે તે વ્યવહારનયના જ ત્યાગનો ઉપદેશ છે. આ પ્રમાણે નિશ્ચયનયને પ્રધાન કરીને વ્યવહારનયના ત્યાગનો ઉપદેશ કર્યો છે તેનું કારણ એ છે કે—જેઓ નિશ્ચયના આશયે પ્રવર્તે છે તેઓ જ કર્મથી છૂટે છે અને જેઓ એકાંતે વ્યવહારનયના જ આશયે પ્રવર્તે છે તેઓ કર્મથી દરી દૂરના નથી. ૨૭૨.

હવે પૂછે છે કે અભવ્ય જીવ વ્યવહારનયનો કઈ રીતે આશય કરે છે? તેનો ઉત્તર હવે છે:—

વદસમિદીગુત્તીઓ સીલતવં જિણવરેહિ પળ્લસં ।

કુલ્લંતો વિ અમલ્લો અળ્લાળી મિચ્છદિટ્ઠી દુ ॥ ૨૭૩ ॥

જિનવરકહેલાં જાત, સમિતિ, ગુમિ વળી તપ-સીલને
કરતાં છતાંય અભવ્ય જીવ અણાની મિચ્છાદિટ્ઠી છે. ૨૭૩.

વ્રતગમિનિગમયઃ શ્રીચતુર્થો જિનચરિત્રઃ પ્રથમમ્ ।

કુર્વન્નમ્યમ્ જ્ઞાની મિથ્યાદષ્ટિમ્ ॥ ૨૭૩ ॥

અન્યથાર્થઃ—[જિનચરિત્રઃ] જિનચરિત્રે [પ્રથમમ્] કથેડાં [. . .]
પ્રત, સમિતિ, ગુમિ, [શીલતપઃ] શીલ, તપ [કુર્વન્ અગિ] કરનાં છતાં પણ [. . .]
અભવ્ય એવ [અજ્ઞાની] અજ્ઞાની [મિથ્યાદષ્ટિઃ તુ] અને મિથ્યાદષ્ટિ છે.

ટીકાઃ—શીલ અને તપથી પરિપૂર્ણ, તપ ગુમિ અને પાંચ સમિતિઃ
સાવધાનીભરેલું, અહિંસાદિ પાંચ મહાવ્રતપણ વ્યવહારચારિત્ર અભવ્ય પણ
અર્થાત પાળે છે; તોપણ તે (અભવ્ય) નિશ્ચારિત્ર (—ચારિત્રરહિત), અજ્ઞાની
મિથ્યાદષ્ટિ જ છે કારણ કે નિશ્ચયચારિત્રના કારણરૂપ જ્ઞાન-અધ્યાનથી મૂલ્ય છે.

સાવાર્થઃ—અભવ્ય એવ મહાવ્રત-સમિતિ-ગુમિરૂપ ચારિત્ર પાળે
નિશ્ચય સમ્યજ્ઞાનઅધ્યાન વિના તે ચારિત્ર ‘સમ્યકચારિત્ર’ નામ પામતું નથી;
તે અજ્ઞાની, મિથ્યાદષ્ટિ અને નિશ્ચારિત્ર જ છે. ૨૭૩.

હવે શિષ્ય પૂછે છે કે—તેને અગિયાર અંગનું જ્ઞાન તો હોય છે; જ્યાં
અજ્ઞાની કેમ કહ્યો? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

મોક્ષં અસદ્દહંતો અભવિયસત્તો દુ જો અધીરંજ ।

પાઠો ન કરેદિ ગુણં અસદ્દહંતસ્સ જ્ઞાણં તુ ॥ ૨૭૪ ॥

મોક્ષમશ્રદ્ધધાનોઽભવ્યસત્ત્વસ્તુ યોઽધીયીત ।

પાઠો ન કરોતિ ગુણમશ્રદ્ધધાનસ્ય જ્ઞાનં તુ ॥ ૨૭૪ ॥

અન્યથાર્થઃ—[મોક્ષં અશ્રદ્ધધાનઃ] મોક્ષને નહિ અદ્વતો એવા [ય
સત્ત્વઃ] જે અભવ્યએવ છે તે [તુ અધીયીત] શાસ્ત્રો તો લાભે છે, [તુ]
[જ્ઞાનં અશ્રદ્ધધાનસ્ય] જ્ઞાનને નહિ અદ્વતો એવા તેને [પાઠો] શાસ્ત્રપઠન [. . .]
કરોતિ] ગુણ કરતું નથી.

ટીકાઃ—પ્રથમ તો મોક્ષને જ અભવ્ય એવ, (પાતે) શુદ્ધજ્ઞાનમય અ
જ્ઞાનથી મૂલ્ય હોવાને લીધે, નથી અદ્વતો. તેથી જ્ઞાનને પણ તે નથી અદ્વતો.

મુક્તિ તપી શ્રદ્ધારહિત અભવ્ય એવ શાસ્ત્રો ભાગે,
પણ જ્ઞાનની શ્રદ્ધારહિતને પઠન એ નહિ ગુણ કરે. ૨૭૪.

જ્ઞાનને નહિ મદતો તે, આચાર્યશ્રી આદિ અગિયાર અંગરૂપ મુતને (શાસ્ત્રને) ભણતો હોવા છતાં, શાસ્ત્ર ભણવાનો જે ગુણ તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની નથી. જે વિત્ત-વસ્તુભૂત જ્ઞાનમય આત્માનું જ્ઞાન તે શાસ્ત્ર ભણવાના ગુણ છે; અને તે તો (અર્થાત્ ક્ષિત્રુ શુદ્ધાભિજ્ઞાન તો), બિન્ન વસ્તુભૂત જ્ઞાનને નહિ મદતો એવા અભવ્યને શાસ્ત્ર-ભણતર થો કરી શકાતું નથી (અર્થાત્ શાસ્ત્ર-ભણતર તેને શુદ્ધાભિજ્ઞાન કરી શકતું નથી); ઘટે તેને શાસ્ત્ર ભણવાના ગુણનો અભાવ છે; અને તેથી જ્ઞાન-મદાનના અભાવને લીધે તે અજ્ઞાની ક્ષેત્રો—નહી થયો.

આચાર્ય:—અભવ્ય છત્ર અગિયાર અંગ ભણે તોપણ તેને શુદ્ધ આત્માનું જ્ઞાન-મદાન થતું નથી; તેથી તેને શાસ્ત્રના ભણતરે ગુણ ન ક્ષેત્રો; અને તેથી તે અજ્ઞાની જ છે. ૨૭૬.

ફરી શિષ્ય પૂછે છે—અભવ્યને ધર્મનું મદાન તો હોય છે; છતાં 'તેને મદાન નથી' એમ કેમ કહ્યું? તેના ઉત્તર હવે કહે છે:—

સદ્દહદિ ય પત્તેદિ ય રોચેદિ ય તદ્દ પુણો ય કાસેદિ ।

ધર્મમ્ ભોગણિમિત્તં ન તુ સો કર્મસ્યયણિમિત્તં ॥ ૨૭૫ ॥

બ્રહ્મણિ ચ મત્યેતિ ચ રોચયતિ ચ તથા પુનઃ સ્પૃશતિ ।

પર્મ ભોગણિમિત્તં ન તુ સ કર્મસ્યયણિમિત્તમ્ ॥ ૨૭૫ ॥

અર્થવાચ્ય:—[સા] તે (અભવ્ય છત્ર) [ભોગણિમિત્તં ધર્મ] ભોગના મિતરૂપ ધર્મને જ [બ્રહ્મણિ ચ] મદે છે, [મત્યેતિ ચ] તેની જ પ્રતીત કરે છે, [રોચયતિ ચ] તેની જ રુચિ કરે ॥ [તથા પુનઃ સ્પૃશતિ ચ] અને તેને જ સ્પર્શે [ન તુ કર્મસ્યયણિમિત્તં] પરંતુ કર્મસ્યયના નિમિતરૂપ ધર્મને નહિ. (કર્મસ્યયના મિતરૂપ ધર્મને નથી મદતો, નથી તેની પ્રતીત કરતો, નથી તેની રુચિ કરતો અને તેને સ્પર્શતો.)

ટીકા:—અભવ્ય છત્ર નિત્યકર્મક્રિયશીતનારૂપ વસ્તુને મદે છે પરંતુ નિત્ય-ધનનામાત્ર વસ્તુને નથી મદતો કારણ કે તે (અભવ્ય) સદાય (સ્વપરના) જ્ઞાનને અયોગ્ય છે. ઘટે તે (અભવ્ય છત્ર) કર્મથી છૂટવાના નિમિતરૂપ, વ્યવ, ભૂતાર્થ (સાત્યાર્થ) ધર્મને નથી મદતો, ભોગના નિમિતરૂપ, શુભકર્મમાત્ર, વ્યવ ધર્મને જ મદે છે; તેથી જ તે અભૂતાર્થ ધર્મનો મદાન, પ્રતીત, રુચિ

ને ધર્મને મદે, પ્રતીત, રુચિ અને સ્પર્શન કરે,

તે ભોગહેતુ ધર્મને, નહિ કર્મસ્યયના હેતુને. ૨૭૫.

અને સ્પર્શનથી ઉપરના મિત્રેયક ગુપ્તીના બોલમાત્રને પામે છે પરંતુ કદિયે કર્મ
ધૂનો નથી. તેથી તેને બુદ્ધિ પર્મના મદાનના અભાવને કીને (માત્ર) મદાન
પણ નથી.

આમ હોવાથી નિશ્ચયનય વડે વ્યવહારનયનો નિર્ણય થાય જ છે.

ભાવાર્થ:—અભવ્ય જીવને બેદગ્ધાન મવાની થોજના નદિ દોષથી તે
કર્મક્રમગતનાને જાણે છે પરંતુ જ્ઞાનગતનાને જાણુનો નથી; તેથી શુદ્ધ અભિજ્ઞ કર્મ
મદાન તેને નથી. તે શુભ કર્મને જ પર્મ સમજી મદાન કરે છે તેથી તેના ક્રમ નથી
મિત્રેયક ગુપ્તીના બોલને પામે છે પરંતુ કર્મનો કાય થતો નથી. આ રીતે સત્યાર્થ કર્મ
મદાન નદિ હોવાથી તેને મદાન જ કહી શકાયું નથી.

આ પ્રમાણે વ્યવહારનયને આમિત અભવ્ય જીવને જ્ઞાન-મદાન નદિ હોવાથી
નિશ્ચયનય વડે કરવામાં આવતો વ્યવહારનો નિર્ણય થાય જ છે.

અહીં, એટલું વિશેષ જાણવું કે—આ હેતુવાદરૂપ અનુભવપ્રધાન પ્રવૃત્તિ
તેથી તેમાં સવ્ય-અભવ્યનો અનુભવની અવિજ્ઞાએ નિર્ણય છે. હવે એ આને અવેદ્ય
આગમ સાથે મેળવીએ તો—અભવ્યને વ્યવહારનયના પક્ષનો સુક્ષ્મ, કેવળીયમ
આશય રહી જાય છે કે જે જીવસ્થાને અનુભવગોચર નથી પણ હોતો, માત્ર સર્વજ્ઞ
જાણે છે; એ રીતે કેવળ વ્યવહારનો પક્ષ રહેવાથી તેને સર્વથા એકાંતરૂપ મિથ્યાત્વ
છે. અભવ્યને આ વ્યવહારનયના પક્ષનો આશય સર્વથા કદી પણ મરતો જ નથી. રજા

હવે પૂછે છે કે “નિશ્ચયનય વડે નિષેધ (અર્થાત્ નિષેધાવાયોજ્ય) જે
વ્યવહારનય, અને વ્યવહારનયનો નિષેધક જે નિશ્ચયનય—તે બન્ને નથો કેવા છે?”
એવું પૂછવામાં આવતાં વ્યવહાર અને નિશ્ચયનય સ્વરૂપ કહે છે:—

આયારાદી ણાણં જીવાદી દંસણં ચ વિણ્ણેયં ।

છજ્જીવણિકં ચ તહા મણહ ચરિત્તં તુ વવહારો ॥ ૨૭૬ ॥

આદાં શુ મજ્ઞાણાણં આદાં મે દંસણં ચરિત્તં ચ ।

આદાં પચ્ચક્ખાણં આદાં મે સંવરો જોગો ॥ ૨૭૭ ॥

‘આયાર’ આદિ જ્ઞાન છે, જીવાદિ દર્શન જાણવું,
પદ્ધત્તનિકાય ચરિત છે,—એ કથન નય વ્યવહારનું. ૨૭૬.
મુજ આત્મ નિશ્ચય જ્ઞાન છે, મુજ આત્મ દર્શન ચરિત છે,
મુજ આત્મ પ્રત્યાખ્યાન ને મુજ આત્મ સંવર યોગ છે. ૨૭૭.

માચારાદિ જ્ઞાનં મીવાદિ દર્શનં ચ વિજ્ઞેયમ્ ।

પદ્મીવનિકાયં ચ તથા મળતિ ચરિત્રં તુ વ્યવહારઃ ॥ ૨૭૬ ॥

આત્મા મન્તુ મમ જ્ઞાનમાત્મા મે દર્શનં ચરિત્રં ચ ।

માત્મા મન્યાત્માનમાત્મા મે મંવરો યોગઃ ॥ ૨૭૭ ॥

અન્વયાર્થઃ—[માચારાદિ] આચારાંગ આદિ શાસ્ત્રો તે [જ્ઞાનં] જ્ઞાન છે, [મીવાદિ] એવ આદિ તત્ત્વો તે [દર્શનં વિજ્ઞેયં ચ] દર્શન બાહ્યું [ચ] અને [પદ્મીવનિકાયં] છ એવ-નિકાય તે [ચરિત્રં] ચારિત્ર છે—[તથા તુ] એમ તો [વ્યવહારઃ મળતિ] વ્યવહારનય કહે છે.

[ચતુ] નિશ્ચયથી [મમ આત્મા] મારો આત્મા જ [જ્ઞાનં] જ્ઞાન છે, [મે આત્મા] મારો આત્મા જ [દર્શનં ચરિત્રં ચ] દર્શન અને ચારિત્ર છે, [આત્મા] મારો આત્મા જ [મન્યાત્માનં] પ્રત્યાખ્યાન છે, [મે આત્મા] મારો આત્મા જ [સંઘટઃ યોગઃ] સંઘર અને યોગ (સમાધિ, ધ્યાન) છે.

ટીકા—આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુત તે જ્ઞાન છે કારણ કે તે (શબ્દશ્રુત) જ્ઞાનનો આશ્રય છે, એવ આદિ નવ પદાર્થો દર્શન છે કારણ કે તે (નવ પદાર્થો) દર્શનનો આશ્રય છે, અને છ એવ-નિકાય ચારિત્ર છે કારણ કે તે (છ એવ-નિકાય) ચારિત્રનો આશ્રય છે; એ પ્રમાણે વ્યવહાર છે. શુદ્ધ આત્મા જ્ઞાન છે કારણ કે તે (શુદ્ધ આત્મા) જ્ઞાનનો આશ્રય છે, શુદ્ધ આત્મા દર્શન છે કારણ કે તે દર્શનનો આશ્રય છે, અને શુદ્ધ આત્મા ચારિત્ર છે કારણ કે તે ચારિત્રનો આશ્રય છે; એ પ્રમાણે નિશ્ચય છે. તેમાં, વ્યવહારનય પ્રતિષેધ અર્થાત્ નિષેધ છે, કારણ કે આચારાંગ આદિને જ્ઞાનાદિયું આશ્રયપણું અનેકાંતિક છે—વ્યભિચારશુદ્ધિ છે; (શબ્દશ્રુત આદિને જ્ઞાન આદિના આશ્રયસ્વરૂપ માનવામાં વ્યભિચાર આવે છ કેમ કે શબ્દશ્રુત આદિ હોવા છતાં જ્ઞાન આદિ નથી પણ હોતાં, મારે વ્યવહારનય પ્રતિષેધ છે); અને નિશ્ચયનય વ્યવહારનયનો આદિ પ્રતિષેધ છે, કારણ કે શુદ્ધ આત્માને જ્ઞાન આદિયું આશ્રયપણું એકાંતિક છે. (શુદ્ધ આત્માને જ્ઞાનાદિના આશ્રય માનવામાં વ્યભિચાર નથી કેમકે જ્યાં શુદ્ધ આત્મા હોય ત્યાં જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર હોય જ છે.) આ વાત હેતુ સહિત સમગ્રવચમાં આવે છે:—

આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુત એકાંતે જ્ઞાનનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેના (અર્થાત્ શબ્દશ્રુતના) સંસ્થાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ આત્માના અભાવને લીધે જ્ઞાનનો અભાવ છે; એવ આદિ નવ પદાર્થો દર્શનનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેમના સંસ્થાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ આત્માના અભાવને લીધે દર્શનનો અભાવ છે; ■ એવ-નિકાય ચારિત્રનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેમના સંસ્થાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ

આત્માના અભાવને લીધે ચારિત્રનો અભાવ છે. શુદ્ધ આત્મા જ જ્ઞાનનો કારણ કે આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુતના સદ્ભાવમાં કે અસદ્ભાવમાં તેના શુદ્ધ આત્માના) સદ્ભાવથી જ જ્ઞાનનો સદ્ભાવ છે; શુદ્ધ આત્મા જ દર્શન છે, કારણ કે જીવ આદિ નવ પદાર્થોના સદ્ભાવમાં કે અસદ્ભાવમાં તેના શુદ્ધ આત્માના) સદ્ભાવથી જ દર્શનનો સદ્ભાવ છે; શુદ્ધ આત્મા જ ચારિત્ર છે, કારણ કે જીવ-નિકાયના સદ્ભાવમાં કે અસદ્ભાવમાં તેના (અસદ્ આત્માના) સદ્ભાવથી જ ચારિત્રનો સદ્ભાવ છે.

ભાવાર્થ:—આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુતનું જાણવું, જીવાદિ નવ શ્રદ્ધાન કરવું તથા જ કાયના જીવોની રક્ષા—એ સર્વ હોવા છતાં અભાવ દર્શન, ચારિત્ર નથી હોતાં, તેથી વ્યવહારનય તો નિષેધ છે; અને શુદ્ધાત્મા જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર હોય જ છે, તેથી નિશ્ચયનય વ્યવહારનો નિષેધ શુદ્ધનય ઉપાદય કહ્યો છે.

હવે આગળના કથનની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપમતિ)

રાગાદયો વંધનિદાનમુક્તા-

સ્તે શુદ્ધચિન્માત્રમહોઽતિરિક્તાઃ ।

આત્મા પરો વા કિમ્ તન્નિમિત્ત-

મિતિ પ્રણનાઃ પુનરેવમાહુઃ ॥ ૧૭૪ ॥

અર્થ:—“રાગાદિકને બંધનાં કારણ કહ્યા અને વળી તેમને શુદ્ધચિન્માત્ર (અર્થાત્ આત્માથી) ભિન્ન કહ્યા; ત્યારે તે રાગાદિકનું નિમિત્ત આત્મા કે બીજું કેમ? ” એવા (શિષ્યના) પ્રશ્નથી પ્રેરિત થયા થકા આચાર્યભગવાન આમ (નીચે પ્રમાણે) કહે છે. ૨૭૬—૨૭૭.

ઉપરના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે આચાર્યભગવાન ગાથા કહે છે:—

જહ ફલિહમણી સુદો જ સયં પરિણમદ્ રાયમાર્હિં ।

રંગિજદિ અણ્ણેહિં દુ સો રત્તાદીહિં દવ્વેહિં ॥ ૨૭૮ ॥

ન્યમ સ્ફટિકમણિ છે શુદ્ધ, રક્તરૂપે સ્વયં નહિ પરિણમે, પણ અન્ય જે રક્તરૂપે દ્રવ્યો તે વડે રાનો બને; ૨૭૮

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।

राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥ २७९ ॥

यथा स्फटिकमणिः शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।

रज्यतेऽन्यैस्तु न रक्तादिभिर्द्रव्यैः ॥ २७८ ॥

एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।

રજ્યતેઽન્યૈસ્તુ ન રાગાદિભિર્દોષૈઃ ॥ ૨૭૯ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યથા] એમ [સ્ફટિકમણિઃ] સ્ફટિકમણિ [શુદ્ધઃ] શુદ્ધ
હોવાથી [રાગાદ્યૈઃ] રાગાદિરૂપે (રસાસા-આદિરૂપે) [સ્વયં] પોતાની યોગે [ન
રેણમતે] પરિભ્રમતો નથી [તુ] પરંતુ [અન્યૈઃ રક્તાદિભિઃ દ્રવ્યૈઃ] અન્ય રક્ત આદિ
દ્રવ્યો વડે [સઃ] તે [રજ્યતે] રજા (-સતો) આદિ કરાય છે, [પરં] તેમ [જ્ઞાની]
ની અર્થાત્ આત્મા [શુદ્ધઃ] શુદ્ધ હોવાથી [રાગાદ્યૈઃ] રાગાદિરૂપે [સ્વયં] પોતાની
યોગે [ન પરિણમતે] પરિભ્રમતો નથી [તુ] પરંતુ [અન્યૈઃ રાગાદિભિઃ દોષૈઃ] અન્ય
ગાદિ દોષો વડે [સઃ] તે [રજ્યતે] રાગી આદિ કરાય છે.

टीका—येषी इति अरेभर केवण (अरेभो) स्फटिकमणि, पीते परिभ्रमन्-
स्वभाववागे। होवा छातां, पीताने शुद्धस्वभावपञ्चाने लीये रागादिनुं निमित्तपञ्चं नहि
होवाधी (अर्थात् पीते पीताने सासास-आदिरूप परिभ्रमन्नुं निमित्त नहि होवाधी)
पानांनी येगे रागादिरूपे परिभ्रमता नधी, परंतु ये पीतानी येगे रागादिसावने
मत्तुं होवाधी स्फटिकमणिने रागादिनुं निमित्त थाय छ अवेा परद्रव्य वडे न, शुद्ध-
स्वभावधी श्रुत यतो थको न, रागादिरूपे परिभ्रमावाय छ; तेवी इति अरेभर केवण
अरेभो) आत्मा, पीते परिभ्रमन्-स्वभाववागे। होवा छातां, पीताने शुद्धस्वभावपञ्चाने
ये रागादिनुं निमित्तपञ्चं नहि होवाधी (अर्थात् पीते पीताने रागादिरूप परिभ्रमन्नुं
निमित्त नहि होवाधी) पीतानी येगे रागादिरूपे परिभ्रमता नधी, परंतु ये पीतानी
येगे रागादिसावने पामत्तुं होवाधी आत्माने रागादिनुं निमित्त थाय छ अवेा परद्रव्य
न, शुद्धस्वभावधी श्रुत यतो थको न, रागादिरूपे परिभ्रमावाय छ.—आवेा
पुनो स्वभाव छ.

એમ 'જ્ઞાની' પણ છે શુદ્ધ, રાગરૂપે સ્વયં નહિ, પરિભ્રમે.

પણ અન્ય જે રાગાદિ દોષો ને વડે રાગી બને

ભાવાર્થ:—સ્ફટિકમણિ પોતે તો કેવળ એકાકાર શુદ્ધ જ છે; તે પરિણમ સ્વભાવવાળો હોવા છતાં એકલો પોતાની મેળે લાક્ષણ-આદિરૂપે પરિણમતો નથી પરંતુ લાલ આદિ પરદ્રવ્યના નિમિત્તે (અર્થાત્ સ્વયં લાક્ષણ-આદિરૂપે પરિણમ એવા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે) લાક્ષણ-આદિરૂપે પરિણમે છે. તેવી રીતે આત્મા પોતે શુદ્ધ જ છે; તે પરિણમનસ્વભાવવાળો હોવા છતાં એકલો પોતાની મેળે રાગાદિ પરિણમતો નથી પરંતુ રાગાદિરૂપ પરદ્રવ્યના નિમિત્તે (અર્થાત્ સ્વયં રાગાદિ પરિણમતા એવા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે) રાગાદિરૂપે પરિણમે છે. આવો વસ્તુતો જ રાગ છે, તેમાં અન્ય કોઈ તર્કને અવકાશ નથી.

હવે આ અર્થનું કથારૂપ કાન્થ કહે છે:—

(ઉપમતિ)

ન જાતુ રાગાદિનિમિત્તભાવ-
માત્માત્મનો યાતિ યયાર્કકાંતઃ ।
તસ્મિન્નિમિત્તં પરસંગ એવ
વસ્તુસ્વભાવોઽપ્યમુદેતિ યાવન્ ॥ ૧૭૫ ॥

અર્થ:—સૂર્યકાંતમણિની આકૃતિ (અર્થાત્ જેમ સૂર્યકાંતમણિ પોતે પરિણમતો નથી, તેના અગ્નિરૂપ પરિણમનમાં સૂર્યનું બિંબ નિર્મિત થાય તેમ) આત્મા પોતાને રાગાદિકનું નિમિત્ત કરી પરિણમતો નથી, તેમાં નિમિત્ત જ (પરદ્રવ્યનો અંગ જ) છે.—આવો વસ્તુસ્વભાવ પ્રકાશમાન છે. (સાવ અતો જ સ્વભાવ છે, કોઈએ કહેલો નથી).

‘આવો વસ્તુસ્વભાવને અનુભવે જાણી રાગાદિકને પાતાના કરેલો નથી’ એવો અનુભવની ગાથાની સૂચનારૂપ શ્લોક હવે કહે છે:—

(અનુકરણ)

ઈતિ વસ્તુસ્વભાવં જ્ઞં જ્ઞાતી જ્ઞાનાતિ જ્ઞેન ગઃ ।
રગાદીન્નાત્મવનઃ કુર્વાન્નાત્મો યદતિ કારકઃ ॥ ૧૭૬ ॥

અર્થ:—જેવા પાતાના વસ્તુસ્વભાવને જાણી જાણે તેથી તે જાણનાર નથી, તેવી જ (અનુદિક્ષણ) કરી નથી. ૧૭૬—૨૪.

હવે, એ વસ્તુ જ જાણનાર કહે છે:—

ન ચ રાયદોસમોહં કુલ્લદિ ણાણી કસાયમાવં વા ।

સયમપ્પણો ન સો તેણ કારગો તેસિં ભાવાણં ॥ ૨૮૦ ॥

ન ચ રાગદ્વેષમોહં કરોતિ જ્ઞાની કપાયમાવં વા ।

સ્વયમાત્મનો ન જ તેન કારકસ્તેષાં ભાવાનામ્ ॥ ૨૮૦ ॥

અન્વયાર્થ:—[જ્ઞાની] જ્ઞાની [રાગદ્વેષમોહં] રાગદ્વેષભોલને [વા કપાયમાવં] કપાયભાવને [સ્વયં] પાતાની ભેગે [આત્મનઃ] પાતામાં [ન ચ કરોતિ] કરતો નથી [તેન] તેથી [સ્તઃ] તે, [તેષાં માયાનાં] તે ભાવોના [કારકઃ જ] કારક અર્થાત્ તો નથી.

ટીકા—યથાજ્ઞ (અર્થાત્ જેવો કદ્યો તેવા) વસ્તુસ્વભાવને જાણતો જ્ઞાની પાતાના) શુદ્ધસ્વભાવથી જ ગ્રહીત થતો નથી તેથી રાગ-દ્વેષ-ભોલ આદિ ભાવોરૂપે જ્ઞાની ભેગે પરિણમતો નથી અને પર વડે પણ પરિણમવાનો નથી, આટલું જ કહેવાની છે. એક શાયકભાવસ્વરૂપ જ્ઞાની રાગ-દ્વેષ-ભોલ આદિ ભાવોના અકર્તા જ છે—એવો નેયમ છે.

ભાવાર્થ:—આત્મા જ્ઞાની થયો ત્યારે વસ્તુનો એવો સ્વભાવ જાણ્યો કે આત્મા પાતે તો શુદ્ધ જ છે—દ્રવ્યદષ્ટિએ અપરિણમનસ્વરૂપ છે, પર્યાયદષ્ટિએ પર-વ્યના નિમિત્તથી રાગાદિરૂપે પરિણમે છે; આટલું જ જ્ઞાની પાતે તે ભાવોના કર્તા તો નથી, ઉદયો આવે તેમના જ્ઞાતા જ છે.

‘આવા વસ્તુસ્વભાવને અજ્ઞાની જાણતો નથી તેથી તે રાગાદિ ભાવોના કર્તા થાય છે’ એવા અર્થના, વ્યાગજની ગાથાની સૂચનિકારૂપે સ્તોત્ર હવે કહે છે:—

(અનુક્રમ)

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।

रागादीनात्मनઃ કુર્યાદતો ભવતિ કારકઃ ॥ ૧૭૭ ॥

અર્થ:—એવા પાતાના વસ્તુસ્વભાવને અજ્ઞાની જાણતો નથી તેથી તે રાગાદિ (રાગાદિભાવોને) પાતાના કરે છે, તેથી (તેમના) કર્તા થાય છે. ૧૮૦.

હવે આ અર્થની ગાથા કહે છે:—

કદી રાગદ્વેષવિભોલ અગર કપાયભાવો નિજ વિષે જ્ઞાની સ્વયં કરતો નથી, તેથી ન તત્કારક છે. ૨૮૦.

અપતિક્રમણં દિવિષમમન્યાસ્યાનં તથા ત્રિભંગમ ।
 एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णिनधेनयिता ॥ ૨૮૩ ॥
 અપતિક્રમણં દિવિષં દ્રવ્યે માતૈ તથામન્યાસ્યાનમ્ ।
 एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णिनधेनयिता ॥ ૨૮૪ ॥
 યાવદ્અપતિક્રમણમન્યાસ્યાનં ચ દ્રવ્યમાયયોઃ ।
 करोत्यात्मा तावन्कर्ता स भवति ज्ञातव्यः ॥ ૨૮૫ ॥

અન્યથાર્થ:—[અપતિક્રમણં] અપ્રતિક્રમ્ય [દિવિષં] એ પ્રકારનું [તથા
 एष] તેમ જ [અપ્રત્યાસ્યાનં] અપ્રત્યાખ્યાન એ પ્રકારનું [ચિત્તં] અવસ્થા
 [एतेन उपदेशेन च] આ ઉપદેશથી [ચેતયિતા] આત્મા [ચકારકઃ વર્ણિતઃ]
 अकारकं वर्णयिताम् आन्यो छ.

[અપતિક્રમણં] અપ્રતિક્રમ્ય [દિવિષં] એ પ્રકારનું છે—[દ્રવ્યે માતૈ]
 द्रव्य संबन्धी અને ભાવ સંબંધી; [તથા અપ્રત્યાસ્યાનં] તેથી રીતે અપ્રત્યાખ્યાન
 પણ એ પ્રકારનું છે—દ્રવ્ય સંબંધી અને ભાવ સંબંધી;—[एतेन उपदेशेन च] આ
 ઉપદેશથી [ચેતયિતા] આત્મા [ચકારકઃ વર્ણિતઃ] અકારક વર્ણવવામાં આન્યો છે.

[યાવત્] ત્યાંસુધી [આત્મા] આત્મા [દ્રવ્યમાયયોઃ] દ્રવ્યનું અને ભાવનું
 [અપતિક્રમણં ચ અપ્રત્યાસ્યાનં] અપ્રતિક્રમ્ય તથા અપ્રત્યાખ્યાન [કરોતિ] કરે છે
 [તાવત્] ત્યાંસુધી [સઃ] તે [કર્તા ભવતિ] કર્તા થાય છે [જ્ઞાતવ્યઃ] એમ જાણવું.

ટીકા:—આત્મા પાતાથી સંગાદિકનો અકારક જ છે; કારણ કે, જો એમ ન
 હોય તો (અર્થાત્ જો આત્મા પાતાથી જ સંગાદિભાવોનો કારક હોય તો) અપ્રતિક્રમ્ય
 અને અપ્રત્યાખ્યાનના દિવિષપણાનો ઉપદેશ બની શકે નહિ. અપ્રતિક્રમ્ય અને
 અપ્રત્યાખ્યાનનો જે અરેખર દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદ દિવિષ (એ પ્રકારનો) ઉપદેશ છે
 તે, દ્રવ્ય અને ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણાને બાહુર કરતો થકો, આત્માના અકારકપણાને
 જ જણાવે છે. માટે એમ નહીં થયું કે પરદ્રવ્ય નિમિત્ત છે અને આત્માના સંગાદિભાવો
 નૈમિત્તિક છે. જો એમ ન માનવામાં આવે તો અને દ્રવ્ય અપ્રત્યા-
 ખ્યાનનો કર્તાપણાનાં નિમિત્ત તરીકેનો ઉપદેશ તે નિર્ધારક થઈ
 એક જ આત્માને સંગાદિભાવોનું નિમિત્તપણું પાતો પ્રત્ય-
 આવવાથી મોક્ષનો અભાવ હો- નિમિત્ત હો-
 અને એમ હોતાં, આત્મા રીતે ભો-
 આત્મા સંગાદિકનો અકારક

પ્રતિક્રમનો નથી તથા પચખનો નથી (અર્થાત્ જ્યાંગુધી નિમિત્તભૂત દ્રવ્યનું પ્રતિક્રમનું તથા પચખાણુ કરેનો નથી) ત્યાંગુધી નૈમિત્તિકભૂત ભાવને (-સાગાદિભાવને) પ્રતિક્રમનો નથી તથા પચખનો નથી, અને જ્યાંગુધી ભાવને પ્રતિક્રમનો નથી તથા પચખનો નથી ત્યાંગુધી કર્તા જ છે; જ્યારે નિમિત્તભૂત દ્રવ્યને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે ત્યારે જ નૈમિત્તિકભૂત ભાવને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે, અને જ્યારે ભાવને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે ત્યારે સાક્ષાત્ અકર્તા જ છે.

ભાવાર્થ:—અતીત કાળમાં જે પરદ્રવ્યોનું પ્રદુષ્યું હતું તેમને વર્તમાનમાં સારા જાણવા, તેમના સંસ્કાર રહેવા, તેમના પ્રત્યે મમત્વ રહેવું, તે દ્રવ્ય અપ્રતિક્રમનું છે અને તે પરદ્રવ્યોના નિમિત્તે જે સગાદિભાવો થયા હતા તેમને વર્તમાનમાં બસા જાણવા, તેમના સંસ્કાર રહેવા, તેમના પ્રત્યે મમત્વ રહેવું, તે ભાવ અપ્રતિક્રમજી છે. તેથી રીતે આત્માથી કાળ સંબંધી પરદ્રવ્યોની વાંછા રાખવી, મમત્વ રાખવું, તે દ્રવ્ય અપ્રત્યાખ્યાન છે અને તે પરદ્રવ્યોના નિમિત્તે આત્માથી કાળમાં થનારા જે સગાદિભાવો તેમની વાંછા રાખવી, મમત્વ રાખવું, તે ભાવ અપ્રત્યાખ્યાન છે. આમ દ્રવ્ય અપ્રતિક્રમજી ને ભાવ અપ્રતિક્રમજી તથા દ્રવ્ય અપ્રત્યાખ્યાન ને ભાવ અપ્રત્યાખ્યાન—એવો જે અપ્રતિક્રમજી અને અપ્રત્યાખ્યાનનો એ પ્રકારનો ઉપદેશ છે તે દ્રવ્ય-ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકભાવને જણાવે છે. માટે એમ હતું કે પરદ્રવ્ય તો નિમિત્ત છે અને સગાદિભાવો નૈમિત્તિક છે. આ રીતે આત્મા સગાદિભાવોને સ્વયંમેવ નહિ કરેના દેશવાર્થી તે સગાદિ-ભાવોના અકર્તા જ છે એમ સિદ્ધ થયું. આ પ્રમાણે જોકે આ આત્મા સગાદિભાવોના અકર્તા જ છે તોપણ જ્યાંગુધી તેને નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્યનાં અપ્રતિક્રમજી-અપ્રત્યાખ્યાન છે ત્યાંગુધી તેને સગાદિભાવોનાં અપ્રતિક્રમજી-અપ્રત્યાખ્યાન છે, અને જ્યાંગુધી સગાદિભાવોનાં અપ્રતિક્રમજી-અપ્રત્યાખ્યાન છે ત્યાંગુધી તે સગાદિભાવોના કર્તા જ છે; જ્યારે તે નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્યનાં પ્રતિક્રમજી-પ્રત્યાખ્યાન કરે ત્યારે તેને નૈમિત્તિક સગાદિભાવોનાં પણ પ્રતિક્રમજી-પ્રત્યાખ્યાન થઈ જાય છે, અને જ્યારે સગાદિભાવોનાં પ્રતિક્રમજી-પ્રત્યાખ્યાન થઈ જાય છે ત્યારે તે સાક્ષાત્ અકર્તા જ છે. ૨૮૬-૨૮૭.

હવે દ્રવ્ય અને ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપ્રમાણું ઉદાહરણ કરે છે:—

આપાકમાર્હયા પુગ્ગલદ્વયસ્મ જં દમે દોમા ।

પ્રહ તે પુગ્ગલ ણાળી પરદવ્યગુણા ઉ જે ણિયં ॥ ૨૮૮ ॥

આપાકરમ મત્યાદિ પુદ્ગલદ્રવ્યના આ દોષ જે,

તે દેમ 'જાની' કરે સદા પરદ્રવ્યના જે ગુણ જે.

આધાકર્મ્યં ઉદ્દેશિયં ચ પુણ્યલભ્યં ઇમં દ્રવ્યં ।

કહ તં મમ હોઢ કયં જં ણિજમત્તેયણં ઉત્તં ॥ ૨૮૭ ॥

• અધઃકર્માણાઃ પુણ્યલભ્યસ્ય ચ ઉમે દોષાઃ ।

કયં નાન્ કરોતિ જ્ઞાની પરદ્રવ્યગુણાન્તુ મં નિન્યમ્ ॥ ૨૮૬ ॥

અધઃકર્મોદ્દેશિકં ચ પુણ્યલભ્યમિદં દ્રવ્યં ।

કયં તન્મમ મનનિ કનં ચન્નિન્યમનંતનમુક્તમ્ ॥ ૨૮૭ ॥

અન્યથાર્થઃ—[અધઃકર્માણાઃ ચે રમે] અધઃકર્મ આદિ જે આ [પુણ્યલભ્યસ્ય] પુણ્યલભ્યના દોષો છે (તેમને જ્ઞાની અર્થાન્ આત્મા કરતો નથી); [તત્] તેમને [જ્ઞાની] જ્ઞાની અર્થાન્ આત્મા [કયં કરોતિ] કેમ કરે [ચે તુ] કે જે [નિન્યમ] સદા [પરદ્રવ્યગુણાઃ] પરદ્રવ્યના ગુણો છે?

ભાટ [અધઃકર્મ ઉદ્દેશિકં ચ] અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક [ઈદં] એવું [પુણ્યલભ્યં દ્રવ્યં] પુણ્યલભ્ય દ્રવ્ય છે (તે મારું કયું થતું નથી); [તત્] તે [કયં મયતિ] કેમ થાય [યદ્] કે જે [નિન્યમં] સદા [અચેતન ઉત્તં] અચેતન કહેવામાં આવ્યું છે?

ટીકા:—જેમ અધઃકર્મથી નીપજેલું અને ઉદ્દેશથી નીપજેલું એવું જે નિમિત્તભૂત (આહાર આદિ) પુણ્યલભ્ય તેને નહિ પચખતો આત્મા (ચુનિ) નૈમિત્તિકભૂત અધસાધક ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને નહિ પચખતો (નહિ ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી. વળી, “અધઃકર્મ આદિ જે પુણ્યલભ્યના દોષો તેમને આત્મા ખરેખર કરતો નથી કારણ કે તેઓ પરદ્રવ્યનાં પરિણામ હોવાથી તેમને આત્માના કાર્યપણાને અચાર છે; ભાટ અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક એવું જે પુણ્યલભ્ય તે મારું કાર્ય નથી કારણ કે નિત્ય અચેતન હોવાથી તેને મારા કાર્યપણાને અભાવ છે;”—એમ તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક નિમિત્તભૂત પુણ્યલભ્યને પચખતો આત્મા (ચુનિ) જેમ નૈમિત્તિકભૂત અધસાધક ભાવને પચખે છે, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને પચખતો (ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખે છે. આ પ્રમાણે દ્રવ્ય અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું છે.

ઉદ્દેશી તેમ જ અધઃકર્મો પૌદ્ગલિક આ દ્રવ્ય જે, તે કેમ મુજકૃત હોય નિત્ય અજીવ ભાવ્યું જેહને? ૨૮૬.

સાવાર્થ:—અહીં અર્થકર્મ અને ઉદ્દેશિક આદારના કષ્ટાંતથી દ્રવ્ય અને પ્રવૃત્તિ નિમિત્ત-નિમિત્તિકપણું દૃઢ કર્યું છે.

જે પાપકર્મથી આદાર નીપજે તે પાપકર્મને અર્થકર્મ કહેવામાં આવે છે, મ જ તે આદારને પણ અર્થકર્મ કહેવામાં આવે છે. જે આદાર, પ્રદુષ્ટ કરનારના મિત્રે જ બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઉદ્દેશિક કહેવામાં આવે છે. આવા (અર્થકર્મ અને ઉદ્દેશિક) આદારને જેણે પચખ્યા નથી તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખ્યા નથી અને જેણે તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક તે આદારને પચખ્યા છે તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને ત્યજ્યા છે. આ રીતે સમસ્ત દ્રવ્યને અને ભાવને નિમિત્ત-નિમિત્તિકભાવ જાણવો, જે પરદ્રવ્યને પ્રદુષ્ટ કરે છે તેને સમાવિષ્ટાવો પણ થાય છે, તે તેમના કર્તા પણ થાય છે અને તેથી કર્મના જન્મ પણ કરે છે; જ્યારે આત્મા જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને કાંઈ પ્રદુષ્ટ કરવાનો શક્ય નથી, તેથી સમાવિષ્ટ પશ્ચિમન પણ નથી અને તેથી આગામી જન્મ પણ નથી. એ રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી.

હવે આ અર્થકર્મ કળાશરૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં પરદ્રવ્યને ત્યાગવાનો ઉપદેશ કરે છે:—

(શાંતિપરિવર્તિનિ)

સ્વાત્મ્યોચ્ચ વિવેચ્ય તત્ત્વિજ્ઞ પરદ્રવ્યં તયગ્નં વચાન્

તન્મૂલં વદુભાવસંતતિમિમામુદ્વર્તુષામઃ મમમ્ ।

માત્માનં સમુપેતિ નિર્ભરચત્પૂર્ણવર્તવિપુલં

પેનોન્મૂલિતર્કય એવ મગવાનાત્માત્મનિ રત્નર્મનિ ॥ ૧૭૮ ॥

અર્થ:—આત્મા (પરદ્રવ્યનું અને પાતાના ભાવનું નિમિત્ત-નિમિત્તિકપણું) નિષ્કારીને, પરદ્રવ્ય જેનું મૂળ છે એવી આ બધું ભાવોની સંતતિને એકીસાથ ટુંકવી નાખવાને કષ્ટાંતો પુરત, તે સમસ્ત પરદ્રવ્યને ભગથી (-ઉપભથી, પરાકર્મથી) બિજા રીતે (-ત્યાગીને), અનિશ્ચયપણું વાદનું (-નાશવાદી) જે પૂર્ણ એક સંવેદન તેનાથી ક્ષણ એવા પાતાના આત્માને પામી છે, કે જેથી જેનું કર્મજનનને મુક્તથી ટુંકવી નાખ્યું છે એવો આ ભગવાન આત્મા પાતામાં જ (-આત્મામાં જ) સુશાસન થાય છે.

સાવાર્થ:—પરદ્રવ્યનું અને પાતાના ભાવનું નિમિત્ત-નિમિત્તિકપણું આત્મા સમસ્ત પરદ્રવ્યને બિજા કરવામાં—ત્યાગવામાં આવે ત્યારે સમસ્ત સમાવિષ્ટાવોની સંતતિ કપાઈ જાય છે અને ત્યારે આત્મા પાતાનો જ અનુભવ કરતો થતો કર્મના જનનને પાપી પાત્રમાં જ પ્રસારી છે. ખાતે જે પાતાનું દિવ્ય કાર્ય છે તે એક કર્મ.

આધાકમ્મં ઉદ્દસિયં ચ પુગલમયં ઇમં દ્રવ્યં ।

કહ તં મમ હોઢ કયં જં ણિવમત્તેયણં ઉત્તં ॥ ૨૮૭ ॥

અધઃકર્મણાઃ પુટ્તદ્રવ્યસ્ય ચ ઇમે દોષાઃ ।

કયં તાન્ કરોતિ જ્ઞાની પરદ્રવ્યગુણાન્તુ ચ નિત્યમ ॥ ૨૮૬ ॥

અધઃકર્મોદ્દેશિકં ચ પુટ્તલમયમિદં દ્રવ્યં ।

કયં તન્મમ ભવતિ કૃતં ચન્નિત્યમવેતનમુક્તમ ॥ ૨૮૭ ॥

અન્વયાર્થઃ—[અધઃકર્મણાઃ ચે ઇમે] અધઃકર્મ આદિ જે આ [દોષાઃ] પુટ્તલદ્રવ્યના દોષો છે (તેમને જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા કરતો નથી); [તાન્] તેમને [જ્ઞાની] જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા [કયં કરોતિ] કેમ કરે [ચે તુ] કે જે [નિત્ય] સદા [પરદ્રવ્યગુણાઃ] પરદ્રવ્યના ગુણો છે?

માટે [અધઃકર્મ ઉદ્દેશિકં ચ] અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક [ઇવં] એવું [પુટ્તલમયં દ્રવ્યં] પુટ્તલમય દ્રવ્ય છે (તે મારું કંઈ થતું નથી); [તદ્] તે [કૃતં] મારું કંઈ [કયં ભવતિ] કેમ થાય [યદ્] કે જે [નિત્યં] સદા [અવેતનં] અવેતન કહેવામાં આવ્યું છે?

ટીકા:—જેમ અધઃકર્મથી નીપજેલું અને ઉદ્દેશથી નીપજેલું એવું જે નિમિત્તભૂત (આહાર આદિ) પુટ્તલદ્રવ્ય તેને નહિ પચખતો આત્મા (નુનિ) નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને નહિ પચખતો (નહિ ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી. વળી, “અધઃકર્મ આદિ જે પુટ્તલદ્રવ્યના દોષો તેમને આત્મા ખરેખર કરતો નથી કારણ કે તેઓ પરદ્રવ્યનાં પરિણામ હોવાથી તેમને આત્માના કાર્યપણાને અભાવ છે; માટે અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક એવું જે પુટ્તલદ્રવ્ય તે મારું કાર્ય નથી કારણ કે તે નિત્ય અવેતન હોવાથી તેને મારા કાર્યપણાને અભાવ છે;”—એમ તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક નિમિત્તભૂત પુટ્તલદ્રવ્યને પચખતો આત્મા (નુનિ) જેમ નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખે છે, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને પચખતો (ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખે છે. આ પ્રમાણે દ્રવ્ય અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું છે.

ઉદ્દેશી તેમ જ અધઃકર્મી પૌદ્ગલિક આ દ્રવ્ય જે, તે કેમ મુજકૃત હોય નિત્ય અજીવ ભાખ્યું જોડેને? ૨૮૭.

આવાર્થ:—અહીં અધઃકર્મ અને ઉદેશિક આહારના દ્વાંતથી દ્રવ્ય અને
પદ્મ નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું દૃઢ કયું છે.

જે પાપકર્મથી આહાર નીપજે તે પાપકર્મને અધઃકર્મ કહેવામાં આવે છે,
મ જ તે આહારને પણ અધઃકર્મ કહેવામાં આવે છે. જે આહાર, મહુલ કરનારના
નિમિત્તે જ બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઉદેશિક કહેવામાં આવે છે. આવા (અધઃકર્મ
ને ઉદેશિક) આહારને જેણે પચ્યો નથી તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચ્યો
ધી અને જેણે તત્વમાનપૂર્વક તે આહારને પચ્યો છે તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને
ચ્યો છે. આ રીતે સમસ્ત દ્રવ્યને અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકભાવ બહુવો. જે
દ્રવ્યને મહુલ કરે છે તેને રાગાદિભાવો પણ થાય છે, તે તેમના કર્તા પણ થાય છે
ને તેથી કર્મના જાંબ પણ કરે છે; જ્યારે આત્મા જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને કાંઈ મહુલ
વાના રાગ નથી, તેથી રાગાદિરૂપ પરિણમન પણ નથી અને તેથી આગામી જાંબ
જ નથી. એ રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી.

હવે આ અર્થનું કથારૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં પરદ્રવ્યને ત્યાગવાનો ઉપ-
દેશ કરે છે:—

(ચાર્લસવિદિગિત)

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं यत्नात्
तन्मूलां बहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समयम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णकसंविद्युतं
येनोन्मूलितवैष एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्ति ॥ ૧૭૮ ॥

અર્થ:—આમ (પરદ્રવ્યનું અને પાતાના ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું)
વેચારીને, પરદ્રવ્ય જેવું મૂળ છે એવી આ બહુ ભાવોની સંતતિને બીડીશામે વળી
માખવાને હચ્છનો પુરુષ, તે સમસ્ત પરદ્રવ્યને જાંબી (-ઉચ્ચમી, પચાકમી) મિત્ર
રીતે (ત્યાગીતે), અતિશયપણે વહેવું (-પાશવાદી) જે પૂર્ણ કામ લાંબકા પાતાની
જ એવા પાતાના આત્માને પામે છે, કે જેથી જેણે કર્મજાંબનો ધ્યાનથી ત્યાગી
પણું છે એવો આ ભગવાન આત્મા પાતામાં જ (આત્મામાં જ) વહેવાપણા
ય છે.

આવાર્થ:—પરદ્રવ્યનું અને પાતાના ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું દૃઢ
પરદ્રવ્યને મિત્ર કરવામાં— પાતાના ભાવને પાતાના ભાવને પાતાના ભાવને
તે કપાઈ જાય છે અને ત્યાગ આત્મા આત્મામાં જ અનુભવ કરેલી થઈ કર્મના
ને કાપી પાતામાં જ પ્રકાશ પાતાના દિગ્દર્શક આત્મામાં તે તે જાંબ કરે.

આવાર્થ:—જ્ઞાન બંધ-પુરુષને બુદ્ધ કરીને, પુરુષને મોક્ષ પમાડું પાતાવું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ પ્રગટ કરીને જ્યવંત પ્રવર્તે છે. આમ જ્ઞાનવું સર્વોન્ન કહેવું તે જ મંગળવચન છે.

હવે, મોક્ષની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે થાય છે તે કહે છે. તેમાં પ્રથમ તો, બે બંધનો છે: કર્મો નથી પરંતુ માત્ર બંધના સ્વરૂપને બાલુવાધી જ સંતુષ્ટ છે તે પામતો નથી—એમ કહે:—

જહ નામ કોવિ પુરિસો વંધણયમ્મિ ચિરકાલપડિવદ્ધો
તિવ્વં મંદસહાવં કાલં ચ વિયાણે તસ્સ ॥ ૨૮૮ ॥
જહ્ નવિ કુણહ્ રુલ્લેદં ન મુગ્ગે તેણ વંધણવસો સં ।
કાલેણ ઉ વહુણે વિ ન સો જરો પાવહ્ વિમોક્કસં ॥ ૨૮૯ ॥
इय कम्मबंधणाणं पएसठिइणयडिमेवमणुभावं ।
जाणंतो वि न मुग्ह मुग्ह मो नेव जह मुद्धो ॥ २९० ॥

જાહ નામ કોવિપુરિસો વંધણયમ્મિ ચિરકાલપડિવદ્ધ: ।
તીત્રમેરુચ્ચભારં કાલં ચ વિજ્ઞાનાતિ તસ્ય ॥ ૨૮૮ ॥
જહિ નાવિ કરોતિ રુલ્લેદં ન મુગ્ગતે તેણ વંધણવસો સં ।
કાલેણ ઉ વહુણેનાવિ ન મ નર: પ્રાપ્નોતિ વિમોક્કસં ॥ ૨૮૯ ॥
इति कर्मबंधनानां प्रत्येकमितिपहृतिर्योमनुभागम् ।
जातमपि न मुच्यते मुच्यते न गैर यदि भूदः ॥ २९० ॥

જ્યવન પુરુષ કો અધન મહી પ્રતિબદ્ધ એ ચિરકાલનો
તે તીત્ર-ભદ્ર સ્વભાવ નેમ જ કાળ જ્ઞાને અધનો
જાહ જે કહે નદિ કહે નો ન મુકાય, અધનવસો સં
તે કાલે અધુર જાણ નોમનું મુકા ને નર નદિ બેનો
જ્યવન કર્મબંધનના પ્રકૃતિ, પ્રકૃતિ, વિશિષ્ટ, અનુભવને
જન કલ: ન મુકાય જદવ, જે મુદ્ધ નો જ મુકાય

અન્યથાર્થઃ—[યથા નામ] જેવી રીતે [વંધનકે] બંધનમાં [ચિત્કાલ-
તેવડાં] ઘણા કાળથી બંધાયેલા [કચિત્ પુરુષઃ] કેઈ પુરુષ [તસ્ય] તે બંધનના
તોમમંદસ્વમાર્થ] તીવ્ર-મંદ (આક્રમ-દીક્ષા) રવસ્થાવને [કાલં ચ] અને કાળને
અર્થાત્ આ બંધન આરંભ કાળથી જ એમ] [વિજ્ઞાનાતિ] જાણે છે, [યદિ] પરંતુ
[ન અપિ હેરં કરોતિ] તે બંધનને પાતે કાપતો નથી [તેન ન મુચ્યતે] તે તેનાથી
તો નથી [તુ] અને [વંધનવદ્ઃ સત્] બંધનવશ રહેતો થકો [યદ્યુક્તેન અપિ કાલેન]
જો કાળે પણ [સઃ નરઃ] તે પુરુષ [વિમોક્ષં ન પ્રાપ્નોતિ] બંધનથી દૂરવારૂપ મોક્ષને
પ્રાપ્તો નથી; [સ્તિ] તેવી રીતે જીવ [કર્મવંધનાનાં] કર્મ-બંધનોનાં [પ્રદેશમ્પિનિ-
ત્તિં વયં અનુમાર્તં] પ્રદેશ, સ્થિતિ, પ્રકૃતિ તેમ જ અનુભવને [જાનત્ અપિ]
જુતાં જ્યાં પણ [ન મુચ્યતે] (કર્મબંધથી) દૂરતો નથી, [ચ યદિ નઃ વયં જુઠઃ]
હિ જો પાને (રાગાદિને દૂર કરી) શુદ્ધ થાય [મુચ્યતે] તે જ દૂર છે.

ટીકા—આત્મા અને બંધનું દ્વિધારણ (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા
કરવા) તે મોક્ષ છે. ‘બંધના રવરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર મોક્ષનું કારણ છે (અર્થાત્
બંધના રવરૂપને જાણવામાત્રથી જ મોક્ષ થાય છે)’ એમ દેવતાક કહે છે, તે અર્થાત્
કર્મથી બંધાયેલાને બંધના રવરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ
જો આદિથી બંધાયેલાને બંધના રવરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર બંધથી દૂરવાનું કારણ નથી તેમ
દેહથી બંધાયેલાને કર્મબંધના રવરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર કર્મબંધથી દૂરવાનું કારણ નથી.
અર્થ (આ કથનથી), જેઓ કર્મબંધના પ્રપંથની (-વિરતારની) રચનાના જ્ઞાન-
માત્રથી સંપૂર્ણ છે તેમને ઉત્થાપવામાં આવે છે.

બાવાર્થઃ—બંધનું રવરૂપ જાણવાથી જ મોક્ષ છે એમ કેઈ અન્યમની ખાતે
જે તેમની એ માન્યતાનું આ કથનથી નિરૂપરણ જાણવું. જાણવામાત્રથી જ બંધ-
થી કપાને, બંધ તે કાપવાથી જ કપાય છે. ૨૮૮—૨૯૦.

બંધના વિચાર કર્યા કરવાથી પણ બંધ કપાતો નથી એમ કહે છે—

જહ વંધે ચિંતંતો વંધણવદ્ધો જ પાવદ્ વિમોક્ષયં ।

તદ્ વંધે ચિંતંતો જીવો વિ જ પાવદ્ વિમોક્ષયં ॥ ૨૯૧ ॥

યથા વંધાધિવચન વંધનવદ્ધો ન પ્રાપ્નોતિ વિમોક્ષમ્ ।

તથા વંધાધિવચન જીવોઽપિ ન પ્રાપ્નોતિ વિમોક્ષમ્ ॥ ૨૯૨ ॥

બંધન મહી જે બદ ને નહિ બંધવિનાથી હું.

ત્યમ જીવ પણ બંધો નાખી ચિંતા કર્યાથી નહિ હું. ૨૯૧.

અન્વયાર્થ:—[યથા] જેમ [વંધનવદ્] બંધનથી બંધાયેલા પુ
ચિંતયન્] બંધાના વિચાર કરવાથી [વિમોક્ષં ન પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામતો નથી
બંધથી છૂટતો નથી), [તથા] તેમ [જીવઃ અપિ] છવ પણ [વંધન
બંધાના વિચાર કરવાથી [વિમોક્ષં ન પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામતો નથી.

ટીકા:—‘બંધ સંબંધી વિચારશૂબ્ધતા મોક્ષનું કારણ છે’
કેટલાક કહે છે, તે પણ અસત્ છે; કર્મથી બંધાયેલાને બંધ સંબંધી વિચાર
મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને તે બંધ સંબંધી
શૂબ્ધતા (-વિચારની પરપરા) બંધથી છૂટવાનું કારણ નથી તેમ કર્મથી
કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૂબ્ધતા કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ નથી. આ
કથનથી), કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૂબ્ધતાત્મક વિશુદ્ધ (-શુભ) કર્મ
જેમની શુદ્ધિ આવે છે તેમને સમજાવવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કર્મબંધની ચિંતામાં મન લાગ્યું રહે તો પણ મોક્ષ
એ તો કર્મધ્યાનરૂપ શુભ પરિણામ છે. જેઓ કેવળ શુભ પરિણામથી નથી
છે તેમને આહી ઉપદેશ છે કે—શુભ પરિણામથી મોક્ષ થતો નથી. ૨૬૧.

“(જો બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનભાવથી પણ મોક્ષ નથી અને બંધ
કરવાથી પણ મોક્ષ નથી) તો મોક્ષનું કારણ કયું છે?” એમ પૂછવામાં આવે
મોક્ષનો ઉપાય કહે છે:—

जह वंधे छित्त्तूण य वंधणवद्धो उ पावइ विमोक्खं ।
तह वंधे छित्त्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥ २९२ ॥

यथा वंधांशित्त्वा य वंधनवद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षम् ।

तथा वंधांशित्त्वा य जीवः संप्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २९२ ॥

અન્વયાર્થ:—[યથા ચ] જેમ [વંધનવદ્] તુ] બંધનથી બંધાયેલા પુ
[વંધન છિત્ત્વા] બંધાને છેદીને [વિમોક્ષં પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામે છે, [તથા ચ]
[જીવઃ] છવ [વંધન છિત્ત્વા] બંધાને છેદીને [વિમોક્ષં સંપ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામે છે.

બંધન મર્યાદા જે બદલે તે નર બંધહેદનથી છૂટે,
ત્યમ છવ પાત્ર બંધા તપ્તુ ઝેદન કરી મુક્તિ લે. ૨૯૨.

ટીકા:—કર્મથી બંધાયેલાને બંધનો છે. મોક્ષનું કારણ છે, કેમ કે લેખ બે અધિકારી બંધાયેલાને બંધનો છે. બંધથી છૂટવાનું કારણ છે તેમ કર્મથી બંધાયેલા કર્મબંધનો છે. કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ છે. આથી (આ કથનથી), પૂર્વે કહેલા બંધને (લેખો) બંધના સ્વરૂપના ઇચ્છામયથી સંતુષ્ટ છે તેમને અને લેખો બંધને વિચાર કર્યા કરે છે તેમને—) આત્મા અને બંધના દ્વિધાકરણમાં વ્યાપાર કરાવવામાં આવે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા પ્રત્યે સંગ્રાહવામાં—લેખમાં—દિધમ કરાવવામાં આવે છે). ૨૬૨.

‘માત્ર આ જ (અર્થાત્ બંધનો છે જ) મોક્ષનું કારણ કેમ છે?’ એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

बंधाणं च सहायं वियाणिओ अप्णो महायं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुण्ढं ॥ २७३ ॥

बंधानां च स्वभावं विज्ञायाम्नः स्वभावं च ।
बंधेषु सो विरज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥ २७३ ॥

અન્યથાર્થ:—[बंधानां स्वभावं च] બંધોના સ્વભાવને [विज्ञायाम्नः स्वभावं च] અને આત્માના સ્વભાવને [विज्ञाय] બળીને [बंधेषु] બંધો પ્રત્યે [च] જે વિરજ્યતે] વિરજ થાય છે, [सः] તે [कर्मविमोक्षणं करोति] કર્મથી મુક્ત થાય છે.

ટીકા:—જે, નિર્વિકારને નિવચનમત્કારિમાત્ર આત્મસ્વભાવને (આત્માના સ્વ-ભાવ) અને તેને (અર્થાત્ આત્માને) વિચાર કરનારા એવા બંધોના સ્વભાવને બળીને, બંધો વિરજ થાય છે, તે જ સર્વ કર્મથી મુક્ત થાય છે. આથી (આ કથનથી), આ આ બંધનું દ્વિધાકરણ જ મોક્ષનું કારણ છે એવો નિષ્કર્ષ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા તે જ મોક્ષનું કારણ છે એમ નક્કી કરવામાં આવે છે). ૨૬૩.

‘આત્મા અને બંધ રાજા જે દ્વિધા કરાય છે (અર્થાત્ કયા સ્થાને રાજા જે જુદા થી રાજાય છે)?’ એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

अथा तन्मा क्वाही स्वभाव, स्वभाव क्वाही स्वा-भवा ।
जे अथ माही विरज्ज माय, कर्मानां ते स्वभावा । २६४ ।

અન્યથાર્થ:—[યથા] જેમ [વંધનવદઃ] બંધનથી બંધાયેલા પુરુષ [વંધાન ચિંતયન્] બંધના વિચાર કરવાથી [વિમોક્ષં ન પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામતો નથી (અર્થાત્ બંધથી છૂટતો નથી), [તથા] તેમ [જીવઃ મપિ] છવ પણ [વંધાન ચિંતયન્] બંધના વિચાર કરવાથી [વિમોક્ષં ન પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામતો નથી.

ટીકા:—‘બંધ સંબંધી વિચારશુભસા મોક્ષનું કારણ છે’ એમ બીજા કેટલાક કહે છે, તે પણ અસત્ય છે; કર્મથી બંધાયેલાને બંધ સંબંધી વિચારની શુભસા મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને તે બંધ સંબંધી વિચારશુભસા (-વિચારની પરપરા) બંધથી છૂટવાનું કારણ નથી તેમ કર્મથી બંધાયેલાને કર્મબંધ સંબંધી વિચારશુભસા કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ નથી. આથી (-આ કથનથી), કર્મબંધ સંબંધી વિચારશુભસાત્મક વિશુદ્ધ (-શુભ) ધર્મધ્યાન વગેરે જેમની બુદ્ધિ અંધ છે તેમને સમભવવામાં આવે છે.

બાવાર્થ:—કર્મબંધની ચિંતામાં મન લાગ્યું રહે તો પણ મોક્ષ થતો નથી. એ તો ધર્મધ્યાનરૂપ શુભ પરિણામ છે. જેઓ કેવળ શુભ પરિણામથી જ મોક્ષ માને છે તેમને અહીં ઉપદેશ છે કે—શુભ પરિણામથી મોક્ષ થતો નથી. ૨૬૧.

“(જે બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનભાવથી પણ મોક્ષ નથી અને બંધના વિચાર કરવાથી પણ મોક્ષ નથી) તો મોક્ષનું કારણ કયું છે?” એમ પૂછવામાં આવતાં હવે મોક્ષનો ઉપાય કહે છે:—

जह वंधे छित्तूण य वंधणवद्धो उ पावइ विमोक्खं ।

तह वंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥ २९२ ॥

यथा वंधांश्छित्त्वा च वंधनवद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षम् ।

तथा वंधांश्छित्त्वा च जीवः संप्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २९२ ॥

અન્યથાર્થ:—[યથા ચ] જેમ [વંધનવદઃ] બંધનથી બંધાયેલા પુરુષ [વંધાન છિત્ત્વા] બંધને છેદીને [વિમોક્ષં પ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામે છે, [તથા ચ] તેમ [જીવઃ] છવ [વંધાન છિત્ત્વા] બંધને છેદીને [વિમોક્ષં સંપ્રાપ્નોતિ] મોક્ષ પામે છે.

બંધન મહા જે બદ્ધ તે નર બંધહેદનથી છૂટે,
ત્યમ છવ પણ બંધો તણું છેદન કરી મુક્તિ લાડે. ૨૬૨.

ટીકા:—કર્મથી બંધાયેલાને બંધનો છે. મોક્ષનું કારણ છે, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને બંધનો છે. બંધથી છૂટવાનું કારણ છે તેમ કર્મથી બંધાયેલાને કર્મબંધનો છે. કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ છે. આથી (આ કથનથી), પૂર્વે કહેલા બંધને (જેઓ બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનઆવધી સંતુષ્ટ છે તેમને અને જેઓ બંધના વિચાર કર્યા કરે છે તેમને—) આત્મા અને બંધના દ્વિધાકરણમાં વ્યાપાર કરાવવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા પ્રત્યે લગાડવામાં—જોડવામાં—ઉપમ કરાવવામાં આવે છે). ૨૬૨.

‘માત્ર આ જ (અર્થાત્ બંધનો છે જ) મોક્ષનું કારણ કેમ છે?’ એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

વંધાણં ચ સહાવં વિયાણિઓ અપ્પણો સહાવં ચ ।
વંવેસુ જો વિરજ્જદિ સો કમ્મવિમોક્ષણં કુણ્ઠં ॥ ૨૬૩ ॥

વંધાનાં ચ સ્વમાર્થં વિજ્ઞાયાન્મનઃ સ્વમાર્થં ચ ।
વંથેપુ યો વિરજ્યતે મ કર્મવિમોક્ષણં કરોતિ ॥ ૨૬૩ ॥

અન્યથાર્થ:—[વંધાનાં સ્વમાર્થં ચ] બંધોના સ્વભાવને [આત્માના સ્વમાર્થં ચ] અને આત્માના સ્વભાવને [વિજ્ઞાય] બાળીને [વંથેપુ] બંધો પ્રત્યે [યઃ] જે [વિરજ્યતે] વિરક્ત થાય છે, [સઃ] તે [કર્મવિમોક્ષણં કરોતિ] કર્મોથી મુક્ત થાય છે.

ટીકા:—જે, નિર્વિકારચૈતન્યઅભિકારમાત્ર આત્મસ્વભાવને (આત્માના સ્વભાવને) અને તેને (અર્થાત્ આત્માને) વિકાર કરનારા એવા બંધોના સ્વભાવને બાળીને, બંધોથી વિરક્ત છે, તે જ સર્વ કર્મોથી મુક્ત થાય છે. આથી (આ કથનથી), આત્મા અને બંધનું દ્વિધાકરણ જ મોક્ષનું કારણ છે એવો નિષ્કર્ષ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા તે જ મોક્ષનું કારણ છે એમ નક્કી કરવામાં આવે છે). ૨૬૩.

‘આત્મા અને બંધ શા વડે દ્વિધા કરાય છે (અર્થાત્ કયા સંપર્ક વડે જુદા કરી શકાય છે)?’ એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

બંધો તજ્ઞો બાળી સ્વભાવ, સ્વભાવ બાળી આત્મનો,
જે બંધ માંદો વિરક્ત થાયે, કર્મમોક્ષ કરે અદો! ૨૬૩.

જીવો વંધો ય તંહા ઇજંતિ સલ્કસણેહિં ણિયર્હિં ।

પણ્ણાછેદણણં ડ ઇણ્ણા ણાણત્તમાવણ્ણા ॥ ૨૧૪ ॥

જીવો વંધય તયા ઇચેતે સ્વલક્ષણાભ્યાં નિયતાભ્યામ્ ।

પ્રજ્ઞાછેદનકેન તુ ઇત્તૌ નાનાન્વમાપન્નો ॥ ૨૧૪ ॥

અન્વયાર્થઃ—[જીવઃ ચ તયા વંધઃ] એવ તથા બંધ [નિયતાભ્યાં સ્વ-લક્ષણાભ્યાં] નિયત સ્વલક્ષણોધી (પોતપોતાના નિશ્ચિત લક્ષણોધી) [ઇચેતે] હેાવ છે; [પ્રજ્ઞાછેદનકેન] પ્રજ્ઞાહીણી વડે [ઇત્તૌ તુ] હેવામાં આવતાં [નાનાન્વમાપન્નો] તેઓ નાનાપણાને પામે છે અર્થાત્ જુદા પડી જાય છે.

ટીકાઃ—આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરવારૂપ કાર્યમાં કર્તા જે આત્મા તેના કરજી સંબંધી મીમાંસા કરવામાં આવતાં, નિશ્ચયે (નિશ્ચયનયે) પોતાથી સિત્ત કરજીનો અભાવ હોવાથી સગવતી પ્રજ્ઞા જ (-જ્ઞાનસ્વરૂપ બુદ્ધિ જ) હેદનમક (-હેદનના સ્વભાવવાળું) કરજી છે. તે પ્રજ્ઞા વડે તેમને હેદવામાં આવતાં તેઓ નાનાપણાને અવશ્ય પામે છે; માટે પ્રજ્ઞા વડે જ આત્મા અને બંધનું દ્વિધા કરવું છે (અર્થાત્ પ્રજ્ઞાહીણી કરજી વડે જ આત્મા ને બંધ જુદા કરાય છે).

... . (:અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—) આત્મા અને બંધ કે જેઓ ચેત્યચેતકભાવ વડે અત્યંત નિકરતાને હીધે એક (-એક જેવા-) થઈ રહ્યા છે, અને ભેદવિજ્ઞાનના અભાવને હીધે, બધું તેઓ એક ચેતક જ હોય એમ જેમનો બ્યવહાર કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ જેમને એક આત્મા તરીકે જ બ્યવહારમાં ગણવામાં આવે છે) તેઓ પ્રજ્ઞા વડે ખરેખર કઈ રીતે હેદી શકાય ?

(તેનું સમાધાન આચાર્યજીવ કરે છે :—) આત્મા અને બંધના નિયત સ્વ-લક્ષણોની સૂક્ષ્મ અંતઃસંધિમાં (અંતરંગની સંધિમાં) પ્રજ્ઞાહીણીને સાવધાન થઈને પંદકવાધી (-નાખવાધી, મારવાધી) તેમને હેદી શકાય છે અર્થાત્ જુદા કરી શકાય છે એમ અમે જાણીએ છીએ.

૧ કરજી = સાધન; કરજી નામનું કારક.

૨ મીમાંસા = જોડી વિચારણા; તપાસ; સમાધાનવાળા.

* આત્મા ચેતક છે અને બંધ ચેત્ય છે; અજ્ઞાનદશામાં તેઓ એકરૂપ અનુભવાય છે.

એવ બંધ બને, નિયત નિજ નિજ લક્ષણે હેદાય છે,
પ્રજ્ઞાહીણી થકી હેદતાં બને જુદા પડી જાય છે. ૨૬૪.

આત્માનું સ્વરૂપ જ્ઞેતૃત્વ છે, કારણ કે તે સમસ્ત શેષ દ્રવ્યોથી અસાધારણ છે (અર્થાત્ અન્ય દ્રવ્યોમાં તે નથી). તે (જ્ઞેતૃત્વ) પ્રવર્તતું થકું જે જે પર્યાયને વ્યાપીને પ્રવર્તે છે અને નિવર્તતું થકું જે જે પર્યાયને મહણ કરીને નિવર્તે છે તે તે સમસ્ત સહવર્તી કે ક્રમવર્તી પર્યાયો આત્મા છે એમ લક્ષિત કરવું—લક્ષણથી ઓળખવું (અર્થાત્ જે જે શુદ્ધપર્યાયોમાં જ્ઞેતૃત્વરૂપ વ્યાપે છે તે તે સમસ્ત શુદ્ધપર્યાયો આત્મા છે એમ જાણવું) કારણ કે આત્મા તે જ એક લક્ષણથી લક્ષ્ય છે (અર્થાત્ જ્ઞેતૃત્વ-લક્ષણથી જ ઓળખાય છે). વળી સમસ્ત સહવર્તી અને ક્રમવર્તી અનંત પર્યાયો સાથે જ્ઞેતૃત્વનું અવિનાશીપણું હોવાથી વિન્નાત જ આત્મા છે એમ નિશ્ચય કરવો. આદ્યું આત્માના સ્વરૂપ વિશે.

(હવે બંધના સ્વરૂપ વિશે કહેવામાં આવે છે:—) બંધનું સ્વરૂપ તો આત્મદ્રવ્યથી અસાધારણ એવા રાગાદિક છે. એ રાગાદિક આત્મદ્રવ્ય સાથે સાધારણપણું ધરતા (—પારણ કરતા—) પ્રતિભાસતા નથી, કારણ કે તેઓ સદાય જ્ઞેતૃત્વરૂપતાથી વિત્તપણે પ્રતિભાસે છે. વળી જોડણું, જ્ઞેતૃત્વ આત્માના સમસ્ત પર્યાયોમાં વ્યાપતું પ્રતિભાસે છે, તેટલા જ, રાગાદિક પ્રતિભાસતા નથી, કારણ કે રાગાદિક વિના પણ જ્ઞેતૃત્વનો આત્મસાત્ સંભવે છે (અર્થાત્ રાગાદિક ન હોય ત્યાં પણ જ્ઞેતૃત્વ હોય છે). વળી જો, રાગાદિકનું જ્ઞેતૃત્વ સાથે જ ઉપજવું થાય છે તે જ્ઞેતૃત્વરૂપતાવની (—જ્ઞેતૃ-જ્ઞાયકતાવની) અતિ નિઃકલ્પને લીધે જ છે, એકદ્રવ્યપણને લીધે નહિ; જેમ (દીપક વગેરે) પ્રકાશમાં આવતા ઘટાદિક (પદાર્થો) દીપકના પ્રકાશપણને જ જાહેર કરે છે—ઘટાદિકપણને નહિ, તેમ (આત્મા વગેરે) જ્ઞેતૃત્વમાં આવતા રાગાદિક (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જ્ઞેયરૂપે જળાતા રાગાદિક ભાવો) આત્માના જ્ઞેતૃત્વપણને જ જાહેર કરે છે—રાગાદિકપણને નહિ.

આમ હોવા છતાં તે બંનેની (—આત્માની અને બંધની) અત્યંત નિઃકલ્પને લીધે બેદક્ષતાવનાતો અભાવ હોવાથી અર્થાત્ બેદ નહિ દેખાતો હોવાથી (અજ્ઞાનીને) અનાદિ કાળથી એકપણનો વ્યાપોહ (જમ) છે; તે વ્યાપોહ પ્રજ્ઞા વગેરે જ અવરણ છદાય છે.

ભાવાર્થ:—આત્મા અને બંધ બંનેને લક્ષણબેદથી ઓળખી ભુલિશ્ચી ટીવ્રીથી ઇદી ભુલ ભુલ કરવા.

આત્મા તો અમૂર્તિક છે અને બંધ સૂક્ષ્મ પુદ્ગલપરમાણુઓનો સ્કંધ છે તેથી બંને ભુલ ભ્રમરૂપતા સ્થાનમાં આવતા નથી, માત્ર એક સ્કંધ રૂપાય છે (અર્થાત્ બંને એકપરિણેષ રૂપાય છે); તેથી અનાદિ અજ્ઞાન છે. મીથુરઓનો ઉપદેશ પામી તેમનાં લક્ષણ ભુલાં ભુલાં અનુભવીને બંધનું કે જ્ઞેતૃત્વના તો આત્માનું લક્ષણ છે

અને સમાધિક બંધનું લક્ષણ છે તોપણ માત્ર સ્વેચ્છાચક્રભાવની અતિ નિકટતાથી તેઓ એક બેવા થઈ રહ્યા હોવાં છે. તેથી તીક્ષ્ણ બુદ્ધિથી છીછીને—કે જે તેમને ભેદી જુદા જુદા કરવાનું શક્ત છે તેને—તેમની સૂક્ષ્મ સંધિ શોધીને તે સંધિમાં સાવધાન (નિષ્પ્રભાદ) થઈને પડકવી. તે પડતાં જ બન્ને જુદા જુદા દેખાવા લાગે છે. એમ બન્ને જુદા જુદા દેખાતાં, આત્માને જ્ઞાનભાવમાં જ રાખવો અને બંધને અજ્ઞાનભાવમાં રાખવો. એ રીતે બંનેને ભિન્ન કરવા.

હવે આ અર્થનું કથારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સમ્બરા)

મહાછેત્રી સિતેયં કયમપિ નિપુણૈઃ પાતિતા સાવધાનૈઃ

મૂર્ક્ષમેઽન્તઃસંધિવંધે નિપતતિ રમસાદાત્મકર્માભયસ્ય ।

આત્માનં મમમંતઃસ્થિરવિશદલસદ્દાન્નિ ચૈતન્યપૂરે

યંયં વાજ્ઞાનમાયે નિયમિતમભિતઃ કુર્વતી મિશ્રમિશ્રૌ ॥ ૧૮૧ ॥

અર્થ:—આ પ્રજ્ઞાથી તીક્ષ્ણ છીછી પ્રવીણ પુરુષો વડે કોઈ પણ પ્રકારે (ન્યાયપૂર્વક) સાવધાનપણે (નિષ્પ્રભાદપણે) પડકવામાં આવી થકી, આત્મા અને કર્મ—બંનેના સૂક્ષ્મ અંતરંગ સંધિના બંધમાં (અંદરની સાંધના જોડાણમાં) શીખ પડે છે. કેવી રીતે પડે છે? આત્માને તો જેનું તેજ અંતરંગમાં સ્થિર અને નિર્મળપણે રેરીપમાન છે એવા ચૈતન્યપૂરમાં (ચૈતન્યના પ્રવાહમાં) મગ્ન કરતી અને બંધને અજ્ઞાનભાવમાં નિશ્ચળ (નિયત) કરતી—એ રીતે આત્મા અને બંધને સર્વ તરફથી ભિન્ન ભિન્ન કરતી પડે છે.

આવાર્થ:—અહીં આત્મા અને બંધને ભિન્ન ભિન્ન કરવારૂપ કાવ્ય છે. તેનો કર્તા આત્મા છે. ત્યાં કર્તૃ વિના કર્તા કોના વડે કાવ્ય કરે? તેથી કર્તૃ પણ જોઈએ. નિશ્ચયનયં કર્તાથી ભિન્ન કર્તૃ હોવું નથી; મારે આત્માથી અભિન્ન એવી આ બુદ્ધિ જ આ કાવ્યમાં કર્તૃ છે. આત્માને અનાદિ બંધ જ્ઞાનાચરણાદિ કર્મ છે. તેમનું કાવ્ય જ્ઞાનમયે તો નાનાદિક છે અને નાકર્મ શારીરિકિક છે. મારે બુદ્ધિ વડે આત્માને શારીરિક, જ્ઞાનચરણાદિક દ્રવ્યકર્મથી તથા નાનાદિક કારણકર્મથી ભિન્ન એક ચૈતન્યભાવમાય અનુભવી જ્ઞાનમાં જ રીતે રાખવો તે જ (આત્માને બંધનું) ભિન્ન કરવું છે. તેનાથી જ સર્વ કર્મના નાશ થાય છે, નિઃકલન પમાય છે, એમ જાણવું. ૨૬૬.

‘આત્મા અને બંધને ભિન્ન કરીને મુક્ત કરવું’ એમ પદવામાં આવતા હવે જેને કૃત્ય કહે છે.—

જીવો વંધો ય તદા છિજ્જંતિ સલક્ષ્ણેહિ ણિયણ્હિ ।

વંધો છેણ્યવ્વો સુદ્ધો અપ્પા ય ઘિત્તવ્વો ॥ ૨૧૫ ॥

જીવો વંધવ તથા છિયેતે સ્વલક્ષણાભ્યાં નિષતામ્યામ્ ।

વંધયેતત્તવ્યઃ શુદ્ધ આત્મા ચ શુદ્ધીતવ્યઃ ॥ ૨૧૫ ॥

અન્યથાર્થઃ—[તથા] એ રીતે [જીવઃ વંધઃ ચ] જીવ અને બંધ [નિય-
તામ્યાં સ્વલક્ષણાભ્યાં] તેમનાં નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોથી [છિયેતે] હટાવે છે. [વંધઃ]
ત્યાં, બંધને [હેતવ્યઃ] હેતવે અર્થાત્ હટાવે [ચ] અને [શુદ્ધઃ આત્મા] શુદ્ધ
આત્માને [શુદ્ધીતવ્યઃ] મદલું કરેલો.

ટીકાઃ—આત્મા અને બંધને પ્રથમ તો તેમનાં નિયત સ્વલક્ષણોના જ્ઞાનથી
સર્વથા જ હટાવે અર્થાત્ ભિન્ન કરવા; પછી, રાગાદિક જેવું લક્ષણ છે એવા સમસ્ત
બંધને તો હટાવે અને ઉપયોગ જેવું લક્ષણ છે એવા શુદ્ધ આત્માને જ મદલું કરેલો.
આ જ ખરેખર આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરવાનું પ્રયોજન છે કે બંધના ત્યાગથી
(અર્થાત્ બંધનો ત્યાગ કરી) શુદ્ધ આત્માનું મદલું કરવું.

સાવાર્થઃ—શિષ્યે પૂછ્યું હતું કે આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરીને શું
કરવું? તેના આ ઉત્તર આધો કે બંધનો તો ત્યાગ કરવો અને શુદ્ધ આત્માનું
મદલું કરવું. ૨૬૫.

(‘આત્મા અને બંધને ભિન્ન તો પ્રજ્ઞા વડે કર્યા પરંતુ આત્માને મદલું શા
વડે કરાય?’—એવા પ્રશ્નની તથા તેના ઉત્તરની ગાથા કહે છે:—)

કહ સો ઘિપ્પદ્ધ અપ્પા પણ્ણાણ સો ડ ઘિપ્પણ અપ્પા ।

જહ પણ્ણાદ્ધ વિહત્તો તહ પણ્ણાણ્વ ઘિત્તવ્વો ॥ ૨૧૬ ॥

કર્મ સ શ્યતે આત્મા મદ્ધયા મ તુ શ્યતે આત્મા ।

યથા મદ્ધયા વિમન્તસ્તથા મદ્ધયૈશ શુદ્ધીતવ્યઃ ॥ ૨૧૬ ॥

જીવ બંધ ન્યાં હેદાય એ રીત નિયત નિજ નિજ લક્ષણે,
ત્યાં હેદાવે એ બંધને, જીવ મદલું કરવો શુદ્ધને. ૨૬૫.
એ જીવ કેમ મદાય? જીવ મદાય છે પ્રજ્ઞા વડે,
પ્રજ્ઞાથી જ્યમ જુદો કર્યો ત્યમ મદલું પણ પ્રજ્ઞા વડે. ૨૬૬.

અન્વયાર્થ:—(શિષ્ય પૂછે છે કે—) [સઃ આત્મા] તે (શુદ્ધ) આત્મા [કયં] કઈ રીતે [ગૃહ્યતે] મહાશુ કરાય? (આચાર્યભગવાન ઉત્તર આપે છે કે—) [પ્રશ્નયા તુ] પ્રશ્ના વડે [સઃ આત્મા] તે (શુદ્ધ) આત્મા [ગૃહ્યતે] મહાશુ કરાય છે [યથા] જેમ [પ્રશ્નયા] પ્રશ્ના વડે [વિમક્તઃ] ભિન્ન કથો, [તયા] તેમ [પ્રશ્નયા] પ્રશ્ના વડે જ [ગૃહીતવ્યઃ] મહાશુ કરવો.

ટીકા:—શુદ્ધ એવો આ આત્મા શા વડે મહાશુ કરવો? પ્રશ્ના વડે જ શુદ્ધ એવો આ આત્મા મહાશુ કરવો; કારણ કે શુદ્ધ આત્માને, પોતે પોતાને મદુતાં, પ્રશ્ના જ એક કરણ છે—જેમ ભિન્ન કરતાં પ્રશ્ના જ એક કરણ હવું તેમ. માટે જેમ પ્રશ્ના વડે ભિન્ન કથો તેમ પ્રશ્ના વડે જ મહાશુ કરવો.

ભાવાર્થ:—ભિન્ન કરવામાં અને મહાશુ કરવામાં કરણો જુદાં નથી; માટે પ્રશ્ના વડે જ આત્માને ભિન્ન કથો અને પ્રશ્ના વડે જ મહાશુ કરવો. ૨૬૬.

હવે પૂછે છે કે—આ આત્માને પ્રશ્ના વડે કઈ રીતે મહાશુ કરવો? તેના ઉત્તર કહે છે:—

પણાણ ધિત્તવ્વો જો ચેદા સો અહં તુ ણિચ્છયદો ।

અવસેસા જે ભાવા તે મજ્ઞ પરેત્તિ ણાયવ્વા ॥ ૨૧૭ ॥

મજ્ઞયા ગૃહીતવ્યો યથેતયિતા સોઽહં તુ નિશ્ચયતઃ ।

અવશેષા યે ભાવાઃ તે મમ પરા ઇતિ જ્ઞાતવ્યાઃ ॥ ૨૧૭ ॥

અન્વયાર્થ:—[પ્રશ્નયા] પ્રશ્ના વડે [ગૃહીતવ્યઃ] (આત્માને) એમ મહાશુ કરવો કે—[યઃ ચેતયિતા] જે ચેતનારો છે [સઃ તુ] તે [નિશ્ચયતઃ] નિશ્ચયથી [અહં] હું છું; [અવશેષાઃ] બાકીના [યે ભાવાઃ] જે ભાવો છે [તે] તે [મમ પરા] મારાથી પર છે [ઇતિ જ્ઞાતવ્યાઃ] એમ જાણવું.

ટીકા:—નિયત સ્વલક્ષણને અવલંબનારી પ્રશ્ના વડે જુદા કરવામાં આવેલો જે ચેતક (ચેતનારો), તે આ હું છું; અને અન્ય સ્વલક્ષણોથી લક્ષ્ય (અર્થાત્ ચેતન્ય-લક્ષણ સિવાય બીજાં લક્ષણોથી ઓળખાવાયો) જે આ બાકીના વ્યવહારપ ભાવો છે, તે બધાય, ચેતકપણાથી વ્યાપકના વ્યાપ્ય નહિ થતા હોવાથી, મારાથી અત્યંત

પ્રશ્નાથી મદવો—નિશ્ચયે જે ચેતનારો તે જ હું; બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર-જાણવું. ૨૬૭.

ભિન્ન છે. મારે હું જ, મારા વડે જ, મારા મારે જ, મારામાંથી જ, મારામાં જ, મને જ મહણ કરું છું. આત્માની, ચેતના જ એક ક્રિયા હોવાથી, 'હું' મહણ કરું છું' એટલે 'હું' ચેતું જ છું'; ચેતતો જ (અર્થાત્ ચેતતો થકો જ) ચેતું છું, ચેતતા વડે જ ચેતું છું, ચેતતા મારે જ ચેતું છું, ચેતતામાંથી જ ચેતું છું, ચેતતામાં જ ચેતું છું, ચેતતાને જ ચેતું છું. અથવા—નથી ચેતતો; નથી ચેતતો થકો ચેતતો, નથી ચેતતા વડે ચેતતો, નથી ચેતતા મારે ચેતતો, નથી ચેતતામાંથી ચેતતો, નથી ચેતતામાં ચેતતો, નથી ચેતતાને ચેતતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ ચિન્માત્ર (-ચેત-ચમાત્ર) ભાવ છું.

સાવાર્થ:—પ્રશ્ન વડે ભિન્ન કરવામાં આવેલો જે ચેતક તે આ હું છું અને બાકીના ભાવો મારાથી પર છે; મારે (અર્થાત્ કરકોથી) હું જ, મારા વડે જ, મારા મારે જ, મારામાંથી જ, મારામાં જ, મને જ મહણ કરું છું. 'મહણ કરું છું' એટલે 'ચેતું છું', કરણ કે ચેતતું તે જ આત્માની એક ક્રિયા છે. મારે હું ચેતું જ છું; ચેતનારો જ, ચેતનાર વડે જ, ચેતનાર મારે જ, ચેતનારમાંથી જ, ચેતનારમાં જ, ચેતનારને જ ચેતું છું. અથવા દ્રવ્યદષ્ટિએ તો—છ કરકોના બેડ પછી મારામાં નથી, હું તો શુદ્ધ ચેતન્યમાત્ર ભાવ છું.—આ પ્રમાણે પ્રશ્ન વડે આત્માને મહણ કરવો અર્થાત્ પાતાને ચેતનાર તરીકે અનુભવવો.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાંદિયવિગીઝિત)

મિત્વા સર્વમપિ સ્વલક્ષણવલાદ્રેષું હિ ચચ્છવયતે

ચિન્મુદ્રાકિતનિર્વિભાગમહિમા શુદ્ધિદેવાસ્મ્યહમ્ ।

મિયંતે ચદિ કારકાણિ ચદિ વા ધર્મા ગુણા વા ચદિ

મિયંતાં ન મિદાસ્તિ કાચન વિમૌ ભાવે વિશુદ્ધે ચિત્તિ ॥ ૧૮૨ ॥

અર્થ:—જે કાંઈ બેદી શકાય છે તે સર્વને સ્વલક્ષણના બળથી બેદીને, જેના ચિન્મુદ્રાથી અકિત નિર્વિભાગ મહિમા છે (અર્થાત્ ચેતન્યની છાપથી ચિહ્નિત વિભાગ-રહિત જેના મહિમા છે) એવો શુદ્ધ ચેતન્ય જ હું છું. જે કરકોના, અથવા ધર્મોના, અથવા ગુણોના બેદો પડે, તો ભડે પડે; પરંતુ વિશુ એવા શુદ્ધ (-સમસ્ત વિભાવોથી રહિત-) ચેતન્યભાવમાં તો કોઈ બેડ નથી. (આમ પ્રશ્ન વડે આત્માને મહણ કરાય છે.)

સાવાર્થ:—જેમનું સ્વલક્ષણ ચેતન્ય નથી એવા પરભાવો તો મારાથી ભિન્ન છે, માત્ર શુદ્ધ ચેતન્ય જ હું છું. કર્તા, કર્મ, કરણ, સપ્રદાન, અપ્રદાન અને અપિ-

કરેણુરૂપ કારકભેદો, શાસ્ત્ર, આચાર્ય, નિન્યન્ય, અનિન્યન્ય, એકન્ય, અન્યેકન્ય અગ્રી
પર્મભેદો અને જ્ઞાન, દર્શન આદિ ગુણભેદો જે કથગિત્તે દોષ તે ભયે દોષ; પરંતુ
શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર ભાવમાં તે કોઈ ભેદ નથી.—આમ શુદ્ધનયથી અભેદરૂપ આત્માને
મદુલ કરવેલ ૨૨૭.

(આત્માને શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર તે મદુલ કરાવ્યો; હવે સામાન્ય ચૈતન્ય દર્શન-
જ્ઞાનસામાન્યમય દોષાથી અનુભવમાં દર્શનજ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને આ પ્રમાણે અનુ-
ભવવો—એમ કહે છે:—)

પણાણ ધિત્ત્વો જો દટ્ટા સો અહં તુ ણિન્દ્રિયદો ।

અવશેસા જે ભાવા તે મજ્ઞ પરેતિ ણાયચ્ચા ॥ ૨૧૮ ॥

પણાણ ધિત્ત્વો જો જ્ઞાતા સો અહં તુ ણિન્દ્રિયદો ।

અવશેસા જે ભાવા તે મજ્ઞ પરેતિ ણાયચ્ચા ॥ ૨૧૯ ॥

પ્રજ્ઞયા ગૃહીતવ્યો યો દટ્ટા સોઽહં તુ નિશ્ચયતઃ ।

અવશેષા યે ભાવાઃ તે મમ પરા ઇતિ જ્ઞાતવ્યાઃ ॥ ૨૧૮ ॥

પ્રજ્ઞયા ગૃહીતવ્યો યો જ્ઞાતા સોઽહં તુ નિશ્ચયતઃ ।

અવશેષા યે ભાવાઃ તે મમ પરા ઇતિ જ્ઞાતવ્યાઃ ॥ ૨૧૯ ॥

અન્વયાર્થ:—[પ્રજ્ઞયા] પ્રજ્ઞા વડે [ગૃહીતવ્યઃ] એમ મદુલ કરવો કે—

[યઃ દટ્ટા] જે દેખનારો છે [સઃ તુ] તે [નિશ્ચયતઃ] નિશ્ચયથી [અહં] હું છું;
[અવશેષાઃ] બાકીના [યે ભાવાઃ] જે ભાવો છે [તે] તે [મમ પરાઃ] મારાથી પર
છે [ઇતિ જ્ઞાતવ્યાઃ] એમ બાણુવું.

[પ્રજ્ઞયા] પ્રજ્ઞા વડે [ગૃહીતવ્યઃ] એમ મદુલ કરવો કે—[યઃ જ્ઞાતા] જે
બાણુનારો છે [સઃ તુ] તે [નિશ્ચયતઃ] નિશ્ચયથી [અહં] હું છું; [અવશેષાઃ]

પ્રજ્ઞાથી મદુલો—નિશ્ચયે જે દેખનારો તે જ હું,
બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર—બાણુવું. ૨૬૮.

પ્રજ્ઞાથી મદુલો—નિશ્ચયે જે બાણુનારો તે જ હું,
બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર—બાણુવું. ૨૬૯.

બાકીના [જે માવા:] કે ભાવો છ [તે] તે [મમ પરા:] મારાથી પર છે [રતિ જ્ઞાતવ્યા:] એમ જાણવું.

ટીકા:—ચેતના દર્શનજ્ઞાનરૂપ બોધને ઉદ્ભવતી નહિ હોવાથી, ચેતકપણની માફક દર્શકપણ અને જ્ઞાતાપણ આત્માનું સ્વલક્ષણ જ છે. મારે હું કેખનારા આત્માને મહણ કરું છું. ‘મહણ કરું છું’ એટલે ‘દેખું જ છું’; કેખતો જ (અર્થાત્ કેખતો થકો જ) દેખું છું; કેખતા વડે જ દેખું છું, કેખતા મારે જ દેખું છું; કેખતામાંથી જ દેખું છું, કેખતામાં જ દેખું છું, કેખતાને જ દેખું છું. અથવા—નથી કેખતો; નથી કેખતો થકો કેખતો, નથી કેખતા વડે કેખતો, નથી કેખતા મારે કેખતો, નથી કેખતામાંથી કેખતો, નથી કેખતામાં કેખતો, નથી કેખતાને કેખતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ દર્શનમાત્ર ભાવ છું. વળી એવી જ રીતે—હું જાણનારા આત્માને મહણ કરું છું. ‘મહણ કરું છું’ એટલે ‘જાણું જ છું’; જાણતો જ (અર્થાત્ જાણતો થકો જ) જાણું છું, જાણતા વડે જ જાણું છું, જાણતા મારે જ જાણું છું, જાણતામાંથી જ જાણું છું, જાણતામાં જ જાણું છું, જાણતાને જ જાણું છું. અથવા—નથી જાણતો; નથી જાણતો થકો જાણતો, નથી જાણતા વડે જાણતો, નથી જાણતા મારે જાણતો, નથી જાણતામાંથી જાણતો, નથી જાણતામાં જાણતો, નથી જાણતાને જાણતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાનમાત્ર (જાણનારક્રિયામાત્ર) ભાવ છું. (આમ કેખનારા આત્માને તેમ જ જાણનારા આત્માને કર્તા, કર્મ, કરણ, સમદાન, અપાદાન અને અધિકરણરૂપ કારકોના ભેદપૂર્વક મહણ કરીને, પછી કારકભેદનો નિષેધ કરી આત્માને અર્થાત્ પાતાને દર્શનમાત્ર ભાવરૂપે તેમ જ જ્ઞાનમાત્ર ભાવરૂપે અનુભવવો અર્થાત્ અભેદરૂપે અનુભવવો.)

(ભાવાર્થ:—આ ત્રણ ગાથાઓમાં, પ્રજ્ઞા વડે આત્માને મહણ કરવાનું કહ્યું છે. ‘મહણ કરવું’ એટલે કેઈ અન્ય વસ્તુને મહવાની—ચેતની નથી; ચેતનાનો અનુભવ કરવો, તે જ, આત્માનું ‘મહણ કરવું’ છે.

પ્રથમની ગાથામાં સામાન્ય ચેતનાનો અનુભવ કરાવ્યો હતો. ત્યાં, અનુભવ કરનાર, જેના અનુભવ કરવામાં આવે તે, જેના વડે અનુભવ કરવામાં આવે તે—ઉત્પાદિ કારકભેદરૂપે આત્માને કહીને, અભેદવિવક્ષામાં કારકભેદનો નિષેધ કરી, આત્માને એક શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર કહ્યો હતો.

હવે આ બે ગાથાઓમાં દષ્ટા અને જ્ઞાતાનો અનુભવ કરાવ્યો છે, કારણ કે ચેતનાસામાન્ય દર્શનજ્ઞાનવિશેષને ઉદ્ભવતી નથી. અહીં પણ, ■ કારકરૂપ ભેદ-અનુભવન કરાવી, પછી અભેદ-અનુભવનની અપેક્ષાએ કારકભેદ દૂર કરાવી. દષ્ટાજ્ઞાતા-માત્રનો અનુભવ કરાવ્યો છે.)

(ટીકા:—) અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—ચેતના દર્શનજ્ઞાનબોધને કેમ ઉદ્ભવતી

નથી કે જેથી કૈવલનારો દશ તથા સાત હોય છે? તેના ઉત્તર કહેવામાં પ્રથમ તો કૈવલના પ્રતિબાસરૂપ છે. તે કૈવલના દ્વિરૂપનાને અર્થાત્ બે-રૂપજુને કહી, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુઓ સામાન્યવિશેષતામય છે. (જાંધી જે વસ્તુએ વિશેષસ્વરૂપ છે. કૈવલના પણ વસ્તુ છે. તેથી તે પણ સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ છે તે બે-રૂપપણાને ઉદ્દેશવતી નથી.) તેના જે બે રૂપો તે દર્શન અને જ્ઞાન તે તેમને (-દર્શનજ્ઞાનને) ઉદ્દેશવતી નથી. જો કૈવલના દર્શનજ્ઞાનને કૈવલ સામાન્યવિશેષને ઉદ્દેશવતી કૈવલના જ ન હોય (અર્થાત્ કૈવલનાને અભાવ તેના અભાવમાં બે હોય આવે—(૧) પાતાના ગુણનો નાશ થવાથી કૈવલને પછું આવી પડે, અથવા (૨) વ્યાપકના (-કૈવલનાના-) અભાવમાં વ્યાપક કૈવલનો (આત્માનો) અભાવ થાય. માટે તે હોવાના કાયથી કૈવલનાને દર્શનજ્ઞાન જ અંગીકાર કરવી.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સાદૈવચિદ્રીડિત)

અદૈતાપિ હિ ચેતના જગતિ ચેદ્ દગ્ધસિરૂપં ત્યજેદ્ ।

તત્સામાન્યવિશેષરૂપવિરહાત્સાઽસ્તિત્વમેવ ત્યજેદ્ ।

તત્પામે જડતા ચિત્તોઽપિ મવતિ વ્યાપ્યો વિના વ્યાપકા-

દાત્મા ચાન્તઃપૃષ્ઠેતિ તેન નિપતં દગ્ધસિરૂપાસ્તુ ચિદ્ ॥ ૧૮૧

અર્થ:—જગતમાં ખરેખર ચેતના અદૈત છે તેપછી જો તે દર્શનજ્ઞાન છાડે તો સામાન્યવિશેષરૂપના અભાવથી (તે ચેતના) પાતાના અસ્તિત્વને જ એમ ચેતના પાતાના અસ્તિત્વને છાડતાં, (૧) ચેતનને જડપછું આવે અર્થાત્ જડ થઈ જાય, અને (૨) વ્યાપક વિના (-ચેતના વિના-) વ્યાપ્ય જે આત્મા નાશ પામે (-આત્મા બે હોય આવે છે). માટે ચેતના નિયમથી દર્શનજ્ઞાનરૂપ જ

સાવાર્થ:—વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્યવિશેષરૂપ છે. ચેતના પણ વસ્તુ છે, જો તે સામાન્યવિશેષરૂપ એવા દર્શનજ્ઞાનરૂપપણાને છાડે તો તેના વસ્તુપણાનો નાશ થાય અર્થાત્ ચેતનાનો અભાવ જ થાય. ચેતનાનો અભાવ થતાં, કાં તો ચેતન આત્મા (પાતાના ચેતનાગુણનો અભાવ થવાથી) જડપછું આવે, અથવા તો વ્યાપક અભાવથી વ્યાપ્ય એવા આત્માનો અભાવ થાય. (ચેતના આત્માની સર્વ અવસ્થાઓમાં વ્યાપતી હોવાથી વ્યાપક છે અને આત્મા ચેતન હોવાથી ચેતનાનું) વ્યાપક તેથી ચેતનાનો અભાવ થતાં આત્માનો પણ અભાવ થાય.) માટે ચેતના દર્શનજ્ઞાન સ્વરૂપ જ માનવી.

શાસ્ત્ર અભિપ્રાય

અર્થો તા.પથં એવું છે કે—શાંત્યમતી આદિ કેટલાક લોકો સામાન્ય ક્ષત્રિયને
 (એકાંત કહે છે, તેમના નિર્ભય કરવા માટે 'વરુણ' રવિ સામાન્યવિદ્યારૂપ
 ક્ષત્રિયને સામાન્યવિદ્યારૂપ અંગીકાર કરવી' એમ અર્થો જણાયું છે.
 હવે આગળના કથનની સૂચનારૂપ સ્તોત્ર કહે છે:—

(દંડવત)

પ્રથમિતિન્મય એવ ભાવો
 ભાવાઃ પરે ચે કિંચ તે પરેતામ્ ।
 પ્રાપ્તસ્તતિન્મય એવ ભાવો
 ભાવાઃ પરે મર્વન એવ હેવાઃ ॥ ૧૮૪ ॥

અર્થ:—પ્રથમનો (આત્માનો) તે એક ચિન્મય જ ભાવ છે, જે બીજા
 સે છે તે અરેખર પરના ભાવો છે; માટે (એક) ચિન્મય ભાવ જ પ્રદબ્ધ કરવા
 ય છે, બીજા ભાવો સર્વથા છાયાયોગ્ય છે. ૨૬૮—૨૬૯.

હવે આ ઉપરશની ગાથા કહે છે:—

કો જામ મણિજ ગુહો જાતં સર્વે પરાદૃષ્ટ ભાવે ।
 મદ્ધમિણંતિ ય વચનં જાણંતો અપ્યયં સુદં ॥ ૩૦૦ ॥
 કો જામ મણેદ્ વૃથઃ જ્ઞાન્વા સર્વાન્ પરકીયાન્ ભાવાન્ ।
 ય વચનં જાનમાત્માનં મૃદ્ધમ્ ॥ ૩૦૦ ॥

સર્વાન્ ભાવાન્] સર્વ ભાવોને [પરકીયાન્] પારકા [જ્ઞાત્યા]
 કેવળ જ્ઞાની, [જ્ઞાત્માનં] પોતાને [સુદં] શુદ્ધ [જ્ઞાન]
 'આ મારું છે' (—'આ ભાવો મારા છે') [સ્તિ ય વચનં]
 ?

) પરના અને આત્માના નિયત સ્વલક્ષણોના વિભાગમાં
 તે અરેખર એક ચિન્માત્ર ભાવને પોતાનો જાણે છે અને

તે જાણે, શુદ્ધ જાણે આત્મને.

: આ 'એવું' વચન જોતે ખરે? ૩૦૦.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માનની)

અનવરતમનૈર્તૈર્વચ્યતે સાપરાધઃ

સ્પૃક્ષતિ નિરપરાધો વંધને નૈવ જાતુ ।

નિયતમયમશુદ્ધં સ્વં મજન્સાપરાધો

મવતિ નિરપરાધઃ સાધુ શુદ્ધાત્મસેવી ॥ ૧૮૭ ॥

અર્થ:—સાપરાધ આત્મા નિરંતર અનંત પુદ્ગલપરમાણુરૂપ કર્મોદ્ધી બધા
છ; નિરપરાધ આત્મા બંધનને કદાપિ સ્પર્શતો નથી. જે સાપરાધ આત્મા ॥ તે તો
નિયમથી પોતાને અશુદ્ધ સેવતો થકે સાપરાધ છે; નિરપરાધ આત્મા તો બધી રીતે
શુદ્ધ આત્માનો સેવનાર હોય છે. ૩૦૪—૩૦૫.

(હવે વ્યવહારનવાવસંખી અર્થાત્ વ્યવહારનયને અવસંબનાર તર્ક કરે છે
કે:—) “શુદ્ધ આત્માની ઉપાસનાનો પ્રયાસ (મહેનત) કરવાનું શું કામ છે? કારણ
કે પ્રતિક્રમણ આદિથી જ આત્મા નિરપરાધ થાય છે; કેમ કે સાપરાધને, જે અપ્રતિક્રમણ
આદિ છે તે, અપરાધને દૂર કરનારાં નહિ હોવાથી, વિપકુંભ છે, મારે જે પ્રતિક્રમણ
આદિ છે તે, અપરાધને દૂર કરનારાં હોવાથી, અમૃતકુંભ છે. વ્યવહારાચારશૂન્યમાં
(-વ્યવહારને કહેનારાં આચારશૂન્યમાં-) પણ કશું છે કે—

અપ્પઙ્કિકમણમપ્પિસરણં અપ્પઙ્કિહારો ધારણા ચૈવ ।

અણિયત્તી ય અણિંદાગરહાસોહી ય વિસકુંમો ॥ ૧ ॥

પઙ્કિકમણં પ્પિસરણં પરિહારો ધારણા ણિયત્તી ય ।

ણિંદા ગરહા સોહી અટ્ટવિદો અમયકુંમો હુ ॥ ૨ ॥

અર્થ:—અપ્રતિક્રમણ, અપ્રતિસરણ, અપરિહાર, અધારણા, અનિવૃત્તિ,
અનિંદા, અગહાં અને અશુદ્ધિ—(એમ આઠ પ્રકારે, લાગેલાં દોષોનું પ્રાપચિત ન
કરવું) તે વિપકુંભ અર્થાત્ એવો ઘડો છે. પ્રતિક્રમણ, પ્રતિસરણ, પરિહાર, ધારણા
નિવૃત્તિ, નિંદા, ગહાં અને શુદ્ધિ—(એમ આઠ પ્રકારે, લાગેલાં દોષોનું પ્રાપચિત
કરવું) તે અમૃતકુંભ છે. ”

ઉપરના તર્કનું સમાધાન આચાર્યબ્રમવાન (નિશ્ચયનયની પ્રધાનતાથી)
ગાથામાં કરે છે:—

અપ્રિસરણં સમ્પત્તિદિ ગુરોર્મા પ્રેરણા, પરિહાર = મિથ્યાત્વસાદિ દોષોનું નિવારણ. ધારણા =
પંચનમસાદિ મંત્ર, પ્રતિમા વગેરે જાણ્ય કામોના અવબંન વડે મિતને રિશર કરવું. નિવૃત્તિ =

પટિકમણં પડિસરણં પરિહારો ધારણા ણિયત્તી ય ।
 ણિંદા ગરહા સોહી અટ્ટવિહો હોઝ વિસકુંભો ॥ ૩૦૬ ॥
 અપ્પટિકમણમપ્પડિસરણં અપ્પરિહારો અધારણા ચેવ ।
 અણિયત્તી ય અણિંદાગરહાસોહી અમયકુંભો ॥ ૩૦૭ ॥

પ્રતિક્રમણં પ્રતિસરણં પરિહારો ધારણા નિવૃત્તિચ ।
 નિંદા ગર્હા શુદ્ધિઃ અટ્ટવિષો ભવતિ વિપકુંભઃ ॥ ૩૦૬ ॥

અપ્રતિક્રમણમપ્રતિસરણમપરિહારોધારણા ચૈવ ।
 અનિવૃત્તિધાનિંદાગર્હાઽશુદ્ધિરમૃતકુંભઃ ॥ ૩૦૭ ॥

અન્યથાર્થઃ—[પ્રતિક્રમણં] પ્રતિક્રમણ, [પ્રતિસરણં] પ્રતિસરણ, [પરિહાર] પરિહાર, [ધારણા] ધારણા, [નિવૃત્તિઃ] નિવૃત્તિ, [નિંદા] નિંદા, [ગર્હા] ગર્હા [અટ્ટવિષો] અને શુદ્ધિ—[અટ્ટવિષો] એ આઠ પ્રકારનો [વિપકુંભ] વિપકુંભ [મયતિ] ય છે (કારણ કે એમાં કર્તાપણની શુદ્ધિ સંભવે છે).

[અપ્રતિક્રમણં] અપ્રતિક્રમણ, [અપ્રતિસરણં] અપ્રતિસરણ, [અપરિહાર] અપરિહાર, [અધારણા] અધારણા, [અનિવૃત્તિઃ] અનિવૃત્તિ, [અનિંદા] અનિંદા, [અગર્હા] અગર્હા [અથ અથ] અને [અશુદ્ધિઃ] અશુદ્ધિ—[અમૃતકુંભઃ] એ અમૃત-કુંભ છે (કારણ કે એમાં કર્તાપણનો નિગેષ છે—કાંઈ કરવાનું જ નથી, ખરે જય તો નથી).

ટીકાઃ—પ્રથમ તો જે અજ્ઞાનીજનસાધારણ (અર્થાત્ અજ્ઞાની લોકોને સાધારણ એવાં) અપ્રતિક્રમણપદિ છે તેઓ તો શુદ્ધ આત્માની સિદ્ધિના અભાવરૂપ સ્વભાવવાળાં હોવાને લીધે સ્વયમેવ અપરાધરૂપ હોવાથી વિપકુંભ જ છે; તેમના વિચાર કરવાનું શું પ્રયોજન છે? (તેઓ તો પ્રથમ જ ત્યાગવાયોગ્ય છે.) અને જે દવ્યરૂપ પ્રતિક્રમણપદિ છે તેઓ સર્વ અપરાધરૂપી ત્રિપના દોષોને ઘસારવામાં (નક્રમક્રમે

પ્રતિક્રમણ, ને પ્રતિસરણ, વળી પરિહરણ, નિવૃત્તિ, ધારણા, વળી શુદ્ધિ, નિંદા, ગર્હણા—એ અટ્ટવિધ વિપકુંભ છે. ૩૦૬.

અણપ્રતિક્રમણ, અણપ્રતિસરણ, અણપરિહરણ, અણધારણા, અનિવૃત્તિ, અણગર્હા. અનિંદા, અશુદ્ધિ—અમૃતકુંભ છે. ૩૦૭.

નાશવિષવગ્ધાવાદિ પ્રત્યક્ષા વર્તતા જિતને પાશું વાગવું. નિંદા = આત્મસાક્ષીએ દોષોનું પ્રત્યક્ષ કરવું. શુદ્ધિ = દોષ વર્તી પ્રાચલિત થઈને વિગદિ કરવી.

ભાવાર્થ:—રંગભૂમિમાં શોક્ષતત્વનો સ્વાંગ આવ્યો હતો, જ્યાં જ્ઞાન પ્રગટ થયું ત્યાં તે શોક્ષનો સ્વાંગ રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયો. ૩૦૬—૩૦૭.

જ્યાં નર કેવલ પર્યો દૃઢબંધન બંધસ્વરૂપ સખે દુષ્કારી,
ચિત્ત કરે નિતિ કેમ કૈં યહ તૌત્રી છિદે નહિ નૈક દિકારી;
છેદનકૂં ગહિ આયુધ ધાય ચલાય નિશાંક કરે દુય ધારી,
યોં બુધ બુદ્ધિ ધસાય દુધા કરિ કર્મ રૂ આતમ આપ ગહારી.

આમ આ સમયસાર મંથની (મીમંસુ અમૃતચંદ્ર આચાર્ય વિરચિત) આત્મભ્યાસ નામની રીકાની પડિત જયચંદ્રચક્રત ભાષાવચનિકામાં આપમા મોક્ષ અધિકાર પૂર્ણ થયો.



સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

સર્વવિશુદ્ધ મુજ્જાનમય, સદા આત્મારામ,
પરને કહે ન ભોગવે, જાણે જાણે તમુ નામ.

પ્રથમ દીક્ષાર આચાર્યકવ કહે છે કે “ હવે સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે.”

મોક્ષતત્ત્વને સ્વાંગ નીકળી ગયા પછી સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે. રંગ-
ભૂમિમાં હવ-અહવ, કર્તાકર્મ, પુણ્ય-પાપ, આશ્રય, સંવર, નિર્જશ, બધ અને મોક્ષ-
એ આઠ સ્વાંગ આવ્યા, તેમણે તત્ત્વ થયું અને પોતપોતાનું સ્વરૂપ બતાવી તેઓ
નીકળી ગયા. હવે સર્વ સ્વાંગો દૂર થયે એકાકાર સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે.

ત્યાં પ્રથમ જ, મંગલાર્થે જ્ઞાનપુંજ આત્માના અહિમાત્રું કાવ્ય કહે છે:—

(મંદારાત્મ)

નીત્વા સમ્યક્ પ્રલયમલિલાન્ કર્તૃમોક્ષાદિમાવાન્

દૂરીભૂતઃ પ્રતિપદમયં વંષમોક્ષમવલૃપ્તેઃ ।

શુદ્ધઃ શુદ્ધઃ સ્વરસવિસરાપૂર્ણપુણ્યાચળાચિ-

દ્વંકોત્કીર્ણમકટમદિમા સ્પૂર્નતિ જ્ઞાનપુંજઃ ॥ ૧૯૩ ॥

અર્થ:—સમસ્ત કર્તા-લોખા આદિ ભાવેને સમ્યક્ પ્રકારે નાશ પમાડીને
પડે પડે (અર્થાત્ કર્મના ક્ષયોપશમના નિમિત્તથી થતા દરેક પર્યાયમાં) બધ-મોક્ષની

* જાણે = જાણે; જોડે.

સ્વનાથી દૂર વર્તતો, શુદ્ધ-શુદ્ધ (અર્થાત્ જે શાગદિક મગ તેમ જ આવરણ—વસ્ત્ર સ્થિત છે એવો), જેનું પવિત્ર અગ્નિ તેજ નિઃસ્સરના (—જ્ઞાનસ્સરના, જ્ઞાનમયના) સ્સરના) દેહાવધી ભરપૂર છે એવો, અને જેનો મનુષ્ય ૮૦ કોટીજી પ્રગટ છે એવો જ્ઞાનપુરુષ આત્મા પ્રગટ થાય છે.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયનો વિષય જે જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા છે તે કર્તાભિક્ષાપૂર્ણ ભાવોથી સ્થિત છે, બયમોક્ષની સ્વનાથી સ્થિત છે, પરદ્રવ્યથી અને પરદ્રવ્યના સર્વ ભાવોથી સ્થિત હોવાથી શુદ્ધ છે, પાતાના સ્વરસના પ્રવાદથી પૂર્ણ દેહીપ્રમાણ ભોગી રૂપ છે અને ૮૦ કોટીજી મહિમાવાળો છે. એવો જ્ઞાનપુરુષ આત્મા પ્રગટ થાય છે.

હવે સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાનને પ્રગટ કરે છે. તેમાં પ્રથમ, ‘આત્મા કર્તાભિક્ષા-ભાવથી સ્થિત છે’ એવા અર્થનો, આગળની ગાથાની સૂચનિકારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુક્રમ)

કર્તૃત્વં ન સ્વભાવોઽસ્ય ચિત્તો વેદયિતૃત્વત્ ।

અજ્ઞાનાદેવ કર્તાયં તદભાવાદકારકઃ ॥ ૧૯૪ ॥

અર્થ:—કર્તાપિણ્ડ આ ચિત્તસ્વરૂપ આત્માનો સ્વભાવ નથી, જેમ ભોક્તાપિણ્ડ સ્વભાવ નથી. અજ્ઞાનથી જ તે કર્તા છે, અજ્ઞાનનો અભાવ થતાં અકર્તા છે.

હવે આત્માનું અકર્તાપિણ્ડ દર્શાવતી કહે છે:—

દવિયં જં ઉપ્પજ્જહુ ગુણેહિં તં તેહિં જાણસુ અણણં ।

જહ કહયાદીહિં દુ પજ્જહુ કણયં અણણમિહ ॥ ૩૦૮ ॥

જીવસ્સાજીવસ્સ દુ જે પરિણામા દુ દેસિયા સુત્તે ।

તં જીવમજીવં વા તેહિમણ્ણં વિયાણાહિ ॥ ૩૦૯ ॥

જે દ્રવ્ય ઉપજે જે ગુણોથી તેથી જાણ અનન્ય તે, જ્યમ જગતમાં કટકાદિ પર્ણોથી કનક અનન્ય છે. ૩૦૮.
જીવ અજીવના પરિણામ જે દર્શાવિયા સૂત્રો મહીં, તે જીવ અગર અજીવ જાણ અનન્ય તે પરિણામથી. ૩૦૯.

ળ કુદોચિ વિ ઉપ્પણ્ણો જત્થા કજ્જં ણ તેણ સો આદા ।
 ઉપ્પાદેદિ ણ કિંચિ વિ કારણમવિ તેણ ણ સ હોઢ ॥ ૩૧૦ ॥
 કમ્મં પહુચ્ચ કત્તા કત્તારં તહ પહુચ્ચ કમ્માણિ ।
 ઉપ્પજંતિ ય ણિયમા સિદ્ધી દુ ણ દીમણ્ અણ્ણા ॥ ૩૧૧ ॥

દ્રવ્યં ચદૃત્પચતે ગુણેસ્તગૈર્જનીયનન્યત્ર ।
 યથા કટકાદિભિસ્તુ પર્યાયેઃ કનકમનન્યદિદ્ ॥ ૩૦૮ ॥
 જીવસ્વાજીવસ્ય તુ પે પરિણામાન્તુ દર્શિતાઃ શુભે ।
 તે જીવમજીવં વા મૈરનન્યં વિજ્ઞાનીદિ ॥ ૩૦૯ ॥
 ન કૃતશ્ચિદપ્યુત્પન્નો યસ્માન્કાર્યં ન મૈન સ આત્મા ।
 ઉપાદયતિ ન કિંચિદપિ કારણમપિ મૈન ન જ મ્ભવતિ ॥ ૩૧૦ ॥
 કર્મ મર્તાન્ય કર્તા કર્તારં તથા મર્તાન્ય કર્માણિ ।
 ઉત્પચંતે ચ નિયમાન્નિદિદ્તુ ન દદયતેઽન્યા ॥ ૩૧૧ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યદ્ દ્રવ્યં] એ દ્રવ્ય [ગુણઃ] એ ગુણોથી [ઉત્પચતે] ઉપજે
 ઇ [મૈઃ] તે ગુણોથી [તદ્] તેને [અનન્ય અણ્] અનન્ય અણ; [યથા] એમ
 [રદ્] જગતમાં [કટકાદિભિઃ પર્યાયેઃ તુ] હાં આદિ પદ્યોથી [કનકં] શુભ
 [અનન્યત્] અનન્ય ઇ તેમ.

[જીવસ્ય અજીવસ્ય તુ] હવ અને અહવનાં [પે પરિણામાઃ તુ] એ પરિ-
 બ્રામે [રત્તે વર્તિતાઃ] શુભમાં દર્શાવ્યાં ઇ, [મૈઃ] તે પરિબ્રાહ્મથી [ને જીવં અજીવં
 વા] તે હવ અથવા અહવને [અનન્યં વિજ્ઞાનીદિ] અનન્ય અણ.

[યસ્માન્] કારણ કે [કૃતશ્ચિદ્ અપિ] કોઈથી [ન ઉત્પન્નાઃ] ઉત્પન્ન થયા
 નથી [મૈન] તેથી [સ્ત આત્મા] તે આત્મા [કાર્યં જ] (કેહનું) કાર્ય નથી.

ઉપજે ન આત્મા કોઈથી નથી ન આત્મા કાર્ય તે.
 ઉત્પન્નવનો નથી કોઈને નથી ન કાન્ય પાત્ર તે. ૩૧૦.
 ૩! કર્મ-આધિન રોય કર્તા. કર્મ પાત્ર હવ તમે
 આધિનપણે ઉપજે નિયમથી. મિદિ નર બીહ દિન. ૩૧૧.

[કિંચિદ્ અપિ] અને કેઈને [ન ઉત્પાદ્યતિ] ઉપજવતો નથી [તેન] તેથી [સ તે [કારણં અપિ] (કેઈનું) કારણ પણ [ન મવતિ] નથી.

[નિયમાત્] નિયમથી [કર્મ પ્રતીત્ય] કર્મના આશ્રયે (-કર્મને અવલંબી [કર્તાં] કર્તા હોય છે [તથા ચ] તેમ જ [કર્તારં પ્રતીત્ય] કર્તાના આશ્રયે [કર્મ ઉત્પદ્યંતે] કર્મો ઉત્પન્ન થાય છે; [અન્યા તુ] બીજી કેઈ રીતે [સિદ્ધિઃ] કર્તાકર્મની સિદ્ધિ [ન દદ્યતે] બોવામાં આવતી નથી.

ટીકા:—પ્રથમ તો જીવ ક્રમબદ્ધ એવાં પાતાનાં પરિણામોથી ઉપજતો જો જીવ જ છે, અજીવ નથી; એવી રીતે અજીવ પણ ક્રમબદ્ધ પાતાનાં પરિણામોથી ઉપજતો થઈ અજીવ જ છે, જીવ નથી; કારણ કે જેમ (કંકણ આદિ પરિણામોથી ઉપજતો એવા) સુવર્ણને કંકણ આદિ પરિણામો સાથે તાદાત્મ્ય છે તેમ સર્વ દ્રવ્યોને પાતાનાં પરિણામો સાથે તાદાત્મ્ય છે. આમ જીવ પાતાનાં પરિણામોથી ઉપજતો હોવા છતાં તેને અજીવની સાથે કાર્યકારણભાવ સિદ્ધ થતો નથી, કારણ કે સર્વ દ્રવ્યોને અજીવ દ્રવ્ય સાથે ઉત્પાદ-ઉત્પાદકભાવનો અભાવ છે; તે (કાર્યકારણભાવ) નહિ સિદ્ધ થતાં અજીવને જીવનું કર્મપણું સિદ્ધ થતું નથી; અને તે (અજીવને જીવનું કર્મપણું) નહિ સિદ્ધ થતાં, કર્તા-કર્મની બીજી કેઈ અપેક્ષાએ સિદ્ધિ નહિ હોવાથી, જીવને અજીવનું કર્તાપણું સિદ્ધ થતું નથી. આટે જીવ અકર્તા કરે છે.

ભાવાર્થ:—સર્વ દ્રવ્યોનાં પરિણામ ભુદાં ભુદાં છે. પાતપાતાનાં પરિણામોનાં સૌ દ્રવ્યો કર્તા છે; તેઓ તે પરિણામોના કર્તા છે, તે પરિણામો તેમનાં કર્મ છે. નિશ્ચયથી કેઈનો કેઈની સાથે કર્તાકર્મસંબંધ નથી. આટે જીવ પાતાનાં પરિણામોના જ કર્તા છે, પાતાનાં પરિણામ કર્મ છે. એવી જ રીતે અજીવ પાતાનાં પરિણામોના જ કર્તા છે, પાતાનાં પરિણામ કર્મ છે. આ રીતે જીવ બીજાનાં પરિણામોનો અકર્તા છે.

‘આ રીતે જીવ અકર્તા છે તોપણ તેને બંધ થાય છે એ કેઈ અજાણનો ખદિખા છે’ એવા અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય હવે કહે છે:—

(ચિખરિણી)

અકર્તા જીવોઽયં સ્થિત ઇતિ વિગૃહઃ સ્વરસતઃ

સ્ફુરગિજ્જ્યોતિર્વિગ્દુરિતમુવનામોગમવનઃ ।

તથાન્યસ્થામૌ સ્વાયદિદ કિંચ વંધઃ પ્રકૃતિવિઃ

મ મન્વજ્ઞાનસ્યઃ સ્ફુરતિ મદિમા કોઽપિ મનઃ ॥ ૧૧૫ ॥

અર્થ:—જો નિશ્ચયથી વિગૃહ છે, અને સ્ફુરતિમાન થતી જેની મન

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

તિઓ વડે લોકોનો સમસ્ત વિસ્તાર વ્યાપ્ત થઈ જાય છે એવો જોનો સ્વભાવ છે, એ આ છવ પૂર્વોક્ત રીતે (પરદ્રવ્યનો અને પરલાવોનો) અક્ષર્તાં કથો, તોપણ તેને જગતમાં કર્મપ્રકૃતિઓ સાથે આ (પ્રગટ) બંધ થાય છે તે ખરેખર અજ્ઞાનનો કર્મ ગહન મહિમા સ્ફુરણમાન છે.

બાવાર્થ:—જેનું જ્ઞાન સર્વ જોયોમાં વ્યાપનારું છે એવો આ છવ સુદનયથી પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી, તોપણ તેને કર્મનો બંધ થાય છે તે કોઈ અજ્ઞાનનો ગહન મહિમા છે—જેનો પાર પમાતો નથી. ૩૦૮—૩૧૧.

(હવે આ અજ્ઞાનના મહિમાને પ્રગટ કરે છે:—)

ચેયા ઉ પયડીઅટ્ટં ઉપ્પજ્ઞહ વિણસ્સહ ।
પયડી વિ ચેયયટ્ટં ઉપ્પજ્ઞહ વિણસ્સહ ॥ ૩૧૨ ॥
एवं वंधो उ दुण्हं वि अण्णोण्णपज्जया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥ ३१३ ॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति ।
प्रकृतिरपि चेतकार्यमुत्पद्यते विनश्यति ॥ ३१२ ॥
एवं वंधस्तु द्वयोरपि अन्योन्यप्रत्ययाद्भवत् ।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते ॥ ३१३ ॥

અન્યથાર્થ:—[ચેતયિતા તુ] ચેતક અર્થાત્ આત્મા [પ્રકૃત્યર્થ] પ્રકૃતિના નિમિત્તે [ઉત્પદ્યતે] ઉપજે છે [વિનશ્યતિ] તથા વિલુપ્તે છે, [પ્રકૃતિઃ અપિ] અને પ્રકૃતિ પણ [ચેતકાર્ય] ચેતકના અર્થાત્ આત્માના નિમિત્તે [ઉત્પદ્યતે] ઉપજે છે [વિનશ્યતિ] તથા વિલુપ્તે છે. [एवं] એ રીતે [अन्योन्यप्रत्ययात्] પરસ્પર નિમિત્તથી [द्वयोः अपि] બન્નેનો—[आत्मनः प्रकृतेः च] આત્માનો ને પ્રકૃતિનો—[वंधस्तु] બંધ થાય છે, [तेन] અને તેથી [संसार] સંસાર [जायते] ઉત્પન્ન થાય છે.

પણ છવ પ્રકૃતિના નિમિત્તે ઉપજે વિલુપ્તે અરે!
ને પ્રકૃતિ પણ છવના નિમિત્ત ઉપજે વિલુપ્તે;
અન્યોન્યના નિમિત્ત એ રીત બંધ બેડે તબો અને
—આત્મા અને પ્રકૃતિ તબો, સંસાર તેથી થાય.

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

ત્યુધી તે [અણાયક] અણાયક છે, [મિષ્ટ્યાદિષ્ટિ] મિષ્ટ્યાદિષ્ટિ છે, [અસંયતઃ મવેત] અસંયત છે.

[યદા] જ્યારે [ચેતયિતા] આત્મા [અનતકં કર્મફલં] અનંત કર્મફળને [વિમુંચતિ] છોડે છે, [તદા] ત્યારે તે [જ્ઞાયક] જ્ઞાયક છે, [દર્શકઃ] દર્શક છે, [મુનિઃ] મુનિ છે, [વિમુક્તઃ મવતિ] વિમુક્ત (અર્થાત્ બંધથી રહિત) છે.

ટીકા:—જ્યાંત્યુધી આ આત્મા, (પાતાનાં અને પરનાં જુદાં જુદાં) નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોનું જ્ઞાન (બેદજ્ઞાન) નહિ હોવાને લીધે, પ્રકૃતિના સ્વભાવને—કે જે પાતાને બંધનું નિમિત્ત છે તેને—છોડતો નથી, ત્યાંત્યુધી સ્વ-પરના એકત્વજ્ઞાનથી અણાયક છે, સ્વપરના એકત્વદર્શનથી (એકત્વરૂપ મહાનથી) મિષ્ટ્યાદિષ્ટિ છે અને સ્વપરની એકત્વ-પરિણતિથી અસંયત છે; અને ત્યાંત્યુધી જ પરના અને પાતાના એકત્વને અધ્યાસ કરવાથી કર્તા છે. અને જ્યારે આ જ આત્મા (પાતાનાં અને પરનાં જુદાં જુદાં) નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોના જ્ઞાનને (બેદજ્ઞાનને) લીધે પ્રકૃતિના સ્વભાવને—કે જે પાતાને બંધનું નિમિત્ત છે તેને—છોડે છે, ત્યારે સ્વપરના વિભાગજ્ઞાનથી (બેદજ્ઞાનથી) જ્ઞાયક છે, સ્વપરના વિભાગદર્શનથી (બેદદર્શનથી) દર્શક છે અને સ્વપરની વિભાગ-પરિણતિથી (બેદપરિણતિથી) સંયત છે; અને ત્યારે જ પરના અને પાતાના એકત્વને અધ્યાસ નહિ કરવાથી અકર્તા છે.

ભાવાર્થ:—જ્યાંત્યુધી આ આત્મા પાતાના અને પરના સ્વલક્ષણને ભજુતો નથી ત્યાંત્યુધી તે બેદજ્ઞાનના અભાવને લીધે કર્મપ્રકૃતિના ઉદયને પાતાનો સમજી પરિણમે છે; એ રીતે મિષ્ટ્યાદિષ્ટિ, અજ્ઞાની, અસંયમી થઈને, કર્તા થઈને, કર્મના બંધ કરે છે. અને જ્યારે આત્માને બેદજ્ઞાન થાય છે ત્યારે તે કર્તા થતો નથી, તેથી કર્મના બંધ કરતો નથી, જ્ઞાતાદ્રશ્યપણે પરિણમે છે.

“એવી જ રીતે બોઝાપણું પણ આત્માનો સ્વભાવ નથી” એવા અર્થને
“ગગની ગગ્યાની સ્થનારૂપ સ્થેક હવે કહે છે:—

(અનુક્રુપ)

યોગત્વં ન સ્વાભોક્ત્ય સ્મૃતઃ કર્તૃત્વવચિનઃ ।
અજ્ઞાનાદેવ યોકાર્યં તદભાવાદવેદકઃ ॥ ૧૯૬ ॥

અર્થ:—કર્તાપણની જેમ બોઝાપણું પણ આ ચેતન્યનો (ચિત્ત આત્માનો) સ્વભાવ કદો નથી. અજ્ઞાનથી જ તે બોઝા છે, અજ્ઞાનનો અભાવ અબોઝા છે. ૩૧૪—૩૧૫.

દુને આ અર્થને માથામાં કહે છે:—

अज्ञानी कर्मफलं पश्यन्निहावृष्टिभ्यो ह वेदेह ।

पानी पुन कम्मसुं जागइ उदिगं ण वेदेइ ॥ ३१६ ॥

अङ्गानि कर्मरजं बहुविधभावाभिरुज्ज्वलं चैव ।

इहं नृः कर्तव्यं ज्ञानं इति न वेदते ॥ ३१६ ॥

अन्वयार्थः—[मज्झिमे] अज्झिमे [मरुत्तियमादियुगः सु] भूतिग
 २२५२२२ [मिने २२] २२ [कर्मकर्म] ३३३३३ [वेदवे] वे (वेदवे) ३ (दु
 ३३) ३३ ३३ ३३ [उत्तिन कर्मकर्म] उत्तिन (उत्तिन आनेका) ३३३३
 [उत्तिन] ३३ ३३ [उत्तिन] वेदो नथी

શરતિશુદ્ધિના અધિકાર

દન્તેવં નિયમં નિરૂપ્ય નિપુણૈરજ્ઞાનિતા ત્યજ્યતાં
શુદ્ધૈવાન્મયે યદસ્યચત્તૈરામેવ્યતાં જ્ઞાનિના ॥ ૧૯૭ ॥

અર્થ:—અજ્ઞાની પ્રકૃતિસ્વભાવમાં હીન-રૂપ દોષાધી (-તેને જ પોતાનો ભાવ જાણતો દોષાધી-) સદા વેદક છે, અને જ્ઞાની તો પ્રકૃતિસ્વભાવથી વિરામ પ્રેમી—વિરક્ત દોષાધી (-તેને પરતો સ્વભાવ જાણતો દોષાધી-) કદાપિ વેદક નથી. આવે નિયમ બરાબર વિચારીને—નહી કરીને નિપુણ પુરુષો અજ્ઞાનીપણાને છોડી અને શુદ્ધ-એક-આત્મામય તેજમાં નિરૂપ્ય થઈને જ્ઞાનીપણાને એવો. ૩૧૬.

દ્વયે, 'અજ્ઞાની વેદક જ છે' એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ 'અજ્ઞાની જોખા જ છે' એવો નિયમ છે—એમ કહે છે):—

જ મુણઃ પયડિમમ્બો મુદ્ધુવિ અજ્ઞાઙ્ગુણ સત્થાણિ ।
ગુદ્ધુદ્ધંપિ પિવંતા જ પણયા ણિવિસા હંતિ ॥ ૩૧૭ ॥

ન મુચતિ મહતિમધ્વયઃ મુદ્ધુવિ પ્રયતિ નામ્નાણિ ।
ગુદ્ધુદ્ધમપિ પિવંતો ન પણયા નિર્વિપા મંવંતિ ॥ ૩૧૭ ॥

અન્યથાર્થ:—[મુદ્ધુ] સારી રીતે [જ્ઞાત્રાણિ] જ્ઞાત્રો [મચીત્ય મપિ] ભણીને પણ [મમળ્યા] અભણ્ય [પ્રકૃતિ] પ્રકૃતિને (અર્થાત્ પ્રકૃતિના સ્વભાવને) [ન મુચતિ] છોડતો નથી, [ગુદ્ધુદ્ધં] જેમ સાકરવાણું ફૂલ [પિવંતા મપિ] પીતાં જતાં [પણયા] સર્પો [નિર્વિપા] નિર્વિપ [ન મંવંતિ] થતા નથી.

ટીકા:—જેમ આ જગતમાં સર્પ વિપ્રભાવને પોતાની જોડે છોડતો નથી અને વિપ્રભાવ છોડાવવાને (મદાપવાને) સમર્થ એવા સાકરસહિત ફૂલના પાનથી પણ છોડતો નથી, તેમ ખરેખર અભણ્ય પ્રકૃતિસ્વભાવને પોતાની જોડે છોડતો નથી અને પ્રકૃતિ સ્વભાવ છોડાવવાને સમર્થ એવા દ્રવ્યમુતના જ્ઞાનથી પણ છોડતો નથી; કારણ કે તેને સદાય, ભાવમુતજ્ઞાનસ્વરૂપ શુદ્ધાત્માજ્ઞાનના (-શુદ્ધ આત્માના જ્ઞાનના) અભાવને હીને અજ્ઞાનીપણું છે. આથી એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ એવો નિયમ કરે છે કે અજ્ઞાની પ્રકૃતિસ્વભાવમાં રિપત દોષાધી વેદક જ છે (-જેમના જોખા જ છે).

મુરીને ભણીને જ્ઞાત્ર પણ પ્રકૃતિ અભણ્ય નહિ તમે,
સાકરસહિત કીરપાનથી પણ સર્પ નહિ નિર્વિપ અને. ૩૧૭.

ભાવાર્થ:—આ ગાથામાં, અજ્ઞાની કર્મના ફળનો ભોક્તા જ છે—નિયમ કહ્યો. અહીં અસંવ્યતું ઉદાહરણ યુક્ત છે. અસંવ્યતો એવો સ્વયમેવ રત છે કે દ્રવ્યમૃતનું જ્ઞાન આદિ બાહ્ય કારણો મળવા છતાં અસંવ્ય જવ, શુદ્ધ આત્મા જ્ઞાનના અભાવને લીધે, કર્મના ઉદયને લોભવવાનો સ્વભાવ બદલતો નથી; મોટું ઉદાહરણથી સ્પષ્ટ થાય છે કે સામ્યોનું જ્ઞાન વગેરે હોવા છતાં જ્યાંમુધી જવને અજ્ઞાનનું જ્ઞાન નથી અર્થાત્ અજ્ઞાનીપણું છે ત્યાંમુધી તે નિયમથી ભોક્તા જ છે. ૩૮.

હવે, જ્ઞાની તો કર્મફળનો અવેદક જ છે—એવો નિયમ કરવામાં આવે છે.

निर्वेदसमापन्नो णाणी कर्मफलं विद्याणेह ।

महुरं कडुकं बहुविधमवेदकस्तेन स भवति ॥ ३१८ ॥

निर्वेदसमापन्नो જ્ઞાની કર્મફલં વિજ્ઞાનાતિ ।

મહૂરં કડુકં બહુવિધમવેદકસ્તેન સ ભવતિ ॥ ૩૧૮ ॥

અન્યાર્થ:—[નિર્વેદસમાપ્ત:] નિર્વેદપ્રાપ્ત (વૈરાગ્યને પામેણો) [જ્ઞાની] જ્ઞાની [મહુરં કડુકં] મીઠા-કડવા [બહુવિધ] અહુવિધ [કર્મફલં] કર્મફળ [વિજ્ઞાનાતિ] બાળે છે [તેન] તેથી [સ:] તે [અવેદક: ભવતિ] અવેદક છે.

ટીકા:—જ્ઞાની તો જેમાંથી ભેદ રૂર થયા છે એવું ભાવમુજ્જાન લેવું સ્વરૂપ છે એવા શુદ્ધાત્માજ્ઞાનના (-શુદ્ધ આત્માના જ્ઞાનના -) સંસ્કારાવને લીધે, પરંતુ અત્યંત વિરક્ત હોવાથી પ્રવૃત્તિસ્વભાવને (કર્મના ઉદયના સ્વભાવને) સ્વયમેવ ભેદ છે તેથી ઉદયમાં આવેલા અમહુર કે મહુર કર્મફળને જ્ઞાતાપણાને લીધે કેવળ બાળે છે, પરંતુ જ્ઞાન દોનાં (-જ્ઞાન હોય ત્યારે -) પરદ્રવ્યને 'હું' પછે અનુભવની અવ્યવસ્થા હોવાથી (તે કર્મફળને) વેદતો નથી. મોટે, જ્ઞાની પ્રવૃત્તિસ્વભાવથી વિરક્ત હોવાથી અવેદક જ છે.

ભાવાર્થ:—જે જેનાથી વિરક્ત હોય તે તેને સ્વચ્છ તો ભોગવે નહિ, અને પરચ્છ ભોગવે તો તેને પરચ્છ ભોક્તા કહેવાય નહિ. આ ન્યાયે જ્ઞાની—કે જે પ્રવૃત્તિ સ્વભાવને (કર્મના ઉદયને) પાતાનો નહિ બાળતો હોવાથી તેનાથી વિરક્ત છે તે સ્વચ્છ તો પ્રવૃત્તિસ્વભાવને ભોગવતો નથી, અને ઉદયની બળભેરીથી પરચ્છ રહે.

નિર્વેદને પામેલ જ્ઞાની કર્મફળને બાળતો,

—કેવા મહુર અહુવિધને, તેથી અકારક છે અદો! ૩૧૮.

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

થોડા પાતાની નિર્જળતાથી બોમવે તો તેને પરમાર્થ બોખા કહેવાય નહિ, વ્યવહારથી બોખા કહેવાય. પરંતુ વ્યવહારનો તો અહીં શુદ્ધનયના કથનમાં અધિકાર નથી; માટે જ્ઞાની અબોખા જ છે.

હવે આ અર્થશું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિલા)

જ્ઞાની કરોતિ ન ન વેદયતે ચ કર્મ
જાનાતિ ફેવલમયં કિલ તત્ત્વમાવમ્ ।
જાનન્પરં કરણવેદનપોરમાવા-
ચ્છુદ્ધસ્વમાવનિયતઃ સ હિ મુક્ત एव ॥ ૧૯૮ ॥

અર્થ:—જ્ઞાની કર્મને કરતો નથી તેમ જ વેદતો નથી, કર્મના સ્વભાવને તે કેવળ જાણે જ છે. એમ કેવળ જાણતો થકો કરજીના અને વેદનના (—કરવાના અને ભોગવવાના—) અભાવને લીધે શુદ્ધ સ્વભાવમાં નિશ્ચય એવો તે અરેખર મુક્ત જ છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાની કર્મના સ્વાધીનપણે કર્તા-બોખા નથી, કેવળ જ્ઞાના જ ; માટે તે કેવળ શુદ્ધસ્વભાવરૂપ થયો થકો મુક્ત જ છે. કર્મ દેહમાં આવે પણ છે, પણ જ્ઞાનીને તે શું કરી રહે ? બ્યાંમુખી નિર્જળતા રહે ત્યાંમુખી કર્મ ભેર થસાયે છે; કર્મ કર્મ સખગતા વધારીને છેવટે તે જ્ઞાની કર્મના નિર્જળ નાશ કરશે જ. ૩૧૮.

હવે આ જ અર્થને ફરી દેહ કરે છે:—

જપિ કુચ્ચઈ જપિ વેયઈ જાણી કર્મમાઈ વહુપયારાઈ ।
જાણઈ પુણ કર્મફલં વંધં પુણં ચ પાવં ચ ॥ ૩૧૯ ॥

નાપિ કરોતિ નાપિ વેદયતે જ્ઞાની કર્મોણિ વદ્યમાણાણિ ।
જાનાતિ પુનઃ કર્મફલં વંધં પૂર્વં ચ પાવં ચ ॥ ૩૧૯ ॥

અન્યાર્થ:—[જ્ઞાની] જ્ઞાની [વદ્યમાણાણિ] બહુ પ્રકારનાં [કર્મ] કર્મોને [ન નાપિ કરોતિ] કરતો પણ નથી, [ન નાપિ વેદયતે] વેદતો (ભોગવવાનાં)

કરતો નથી, નથી વેદતો જ્ઞાની કર્મ બહુવિધને. બસ જાણતો એ બધે તેમ જ કર્મરૂપ શુભ-અશુભને. ૩૧૯.

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

વગર રહે જ છે; તેવી રીતે જ્ઞાન પણ, પાતે (નેત્રની મારફત) દુખનાર હોવાથી, કર્મથી અત્યંત ભિન્નપણીને લીધે નિશ્ચયથી તેને કરવા-વેદવાને અસમર્થ હોવાથી, કર્મને કરવું નથી અને વેદવું નથી, પરંતુ કેવળ જ્ઞાનભાવસ્વભાવવાળું (જાગૃતાના સ્વભાવવાળું) હોવાથી કર્મના બંધને તથા મોક્ષને, કર્મના ઉદયને તથા નિર્જનને કેવળ જાણે જ છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનનો સ્વભાવ નેત્રની જેમ દરથી જાગૃતાનો છે; મારે કરવું-મોગવડું જ્ઞાનને નથી. કરવા-મોગવડાપણું જ્ઞાનનું તે અજ્ઞાન છે. અહીં કોઈ પૂછે કે—“એવું તો કેવળજ્ઞાન છે. બાકી જ્યાંયુધી મોહકર્મના ઉદય છે ત્યાંયુધી તો મુખદુઃખસાગરો પરિભ્રમન થાય જ છે, તેમ જ જ્યાંયુધી દર્શનાવરણ, જ્ઞાનાવરણ તથા વીર્યાતરાયનો ઉદય છે ત્યાંયુધી અદર્શન, અજ્ઞાન તથા અસમર્થપણું હોય જ છે; તો પછી કેવળજ્ઞાન થયા પહેલાં જ્ઞાતાદ્રશ્યપણું કેમ હોવાય?” તેનું સમાધાન—હોયેથી હોતા જ આવેલીએ હીએ કે જે સ્વતંત્રપણે કરે-મોગવે, તેને પરમાર્થ કર્તા-સાક્ષી હોવાય છે. મારે જ્યાં મિથ્યાદષ્ટિએ અજ્ઞાનનો અભાવ થયો ત્યાં પરદાખના સ્વામીપણાનો અભાવ થયો અને ત્યારે હવે જ્ઞાની થયો થયો સ્વતંત્રપણે તો દેહિને કર્તા-મોક્ષા થયો નથી, તથા પાતાની નમજાઈથી કર્મના ઉદયની બજારોથી જે કાર્ય થાય છે તેના કર્તા-મોક્ષા પરમાર્થદષ્ટિએ તેને હોવાનો નથી. વળી તે કાર્યના નિમિત્તે કાંઈક નવીન કર્મરજ લાગે પણ છે તોપણ તેને અહીં બંધમાં જાગૃતામાં આવતી નથી. મિથ્યાત્વ છે તે જ સંસાર છે. મિથ્યાત્વ ગયા પછી સંસારનો અભાવ જ થાય છે. સમુદ્રમાં બિંદુની રીતે જાગૃતરી?

વળી એકજુ વિશેષ જાણવું કે—કેવળજ્ઞાની તો સાક્ષાત્ શુદ્ધાત્મસ્વરૂપ જ છે અને મુતજ્ઞાની પણ શુદ્ધતત્ત્વના અવસ્થાનથી આત્માને એવો જ અનુભવે છે પ્રત્યક્ષ પરોક્ષનો જ ભેદ છે. મારે મુતજ્ઞાનીને જ્ઞાન-મહાનની અપેક્ષાએ તો જ્ઞાન દ્રશ્યપણું જ છે અને ચારિત્રની અપેક્ષાએ પ્રતિપક્ષી કર્મના કોરસો ઉદય છે તેના માત્ર છે તથા તેને નાશ કરવાનો ઉદ્યમ પણ છે. જ્યારે કર્મના અભાવ થયો ત્યારે સાક્ષાત્ત્વના ચારિત્ર થયો અને ત્યારે કેવળજ્ઞાન થયો. અહીં સમ્યક્દષ્ટિને જ્ઞાની કહેવા આવે છે તે મિથ્યાત્વના અભાવની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવે છે. જ્ઞાનસામાન્ય અપેક્ષા લઈએ તો તો સર્વ હવે જ્ઞાની છે અને વિશેષ અપેક્ષા લઈએ તો જ્યાં પ્રિયિન્નાત્ર પણ અજ્ઞાન રહે ત્યાંયુધી જ્ઞાની કહી શકાય નહિ—જેમ સિદ્ધિ ભાવોનું વર્જન કરતાં, જ્યાંયુધી કેવળજ્ઞાન ન હોય ત્યાંયુધી અર્થાત્ બારમા ગુણો ગુણી અજ્ઞાનભાવ રહ્યો છે. મારે અહીં જે જ્ઞાની-અજ્ઞાનીપણું હતું તે સમ્યક્ મિથ્યાત્વની અપેક્ષાએ જ જાણવું.

इति चेत्ते — जैनानां साधुनां कृत्वा — सर्वथा ज्ञानान्ता आत्मापदी कृत्वा
 इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

(७-५-३१)

ये तु कर्तारमत्त्वानि पश्यन्ति तदग्रा तताः ।

मयन्त्यजननेनां न मोक्षोऽपि सुषुप्ताम् ॥ १९९ ॥

अर्थः — जैनानां साधुनां कृत्वा — सर्वथा ज्ञानान्ता आत्मापदी कृत्वा
 इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते
 इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

इति चेत्ते ते तेन निवेदनेन आत्मानां भावानीं सुखनाश एव इति चेत्ते

एवं न कोऽपि मोक्षो दृश्यते लोकधमणानां द्रव्येषामपि ।
निर्गमं पृथगां सदेवमनुजानामुक्तान् लोकान् ॥ ३२३ ॥

અન્યથાર્થઃ—[લોકસ્ય] લોકના (લૌકિક જનોના) મતમાં [સુરનાર] નિર્વૃદ્ધાનુગ્રાહ સજ્જાત્ર] કેવં, નારક, નિર્વૃદ્ધ, મનુષ્ય—પ્રાણીઓને [ચિણ્ણઃ] વિષ્ણુ [કરોતિ] કરે છે; [જ] અને [વદિ] બે [ધમણાનાં અપિ] અમણાના (મુનિઓના) મનુષ્યમાં પણ [વદ્યિયાન્ કાયાન્] છ કાયના દૃષ્ટિને [માત્મા] આત્મા [કરોતિ] કરતો હોય [વદિ લોકધમણાનામ્] તો લોક અને અમણાને [અકાં સિદ્ધાંતાં] એ સિદ્ધાંત થાય છે, [વિદેશ] કાંઈ દેશ [ન દદ્યતે] દેખાતો નથી; (કારણ કે [લોકસ્ય] લોકના મતમાં [ચિણ્ણઃ] વિષ્ણુ [કરોતિ] કરે છે. [ધમણાનાં અપિ] અને અમણાના મતમાં પણ [માત્મા] આત્મા [કરોતિ] કરે છે (તેથી કર્તાપણના માન્યતામાં બન્ને સમાન થયા). [યર્થ] એ રીતે, [સદેવમનુજાનુગ્રાહ લોકાન્] દેવ મનુષ્ય અને અમુરવાળા ત્રણે લોકને [નિર્ગમં કુર્યતામ્] સદાય કરતા (અર્થાત્ ત્રણે લોકના કર્તાભાવે નિરંતર પ્રવર્તતા) એવા [લોકધમણાનાં દ્રવ્યેષાં અપિ] તે લોક તે જ અમણ—બ્રહ્મેના [કોઽપિ મોક્ષઃ] કાંઈ મોક્ષ [ન દદ્યતે] દેખાતો નથી.

ટીકા—એઓ આત્માને કર્તા જ રહે છે—માને છે, તેઓ લોકોત્તર હોય તોપણ લૌકિકાને અતિક્રમતા નથી; કારણ કે, લૌકિક જનોના મતમાં પરમાત્મા વિષ્ણુ દેવનારૂપિ કાર્યો કરે છે, અને તેમના (લોકથી બાહ્ય ઘણેલા એવા મુનિઓના) મતમાં ધોનાને આત્મા તે કાર્યો કરે છે—એમ *અપસિદ્ધાંતની (બંનેને) સમાનતા છે. આરે આત્માના નિત્ય કર્તાપણની તેમની માન્યતાને લીધે, લૌકિક જનોની આદેશ લોકોત્તર પ્રરૂપાને (મુનિઓને) પણ મોક્ષ થતો નથી.

સાવાર્થઃ—એઓ આત્માને કર્તા માને છે, તેઓ બંને મુનિ થયા હોય તોપણ લૌકિક જન જેવા જ છે; કારણ કે, લોક ઉપરને કર્તા માને છે અને તે મુનિઓએ આત્માને કર્તા માને—એમ બંનેની માન્યતા સમાન થઈ. આરે જેમ લૌકિક જનોને મોક્ષ નથી, તેમ તે મુનિઓને પણ મોક્ષ નથી. જે કર્તા થશે તે કાર્યના ફળને લોભાપી જ, અને જે ફળ ભોગવશે તેને મોક્ષ કેવો?

હવે, 'પરદ્રવ્યને અને આત્માને કાંઈ પણ સંબંધ નથી, આરે કર્તાકર્મસંબંધ' પણ નથી'—એમ *લોકમાં કહે છે—
(અનુદ્વૈય)

नास्ति सर्वोऽपि संबंधः पदव्यात्मतत्त्वयोः ।

पद्वैકर्मत्वસંવંધાપાवे तत्कर्तृत्वा कुतः ॥ २०० ॥

* અપસિદ્ધાંત = એટલે અથવા બૃહભરણે સિદ્ધાંત.

અર્થ:—પરદ્રવ્યને અને આત્મતત્ત્વને સંબંધ (અર્થાન્ કાંઈ પણ) સંબંધ નથી; એમ કર્તાકર્મપણાના સંબંધનો અભાવ હોનાં, આત્માને પરદ્રવ્યનું કર્તાપણું ક્યાંથી હોય ?

સાવાર્થ:—પરદ્રવ્યને અને આત્માને કાંઈ પણ સંબંધ નથી, તો પછી તેમને કર્તાકર્મસંબંધ કઈ રીતે હોય ? એ રીતે જ્યાં કર્તાકર્મસંબંધ નથી, ત્યાં આત્માને પરદ્રવ્યનું કર્તાપણું કઈ રીતે હોઈ શકે ? ૩૨૧—૩૨૩.

હવે, “જેઓ વ્યવહારનયના કથનને મહીને ‘પરદ્રવ્ય મારું છે’ એમ કહે છે, એ રીતે વ્યવહારને જ નિશ્ચય માનીને આત્માને પરદ્રવ્યનો કર્તા માને છે, તેઓ મિથ્યાદષ્ટિ છે” ઇત્યાદિ અર્થની ગાથાઓ દર્શાવે સહિત કહે છે:—

વવહારમાસિણ ઉ પરદવ્વં મમ મળંતિ અવિદિયત્થા ।

જાળંતિ ણિચ્છયેણ ઉ ણ ય મહ પરમાણુમિચ્છમવિ કિંચિ ॥ ૩૨૪ ॥

જહ કોવિ ણરો જંપડ અહ્મં ગામવિસયણયરરટ્ઠં ।

ણ ય હુંતિ તસ્સ તાણિ ઉ મળઇ ય મોહેણ સો અપ્પા ॥ ૩૨૫ ॥

એવ મિચ્છદિટ્ઠી ણાણી ણીસંસયં હવડ્ એસો ।

જો પરદવ્વં મમ હદિ જાળંતો અપ્પયં કુણહ ॥ ૩૨૬ ॥

તહ્મા ણ મેત્તિ ણિન્ના દોણહ વિ ણ્યાણ કત્તવિવસાયં ।

પરદવ્વે જાળંતો જાણિજ્જો દિટ્ઠિરહિયાણં ॥ ૩૨૭ ॥

વ્યવહારમૂઢ અતત્ત્વવિદ્ પરદ્રવ્યને ‘મારું’ કહે,
‘પરમાણુમાત્ર ન મારું’ જ્ઞાની જાણતા નિશ્ચય વડે. ૩૨૪.

જ્યમ પુરુષ કોઈ કહે ‘અમારું ગામ, પુર ને દેશ છે,’
પણ તે નથી તેનાં, અરે ! જીવ મોહથી ‘મારાં’ કહે; ૩૨૫.

એવી જ રીત જે જ્ઞાની પણ ‘મુજ’ જાણતો પરદ્રવ્યને,
નિઝરૂપ કરે પરદ્રવ્યને, તે જરૂર મિથ્યાત્વી બને. ૩૨૬.

તેથી ‘ન મારું’ જાણી જીવ, પરદ્રવ્યમાં આ ઉભયની
કર્તૃત્વશ્રુતિ જાણતો, જાણે સુદષ્ટિરહિતની. ૩૨૭.

વ્યવહારમાપિતેન તુ પરદ્રવ્યં મમ ધર્મંત્યવિદિતાર્થાઃ ।
જાનેતિ નિશ્ચયેન તુ ન ચ મમ પરમાણુમાત્રમપિ કિંચિત્ ॥ ૩૨૪ ॥
યથા કોઽપિ નરો જલ્પતિ અસ્માકં ગ્રામધિવસનગરરાષ્ટ્રમ્ ।
ન ચ ભવંતિ તસ્ય તાનિ તુ ધર્મંતિ ચ મોદેન સ આત્મા ॥ ૩૨૫ ॥
એવમેવ મિથ્યાદદિષ્ટિર્જાની નિઃસંગયં ભવત્યેવઃ ।
યઃ પરદ્રવ્યં મમેતિ જ્ઞાનઘાત્માને કરોતિ ॥ ૩૨૬ ॥
તસ્માન્ન મે રૂતિ જ્ઞાત્વા દ્રવ્યેષામપ્યેતેષાં કર્તૃવ્યવસાયમ્ ।
પરદ્રવ્યે જ્ઞાનન જાનીયાન્ દદિષ્ટિરદિતાનામ્ ॥ ૩૨૭ ॥

અન્યથાર્થઃ—[મયિવિતાર્થાઃ] જેમણે પદાર્થ' ૨૫૩૫ બાજુ' નથી એવ
પુરુષો [વ્યવહારમાપિતેન તુ] વ્યવહારમાં વચનેને ધરીને [પરદ્રવ્યં મમ] 'પરદ્રવ્ય
મારું છે' [ચર્ચંતિ] એમ કહે છે, [તુ] ૫૨૭ જ્ઞાનીએ [નિશ્ચયેન જાનેતિ] નિશ્ચય
પરે બળે છે કે [કિંચિત્] 'કેઈ [પરમાણુમાત્રં અપિ] પરમાણુમાત્ર ૫૭ [ન ચ
મમ] મારું નથી.'

[યથા] જેવી રીતે [કોઽપિ નરઃ] કેઈ પુરુષ [અસ્માકં ગ્રામધિવસનગરરાષ્ટ્રમ્]
'અમારું ગામ, અમારો દેશ, અમારું નગર, અમારું રાષ્ટ્ર' [જલ્પતિ] એમ કહે છે,
[તુ] ૫૨૭ [તાનિ] તે [તસ્ય] તેનાં [ન ચ ભવંતિ] નથી, [મોદેન ચ] મોદી
[સઃ આત્મા] તે આત્મા [મળતિ] 'મારાં' કહે છે; [એવં વચ] તેવી જ રીતે [યા
જ્ઞાતી] જે જ્ઞાની ૫૭ [પરદ્રવ્યં મમ] 'પરદ્રવ્ય મારું છે' [રૂતિ જ્ઞાનમ્] એમ બાજુનો
થકો [જ્ઞાત્માને કરોતિ] પરદ્રવ્યને પાતાઈપ કહે છે, [યથા] તે [નિઃસંગયં] નિઃસંકલ્પ
અર્થાત્ શોભસ [મિથ્યાદદિષ્ટિઃ] મિથ્યાદદિ [મળતિ] થાય છે.

[તસ્માન્ન] મારે તત્ત્વજ્ઞો [ન મે રૂતિ જ્ઞાત્વા] 'પરદ્રવ્ય મારું નથી' એમ
બાજીને, [એતેષાં દ્રવ્યેષાં અપિ] આ બધેનાં (-કોકેના બને અમળેના-) [પરદ્રવ્યે]
પરદ્રવ્યમાં [કર્તૃવ્યવસાયં જ્ઞાનમ્] કર્તાપણનો વ્યવસાય બાજુના થકો, [જાનીયાન્]
એમ બાજુ છે કે [દદિષ્ટિરદિતાનામ્] આ વ્યવસાય સમ્બંધરૂપિન દદિષ્ટિ પુરુષોના છે.

ટીકા—અજ્ઞાનીએ જ વ્યવહારવિમુદ્ધ (વ્યવહારમાં જ વિમુદ્ધ) હોવાથી
પરદ્રવ્યને 'આ મારું છે' એમ કહે છે—માને છે; જ્ઞાનીએ તો નિશ્ચયનિશ્ચય
(નિશ્ચયના બાજુનાર) હોવાથી પરદ્રવ્યની કબ્જિયાતમાં ૫૭ 'આ મારું છે' એમ
રખતા નથી. તેથી, જેમ આ જગતમાં કેઈ વ્યવહારવિમુદ્ધ એવો પારકા ગામમાં
રહેનારો બાજુસ 'આ ગામ મારું છે' એમ રખાનો-માનનો થકો મિથ્યાદદિ (-બોલી

મિથ્યાત્વં યદિ પ્રકૃતિર્મિથ્યાદૃષ્ટિં કરોત્યાત્માનમ્ ।
 તસ્માદ્દેવેતના તે પ્રકૃતિર્નનુ કારકા પ્રાપ્તા ॥ ૩૨૮ ॥
 અથૈવ જીવઃ પુદ્ગલદ્રવ્યસ્ય કરોતિ મિથ્યાત્વમ્ ।
 તસ્માત્પુદ્ગલદ્રવ્યં મિથ્યાદૃષ્ટિર્ન પુનર્જીવઃ ॥ ૩૨૯ ॥
 અથ જીવસ્પ્રકૃતિસ્તથા પુદ્ગલદ્રવ્યં કુરુતે મિથ્યાત્વમ્ ।
 તસ્માન્ ઢાખ્યાં કૃતં ઢાવપિ મુંજાતે તસ્ય ફલમ્ ॥ ૩૩૦ ॥
 અથ ન પ્રકૃતિર્ન જીવઃ પુદ્ગલદ્રવ્યં કુરુતે મિથ્યાત્વમ્ ।
 તસ્માત્પુદ્ગલદ્રવ્યં મિથ્યાત્વં તત્તુ ન સ્વલુ મિથ્યા ॥ ૩૩૧ ॥

અન્વયાર્થઃ—[યદિ] જો [મિથ્યાત્વં પ્રકૃતિઃ] મિથ્યાત્વ નામની (મિથ્યા-
 નીય કર્મની) પ્રકૃતિ [આત્માનં] આત્માને [મિથ્યાદૃષ્ટિં] મિથ્યાદૃષ્ટિ [કરોતિ] કરે
 છે એમ માનવામાં આવે, [તસ્માત્] તો [તે] તાણે અતમાં [અદેવેતના પ્રકૃતિઃ]
 અદેવેતન પ્રકૃતિ [નનુ કારકા પ્રાપ્તા] (મિથ્યાત્વભાવની) કર્તા બની! (તેથી મિથ્યાત્વ-
 ભાવ અદેવેતન ધર્મે!)

[અથવા] અથવા, [જીવઃ] આ જીવ [પુદ્ગલદ્રવ્યસ્ય] પુદ્ગલદ્રવ્યના
 [મિથ્યાત્વં] મિથ્યાત્વને [કરોતિ] કરે છે એમ માનવામાં આવે, [તસ્માત્] તો
 [પુદ્ગલદ્રવ્યં મિથ્યાદૃષ્ટિઃ] પુદ્ગલદ્રવ્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ કરે!—[ન પુનઃ જીવઃ] જીવ નહિ!

[અથ] અથવા જો [જીવઃ તથા પ્રકૃતિઃ] જીવ તેમ જ પ્રકૃતિ બંને [પુદ્ગલ-
 દ્રવ્યં] પુદ્ગલદ્રવ્યને [મિથ્યાત્વં] મિથ્યાત્વભાવરૂપ [કુરુતે] કરે છે એમ માનવામાં
 આવે, [તસ્માન્] તો [ઢાખ્યાં કૃતં] જે બંને વડે કરવામાં આવ્યું [તસ્ય ફલં]
 તેનું ફળ [ઢાવપિ મુંજાતે] બંને ભોગવે!

[અથ] અથવા જો [પુદ્ગલદ્રવ્યં] પુદ્ગલદ્રવ્યને [મિથ્યાત્વં] મિથ્યાત્વભાવરૂપ
 [ન પ્રકૃતિઃ કુરુતે] નથી પ્રકૃતિ કરતી [ન જીવઃ] કે નથી જીવ કરતો (એમાંથી
 ફળ કરતું નથી) એમ માનવામાં આવે, [તસ્માન્] તો [પુદ્ગલદ્રવ્યં મિથ્યાત્વં]
 પુદ્ગલદ્રવ્ય સ્વભાવે જ મિથ્યાત્વભાવરૂપ કરે! [તદ્ તુ ન સ્વલુ મિથ્યા] તે સુખને નથી
 મિથ્યા નથી!

(અહીં એમ સિદ્ધ થાય છે કે પાતાના મિથ્યાત્વભાવનો—ભાવકર્મનો—
 નથી જીવ જ છે.)

ટીકા—જીવ જ મિથ્યાત્વ આદિ ભાવકર્મનો કર્તા છે; કારણ કે જો તે

(ભાવકર્મ) અચેતન પ્રકૃતિનું કાર્ય હોય તો તેને (ભાવકર્મને) અચેતનપણા પ્રસંગ આવે. જ્યે પાતાના જ મિથ્યાત્વવાદિ ભાવકર્મને કર્તા છે; કારણ કે જો જ્યે પુરુષસદૃશ્યના મિથ્યાત્વવાદિ ભાવકર્મને કરે તો પુરુષસદૃશ્યને ચેતનપણાનો પ્રસંગ આવે. વળી જ્યે અને પ્રકૃતિ જન્મે મિથ્યાત્વવાદિ ભાવકર્મના કર્તા છે એમ પણ નથી; કારણ કે જો તે જન્મે કર્તા હોય તો જ્યેની માફક અચેતન પ્રકૃતિને પણ તેનું (ભાવકર્મનું) કૃણ ભોગવવાનો પ્રસંગ આવે. વળી જ્યે અને પ્રકૃતિ જન્મે મિથ્યાત્વવાદિ ભાવકર્મને કર્તા છે એમ પણ નથી; કારણ કે જો તે જન્મે કર્તા હોય તો સ્વભાવથી જ્યે પુરુષસદૃશ્યને મિથ્યાત્વવાદિ ભાવનો પ્રસંગ આવે. માટે એમ સિદ્ધ થયું કે—જ્યે કર્તા છે અને પાતાનું કર્મ કાર્ય છે (અર્થાત્ જ્યે પાતાના મિથ્યાત્વવાદિ ભાવકર્મને કર્તા છે અને પાતાનું ભાવકર્મ પાતાનું કાર્ય છે).

ભાવાર્થ:—ભાવકર્મનો કર્તા જ્યે જ છે એમ આ ગાથાઓમાં સિદ્ધ થયું છે. અહીં એમ જણવું કે—પરમાર્થે અન્ય દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યના ભાવનું કર્તા હોય નહિ તેથી જ્યે ચેતનના ભાવો છે તેમનો કર્તા ચેતન જ હોય. આ જ્યેને અજ્ઞાનથી જ્યે મિથ્યાત્વવાદિ ભાવરૂપ પરિણામો છે તે ચેતન છે, જડ નથી; શુદ્ધનયથી તેમને ચિદાભાવ પણ કહેવામાં આવે છે. એ રીતે તે પરિણામો ચેતન હોવાથી, તેમનો કર્તા પણ ચેતન જ છે; કારણ કે ચેતનકર્મનો કર્તા ચેતન જ હોય—એ પરમાર્થ છે. અભેદદૃષ્ટિમાં તે જ્યે જ્યે શુદ્ધચેતનાભાવ જ છે, પરંતુ જ્યારે તે કર્મના નિમિત્તે પરિણામો છે ત્યારે તે પરિણામોથી યુક્ત તે થાય છે અને ત્યારે પરિણામ-પરિણામીની ભેદદૃષ્ટિમાં પાતાના અજ્ઞાનભાવરૂપ પરિણામોનો કર્તા જ્યે જ છે. અભેદદૃષ્ટિમાં તો કર્તાકર્મભાવ જ નથી શુદ્ધચેતનાભાવ જ્યેવસ્તુ છે. આ પ્રમાણે યથાર્થ પ્રકારે સમજવું કે ચેતનકર્મનો કર્તા ચેતન જ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિનિર્મિત)

કાર્યત્વાદકૃતં ન કર્મ ન ચ તક્ષીવમકૃત્યોર્દ્વિયો-

રક્ષાયાઃ મકૃતેઃ સ્વકાર્યફલમુભાવાનુપંગાત્કૃતિઃ ।

નૈકસ્યાઃ મહતેરચિત્તલસનાઙ્ગીવોડસ્ય કર્તા તત્તો

જીવસ્યૈવ ચ કર્મ તદ્વિદનુગં જ્ઞાતા ન યત્પુદ્ગલઃ ॥ ૨૦૩ ॥

અર્થ:—કર્મ (અર્થાત્ ભાવકર્મ) છે તે કાર્ય છે, માટે તે અકૃત હોય નહિ. અર્થાત્ કેહાંએ કયાં વિના થાય નહિ. વળી તે (ભાવકર્મ) જ્યે અને પ્રકૃતિ જન્મેની પ્રકૃતિ હોય એમ નથી, કારણ કે જો તે જન્મેનું કાર્ય હોય તો જ્ઞાનરહિત (જડ) એવી

પ્રકૃતિને પણ ધોતાના કાર્યનું કૃત્ર બોગવવાનો પ્રસંગ આવે. વળી તે (ભાવ) એક પ્રકૃતિની કૃતિ (-એકલી પ્રકૃતિનું કાર્ય-) પણ નથી, કારણ કે પ્રકૃતિને અચેતનપણું પ્રકાશે છે (અર્થાત્ પ્રકૃતિ તો અચેતન છે અને ભાવકર્મ ચેતન માટે તે ભાવકર્મનો કર્તા જ નથી અને ચેતનને અનુસરનારું અર્થાત્ ચેતન અન્વયરૂપ (-ચેતનના પરિણામરૂપ-) એવું તે ભાવકર્મ જ નહીં, કાર્મક, પ્રાગભવ તો સાત્તા નથી (તેથી તે ભાવકર્મ પુરુષને કર્મ હોઈ શકે નહિ).

ભાવાર્થ:—ચેતનકર્મ ચેતનને જ હોય; પુરુષ જ નહીં, તેને ચેતન કેમ હોય?

હવેની ગાથાઓમાં, જેઓ ભાવકર્મનો કર્તા પણ કર્મને જ માને છે તે સમજાવવાને સ્વાધ્યાસ અનુસાર વસ્તુસ્થિતિ કહેશે; તેની સૂચનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ છે.

(સાદ્ભવિનીકૃત)

કર્મર મચિતાર્ય કર્તુ હતૈઃ સિદ્ધાત્મનઃ કર્તૃતા
કર્તાભ્યેવ કયંચિદ્વિત્યનિષ્પન્ના કૈશ્ચિન્નૃતિઃ કોપિતા ।

તેષામુદ્ગતમોહમુદ્રિતપિષાં ચોષસ્ય સંયુદ્ધયે

સ્વાઝારમનિર્વપલ્લવ્વિજપા વસ્તુસ્થિતિઃ સૂચયે ॥ ૨૦૪ ॥

અર્થ:—કેઈ આત્માના ધાતક (સર્વથા એકાંતવાદીઓ) કર્મને જ માનવાની આત્માના કર્તાપણને ઉડાડીને, 'આ આત્મા કથમિત્ કર્તા છે' એમ માનેલી અચેતન ભવિષ્ય રોકવા કરે છે (-નિર્ભય જિનપણીની વિશયના કરે છે); તો કેટલી જેમની બુદ્ધિ નિઃશરૂ મઈ છે એવા તે આત્મધાતકોના જ્ઞાનની સંશુદ્ધિ અને (જેનેનાં મનઃપણામાં) વસ્તુસ્થિતિ કહેવામાં આવે છે—કે જે વસ્તુસ્થિતિને સ્વાધ્યાસ દ્વારા પ્રવિણ થઈ શકે તે જ (અર્થાત્ જે વસ્તુસ્થિતિ સ્વાધ્યાસરૂપ નિવરણની સ્થિતિમાં નહીં થાય છે).

અર્થ:—કેઈ એકાંતવાદીઓ સર્વથા એકાંતવાદી કર્મનો કર્તા કર્મને જ માને છે અને એવાં કર્મને જ માને છે; તેઓ આત્માના ધાતક છે. તેમના પર જિનપણીના દેવ કે, કેન્દ્ર કે એકવાદી વસ્તુસ્થિતિને નિર્ભય રીતે મિલક કરનારી જિનપણી કે આત્માને કથમિત્ કર્તા કરે છે. આત્માને અનર્તા જ કરેલાં એકાંતવાદીઓની બુદ્ધિ કે એકાંતવાદી વિષય મરેલી છે; તેમના નિર્વપલ્લવે કરે કરવાને આવાઈ કરનાર એકાંતવાદી એવી વસ્તુસ્થિતિ છે તેવી, નીચેની નામકરણ કરે છે. ૨૦૪—૨૦૬

‘આત્મા શર્વશઃ અતર્તા નથી, કથમિત્તં તર્તા પદ્ય છે’ એવા અર્થની સાધાઓ હરે હરે છે:—

કમ્મેહિ દુ અણ્ણાણી વિઙ્ગહ ણાણી તદ્દેવ કમ્મેહિ ।
 કમ્મેહિ મુલાવિઙ્ગહ જગ્ગાવિઙ્ગહ તદ્દેવ કમ્મેહિ ॥ ૩૩૨ ॥
 કમ્મેહિ મુલાવિઙ્ગહ દુક્ખાવિઙ્ગહ તદ્દેવ કમ્મેહિ ।
 કમ્મેહિ ય મિચ્છત્તં ણિઙ્ગહ ણિઙ્ગહ અસંજમં ચેવ ॥ ૩૩૩ ॥
 કમ્મેહિ ભમાહિઙ્ગહ ઉદ્દમહો ચાવિ તિરિયલોયં ચ ।
 કમ્મેહિ ચેવ વિઙ્ગહ મુહામુહં જિત્તિ યં કિંચિ ॥ ૩૩૪ ॥
 જત્થા કમ્મં કુલ્લહ કમ્મં દેદ્દે હરત્તિ જં કિંચિ ।
 તત્થા ઉ સન્નજીવા અકારયા હંતિ આવણ્ણા ॥ ૩૩૫ ॥
 પુરિસિચ્છિયાહિલાસી હન્નીકમ્મં ચ પુરિસમહિલસહ ।
 ણ્ણસા આપરિયપરંપરાગયા ણ્ણસી દુ મુદ્દે ॥ ૩૩૬ ॥

“કર્મો કરે અજ્ઞાની તેમ જ જ્ઞાની પણ કર્મો કરે,
 કર્મો મુલાદે તેમ વળી કર્મો જગાદે જીવને; ૩૩૨.
 કર્મો કરે મુખી તેમ વળી કર્મો દુઃખી જીવને કરે,
 કર્મો કરે મિથ્યાત્વી તેમ અસંયમી કર્મો કરે; ૩૩૩.
 કર્મો ભભાવે ઊર્ધ્વ લોકે, અથઃ ને તિર્યક્ વિષે,
 જે કાંઈ પણ શુભ કે અશુભ તે સર્વને કર્મ જ કરે. ૩૩૪.
 કર્મ જ કરે છે, કર્મ એ આપે, હરે,—સવળું કરે,
 તેથી હરે છે એમ કે આત્મા અકારક સર્વ છે. ૩૩૫.
 વળી ‘પુરુષકર્મ સ્ત્રીને અને સ્ત્રીકર્મ ધન્ય છે પુરુષને’
 —એવી શ્રુતિ આચાર્ય કેરી પરંપરા ઊતરેલ છે. ૩૩૬.

જીવસ્સ જીવસ્સં વિચ્છરદો જાણ લોચમિત્તં સુ ।
તત્તો સો કિં હીણો અહિઓ ય કહં કુણહિ દલ્લં ॥ ૩૪૩ ॥
અહ જાણઓ ડ ભાવો જાણસહાવેણ અસ્થિ ઇત્તિ મયં ।
તહ્મા જ વિ અપ્પા અપ્પયં તુ સયમપ્પણો કુણહિ ॥ ૩૪૪ ॥

કર્મભિસ્તુ અજ્ઞાની ક્રિયતે જ્ઞાની તથૈવ કર્મભિઃ ।
કર્મભિઃ સ્વાપ્યતે જાગર્યતે તથૈવ કર્મભિઃ ॥ ૩૩૨ ॥
કર્મભિઃ શુભી ક્રિયતે દુઃશુભી ક્રિયતે તથૈવ કર્મભિઃ ।
કર્મભિઃ મિધ્યાત્વં નીયતે નીયતેઽસંયમં ચૈવ ॥ ૩૩૩ ॥
કર્મભિર્નામ્યતે કુર્ષ્વમપદ્ધાપિ તિર્યગ્લોકં ચ ।
કર્મભિર્થૈવ ક્રિયતે શુભાશુભં યાવચન્કિંચિન્ ॥ ૩૩૪ ॥
યસ્માત્કર્મ કરોતિ કર્મ દદાતિ દરતીતિ ચન્કિંચિન્ ।
તસ્માન્નુ સર્વજીવા અકારકા ભવંત્યાપદ્ધાઃ ॥ ૩૩૫ ॥
પુરુષઃ દુઃશુભિલાષી શ્લીકર્મં ચ પુરુષમભિચ્છતિ ।
પ્રયાચાર્યપરંપરાગતૈરદશી નૃ શ્રુતિઃ ॥ ૩૩૬ ॥
તસ્માન્ન કોઽપિ જીવોઽપ્રદક્ષચારી ત્વસ્માકમુપદેને ।
યસ્માન્કર્મ ચૈવ દિ કર્માભિચ્છતીતિ મણિતમ્ ॥ ૩૩૭ ॥
યસ્માદ્દંતિ પરં પરેણ દુન્યતે ચ સા મહતિઃ ।
પ્રતેનાર્થેન કિંચ ભગ્યતે પરપાતનામેતિ ॥ ૩૩૮ ॥
તસ્માન્ન કોઽપિ જીવ ઉપપાતનોઽત્યસ્માકમુપદેને ।
યસ્માન્કર્મ ચૈવ દિ કર્મ દંતીતિ મણિતમ્ ॥ ૩૩૯ ॥

વિસ્તારધીય જીવરૂપ જીવનું લોકભાવ જ છે ખરે,
શું તેથી ને હીન-અધિક બનતો? કેમ કરતો દ્રવ્યને? ૩૪૨.
માને તું—'શાયક ભાવ નો જ્ઞાનસ્વભાવે સ્થિત રહે,'
તો એમ પણ આત્મા સ્વયં નિજ આત્માને નહિ ૩૪૪.

વળી, [યસ્માત્ પરં દત્તિ] જે પરને હણે છે [જ] અને [પરેણ દન્યતે] જે પરથી હણાય છે [સા પ્રકૃતિ:] તે પ્રકૃતિ છે—[યતેન ચર્ચેન કિલ] એ અર્થમાં [પરમાત્માનામ ઇતિ મળ્યતે] પરમાત્માનામકર્મ હહેવામાં આવે છે, [તસ્માત્] તેથી [યસ્માકં ઉપદેશે] આપણે ઉપદેશમાં [કોઽપિ જીવઃ] કેઈ પણ જીવ [ઉપવાતકા ન સ્મિન] ઉપવાતક (હણનાર) નથી [યસ્માત્] કારણ કે [કર્મં વૈય દિ] કર્મ જ [કર્મં દંતિ] કર્મને હણે છે [ઈતિ મણિતં] એમ કહ્યું છે.”

(આધાર્પણમવાન કહે છે કે:—) [યયં તુ] આ પ્રમાણે [ઈદં સાંલ્લો-પદેશં] આપણે સાંખ્યમતનો ઉપદેશ [યે યમણાઃ] જે મળે (જેન મુનિઓ) [પ્રકૃત્યંતિ] પ્રકૃતિ [તેષાં] તેમના મનમાં [પ્રકૃતિઃ કતોતિ] પ્રકૃતિ જ કરે છે [આત્માના જ સર્વે] અને આત્માઓ તો સર્વે [ચકારકાઃ] અકારક એમ કરે છે!

[અથવા] અથવા (કર્તાપણને પણ સાધવાને) [મન્યસે] કોણ એમ માને કે ‘[મમ આત્મા] મારે આત્મા [આત્માના] પાતાના [આત્માને] (દ્રવ્યરૂપ) આત્માને [કતોતિ] કરે છે,’ [યત્ જાનતાઃ તય] તો એણે જાણનારને તારે [યપઃ મિથ્યા-સ્વભાવઃ] એ મિથ્યાસ્વભાવ છે (અર્થાત્ એમ જાણવું તે તારે મિથ્યાસ્વભાવ છે); [યદ્] કારણ કે—[સમયે] સિદ્ધાંતમાં [આત્મા] આત્માને [નિત્યઃ] નિત્ય, [અસંલેયપ્રદેશઃ] અસંખ્યાત-પ્રદેશી [વર્ણિતઃ તુ] બતાવ્યો છે, [તતઃ] તેનાથી [સઃ] તેને [હીનઃ અધિકઃ ચ] હીન-અધિક [કર્તુ ન ચપિ શક્યતે] કરી શકતો નથી; [વિસ્તરતઃ] વળી વિસ્તારથી પણ [જીવસ્ય જીવરૂપં] જીવનું જીવરૂપ [સત્ત્વ] નિશ્ચયથી [લોકમાત્રં જાનીદિ] લોકમાત્ર જાણે; [તતઃ] તેનાથી [યિં સઃ હીનઃ અધિકઃ યા] શું તે હીન અથવા અધિક થાય છે? [દ્રવ્યં કયં કતોતિ] તો પછી (આત્મા) દ્રવ્યને (અર્થાત્ દ્રવ્યરૂપ આત્માને) કઈ રીતે કરે છે?

[અથ] અથવા કો ‘[જ્ઞાવકઃ જ્ઞાયઃ તુ] જ્ઞાયક જ્ઞાય તો [જ્ઞાનસ્વભાવેન તિષ્ઠતિ] જ્ઞાનસ્વભાવે સ્થિત રહે છે’ [ઈતિ મતં] એમ માનવામાં આવે, [તસ્માત્ અપિ] તો એમ પણ [આત્મા સ્વયં] આત્મા પાતે [આત્માનાઃ આત્માને તુ] પાતાના આત્માને [ન કતોતિ] કરતો નથી એમ કરે છે!

(આ રીતે કર્તાપણું સાધવા મટે વિવક્ષા પડતીને જે પણ કહ્યો તે વસ્તો નથી).

(આ પ્રમાણે, કર્મનો કર્તા કર્મ જ માનવામાં આવે તો સ્વાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવે છે; મટે આત્માને અજ્ઞાન-અવસ્થામાં કથંચિન્ પાતાના અજ્ઞાનભાવરૂપ કર્મનો કર્તા માનવો, જેથી સ્વાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી.)

પ્રીતિ:—(આવી પૂર્વપક્ષ એક પ્રમાણે છે:) “કર્મ જ આત્માને અગ્ર છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની (અજ્ઞાનની) અવસ્થા છે; કર્મ જ (આત્માને) સ્થળી કરે છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણ નામના કર્મના ક્ષય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ સુવાર છે, કારણ કે નિદ્રા નામના કર્મના વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ ઘેરગાય છે, કારણ કે નિદ્રા નામના કર્મના ક્ષય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ સુખી કરે છે, કારણ કે શાન્તાવેદનીય નામના ઉદય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ દુઃખી કરે છે, કારણ કે અશાન્તાવેદ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ મિથ્યાદિષ્ટિ કરે છે, કારણ કે મિથ્યાત્વના ઉદય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ અસંયમી કરે છે, કારણ કે ચારિત્ર્યભંગ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ ઉપવેશિ છે, કારણ કે અવેશભંગ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની અવુપપત્તિ છે; કર્મ જ કાંઈ પણ બેદરશી રુદ્ધ અશુભ છે તે જ કર્મ જ છે, કારણ કે પ્રસાદ-અપ્રસાદ રાગ નામના કર્મના ઉદય વિના તે અવુપપત્તિ છે. એ રીતે બધું જ સ્વરૂપ છે, કર્મ જ કરે છે, કર્મ જ આપે છે, કર્મ જ દરી લે છે, તેથી અને એમ નિશ્ચય કરીએ છીએ કે—સર્વે જીવો સદાય એકાંતે બાંધે છે. વળી મુનિ (જગવાનની વાણી, શાસ્ત્ર) પણ એ જ અર્થને કહે છે; કારણ કે (તે મુનિ) “પુરુષને નામનું કર્મ શ્રીની અભિજ્ઞાપા કરે છે અને શ્રીવિ નામનું કર્મ પુરુષની અભિજ્ઞાપા કરે છે” એ વાક્યથી કર્મને જ કર્મની અભિજ્ઞાપાના કારણ તરીકે જણાવે છે અને અપ્રમાણ્યના કાર્તવ્યના નિર્ણય કરે છે, તથા ‘એ પક્ષે દમ્ય છે અને એ પક્ષે દમ્યા છે તે પરમાત્મા છે’ એ વાક્યથી કર્મને જ કર્મના કારણ તરીકે જણાવે છે તથા બાળના કાર્તવ્યના નિર્ણય કરે છે, અને એ રીતે (અપ્રમાણ્યના તથા બાળના કાર્તવ્યના નિર્ણય દ્વારા) જનનું સર્વથા જ અપ્રમાણ્ય જણાવે છે.”

(આચાર્યજીવ કહે છે:—) આ પ્રમાણે આ (કુવિન) અપ્રમાણ્યી જનના અર્થને નહિ આપે છે, તેથી એકાંતે પ્રવૃત્તિના કર્મની અભિજ્ઞાપાથી, એ રીતે જ તેની ‘અવ’ કરે છે. (આચાર્ય જગવાનની વાણી, કર્મ કારણ—કે એવું જણાવે છે અને એ રીતે જ એ રીતે જ)

પાનાની પ્રમાણ
ગુણાગ્રા પ્રાપ્તિ
નિર્ણય અત્યંત
શાસ્ત્ર માર્ગ છે
અજ્ઞાનની
કિંમત

અભિપ્રાય છે તે મિથ્યા જ છે. (તે સમગ્રવચામાં આવે છે:) હવે તો દ્રવ્યરૂપે નિર્મલ, અસંખ્યાન-પ્રદેશી છે અને લોકપરિભ્રાજુ છે. તેમાં પ્રથમ, નિત્યત્વ કાર્યપણું બન રાકતું નથી, કારણ કે કૃતપણુને અને નિત્યપણુને એકપણુનો વિરોધ છે. (આત્મા નિત્ય છે તેથી તે કૃત અર્થાત્ કૃતિએ કરેલાં લોક શકે નહિ). વળી અવસ્થિત અસંખ્ય-પ્રદેશવાળા એકને (-આત્માને), પુદ્ગલરૂપની માફક, પ્રદેશોનાં પ્રદેશપણુ-આકર્ષણ કારણે પણ કાર્યપણું બની રાકતું નથી, કારણ કે પ્રદેશોનાં પ્રદેશપણુ તથા આકર્ષણ થાય તો તેના એકપણુનો વ્યાધાત થાય. (રૂકમ અનેક પરમાણુઓનો બનેલા છે, માટે તેમાંથી પરમાણુઓ નીકળી જાય તેમ જ તેમાં પરમાણુઓ આવે; પરંતુ આત્મા નિશ્ચિન અસંખ્ય-પ્રદેશવાળું એક જ દ્રવ્ય હોવાથી તે ધાનના પ્રદેશને કાઢી નાખી શકે નહિ તેમ જ વધારે પ્રદેશને લઈ શકે નહિ.) વળી સકળ લોકરૂપી ધરના વિસ્તારથી પરિમિત બેનો નિશ્ચિત નિજ વિસ્તાર-સંબંધ છે (અર્થાત્ લોક જોરૂં બેનું નિશ્ચિત માપ છે) તેને (-આત્માને) પ્રદેશોના સક્રિય-વિકાસ દ્વારા પણ કાર્યપણું બની રાકતું નથી, કારણ કે પ્રદેશોના સક્રિય-વિસ્તાર થવા છતાં પણ, સૂક્ષ્મ-ભીના સામગ્રી માફક, નિશ્ચિત નિજ વિસ્તારને લીધે તેને (આત્માને) હીન-અધિક કરી રાકતો નથી. (આ રીતે આત્માને દ્રવ્યરૂપ આત્માનું કર્તાપણું થતી રાકતું નથી.) વળી, “વસ્તુસ્વભાવનું સર્વથા મરતું અસાધ્ય હોવાથી સાધક ભાવ જ્ઞાનસ્વભાવે જ સદાય સ્થિત રહે છે અને એમ સ્થિત રહેનો થકે, સાધકપણુને અને કર્તાપણુને અત્યંત વિરુદ્ધતા હોવાથી, મિથ્યાત્વાદિ ભાવોના કર્તા થતો નથી; અને મિથ્યાત્વાદિ ભાવો તો ધાય છે; તેથી તેમનો કર્તા કર્મ જ છે એમ પ્રરૂપણું કરવામાં આવે છે.”—આવી બે સાક્ષના (અભિપ્રાય, વસ્તુ) પ્રગટ કરવામાં આવે છે તે પણ ‘આત્મા આત્માને કરે’ એવી (પૂર્વોક્ત) માન્યતાને અનિશયપણે હલે જ છે (કારણ કે સદાય સાધક જ્ઞાનવાળી આત્મા અકર્તા જ કર્તા).

માટે, સાધક ભાવ સામાન્ય અપેક્ષાએ જ્ઞાનસ્વભાવે અવસ્થિત હોવા છતાં, થી ઉન્નત થતા મિથ્યાત્વાદિ ભાવોના જ્ઞાનસમયે, અનાદિ કાળથી જોય અને જ્ઞાનના વિજ્ઞાનથી મૂલ્ય હોવાને લીધે, પરંતુ આત્મા તરીકે બાહ્યતો એવો તે (સાધક ભાવ) જ અપેક્ષાએ અજ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામને કરતો હોવાથી (-અજ્ઞાનરૂપ એટલું જોઈ પશ્ચિમન તેને કરતો હોવાથી), તેને કર્તાપણું સંમત કરવું (અર્થાત્ તે કર્તા સ્વીકારવું); તે ત્યાંગુથી કે ત્યાંગુથી બેદનિજ્ઞાનની આદિથી જોય અને જ્ઞાનના જ્ઞાનથી પૂર્ણ (અર્થાત્ બેદનિજ્ઞાન સહિત) થવાને લીધે આત્માને જ આત્મા બનતો એવો તે (સાધક ભાવ), વિશેષ અપેક્ષાએ પણ જ્ઞાનરૂપ જ જ્ઞાનપરિણામનો થકો (-જ્ઞાનરૂપ એટલું જોઈ જ્ઞાનનું પશ્ચિમન તે-રૂપે જ પશ્ચિમનો થકો),

કેવળ જ્ઞાતાપણને સીધે સાક્ષાત્ અકર્તા થાય.

ભાવાર્થ:—કેટલાક જૈન મુનિઓ પણ સ્યાદ્વાદ-વાણીને બરાબર ના સમજીને સર્વથા એકાંતનો અભિપ્રાય કરે છે અને વિવક્ષા પસંદીને એમ કહે છે કે—
 “આત્મા તો ભાવકર્મના અકર્તા જ છે, કર્મપ્રકૃતિનો ઉદય જ ભાવકર્મને કરે છે અજ્ઞાન, જ્ઞાન, સુષુ, જાગૃત્, સુષુ, દુઃખ, મિથ્યાત્વ, અસંયમ, ચાર ગતિઓનું ભ્રમણ—એ બધાંને, તથા જે કાંઈ શુભ-અશુભ ભાવો તે બધાયને કર્મ જ કરે છે, છતાં તો અકર્તા છે.” વગી તે મુનિઓ શાસ્ત્રનો પણ એવો જ અર્થ કરે છે કે—
 “વેદના ઉદયથી સ્ત્રી-પુરુષનો વિકાર થાય છે અને ઉપઘાત તથા પરઘાત પ્રકૃતિના ઉદયથી પરસ્પર ઘાત પ્રવર્તે છે.” આ પ્રમાણે, જેમ સાંખ્યમતી બધુંય પ્રકૃતિનું જ કાર્ય માને છે અને પુરુષને અકર્તા માને છે, તેમ, પોતાની બુદ્ધિના દોષથી આ મુનિઓનું પણ એવું જ એકાંતિક માનવું થયું. મારે જિનવાણી તો સ્યાદ્વાદરૂપ હોવાથી, સર્વથા એકાંત માનનારા તે મુનિઓ પર જિનવાણીનો કોપ અવશ્ય થાય છે. જિનવાણીના કોપના ભયથી જો તેઓ વિવક્ષા પસંદીને એમ કહે કે—“ભાવકર્મના કર્તા કર્મ છે અને પોતાના આત્માનો (અર્થાત્ પોતાનો) કર્તા આત્મા છે; એ રીતે અમે આત્માને કથયિત્ કર્તા કહીએ છીએ, તેથી વાણીનો કોપ થતો નથી;” તો આ તેમનું કહેવું પણ મિથ્યા જ છે. આત્મા દ્રવ્યે નિત્ય છે, અસંખ્યાત પ્રદેશાવાનો છે, લોકપરિભ્રમણ છે, તેથી તેમાં તો કાંઈ નવીન કરવાનું છે નહિ; અને જે ભાવકર્મરૂપ પર્યાયો છે તેમનો કર્તા તો તે મુનિઓ કર્મને જ કહે છે; મારે આત્મા તો અકર્તા જ રહ્યો! તો પછી વાણીનો કોપ કઈ રીતે મળ્યો? મારે આત્માના કર્તાપણા અને અકર્તાપણાની વિવક્ષા યથાર્થ માનવી તે જ સ્યાદ્વાદનું સાચું માનવું છે. આત્માના કર્તાપણા-અકર્તાપણા વિષે સત્યાર્થ સ્યાદ્વાદ-પ્રકરણ આ પ્રમાણે છે:—

આત્મા સામાન્ય અપેક્ષાએ તો જ્ઞાનસ્વભાવે જ સ્થિત છે; પરંતુ મિથ્યાત્વપદિ ભાવોને બાંધતી વખતે, અનાદિ કાળથી જ્ઞેય અને જ્ઞાનના ભેદવિજ્ઞાનના અભાવને સીધે, જ્ઞેયરૂપ મિથ્યાત્વપદિ ભાવોને આત્મા તરીકે જાણે છે, તેથી એ રીતે વિશેષ અપેક્ષાએ અજ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામને કરનો હોવાથી કર્તા છે; અને ત્યારે ભેદવિજ્ઞાન થવાથી આત્માને જ આત્મા તરીકે જાણે છે ત્યારે વિશેષ અપેક્ષાએ પણ જ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામને જ પરિણામનો થકો કેવળ જ્ઞાતા રહેવાથી સાક્ષાત્ અકર્તા છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાન્ય કહે છે:—

(ચાઈલરિડીઝિ)

માતૃત્વમયી સૃજન્તુ પુરુષં સાંગ્વ્યા જ્વાલ્યારતાઃ
 કર્તારં કલ્પયન્તુ તં કિલ મદા મેદાવસોધાદયઃ ।

કર્તૃત્વદત્તવોપધામનિયતં પ્રત્યક્ષમેનં સ્વયં
પશ્યન્તુ ચ્યુતકર્તૃમાવમચલં જ્ઞાતારમેકં પરમ્ ॥ ૨૦૫ ॥

અર્થ:—આ અર્હતના મનના અનુયાયીઓ અર્થાત્ જીનો પણ આત્માને, સાંખ્યમતીઓની જેમ, (સર્વથા) અકર્તા ન માને; બેદજ્ઞાન થયા પછી જોડાં તેને નિરંતર કર્તા માને, અને બેદજ્ઞાન થયા પછી ઉદ્ધત જ્ઞાનધામમાં નિશ્ચિત એવા આ સ્વયં-રત્યક્ષ આત્માને કર્તાપણા વિનાને, અથગ, એક પરમ જ્ઞાના જ દેખે.

ભાવાર્થ:—સાંખ્યમતીઓ પુરુષને સર્વથા એકાંતથી અકર્તા, શુદ્ધ ઉદાસીન ધ્યેન-અભાવ માને છે. આત્મ માનવાથી પુરુષને સંસારના અભાવને પ્રસંગ આવે છે; અને જો પ્રકૃતિને સંસાર માનવામાં આવે તો તે પણ ઘટતું નથી, કારણ કે પ્રકૃતિ તો જડ છે, તેને મુખ્યદુઃખ આદિનું સંવેદન નથી, તેને સંસાર કેવો? આવો અનેક દોષો એકાંત માન્યતામાં આવે છે. સર્વથા એકાંત વસ્તુનું સ્વરૂપ જ નથી. મારે સાંખ્ય-મતીઓ મિથ્યાદષ્ટિ છે; અને જો જીનો પણ એવું માને તો તેઓ પણ મિથ્યાદષ્ટિ છે. તેથી આચાર્યદેવ ઉપદેશ કરે છે કે—સાંખ્યમતીઓની આશંકા જીનો આત્માને સર્વથા અકર્તા ન માને; જ્યાંમુખી સ્વપરત્વ બેદવિજ્ઞાન ન હોય ત્યાંમુખી તો તેને રાગદ્વેષનો —પાનાના ધ્યેનનરૂપ ભાવકચેતિ—કર્તા માને, અને બેદવિજ્ઞાન થયા પછી શુદ્ધ વિજ્ઞાન-ધન, સમસ્ત કર્તાપણાના ભાવથી સદ્ધિત, એક જ્ઞાના જ માને. આમ એક જ આત્મામાં તર્કાત્મક તથા અકર્તાપણું—એ જોને ભાવો વિવક્ષાવશા સિદ્ધ થાય છે. આવો સ્વાધ્યાસ-ન હોનારો છે; અને વસ્તુસ્વભાવ પણ એવો જ છે, કદવના નથી. આત્મ (સ્વાધ્યાસ-નુસાર) માનવાથી પુરુષને સંસાર-માફ આદિની સિદ્ધિ થાય છે; સર્વથા એકાંત માનવાથી સર્વ નિશ્ચય-વ્યવહારનો લોપ થાય છે.

હવેની ગાથાઓમાં, ‘કર્તા અન્ય છે અને બીજા અન્ય છે’ એવું માનનારા કર્તાદી ખીલમતીઓને તેમની સર્વથા એકાંત માન્યતામાં કપટ બતાવશે અને વાદ અનુસાર જે રીતે વસ્તુસ્વરૂપ અર્થાત્ કર્તાબીજાપણું છે તે રીતે કહેશે. તે યોની સુખનાનું’ કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(માતિની)

સપ્તિકમિદમિદૈકઃ કલ્પાપિત્વાત્મત્ત્વં
નિમગ્નસિ વિષયે વર્ત્તમાવશોદિભેદમ્ ।
અપરતિ વિમોહં તસ્ય નિત્યાદૃતૌષઃ
સ્વયમપમપિર્વિવચિદમત્કાર એવ ॥ ૨૦૬ ॥

પ્રથમ જ જ્ઞાનમંદિર: જ્ઞાનપ્રકાશ.

કૈશિનુ પર્વાયૈર્નિન્યતિ નૈવ કૈશિનુ જીવઃ ।
 યસ્માત્તસ્માદ્દયતે સ વા અન્યો ના નૈકાંતઃ ॥ ૩૪૫ ॥
 કૈશિનુ પર્વાયૈર્નિન્યતિ નૈવ કૈશિનુ જીવઃ ।
 યસ્માત્તસ્માદ્દયતે સ વા અન્યો ના નૈકાંતઃ ॥ ૩૪૬ ॥
 યથૈવ કરોતિ સ ચૈવ ન વેદયતે યસ્ય ઇદમ્ સિદ્ધાંતઃ ।
 સ જીવો જ્ઞાતવ્યો મિધ્યાદષ્ટિર્નાર્દતઃ ॥ ૩૪૭ ॥
 અન્યઃ કરોત્યન્યઃ પરિહુંકે યસ્ય ઇદમ્ સિદ્ધાંતઃ ।
 સ જીવો જ્ઞાતવ્યો મિધ્યાદષ્ટિર્નાર્દતઃ ॥ ૩૪૮ ॥

અન્યથાર્થઃ—[યસ્માન્] કારણ કે [જીવઃ] છવ [કૈશિનુ પર્વાયૈઃ] કેટલાક પર્વાયોથી [ચિનિદયતિ] નાશ પામે છે [તુ] અને [કૈશિનુ] કેટલાક પર્વાયો [નૈવ] નથી નાશ પામતો, [તસ્માન્] તેથી [સઃ વા કરોતિ] ' (જે ભોગવે છે તે જ કરે છે) ' [અન્યઃ વા] અથવા ' બીજો જ કરે છે ' [ન વકાંતઃ] એવો એકાંત નથી (—સ્વાદુવાદ છે).

[યસ્માન્] કારણ કે [જીવઃ] છવ [કૈશિનુ પર્વાયૈઃ] કેટલાક પર્વાયોથી [ચિનિદયતિ] નાશ પામે છે [તુ] અને [કૈશિનુ] કેટલાક પર્વાયોથી [નૈવ] નથી નાશ પામતો, [તસ્માન્] તેથી [સઃ વા વેદયતે] ' (જે કરે છે) તે જ ભોગવે છે ' [અન્યઃ વા] અથવા ' બીજો જ ભોગવે છે ' [ન વકાંતઃ] એવો એકાંત નથી (—સ્વાદુવાદ છે).

' [યઃ ચ ઇદમ્ કરોતિ] જે કરે છે [સઃ ચ ઇદમ્ ન વેદયતે] તે જ નથી ભોગવતો ' [ઇદમ્ યસ્ય સિદ્ધાંતઃ] એવો જેનો સિદ્ધાંત છે, [સઃ જીવઃ] તે છવ [મિધ્યાદષ્ટિઃ] મિધ્યાદષ્ટિ, [અનાર્દતઃ] અનાર્દત (—અર્દુતા અતને નહિ માનનારો) [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવો.

' [અન્યઃ કરોતિ] બીજો કરે છે [અન્યઃ પરિહુંકે] અને બીજો ભોગવે છે ' [ઇદમ્ યસ્ય સિદ્ધાંતઃ] એવો જેનો સિદ્ધાંત છે, [સઃ જીવઃ] તે છવ [મિધ્યાદષ્ટિઃ] મિધ્યાદષ્ટિ, [અનાર્દતઃ] અનાર્દત (—અજ્ઞેન) [જ્ઞાતવ્યઃ] જાણવો.

ટીકા—છવ, પ્રતિસમયે સંભવતા (—દરેક સમયે થતા) અગુરુલ્લુપ્તગુણના પરિણામ દ્વારા ક્ષણિક હોવાથી અને અચલિત ચૈતન્યના અન્યથરૂપ ગુણ દ્વારા નિત્ય કેટલાક પર્વાયોથી વિનાશ પામે છે અને કેટલાક પર્વાયોથી નથી વિનાશ

પામતો—એમ બે સ્વભાવવાળો જીવસ્વભાવ છે; તેથી ‘બે કરે છે તે જ ભોગવે છે’ અથવા ‘બીજે જ ભોગવે છે,’ ‘બે ભોગવે છે તે જ કરે છે’ અથવા ‘બીજે જ કરે છે’—એવો એકાંત નથી. આમ અનેકાંત હોવા છતાં, ‘બે (પર્યાય) તે ફક્ત વતે છે, તેને જ પરમાર્થ સંપૂર્ણ હોવાથી, તે જ વસ્તુ છે’ એમ વસ્તુના અંશમાં વસ્તુ-પણાનો અધ્યાસ કરીને શુદ્ધનયના લોભથી જાત્રુસૂત્રનયના એકાંતમાં રહીને જે એમ કહે—માને છે કે “બે કરે છે તે જ નથી ભોગવતો, બીજે કરે છે અને બીજે ભોગવે છે,” તે જ મિથ્યાદષ્ટિ જ દેખવો—માનવો; કારણ કે, ‘વૃત્ત્યશોનુ’ (પર્યાયનુ) ફક્તપણ હોવા છતાં, વૃત્તિમાન (પર્યાયી) જે ચૈતન્યચમત્કાર (આત્મા) તે તો કંઠાકીર્ણ (નિત્ય) જ અંતરંગમાં પ્રતિભાસે છે.

ભાવાર્થ:—વસ્તુનો સ્વભાવ જિનવાણીમાં દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ કહ્યો છે; મારે સ્વાદવાદથી એવો અનેકાંત સિદ્ધ થાય છે કે પર્યાય-અધિક્ષાએ તો વસ્તુ ફક્તિ છે અને દ્રવ્ય-અધિક્ષાએ નિત્ય છે. જીવ પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ છે. તેથી, પર્યાયદષ્ટિએ જોવામાં આવે તો કાર્યને કરે છે એક પર્યાય, અને ભોગવે છે અન્ય પર્યાય; જેમ કે—મનુષ્યપર્યાયે શુભાશુભ કર્મ કર્યાં અને તેનું ફળ દેવપર્યાયે ભોગવ્યું. દ્રવ્યદષ્ટિએ જોવામાં આવે તો, જે કરે છે તે જ ભોગવે છે; જેમ કે—મનુષ્યપર્યાયમાં જે જીવદ્રવ્યે શુભાશુભ કર્મ કર્યાં, તે જ જીવદ્રવ્યે દેવાદિ પર્યાયમાં પાને કહેલાં કર્મનું ફળ ભોગવ્યું.

આ રીતે વસ્તુનું સ્વરૂપ અનેકાંતરૂપ સિદ્ધ હોવા છતાં, જે જીવ શુદ્ધનયને યમજ્યા વિના શુદ્ધનયના લોભથી વસ્તુના એક અંશને (-વર્તમાન કાળમાં વર્તના પર્યાયને) જ વસ્તુ માની જાત્રુસૂત્રનયના વિષયના એકાંત પાડી એમ માને છે કે ‘બે કરે છે, તે જ ભોગવતો નથી—અન્ય ભોગવે છે, અને બે ભોગવે છે તે જ કરતો નથી—અન્ય કરે છે,’ તે જ મિથ્યાદષ્ટિ છે, અર્થનના મતનો નથી; કારણ કે, ‘પર્યાયનુ’ ફક્તપણ હોવા છતાં, દ્રવ્યરૂપ ચૈતન્યચમત્કાર તો અનુભવજ્ઞાત્ર નિત્ય છે; પ્રત્યક્ષથી જણાય છે કે ‘બાળક અવસ્થામાં જે ડું હોતો તે જ ડું તરુન અવસ્થામાં અને તે જ હું પૂરું અવસ્થામાં છું.’ આ રીતે બે કથચિત્ર નિત્યરૂપ અનુભવ છે—સ્વરાવેદનમાં આવે છે અને બેને જિનવાણી પણ એવો જ ગાય છે, તને માને તે મિથ્યાદષ્ટિ છે એમ જાણવું.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સાદ્વિગિગિન)

આત્માનં પરિશુદ્ધમીશુમિરતિન્યાસિ મપરાન્વરકઃ
કાળોપાધિવ્યાદશુદ્ધિમધિકાં સપાપિ મત્વા પરઃ ।

ચૈતન્યં સંણિકં પ્રકલ્પ્ય પૃથુકૈઃ શુદ્ધર્જુમૂત્રે સ્તૈ-
રાત્મા વ્યુજ્જિત एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेसिभिः ॥ ૨૦૮ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ હૃદયનારા ધીમહી ડોહ અધોએ—ત્રૌદેવ
કાગની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને કરી.
શુદ્ધ ઋણુમૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને કૃત્તિક કદીને, આ આત્માને રી
રીધે; એમ હારમાંના હારો નહિ એમાં કેવળ માતીને જ એનારાઓ હારને રી
રે છે તેમ.

સાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના હૃદય એવા ધીમહી
સિદ્ધાન્ત કે—“આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાગની અવેશા માં
છે તેથી ઉપાધિ સાગી જરો; એમ કાગની ઉપાધિ સામવાથી આત્માને માટી અશુદ્ધ
આવે અને તેથી અનિવ્યાપ્તિ રોગ સાગરો.” આ રોગના બચથી તેઓએ શુદ્ધ ઋણ
મૂત્રનયનો વિષય એ વર્તમાન સમય તેરસો જ માત્ર (—કૃત્તિક જ—) આત્માને માત્ર
અને નિવૃત્તિનિવરણ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા કૃત્તિક માનવાથી
તેમને નિવૃત્તિનિવરણ—પ્રત્યક્ષપર્યાયરૂપ રાત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; ખા
સર્વથા પરાંપમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

માતીના હારમાં, હારમાં અનેક માતી પેરેવેશા હોય છે; જે માત્ર તેમ
જાતી જમૂને માતી તેમ જ હારો સહિત રખેતા નથી—માત્ર માતીને જ જમૂને
ને જાણ જાણ માતીને જ મદદ કરે છે, હારને છાડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રા
પ્તિ નથી. તેથી રીને જે છોડા આત્માના એક ચૈતન્યમાયને મદદ કરતા નથી એ
જમૂને જમૂને જમૂનાતિ ગુમરૂપ ઉપાધિમાંની પ્રત્યક્ષિને રૂપી આત્માને અનિત્ય કાગી
જાતી અનિત્ય વિષય એ વર્તમાન સમયમાત્ર કૃત્તિકપરૂષ તેરસો જ માત્ર આત્મા
માત્ર કે (અર્થાત્ જે છોડા આત્માને પ્રત્યક્ષપર્યાયરૂપ માનતા નથી—માત્ર જમૂ
જમૂ જમૂ જ જમૂ કે), તેઓ આત્માને છાડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આ માતી પ્રા
પ્તિ નથી.

કૃત્તિક માત્રમાં આત્માને અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(૨૦૮૦૦૦૦૦૦)

શુદ્ધિરૂપે શુદ્ધ વૃત્તિરૂપે જોડોઃશ્વમેદોઃશ્વિ વા
શુદ્ધિરૂપે શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા
શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા
શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા
શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા શ્વિ વા ॥ ૨૦૯ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોજાનો યુક્તિના વશે ભેદ હો અથવા અભેદ અથવા કર્તા અને ભોજા બંને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ ચતુર પુરુષે દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માથા ભેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલ ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિની માથા પણ કદી કેળવી ભેદી શકાતી નથી; એવી આત્મારૂપી માથા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકાશમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-પર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાપરા કર્તા-ભોજાપણનો ભેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોજાનો ભેદાભેદ શા માટે હોવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ પર્મ દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ રીતે આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ચૈતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોજાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે હોવો? (આત્માને) કર્તા-ભોજા જ ન હોવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ મણિઓની માથામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ માથા-માત્ર શદ્ધત્વ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્મવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—
(રથોદતા)

વ્યાવહારિકદૃષ્ટૈઃ કેવલં
કર્તૃ કર્મ ચ વિભિન્નમિષ્યતે ।
નિશ્ચયેન યદિ વસ્તુ ચિંત્યતે
કર્તૃ કર્મ ચ સદૈકમિષ્યતે ॥ ૨૧૦ ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ સિત્ત ગણવામાં આવે નિશ્ચયથી એ વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ સિત્ત દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.
હવે આ કથનને દ્વાંતરદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

ચૈતન્યં સંનિકં પ્રકલ્પ્ય પૃથુકૈઃ શુદ્ધર્જમૃતે રતૈ-
રાત્યા વ્યુજ્જિત એપ હારવદહો નિઃમૂત્રમુક્તેષિભિઃ ॥ ૨૦૮ ॥

અર્થઃ—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇન્દ્રિયનારા છીજ કોઈ અધોએ—શૌરોએ કાગની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યર્થિને પામીને શુદ્ધ મહુમુત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કદપીને, આ આત્માને કદી દીધો; જેમ હારમાંનો દારો નહિ જોતાં કેવળ મોતીને જ જોનારાઓ હારને કદી દે છે તેમ.

ભાવાર્થઃ—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા શૌરોને વિચાર્યું કે—“આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાગની અધિકા આને છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; જેમ કાગની ઉપાધિ કાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધિ આવશે અને તેથી અતિવ્યર્થિ દોષ લાગશે.” આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ મહુમુત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (—ક્ષણિક જ—) આત્માને મળ્યો અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; આ ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કદપના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

મોતીના હારમાં, દારામાં અનેક મોતી પરોવેલા હોય છે; જે માનુસ તે હાર નામની વસ્તુને મોતી તેમ જ દારો સહિત રખતો નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ છે તે છૂંદા છૂંદા મોતીને જ મહુજ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેથી રીતે જે છૂંદા આત્માના એક ચૈતન્યભાવને મહુજ કરતા નથી અને સમયે સમયે વર્તમાનપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને રૂપી આત્માને અનિત્ય કદપીને મહુમુત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણે તેટલો જ માત્ર આત્માને માને છે (અર્થાત્ જે છૂંદા આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(સાદૈવનિરીક્ષિત)

કર્તૃવેદયિતૃય યુક્તિવચનો મેદૌઽન્વમેદૌઽપિ વા
કર્તા વેદયિતા વ મા મચતૃ વા વસ્તૃવેદ સંનિગ્ધતામ્ ।
મોતા મૂત્ર ક્ષાન્વનીહ નિપુર્ણેર્મેષુ ન ગચયા કચિ-
વિશિન્નામણિમાઝિક્ષેયમથિતોઽપ્યેવા ચકામ્વૈવ નઃ ॥ ૨૦૯ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોજાનો યુક્તિના વશ ભેદ હો અથવા અભેદ અથવા કર્તા અને ભોજા બંને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ થતુર પુરો દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માળા બેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલ શ્વેતન્યરૂપ ચિંતામણિની માળા પણ કદી કોઈથી બેદી શકાતી નથી; એવી આ આત્મારૂપી માળા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકારમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-ધર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાવશ કર્તા-ભોજાપણનો ભેદ તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોજાનો ભેદાભેદ શા માટે કરેવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ ધર્મ દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ રીતે આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં શ્વેતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોજાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે કરેવો? (આત્માને) કર્તા-ભોજા જ ન કરેવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરેવો. જેમ મણિઓની માળામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ માળા-માત્ર મહુલ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્માવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્ય મહારાજ કહે ॥ કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકારમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—
(રથોદતા)

વ્યાવહારિકદૃષ્ટૈઃ કેવલં
કર્તૃ કર્મ ચ વિભિન્નમિષ્યતે ।
નિશ્ચયેન યદિ વસ્તુ ચિંત્યતે
કર્તૃ કર્મ ચ સદૈકમિષ્યતે ॥ ૨૧૦ ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ સિત્ત ગણવામાં આવે નેશ્વયથી જો વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ સિત્ત દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.
હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

ચૈતન્યં સંજ્ઞિકં પ્રકલ્પ્ય પૃથુકૈઃ શુદ્ધર્જમૂત્રે સ્તૈ-
રાત્મા વ્યુજ્જિત एष हारवदहो निःमूत्रमुक्तेक्षितिः ॥ ૨૦૮ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇન્દ્રિયનારા ણીજા કેઈ અધોએ—ઔકોતે કાગની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને પામી શુદ્ધ ઋતુમૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને રૂંદીધો; એમ હારમાંનો હારો નહિ એનાં કેવળ મોતીને જ એનારાએ હારને રૂંદી છે તેમ.

સાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇન્દ્રિય એવા ઔકોતે વિચાર્યું કે—“આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાગની અર્ધા અને છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાગની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધિ આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ કોય લાગશે.” આ કોયના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ ઋતુમૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેરસો જ માત્ર (—ક્ષણિક જ—) આત્માને મળે અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; આ ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

માનીના હારમાં, હારમાં અનેક મોતી પહેલેલા હોય છે; જે માગુસ તે દાગામની વસ્તુને મોતી તેમ જ હારો સહિત દેખેના નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ કે ને પૂરા પૂરા માનીને જ મદલું કરે છે, હારને છાડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રતિભા નથી. તેથી રીતે જે છોડા આત્માના એક ચૈતન્યભાવને મદલું કરના નથી અને મમતે મમતે વર્તનાપરિવ્રામરૂપ ઉપગામની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કલ્પીને અશુદ્ધિમૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેરસો જ માત્ર આત્માને માને ॥ (અર્થાત્ જે છોડા આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનવા નથી—માત્ર કલ્પના પર્યાય જ માને છે), તેઓ આત્માને છાડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(૧૬૬૧૧૧૧૧૧)

સ્વપ્નેન્દ્રિયત્વ વૃક્તિવગ્નો મેદોઽગ્ન્યમેદોઽપિ વા
સ્વર્ગેન્દ્રિયતા ચ મા મરતુ વા વગ્નેન્દ્ર ગર્વિગ્નતામ્ ।
મેદો મૂત્ર દગ્ન્યમનીદ નિદ્રામેર્ષનું ન શયવા કપિ
સ્વિદન્તાપચિચાન્દિદેયમર્ષિનોઽગ્નેન્દ્રા વદામ્વેદ નઃ ॥ ૨૦૯ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને બોધાનો શ્રુતિના વડે બેદ છે. અથવા અમેદ અથવા કર્તા અને બોધા બંને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવે, જેમ મનુષ્ય પુરુષ દેશમાં પોરેલી બ્રહ્મજ્ઞાની આગા બેદી શક્તી નથી, તેમ આત્મામાં પોરેલી ધૈન્યશક્તિ બિનાબ્રહ્મની આગા પણ હદી દેહથી બેદી શક્તી નથી; એવી જ આત્માથી આગા જા જ, અમને અમરતપરે પ્રકાશમાન હો. (અર્થાત્ નિત્ય અનિન્ય-ચ આદિના વિરુદ્ધા રૂઢી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-પર્મવાળી છે. તેમાં વિવશાવશ કર્તા-બોધાપણનો બેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-બોધાનો બેદામેદ શા માટે હોવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ પર્મ-કારણ અનુભવન કરતું. એ જ દાને આત્મા પણ વસ્તુ દોષાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ધૈન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના બેદાની અપેક્ષાએ તો કર્તા-બોધાનો બેદ છે અને બિન્નાત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ બેદ નથી; એમ બેદ-અમેદ હો. અથવા બિન્નાત્ર અનુભવનમાં બેદ-અમેદ શા માટે હોવો? (આત્માને) કર્તા-બોધા જ ન હોવે, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ બ્રહ્મજ્ઞાની આગામાં બ્રહ્મજ્ઞાની અને દેશાની વિવશાથી બેદ-અમેદ છે પરંતુ આત્મામાં પર્યાયની અને દ્રવ્યની આત્ર મદ્દરૂ કરતાં બેદામેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયની અને દ્રવ્યની વિવશાથી બેદ-અમેદ છે પરંતુ આત્માવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આથી જ મહાશય હો છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની શાખાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય હો છે:—

(સ્થાવરા)

સ્થાવરારિકદૃષ્ટૈર્કેવલં
કર્તૃ કર્મ ચ વિધિમિપ્યતે ।
નિયમેન યદિ વસ્તુ વિત્યતે
કર્તૃ કર્મ ચ સદૈકમિપ્યતે ॥ ૨૧૦ ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે નિશ્ચયથી એ વસ્તુને ચિત્તાર્થમાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણ ગણવામાં છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણ થતે છે. ૩૪૫—૩૪૮.

હવે આ કથનને દર્શનકાર શાખામાં કહે છે:—

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथक्चैः शुद्धसुमित्रे रतै-
रात्मा व्युज्जित एष हारवदहो निःस्वप्नुक्तेसिभिः ॥ २०८ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ કલ્પનારા બીજા કોઈ અધોએ—પૌંદ્રોએ
કાળની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માર્ગીને અતિવ્યાપ્તિને પર્મી
શુદ્ધ મહાસૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચેતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને હૈ
દીધે; જેમ હારમાનો કારે નહિ જોનાં કેવળ માતીને જ જોનારાઓ હારને હૈ
દે છે તેમ.

સાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા બૌદ્ધોને વિચાર્યું કે—“આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાળની અપેક્ષા અને તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાળની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધ આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ દાય લાગશે.” આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ જડ સૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (—ક્ષણિક જ—) આત્માને માને અને નિત્યનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માને. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યનિત્યસ્વરૂપ—દૈવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; માત્ર ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

માતીના હારમાં, દારામાં અનેક માતી પરીવેસા હોય છે; જે માણસ તે હાર નામની વસ્તુને માતી તેમ જ દારા સહિત દેખતો નથી—માત્ર માતીને જ જુએ છે તે છૂંદા છૂંદા માતીને જ અહણ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રશ્નિ થતી નથી. તેવી રીતે જે જીવો આત્માના એક ચૈતન્યભાવને અહણ કરતા નથી અને સમયે સમયે વર્તનાપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કદાપિ નજીસત્ત્વનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેરસો જ માત્ર આત્માને માને (અર્થાત્ જે જીવો આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રશ્નિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આખાનો અગ્રમત કરવાનું કહે છે:—

(सार्द्धशनिदिनि)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवन्ततो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
 कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्येव संनित्यताम् ।
 मोता मूत्र इवात्मनीह निष्पुणैर्भेषु न शक्या कचि-
 मिश्रिन्तामणिमाविक्रयेयमभितोऽप्येका वक्रास्त्यैव नः ॥ २०५ ॥

અર્થ:—કર્તાને અને બોધાને પુષ્ટિના વસ્તુ બેદ તે. અથવા અમેદ તે. અથવા કર્તા અને બોધા બેદ ન હેદ; વસ્તુને જ અનુભવે. જેમ અનુકૂળતાએ રાગમાં પડેલેથી અજિજ્ઞાની આગા બેદી શક્તી નથી, તેમ આત્મામાં પડેલેથી દેવનાથ વિનાયકની આગા પણ હરી શકેથી બેદી શક્તી નથી; એથી આ આત્માની આગા બેદ જ, અને અમરવસ્તુ પ્રકાશમાન તે. (અર્થાત્ નિત્ય-અનિત્યના આદિના વિદેષે કુટ્ટી આત્માને નિર્વિદેષ અનુભવ અમને તે.).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-પર્યાયાળી છે. તેમાં વિવક્ષાયા કર્તા બોધાપણાને બેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-બોધાને બેદામેદ શા માટે હોય? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અભ્યાસરૂપ સ્વ-દાશ અનુભવન કરવું. એ જ નિઃસ્વાત્મા પણ વસ્તુ દેશાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં દેવનાથ પશ્ચિમનરૂપ પર્યાયના બેદાની અપેક્ષાએ નો કર્તા-બોધાને બેદ છે અને વિનાયક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નથી; એમ બેદ-અમેદ તે. અથવા વિનાયક અનુભવનમાં બેદ-અમેદ શા માટે હોય? (આત્માને) કર્તા-બોધા જ ન હોયે. વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવે. જેમ અજિજ્ઞાની આગામાં અજિજ્ઞાની અને દેશાની વિવક્ષાથી બેદ-અમેદ છે પરંતુ આગા-અદ્ય હરતાં બેદામેદ-વિદેષ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયની અને દ્રવ્યની આગાથી બેદ-અમેદ છે પરંતુ આત્માવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિદેષ નથી. આચાર્ય દેશજ હો છે—એવે નિર્વિદેષ આત્માને અનુભવ અમને પ્રકાશમાન તે.

હવે આગળની ગાથાઓની સુચનારૂપ કાવ્ય હો છે:—

(સ્પીદના)

વ્યવહારિકરણૈઃ કેવલં

કર્ત્ત્વં કર્મ વ વિભિન્નમિષ્યતે ।

નિયમેન યદિ વસ્તુ વિન્યતે

કર્ત્ત્વં કર્મ વ તદૈકમિષ્યતે ॥ ૨૧૦ ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે પણ બે વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ જોડા એક ગણવામાં આવે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું થતે છે. ૩૪૫-૩૪૮.

હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદાશ ગાથામાં હો છે:—

જહ સિપ્પિઓ ઉ કમ્મં કુચ્ચહ ણ ય મો ઉ તમ્મઓ હોહ ।
તહ જીવો વિ ય કમ્મં કુચ્ચહ ણ ય તમ્મઓ હોહ ॥ ૩૪૧ ॥

જહ સિપ્પિઓ ઉ કરણેહિં કુચ્ચહ ણ સો ઉ તમ્મઓ હોહ ।
તહ જીવો કરણેહિં કુચ્ચહ ણ ય તમ્મઓ હોહ ॥ ૩૪૨ ॥

જહ સિપ્પિઓ ઉ કરણાણિ ગિહ્હહ ણ સો ઉ તમ્મઓ હોહ ।
તહ જીવો કરણાણિ ઉ ગિહ્હહ ણ ય તમ્મઓ હોહ ॥ ૩૪૩ ॥

જહ સિપ્પિ ઉ કમ્મફલં મુંજહ ણ ય સો ઉ તમ્મઓ હોહ ।
તહ જીવો કમ્મફલં મુંજહ ણ ય તમ્મઓ હોહ ॥ ૩૪૪ ॥

एवं व्यवहारस्स उ वत्तञ्चं दरिसणं समासेण ।

सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होई ॥ ३४३ ॥

જ્યમ શિષ્પી કર્મ કરે પરંતુ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ પણ કર્મો કરે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૪૬.

જ્યમ શિષ્પી કરણ વડે કરે પણ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ કરણ વડે કરે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૪૭.

જ્યમ શિષ્પી કરણ ગ્રહે પરંતુ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ પણ કરણો ગ્રહે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૪૮.

શિષ્પી કરમણ ભોગવે પણ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ કરમણ ભોગવે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૪૯.

—એ રીત મત વ્યવહારનો સંક્ષેપથી વક્તવ્ય છે;
સાંભળ વચન નિશ્ચય તણું પરિણામવિષયક જોઈ છે. ૩૫૦.

જહ સિપ્પિઓ ઉ ચિટ્ટં કુવ્વહ હવહ ય તહા અણ્ણો સે ।
તહ જીવો વિ ય કમ્મં કુવ્વહ હવહ ય અણ્ણો સે ॥ ૩૫૪ ॥

જહ ચિટ્ટં કુવ્વંતો ઉ સિપ્પિઓ ણિચ્છદુક્ખિઓ હોઈ ।
તત્તો સિયા અણ્ણો તહ ચિટ્ટંતો દુહી જીવો ॥ ૩૫૫ ॥

યથા ગિલ્પિકસ્તુ કર્મ કરોતિ ન ચ સ તુ તન્મયો ભવતિ ।
તથા જીવોઽપિ ચ કર્મ કરોતિ ન ચ તન્મયો ભવતિ ॥ ૩૪૯ ॥

યથા ગિલ્પિકસ્તુ કરણૈઃ કરોતિ ન સ તુ તન્મયો ભવતિ ।
તથા જીવઃ કરણૈઃ કરોતિ ન ચ તન્મયો ભવતિ ॥ ૩૫૦ ॥

યથા ગિલ્પિકસ્તુ કરણાનિ શૂદ્ધાતિ ન તુ તુ તન્મયો ભવતિ ।
તથા જીવઃ કરણાનિ તુ શૂદ્ધાતિ ન ચ તન્મયો ભવતિ ॥ ૩૫૧ ॥

યથા શિલ્પી તુ કર્મફલં ભુંક્તે ન ચ સ તુ તન્મયો ભવતિ ।
તથા જીવઃ કર્મફલં ભુંક્તે ન ચ તન્મયો ભવતિ ॥ ૩૫૨ ॥

પૂર્વ વ્યવહારસ્ય તુ વક્તવ્યં દર્શનં સમામેન ।
શૂણુ નિધયસ્ય વચનં પરિણામકૃતં તુ યદ્ભવતિ ॥ ૩૫૩ ॥

યથા ગિલ્પિકસ્તુ જ્ઞેષ્ઠાં કરોતિ ભવતિ ચ તથાનન્યસ્તસ્યાઃ ।
તથા જીવોઽપિ ચ કર્મ કરોતિ ભવતિ ચાનન્યસ્તસ્માન્ ॥ ૩૫૪ ॥

યથા જ્ઞેષ્ઠાં કુર્વાણસ્તુ ગિલ્પિકો નિત્યદુઃખિતો ભવતિ ।
અસ્માક સ્વાદનન્યસ્તથા જ્ઞેષ્ઠમાનો દુઃખી જીવઃ ॥ ૩૫૫ ॥

શિષી કરે એટલા અને તેનાથી તેલ અનન્ય છે,
અ એવ કર્મ કરે અને તેનાથી તેલ અનન્ય છે. ૩૫૪.
કરતો શિષી જેમ દુઃખિન થાય નિરંતરે,
દુઃખથી તેલ અનન્ય, ત્યમ એવ એટલાન દુઃખી બને. ૩૫૫.

અર્થ:—ખરેખર પરિણામ છે તે જ નિશ્ચયથી કર્મ છે, અને પરિણામ પાતાના આશ્રયભૂત પરિણામીનું જ હોય છે, અન્યનું નહિ (કારણ કે પરિણામ પાતપાતાના દ્રવ્યના આશ્રયે છે, અન્યના પરિણામનો અન્ય આશ્રય નથી હોતો); વર્તી કર્મ કર્તા વિના હોવું નથી, તેમ જ વસ્તુની એકરૂપ સ્થિતિ (અર્થાત્ દૂરસ્થ સ્થિતિ હોતી નથી (કારણ કે વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ હોવાથી સર્વથા નિત્યપણું આધારસ્થ છે); માટે વસ્તુ પાતે જ પાતાના પરિણામરૂપ કર્મની કર્તા છે (—એ નિશ્ચયસિદ્ધાંત છે).

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(૫૯૫)

વહિર્લુટતિ યદ્યપિ સ્ફુટદનંતગત્તિઃ સ્વયં
તથાપ્યપરવસ્તુનો વિશતિ નાન્યવસ્ત્વન્તરમ્ ।
સ્વભાવનિયતં યતઃ સકલમેવ વસ્ત્વિવ્યયતે
સ્વભાવચલનાકુલઃ કિમિદ મોહિતઃ ક્લિશ્યતે ॥ ૨૧૨ ॥

અર્થ:—જેને પાતાને અનંત શક્તિ પ્રકાશમાન છે એવી વસ્તુ અન્ય વસ્તુની બહાર જોડે લોટે છે તોપણ અન્ય વસ્તુ અન્ય વસ્તુની અંદર પ્રવેશતી નથી, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુઓ પાતપાતાના સ્વભાવમાં નિશ્ચિત છે એમ માનવામાં આવે છે. (આચાર્યજીવ કહે છે કે—) આમ હોવા છતાં, મેહિત શબ્દ, પાતાના સ્વભાવથી ચલિત થવાનું માનીને આકુળ થતો થકો, શા માટે ક્લેશ પામે છે?

ભાવાર્થ:—વસ્તુસ્વભાવ તો નિયમરૂપે એવો છે કે કોઈ વસ્તુમાં કોઈ વસ્તુ મળે નહિ. આમ હોવા છતાં, આ મોહી પ્રાણી, ‘પરદ્રવ્યોને જાણતાં આત્મા પાતાના સ્વભાવથી ચલાયમાન થઈ જાય છે’ એમ માનીને, ક્લેશ પામે છે, તે મોહનું અજ્ઞાન છે.

ફરી આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપે બીજું કાવ્ય કહે છે:—

(૨થોક્તા)

વસ્તુ ચૈકમિદ નાન્યવસ્તુનો
યેન તેન સ્વલ્લ વસ્તુ વસ્તુ તત્ ।
નિશ્ચયોડયમપરો પરસ્પ કઃ
કિં કરોતિ હિ વહિર્લુટન્નપિ ॥ ૨૧૩ ॥

અર્થ:—આ લોકમાં એક વસ્તુ અન્ય વસ્તુની નથી, તેથી ખરેખર વસ્તુ

—એ નિશ્ચય છે. આમ હોવાથી કેઈ અન્ય વસ્તુ અન્ય વસ્તુની તેને શું કરી શકે?

—વસ્તુનો સ્વભાવ તો એવો છે કે એક વસ્તુ અન્ય વસ્તુને પડારાવી ન હોય તો વસ્તુનું વસ્તુપણ જ ન હશે. આમ જ્યાં એક વસ્તુ શક્તી નથી ત્યાં એક વસ્તુએ અન્યને શું કર્યું? કાંઈ ન કર્યું. એકદોષાવગાદરૂપે પ્રદગણે સંદેહો છે તોપણ ચેતનને જડ કરીને આવી શક્યાં નહિ; તો પછી પ્રદગણે ચેતનને શું કર્યું? કાંઈ ન કર્યું.

ધી એમ સમજવું કે—વ્યવહારે પરદ્રવ્યોને અને આત્માને જોયજ્ઞાયક પરદ્રવ્યો જ્ઞાયકને કાંઈ કરી શકતાં નથી.

જ અર્થને દૃઢ કરવું ત્રીજું કાવ્ય કહે છે:—

(સ્થાવરા)

પતુ વસ્તુ કુરુતેઽન્યવસ્તુનઃ

કિંચનાપિ પરિજામિનઃસ્વયમ્ ।

વ્યાવહારિકદૃષ્ટૈવ તન્મતં

નાન્યદસ્તિ કિમપીદ નિધયાન્ ॥ ૨૧૪ ॥

—એક વસ્તુ સ્વયં પરિભ્રમતી અન્ય વસ્તુને કાંઈ પણ કરી શકે છે— આવે છે, તે વ્યવહારદૃષ્ટિથી જ માનવામાં આવે છે. નિશ્ચયથી આ ને અન્ય વસ્તુ કાંઈ પણ નથી (અર્થાત્ એક વસ્તુને અન્ય વસ્તુ બધું નથી).

—એક દ્રવ્યના પરિભ્રમનમાં અન્ય દ્રવ્ય નિમિત્ત રૂપીને એમ કહેવું ‘કર્યું’, તે વ્યવહારનયની દૃષ્ટિથી જ છે; નિશ્ચયથી તો તે દ્રવ્યમાં ‘કર્યું’ નથી. વસ્તુના પર્યાયસ્વભાવને લીધે વસ્તુનું પોતાનું જ એક અવસ્થારૂપ પરિભ્રમન થાય છે; તેમાં અન્ય વસ્તુ પોતાનું કાંઈ થી.

ધી એમ સમજવું કે—પરદ્રવ્યરૂપ જોય પદાર્થો તેમના ભાવે પરિભ્રમે આ પોતાના ભાવે પરિભ્રમે છે; તેઓ એકબીજાને પરસ્પર કાંઈ કરી ‘જ્ઞાયક પરદ્રવ્યોને જાણે છે’ એમ વ્યવહારથી જ માનવામાં આવે છે તો બસ જ્ઞાયક જ છે. ૩૪૬—૩૫૫.

(‘ખડી તો ખડી જ છે’—એ નિશ્ચય છે; ‘ખડી-સ્વભાવે પરિણમતી ભીત-સ્વભાવે પરિણમતી ભીતને સંદેહ કરે છે’ એમ કહેવું તે પણ વ્યવહારુ થતેવી રીતે ‘જ્ઞાયક તો જ્ઞાયક જ છે’—એ નિશ્ચય છે; ‘જ્ઞાયક-સ્વભાવે પરિણમતો પરદ્રવ્ય-સ્વભાવે પરિણમતાં એવાં પરદ્રવ્યોને જાણે છે’ એમ કહેવું તે પણ વ્યવહારુ છે.) આવા નિશ્ચય-વ્યવહાર કથનને હવે ગાથાઓમાં દર્શાવવા દ્વારા કથન કહે છે:—

જહ સેડિયા દુ ણ પરસ્સ સેડિયા સેડિયા ય સા હોઈ ।
 તહ જાણઓ દુ ણ પરસ્સ જાણઓ જાણઓ સો દુ ॥ ૩૫૬ ॥
 જહ સેડિયા દુ ણ પરસ્સ સેડિયા સેડિયા ય સા હોઈ ।
 તહ પાસઓ દુ ણ પરસ્સ પાસઓ પાસઓ સો દુ ॥ ૩૫૭ ॥
 જહ સેડિયા દુ ણ પરસ્સ સેડિયા સેડિયા ય સા હોઈ ।
 તહ સંજઓ દુ ણ પરસ્સ સંજઓ જઓ સો દુ ॥ ૩૫૮ ॥
 જહ સેડિયા દુ ણ પરસ્સ સેડિયા સેડિયા ય સા હોઈ ।
 તહ દંસણં દુ ણ પરસ્સ દંસણં દંસણં તં તુ ॥ ૩૫૯ ॥
 એવં તુ ણિચ્છયણયસ્સ ભાસિયં ણાણદંસણચરિત્તે ।
 સુણુ વવહારણયસ્સ ય વત્તન્નં સે સમાસેણ ॥ ૩૬૦ ॥

જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
 જ્ઞાયક નથી ત્યમ પર તણે, જ્ઞાયક ખરે જ્ઞાયક તથા; ૩૫૬.
 જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
 દર્શક નથી ત્યમ પર તણે, દર્શક ખરે દર્શક તથા; ૩૫૭.
 જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
 સંયત નથી ત્યમ પર તણે, સંયત ખરે સંયત તથા; ૩૫૮.
 જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
 દર્શન નથી ત્યમ પર તણું, દર્શન ખરે દર્શન તથા. ૩૫૯.
 જ્યમ જ્ઞાન-દર્શન-ચરિત્રવિષયક કથન નિશ્ચયનય તણું;
 માંબળ કથન સંકેતથી એના વિષે વ્યવહારનું. ૩૬૦.

जाः परद्रव्यं नेडदि हु मेडिया अण्णो सहावेण ।
 ताः परद्रव्यं जाणइ पाया वि मयेण भावेण ॥ ३६१ ॥
 जाः परद्रव्यं नेडदि हु मेडिया अण्णो सहावेण ।
 ताः परद्रव्यं पस्सइ जीवो वि मयेण भावेण ॥ ३६२ ॥
 जाः परद्रव्यं नेडदि हु मेडिया अण्णो सहावेण ।
 ताः परद्रव्यं विजहइ पाया वि सयेण भावेण ॥ ३६३ ॥
 जाः परद्रव्यं सेडदि हु सेडिया अण्णो सहावेण ।
 ताः परद्रव्यं मद्दइइ सम्मदिट्ठी सहावेण ॥ ३६४ ॥
 एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्तं ।
 भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ॥ ३६५ ॥

यथा मेटिका तु न परस्मै मेटिका मेटिका च सा भवति ।
 तथा ज्ञापकस्तु न परस्मै ज्ञापको ज्ञापकः स तु ॥ ३५६ ॥
 यथा सेटिका तु न परस्मै सेटिका सेटिका च सा भवति ।
 तथा दर्शकस्तु न परस्मै दर्शको दर्शकः स तु ॥ ३५७ ॥

न्यम निज स्वभावधी सेटिका परद्रव्यने धाणुं करे,
 ज्ञाताय ये शीत लभूतो निज भावधी परद्रव्यने; ३६१.
 न्यम निज स्वभावधी सेटिका परद्रव्यने धाणुं करे,
 आत्माय ये शीत द्रव्यतो निज भावधी परद्रव्यने; ३६२.
 न्यम निज स्वभावधी सेटिका परद्रव्यने धाणुं करे,
 ज्ञाताय ये शीत त्यागतो निज भावधी परद्रव्यने; ३६३.
 न्यम निज स्वभावधी सेटिका परद्रव्यने धाणुं करे,
 मुदष्टि ये शीत अद्वैतो निज भावधी परद्रव्यने. ३६४.
 येन ज्ञान-दर्शन-अस्मितभां निर्णय कृतो व्यवहारतो,
 ते अन्य पर्यायो विधे पथु ये न शीते लभ्युतो. ३६५.

કા] ખડી [સા જ સેટિકા મવતિ] તે તો ખડી જ છે, [તથા] તેમ [દર્શન
દર્શન અર્થાત્ શ્રદ્ધાન [પરસ્પર ન] પરસ્પર નથી, [દર્શન તદ્ તુ દર્શન] દર્શન
દર્શન જ છે અર્થાત્ શ્રદ્ધાન તે તો શ્રદ્ધાન જ છે.

[અર્થે તુ] એ પ્રમાણે [જ્ઞાનદર્શનચરિત્રે] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [નિષ્ક્રમ-
માપિતં] નિષ્ક્રમનયનું કથન છે. [તસ્ય ચ] વળી તે વિષે [સમાસેન] સંદેશપદી
હારનયસ્ય ચતુષ્ટયે.] વ્યવહારનયનું કથન [ગુણુ] સાંભળ.

[યથા] જેમ [સેટિકા] ખડી [આત્મનઃ સ્વમાયેન] પાતાના સ્વભાવથી
[સ્વં] (જ્ઞાતિ આદિ) પરદ્રવ્યને [સેટયતિ] સોદેહ કરે છે, [તથા] તેમ [જ્ઞાતા
જ્ઞાતા ખડુ [સ્વકેન માયેન] પાતાના સ્વભાવથી [પરદ્રવ્યં] પરદ્રવ્યને
[તિ] ભણે છે. [યથા] જેમ [સેટિકા] ખડી [આત્મનઃ સ્વમાયેન] પાતાના
[સ્વં] [પરદ્રવ્યં] પરદ્રવ્યને [સેટયતિ] સોદેહ કરે છે, [તથા] તેમ [જીવઃ
જીવ ખડુ [સ્વકેન માયેન] પાતાના સ્વભાવથી [પરદ્રવ્યં] પરદ્રવ્યને [પદ્યતિ]
[તિ] ભણે છે. [યથા] જેમ [સેટિકા] ખડી [આત્મનઃ સ્વમાયેન] પાતાના સ્વભાવથી
[સ્વં] પરદ્રવ્યને [સેટયતિ] સોદેહ કરે છે, [તથા] તેમ [જ્ઞાતા અપિ] જ્ઞાતા
[સ્વકેન માયેન] પાતાના સ્વભાવથી [પરદ્રવ્યં] પરદ્રવ્યને [વિજ્ઞદાતિ] ત્યાં
[યથા] જેમ [સેટિકા] ખડી [આત્મનઃ સ્વમાયેન] પાતાના સ્વભાવથી [પર-
[પરદ્રવ્યને [સેટયતિ] સોદેહ કરે છે, [તથા] તેમ [સમ્યગ્દષ્ટિ] સમ્યગ્દષ્ટિ
[સ્વકેન માયેન] પાતાના સ્વભાવથી [પરદ્રવ્યં] પરદ્રવ્યને [અદ્યતે] અદે છે. [અર્થે તુ]
[અર્થે તુ] એ પ્રમાણે [જ્ઞાનદર્શનચરિત્રે] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [વ્યવહારનયસ્ય ચિનિષ્ક્રમઃ]
[અર્થે તુ] એ પ્રમાણે [જ્ઞાનદર્શનચરિત્રે] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [વ્યવહારનયસ્ય ચિનિષ્ક્રમઃ]
[અર્થે તુ] એ પ્રમાણે [જ્ઞાનદર્શનચરિત્રે] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [વ્યવહારનયસ્ય ચિનિષ્ક્રમઃ]
[અર્થે તુ] એ પ્રમાણે [જ્ઞાનદર્શનચરિત્રે] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [વ્યવહારનયસ્ય ચિનિષ્ક્રમઃ]

ટીકા:—આ જગતમાં ખડી છે તે સ્વેનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે.
આદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ખડીનું સ્વેત્ય છે (અર્થાત્ ખડી પણ સ્વેત દર્શાવ-
પદાર્થ છે). હવે, ‘સ્વેત કરનારી ખડી, સ્વેત દર્શાવ થોભ જે જ્ઞાતિ આદિ
ય તેની છે કે નથી?’—એમ તે બંનેનો તાત્ત્વિક (પારમર્થિક) સંબંધ અર્થો
સ્વામાં આવે છે:—જો ખડી જ્ઞાતિ-આદિ પરદ્રવ્યની દોષ તો શું થાય તે પ્રથમ
ટીકા: ‘જેનું’ જે દોષ તે તે જ દોષ, જેમ આત્માનું જ્ઞાન દોષથી જ્ઞાન તે
જ છે (જુદું દ્રવ્ય નથી);—આવે તાત્ત્વિક સંબંધ હવંત (અર્થાત્
જ્ઞાન) દોષથી, ખડી જે જ્ઞાતિ-આદિની દોષ તો ખડી તે જ્ઞાતિ-આદિ જ દોષ
દોષ ખડી જ્ઞાતિ-આદિ સ્વરૂપ જ દોષી જોઈએ, જ્ઞાતિ-આદિથી જુદું દ્રવ્ય ન
જોઈએ); એમ દોષનાં, ખડીના સ્વદ્રવ્યનો ઉપદેશ (નાશ) થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો

એક તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. મારે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખડી ભીંત-આદિની નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ખડી ભીંત આદિની નથી, તો ખડી કોની છે? ખડીની જ ખડી છે. (આ) ખડીથી જુદો એવી બીજી કંઈ ખડી છે કે જેનો (આ) ખડી છે? (આ) ખડીથી જુદો અન્ય કોઈ ખડી નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખડી કઈની નથી, ખડી ખડી જ છે—એ નિશ્ચય છે. (એ પ્રમાણે દૃષ્ટાંત કહ્યું). જેમ આ દૃષ્ટાંત છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દર્શાવેલ છે:—આ જગતમાં ચેતયિતા (ચેતનારો અર્થાત્ આત્મા) છે તે જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું (આત્માનું) જ્ઞેય છે. હવે, 'જ્ઞાયક (અર્થાત્ જાણનારો) ચેતયિતા, જ્ઞેય (અર્થાત્ જાણવાયોગ્ય) જે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય તેના છે કે નથી?'—જેમ તે બંનેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છે:—જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત (અર્થાત્ જીવંતો) હોવાથી, ચેતયિતા જો પુદ્ગલાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુદ્ગલાદિ જ હોય અર્થાત્ ચેતયિતા પુદ્ગલાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ, પુદ્ગલાદિથી જુદું દ્રવ્ય ન હોય (કેઈએ); એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. મારે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદો એવો બીજો કોયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદો અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી જ્ઞાયક કોઈનો નથી, જ્ઞાયક જ્ઞાયક જ છે.

(આ રીતે અહીં એમ બતાવ્યું કે: '—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા પોતાને વ્યવહાર છે; 'જ્ઞાયક જ્ઞાયક જ છે. વળી (જેવી રીતે જ્ઞાયક. જેવામાં આવે છે:—આ જગતમાં આદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે દર્શાવેલ છે). હવે, 'જેનું કરનારી ની છે કે નથી?'—એમ તે

—એ

૨૧૫

જે ખડી ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યની હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ છત્રંત હોવાથી, ખડી જે ભીંત-આદિની હોય તો ખડી તે ભીંત-આદિ જ હોય (અર્થાત્ ખડી ભીંત-આદિ સ્વરૂપ જ હોવી જોઈએ); એમ હોતાં, ખડીના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિર્ણય કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખડી ભીંત-આદિની નથી. (આગળ વિચારીએ:) જે ખડી ભીંત-આદિની નથી તો ખડી કોની છે? ખડીની જ ખડી છે. (આ) ખડીથી જુદી એવી બીજી કંઈ ખડી છે કે જેની (આ) ખડી છે? (આ) ખડીથી જુદી અન્ય કોઈ ખડી નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અસો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અસોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખડી કોઈની નથી, ખડી ખડી જ છે—એ નિશ્ચય છે. જેમ આ દણ્ડાંત છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દાર્ણાંત છે:—આ જગતમાં ચેતયિતા છે તે દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું દરય છે. હવે, 'દર્શક (દેખનારો અથવા અદનારો) ચેતયિતા, દરય તે ચેતયિતાનું દરય છે. હવે, 'દર્શક (દેખનારો અથવા અદનારો) ચેતયિતા, દરય (દેખાવાયોગ્ય અથવા અદાવાયોગ્ય) જે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય તેના છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છે:—જે ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ છત્રંત હોવાથી, ચેતયિતા જે પુદ્ગલાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુદ્ગલાદિ જ હોય (અર્થાત્ ચેતયિતા પુદ્ગલાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ). એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિર્ણય કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએ:) જે ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદો એવો બીજો કોયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદો અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અસો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અસોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી દર્શક કોઈનો નથી, દર્શક દર્શક જ છે—એ નિશ્ચય છે.

(આ રીતે અહીં એમ બતાવ્યું કે: 'આત્મા પરદ્રવ્યને દેખે છે અથવા અદે છે'—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા પોતાને દેખે છે અથવા અદે છે'—એમ કહેવામાં પણ સ્વ-સ્વામીઅસરૂપ વ્યવહાર છે; 'દર્શક દર્શક જ છે'—એ નિશ્ચય છે.)

વળી (જેવી રીતે શાયક તથા દર્શક વિષે દણ્ડાંત-દાર્ણાંતથી કદુ) એવી જ

રીને અપોદક (ત્યાગક, ત્યાગ કરનાર) વિને કહેવામાં આવે છે:—આ જગતમાં જે છે તે એવશ્યકથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. બીજા અર્થે પદ્મવ્ય ભાવકે જે ખરીનું સ્થાન છે (અર્થાત્ ખરી રહે એવું કલ્યાણોગ્ય પદાર્થ છે). હવે, 'વિ કરનારી ખરી, એવું કલ્યાણોગ્ય છે બીજા અર્થે પદ્મવ્ય નેની છે કે નથી?'—એમ તે બંનેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અર્થો વિચારવામાં આવે છે:—જે ખરી બીજા અર્થે દ્રવ્યની હોય તો મું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય એવું આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ હોવાથી, ખરી એ બીજા અર્થેની હોય તો ખરી તે બીજા અર્થે જ હોય (અર્થાત્ ખરી બીજા અર્થે સ્વરૂપ જ હોવી જોઈએ); એમ હોતાં, ખરીના સ્વદ્રવ્યનો કંઈક થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે મંડળ થવાનો તો પૂર્વે જ નિર્ણય કર્યો છે. મારે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખરી બીજા અર્થેની નથી. (આગળ વિચારીએ:) એ ખરી બીજા અર્થેની નથી તો ખરી કોની છે? ખરીની જ ખરી છે. (આ) ખરીથી જુદી એવી બીજી કંઈ ખરી છે કે જેની (આ) ખરી છે? (આ) ખરીથી જુદી અન્ય કોઈ ખરી નથી, જુદા જુદા બે સ્વસ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અર્થો સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી મું સાધ્ય છે? કોઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખરી કોઈની નથી, ખરી ખરી જ છે—એ નિશ્ચય છે. જેમ આ જ્ઞાન છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દર્શાવેલ છે:—આ જગતમાં જે ચેતયિતા છે તે, જેને જ્ઞાનદર્શનશુભથી ભરેલો, પરના અપોદનસ્વરૂપ (ત્યાગસ્વરૂપ) સ્વભાવ છે એવું દ્રવ્ય છે. પુરુષસાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું અપોદક (ત્યાગ્ય, ત્યાગવાયોગ્ય પદાર્થ) છે. હવે, 'અપોદક (ત્યાગક) ચેતયિતા, અપોદક (ત્યાગ્ય) જે પુરુષસાદિ પરદ્રવ્ય તેનો છે કે નથી?'—એમ તે બંનેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અર્થો વિચારવામાં આવે છે:—જે ચેતયિતા પુરુષસાદિનો હોય તો મું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ હવંત હોવાથી, ચેતયિતા એ પુરુષસાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુરુષસાદિ જ હોય (અર્થાત્ ચેતયિતા પુરુષસાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ); એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિર્ણય કર્યો છે. મારે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુરુષસાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએ:) એ ચેતયિતા પુરુષસાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદા એવો બીજો કયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદા અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અર્થો સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી મું સાધ્ય છે? કોઈ સાધ્ય નથી. તો પછી અપોદક (અર્થાત્ ત્યાગ કરનાર) કોઈનો નથી, અપોદક અપોદક જ છે—એ નિશ્ચય છે.

(આ રીતે અહીં એમ જણાવ્યું કે: 'આત્મા પરદ્રવ્યને અપોહિ છે અર્થાત્ ત્યાગે છે'—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા જ્ઞાનદર્શનમય એવા પોતાને મહે છે'—એમ કહેવામાં પણ સ્વ-સ્વામીઅંશરૂપ વ્યવહાર છે; 'અપોહક-અપોહક' જ છે—એ નિશ્ચય છે.)

હવે વ્યવહારનું વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે:—

જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવચાળી તે જ ખડી, પોતે ભીંત આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતી થકી અને ભીંત આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમણ કરતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતી થકી, ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત આદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવચાળો ચેતયિતા પણ, પોતે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતો થકો અને પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમણ કરતો થકો, પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતો થકો, ચેતયિતા જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પુદ્ગલાદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતા પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી જાહેર છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાનગુણો વ્યવહાર કરે છે) એવી જ રીતે દર્શનગુણો વ્યવહાર કરેવામાં આવે છે:—જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવચાળી તે જ ખડી, પોતે ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતી થકી અને ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમણ કરતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતી થકી, ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત આદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવચાળો ચેતયિતા પણ, પોતે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતો થકો અને પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમણ કરતો થકો, પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતો થકો, ચેતયિતા જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પુદ્ગલાદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતા પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી જાહેર છે અથવા મહે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાન-દર્શન ગુણો વ્યવહાર કરે છે) એવી જ રીતે

ચારિત્રયુક્તનો વ્યવહાર કરેવામાં આવે છે:—જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવ તે જ ખડી, પોને ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતી થકી અને ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતી ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત-આદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે જેનો જ્ઞાનદર્શનગુણથી ભરેલો, પરના અર્થ સ્વરૂપ સ્વભાવ છે એવો ચેતયિતા પણ, પોને પ્રુગત્તાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતો થકો અને પ્રુગત્તાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિભ્રમતો થકો પ્રુગત્તાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના જ્ઞાનદર્શનગુણથી ભરેલો અર્થાદના-મત્ત (-પરના ત્યાગસ્વરૂપ) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતો દોકો, ચેતન જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પ્રુગત્તાદિના-) સ્વભાવના પરિભ્રમ વડે ઉપજતો પ્રુગત્તાદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી અર્થાદે છે અર્થાદ તો છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

એ રીતે આ, આ-માના જ્ઞાન-દર્શન ચારિત્ર પર્વાયોનો નિશ્ચય-વ્યવહાર થાય છે. એ જ પ્રમાણે બીજા પણ સમસ્ત પર્વાયોનો નિશ્ચય-વ્યવહાર પ્રારંભ સમજવો.

આચાર્ય:—ગુણવર્ગી આત્માનો એક ચેતનાભાવ સ્વભાવ છે. તેનાં પરિભ્રમ અનુકૂળ, કે અનુકૂળ, અનુકૂળ, નિમિત્ત થતું કલ્યાણ છે. ત્યાં નિશ્ચયનયથી વિચારવામાં આવે તો આત્માને પદ્મવ્યનો માયક નથી કહી શકાતો, વરતક નથી કહી શકાતો, મન કલ્પના નથી કહી શકાતો, ત્યાગ કરનારો નથી કહી શકાતો; કારણ કે પરદ્રવ્યો અને આત્મા નિશ્ચયથી કાંઈ પણ અંતર નથી. જે જ્ઞાન, દર્શન, મહાન, ત્યાગ કરનાર, આત્મા તે જોઈ શકે; આત્મા આત્માને બેઠા કરેલા તે પણ વ્યવહાર છે. નિશ્ચયથી આત્મા આત્મા કરનારનો બેઠા નથી.

જો વ્યવહાર નયન વિગતે વ્યવહારનયથી આત્માને પરદ્રવ્યનો માયા, કાંઈ અર્થ કરનાર, ત્યાગ કરનાર કરેવામાં આવે છે; કારણ કે પદ્મવ્યને આત્મા નિશ્ચયનયથી વિચારવો છે. આત્માને પદ્મવ્ય નિમિત્ત થતું દેવાથી વ્યાપારી થતો છે કે—આત્મા પદ્મવ્યને આત્મા છે, પદ્મવ્યને જેને છે, પદ્મવ્યનું મહાન છે. પદ્મવ્યને આત્મા છે.

આત્મા નિશ્ચય વ્યવહારના પ્રમાણને આત્મા પર્વાય (જેમ કહી શકાય)

જો આત્મા નિશ્ચય વ્યવહાર કરે છે—

(શાર્દૂલવિકીરિન)

શુદ્ધદ્રવ્યનિરૂપણાર્પિતમતેસ્તત્ત્વં સમુત્પદ્યતો
 નૈકદ્રવ્યગતં ચકાસ્તિ કિમપિ દ્રવ્યાંતરં જાતૃચિત્ ।
 જ્ઞાનં જ્ઞેયમૈવૈતિ યત્તુ તદયં શુદ્ધસ્વભાવોદયઃ
 કિં દ્રવ્યાંતરચુંવનાકુલધિયસ્તત્ત્વાચ્ચયંતે જનાઃ ॥ ૨૧૫ ॥

અર્થ:—જેણે શુદ્ધ દ્રવ્યના નિરૂપણમાં જીદ્ધિને સ્થાપી—સગાડી છે અને જે તત્ત્વને અનુભવે છે, તે પુરુષને એક દ્રવ્યની અંદર કોઈ પણ અન્ય દ્રવ્ય રહેલું બિલકુલ (કદાપિ) ભાસતું નથી. જ્ઞાન જ્ઞેયને બાજે છે તે તો આ જ્ઞાનના શુદ્ધ સ્વભાવનો ઉદય છે. આમ છે તો પછી અન્ય દ્રવ્યના સ્પર્શથી (અર્થાત્ પરદ્રવ્યને બાજુતાં પાતે પરદ્રવ્યમય—અશુદ્ધ—થઈ જાય ■ એવું માનવાથી) જેમની જીદ્ધિ આકુળ છે એવા પુરુષો તત્ત્વથી (શુદ્ધ સ્વરૂપથી) રાા મારે મ્યુત થાય છે ?

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયની દૃષ્ટિથી તત્ત્વનું સ્વરૂપ વિચારતાં અન્ય દ્રવ્યનો અન્ય દ્રવ્યમાં પ્રવેશ દેખાતો નથી. જ્ઞાનમાં અન્ય દ્રવ્યો પ્રતિભાગે છે તે તો આ જ્ઞાનની સ્વચ્છતાનો સ્વભાવ છે; કોઈ જ્ઞાન તેમને સ્પર્શતું નથી કે તેઓ જ્ઞાનને સ્પર્શતાં નથી. આમ હોવા છતાં, જ્ઞાનમાં અન્ય દ્રવ્યોનો પ્રતિભાસ દેખીને આ લોકો ‘જ્ઞાન પર-દ્રવ્યમય થઈ જાય છે’ એવું માનતા થકા જ્ઞાનસ્વરૂપથી મ્યુત થાય છે, તે તેમનું અજ્ઞાન છે. તેમના પર કરુણા કરીને આચાર્યદેવ કહે છે કે—આ લોકો તત્ત્વથી કાં મ્યુત થાય છે ?

ફરી આ જ અર્થને દહ કરે છે:—

(મંદારાતા)

શુદ્ધદ્રવ્યસ્વરસમવનાર્તિક સ્વભાવસ્ય શેષ-
 મન્યદ્રવ્યં ભવતિ યદિ યા તસ્ય કિં સ્વાત્સ્વભાવઃ ।
 જ્યોત્સ્નારૂપં સ્નપયતિ મુવં નૈવ તસ્યાસ્તિ ભૂમિ-
 જ્ઞાનં જ્ઞેયં કલયતિ સદા જ્ઞેયમસ્યાસ્તિ નૈવ ॥ ૨૧૬ ॥

અર્થ:—શુદ્ધ દ્રવ્યનું (આત્મા આદિ દ્રવ્યનું) નિજસ્પર્શ (અર્થાત્ જ્ઞાન આદિ સ્વભાવે) પરિભ્રમન થતું હોવાથી, બાકીનું કોઈ અન્યદ્રવ્ય શું તે (જ્ઞાનાદિ) સ્વભાવનું થઈ શકે ? (ન જ થઈ શકે.) અથવા શું તે (જ્ઞાનાદિ સ્વભાવ) કોઈ અન્યદ્રવ્યનો થઈ શકે ? (ન જ થઈ શકે. પરમાર્થે એક દ્રવ્યને અન્ય દ્રવ્ય સાથે સંબંધ નથી.) આંદનીનું રૂપ પૃથ્વીને ઉત્જલ્વળ કરે છે તોપણ પૃથ્વી આંદનીની થતી જ નથી; તેવી રીતે જ્ઞાન જ્ઞેયને સદા બાજે છે તોપણ જ્ઞેય જ્ઞાનનું થતું જ નથી.

સાવાર્થ:—શુદ્ધનયની દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો કેઈ દ્રવ્યનો સ્વભાવ કે અન્ય દ્રવ્યરૂપે થતો નથી. જેમ આંદની પૃથ્વીને ઉજ્જવળ કરે છે પરંતુ પૃથ્વી આંદની જરા પણ થતી નથી, તેમ જ્ઞાન જ્ઞેયને જાણે છે પરંતુ જ્ઞેય જ્ઞાનનું જરા પણ નથી. આત્માનો જ્ઞાનસ્વભાવ હોવાથી તેની સ્વચ્છતામાં જ્ઞેય સ્વયમેવ ઝળકે છે, જ્ઞાનમાં તે જ્ઞેયોનો પ્રવેશ નથી.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(મંદામંત્રા)

રાગદ્વેપદ્વયમુદયતે તાવદૈતસ્ર યાવત્
જ્ઞાનં જ્ઞાનં મવતિ ન પુનર્વોદ્યતાં યાતિ વોદ્યમ્ ।
જ્ઞાનં જ્ઞાનં મવતુ તદિદં ન્યવકૃતાજ્ઞાનભાવં
માવામાવૌ મવતિ તિરયન્ યેન પૂર્ણસ્વભાવઃ ॥ ૨૧૭ ॥

અર્થ:—ત્યાંસુધી રાગ-દ્વેપનું દ્વંદ્વ ઉદય પામે છે (ઉત્પન્ન થાય છે) કે ત્યાંસુધી આ જ્ઞાન જ્ઞાનરૂપ ન થાય અને જ્ઞેય જ્ઞેયરૂપાને ન પામે. માટે આ જ્ઞાન અજ્ઞાનભાવને દૂર કરીને, જ્ઞાનરૂપ થાઓ—કે જેથી ભાવ-અભાવને (રાગ-દ્વેષને) અટકાવી કેતો પૂર્ણસ્વભાવ (મગર):થાય.

સાવાર્થ:—ત્યાંસુધી જ્ઞાન જ્ઞાનરૂપ ન થાય, જ્ઞેય જ્ઞેયરૂપ ન થાય, ત્યાંસુધી રાગદ્વેષ ઉપજે છે; માટે આ જ્ઞાન, અજ્ઞાનભાવને દૂર કરીને, જ્ઞાનરૂપ થાઓ, કે જેથી જ્ઞાનમાં જે ભાવ અને અભાવરૂપ જે અવસ્થાઓ થાય છે તે મટી જાય અને જ્ઞાન પૂર્ણસ્વભાવને પામી જાય. એ પ્રાર્થના છે. ૩૫૬—૩૬૫.

‘જ્ઞાન અને જ્ઞેય તદ્દન વિશ્ન છે, આત્માના દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાદિ કેઈ શુભે પરદ્રવ્યોમાં નથી’ એમ જાણતો હોવાથી સમ્યક્દૃષ્ટિને વિષયો પ્રત્યે રાગ થતો નથી; વળી રાગદ્વેષાદિ જડ વિષયોમાં પણ નથી; તેઓ માત્ર અજ્ઞાનદશામાં વર્તતા જીવનાં પરિણામ છે.—આવા અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છે:—

દંસળગણચરિત્તં કિંચિ વિ નત્થિ દુ અચેયણે વિસયે ।
તહ્મા કિં ઘાદયદે ચેદયિદા તેસુ વિસણસુ ॥ ૩૬૬ ॥

ચારિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જરીયે નહિ અચેતન વિષયમાં,
તે કારણે આ આત્મા શું હણી શકે તે વિષયમાં? ૩૬૬.

દેવતાપત્રચરિત્રં વિવિધં વિ જાતિ દુ અન્વેષણે કામે ।
 તથા વિ. પાદચરે પેદચિદા નમિ કમ્મમ્મિ ॥ ૩૬૭ ॥
 દેવતાપત્રચરિત્રં વિવિધં વિ જાતિ દુ અન્વેષણે કામે ।
 તથા વિ. પાદચરે પેદચિદા તેનુ કામેસુ ॥ ૩૬૮ ॥
 પાણમ દેવતાપત્ર ચ મળિઓ પાઓ નામ ચરિત્રમ્મ ।
 પ વિ નાં પન્નન્નદ્યમ્મ કો વિ પાઓં ઉ ણિદ્ધિટ્ઠો ॥ ૩૬૯ ॥
 જીવન્ન તે ગુણા પેદ જાતિ ચલુ તે પેસુ દલ્લેસુ ।
 તથા સમ્માદ્ધિમ્મ જાતિ રાગોં ઉ વિમણ્ણુ ॥ ૩૭૦ ॥
 રાગોં દોત્તો મોત્તો જીવન્નેચ ચ અજ્ઞાણારિણામા ।
 ત્થણ વાગ્ગેણ ઉ મદ્દાદિસુ જાતિ રાગાદિ ॥ ૩૭૧ ॥

દર્શનજાનપારિધિં વિવિદપિ જાતિ સ્વપેગને રિપે ।
 તથાન્નિં દમિ પેગપિના નેપુ રિપેપુ ॥ ૩૬૬ ॥
 દર્શનજાનપારિધિં વિવિદપિ જાતિ સ્વપેગને જર્મણિ ।
 તથાન્નિં દમિ પેગપિના નથ જર્મણિ ॥ ૩૬૭ ॥

આરિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જીવીયે નહિ અચેતન કર્મમાં,
 તે કારણે આ આતમા શું દણી શકે તે કર્મમાં? ૩૬૭.
 આરિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જીવીયે નહિ અચેતન કાર્યમાં,
 તે કારણે આ આતમા શું દણી શકે તે કાર્યમાં? ૩૬૮.
 કે જ્ઞાનનો, દર્શન તાણે, ઉપધાત બાખ્યો અચિત્તનો,
 ત્યાં કાંઈ પણ બાખ્યો નથી ઉપધાત પુદ્ગલદ્રવ્યનો. ૩૬૯.
 જે ગુણુ જીવ તણા, ખરે તે કાંઈ નહિ પરદ્રવ્યમાં,
 તે કારણે વિષયો પ્રતિ મુદ્દિ જીવને રાગ ના. ૩૭૦.
 વળી રાગ, દ્વેષ, વિમોહ તો જીવનાં અનન્ય પરિણામ છે,
 તે કારણે શબ્દાદિ વિષયોમાં નહિ રાગાદિ છે. ૩૭૧.

દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં કિંચિદપિ નાસ્મિ ત્વનેત્રને કાચે ।

તસ્માન્નિં હનિ ચેતયિતા તેષુ કાચેષુ ॥ ૩૬૮ ॥

જ્ઞાનસ્ય દર્શનસ્ય ચ મણિતો યાનસ્તથા ચારિત્રસ્ય ।

નાપિ તત્ર પુદ્ગલદ્રવ્યસ્ય કોઽપિ યાનસ્તુ નિર્દિષ્ટઃ ॥ ૩૬૯ ॥

જીવસ્ય ચે ગુણાઃ કેચિન્ન સંતિ સ્વલુ તે પરેષુ દ્રવ્યેષુ ।

તસ્માત્સમ્યગ્દષ્ટેર્નાસ્તિ રાગસ્તુ વિષયેષુ ॥ ૩૭૦ ॥

રાગો દ્વેષો મોહો જીવસ્યૈવ ચાનન્યપરિણામાઃ ।

પતેન કારણેન તુ શબ્દાદિષુ ન સંતિ રાગાદયઃ ॥ ૩૭૧ ॥

અન્યથાર્થઃ—[દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [અચેતને વિષયોમાં] [કિંચિત્ અપિ] જરા પછી [ન અસ્તિ] નથી, [તસ્માત્] તેથી [ચેતયિતા] આત્મા [તેષુ વિષયેષુ] તે વિષયોમાં [કિં હંતિ] શું હલે (અજ્ઞાનો ઘાત કરી શકે)?

[દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [અચેતને કર્મણિ તુ] અચેતન કર્મમાં [કિંચિત્ અપિ] જરા પછી [ન અસ્તિ] નથી, [તસ્માત્] તેથી [ચેતયિતા] આત્મા [તત્ર કર્મણિ] તે કર્મમાં [કિં હંતિ] શું હલે? (કાંઈ હલ્લી શકતો નથી.)

[દર્શનજ્ઞાનચારિત્રં] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [અચેતને કાચે તુ] અચેતન કાચમાં [કિંચિત્ અપિ] જરા પછી [ન અસ્તિ] નથી, [તસ્માત્] તેથી [ચેતયિતા] આત્મા [તેષુ કાચેષુ] તે કાચોમાં [કિં હંતિ] શું હલે? (કાંઈ હલ્લી શકતો નથી.)

[જ્ઞાનસ્ય] જ્ઞાનનો, [દર્શનસ્ય ચ] દર્શનનો [તથા ચારિત્રસ્ય] તથા ચારિત્રનો [ઘાતઃ મણિતઃ] ઘાત કર્યો છે, [તત્ર] ત્યાં [પુદ્ગલદ્રવ્યસ્ય] પુદ્ગલદ્રવ્યનો [ઘાતઃ તુ] ઘાત [કઃ અપિ] જરા પછી [ન અપિ નિર્દિષ્ટઃ] કર્યો નથી. (દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર હણાતાં પુદ્ગલદ્રવ્ય હણાતું નથી.)

(આ રીતે) [ચે કેચિત્] જે કોઈ [જીવસ્ય ગુણાઃ] જીવના ગુણો છે [તે સ્વલુ] તે ખરેખર [પરેષુ દ્રવ્યેષુ] પર દ્રવ્યોમાં [ન સંતિ] નથી; [તસ્માત્] તેથી [સમ્યગ્દષ્ટેઃ] સમ્યગ્દષ્ટિને [વિષયેષુ] વિષયો પ્રત્યે [રાગઃ તુ] રાગ [ન અસ્તિ] નથી.

[ચ] વળી [રાગઃ દ્વેષઃ મોહઃ] રાગ, દ્વેષ અને મોહ [જીવસ્ય દય] જીવનાં જ [અનન્યપરિણામાઃ] અનન્ય (એકરૂપ) પરિણામ છે, [પતેન કારણેન તુ] તે કારણે [રાગાદયઃ] રાગાદિક [શબ્દાદિષુ] શબ્દાદિ વિષયોમાં (પછી) [ન સંતિ] નથી.

(રાગદ્વેષાદિ સમ્યગ્દષ્ટિ આત્મામાં નથી તેમ જ જડ વિષયોમાં નથી, માત્ર અજ્ઞાનરૂપમાં સંલેસા જીવનાં પરિણામ છે.)

ટીકા:—ખરેખર જે જેમાં હોય તે તેનો ઘાત થતાં હજાય જ છે (અર્થાત્ આધારનો ઘાત થતાં આધેયનો ઘાત થાય જ છે), જેમ દીવાનો ઘાત થતાં (દીવામાં સંલેસા) પ્રકાશ હજાય છે; તથા જેમાં જે હોય તે તેનો ઘાત થતાં હજાય જ છે (અર્થાત્ આધેયનો ઘાત થતાં આધારનો ઘાત થાય જ છે), જેમ પ્રકાશનો ઘાત થતાં દીવો હજાય છે. વળી જે જેમાં ન હોય તે તેનો ઘાત થતાં હજાતું નથી, જેમ ઘરનો ઘાત થતાં *ઘર-પ્રદીપ હજાતો નથી; તથા જેમાં જે ન હોય તે તેનો ઘાત થતાં હજાતું નથી, જેમ ઘર-પ્રદીપનો ઘાત થતાં ઘર હજાતો નથી. (જે પ્રમાણે ન્યાય કહ્યો.) હવે, આત્માના ધર્મે—દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર—પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થવા છતાં હજાતાં નથી અને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત થવા છતાં પુદ્ગલદ્રવ્ય હજાતું નથી (જે તો સ્પષ્ટ છે); મારે જે રીતે 'દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી' એમ ફેલિત (સિદ્ધ) થાય છે; કારણ કે, જે એમ ન હોય તો દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત થતાં પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત, અને પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થતાં દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત અનિવાર્ય થાય (અર્થાત્ અવશ્ય થવો જોઈએ). આમ છે તેથી જે કોઈ જોડા જીવના ગુણ છે તે બધાય પરદ્રવ્યોમાં નથી એમ અમે સમ્યક્ પ્રકારે કહીએ છીએ (-માનીએ છીએ); કારણ કે, જે એમ ન હોય તો, અહીં પણ જીવના ગુણનો ઘાત થતાં પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત, અને પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થતાં જીવના ગુણનો ઘાત અનિવાર્ય થાય. (આ રીતે સિદ્ધ થયું કે જીવના કોઈ ગુણ પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી.)

(પ્રશ્ન:—) જે આમ જ તો સમ્યગ્દષ્ટિને વિષયોમાં રાગ કયા કારણે થાય છે? (ઉત્તર:—) કોઈ પણ કારણે થતો નથી. (પ્રશ્ન:—) તો પછી રાગની કઈ ખાણ છે? (ઉત્તર:—) રાગ-દ્વેષ-મોહાદિ, જીવનાં જ અજ્ઞાનમય પરિણામ છે (અર્થાત્ જીવનું અજ્ઞાન જ રાગાદિક ઉપજવાની ખાણ છે); મારે તે રાગદ્વેષમોહાદિક, વિષયોમાં નથી કારણ કે વિષયો પરદ્રવ્ય છે, અને સમ્યગ્દષ્ટિમાં (પણ) નથી કારણ કે તેને અજ્ઞાનનો અભાવ છે; આ રીતે રાગદ્વેષમોહાદિક, વિષયોમાં નહિ હોવાથી અને સમ્યગ્દષ્ટિને (પણ) નહિ હોવાથી, (તેઓ) છે જ નહિ.

બાવાર્થ:—આત્માને અજ્ઞાનમય પરિણામરૂપ રાગદ્વેષમોહાદિ ઉપજત થતાં આત્માના દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રાદિ ગુણ હજાય છે, પરંતુ તે ગુણ હજાતાં છતાં અર્ચનન પુદ્ગલદ્રવ્ય હજાતું નથી; વળી પુદ્ગલદ્રવ્ય હજાતાં દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રાદિ હજાતાં નથી; મારે જીવના કોઈ ગુણ પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી. આત્મ જાણના સમ્યગ્દષ્ટિને અર્ચનન

* ઘર-પ્રદીપ = ઘરમાં પ્રેરેલો દીવો. (પરમાર્થે દીવો ઘરમાં નથી, ઘરમાં તો ઘરના જ ગુણો છે.)

વિષયોમાં રાગાદિ થતા નથી. રાગદ્વેષભ્રાહ્મણિક પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી, જીવના જીવનમાં અજ્ઞાનથી ઉપજે છે; જ્યારે અજ્ઞાનનો અભાવ થાય અર્થાત્ સમ્યક્ત્યારે તેઓ ઉપજતા નથી. આ રીતે રાગદ્વેષભ્રાહ્મણિક પુદ્ગલમાં નથી તેમ જ સમ્યક્ પણ નથી, તેથી શુદ્ધદ્રવ્યદષ્ટિથી જોતાં તેઓ છે જ નહિ. પર્યાયદષ્ટિથી જોતાં અજ્ઞાન અવસ્થામાં તેઓ છે. એ પ્રમાણે બાણુડું.

હવે આ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાકંતા)

રાગદ્વેષાવિહિ મિ મવતિ જ્ઞાનમજ્ઞાનમાવાત્
તૌ વસ્તુત્વમણિહિતદશા દૃશ્યમાનો ન કિંચિત્ ।
સમ્યગ્દષ્ટિઃ સપયતુ તતસ્તત્ત્વદષ્ટ્યા સ્ફુટં તૌ
જ્ઞાનજ્યોતિર્જ્વલતિ સહજં યેન પૂર્ણાંચલાર્ચિઃ ॥ ૨૧૮ ॥

અર્થ:—આ જગતમાં જ્ઞાન જ અજ્ઞાનભાવથી રાગદ્વેષરૂપ પરિણામ વસ્તુત્વમાં મૂકેલી (—સ્થાપેલી, એકાગ્ર કરેલી) દષ્ટિ વડે જોતાં (અર્થાત્ દ્રવ્યદષ્ટિ જોતાં), તે રાગદ્વેષ કંઈ જ નથી (—દ્રવ્યરૂપ જુદી વસ્તુ નથી). મારે (આચાર્ય) પ્રેરણા કરે છે કે) સમ્યગ્દષ્ટિ પુરુષ તત્ત્વદષ્ટિ વડે તેમને (રાગદ્વેષને) પ્રગટ રીતે કરે, કે જોઈ, પૂર્ણ અને અચળ જેનો પ્રકાશ છે એવી (હેલીપ્થમાન) સહજ જ્ઞાન જ્યોતિ પ્રકાશે.

ભાવાર્થ:—રાગદ્વેષ કંઈ જુદું દ્રવ્ય નથી, જીવને અજ્ઞાનભાવથી (રાગદ્વેષરૂપ પરિણામ) થાય છે; મારે સમ્યગ્દષ્ટિ થઈને તત્ત્વદષ્ટિથી જોવામાં આવે તો તેઓ (રાગદ્વેષ) કંઈ પણ વસ્તુ નથી એમ દેખાય છે, અને ઘાતિકર્મના નાશ થઈ રાગજ્ઞાન ઉપજે છે.

‘અન્ય દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યને ગુણ ઉપજાવી શકતું નથી’ એમ હવેની ગાથામાં કહેશે; તેની સત્યનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(શાન્તિની)

રાગદ્વેષોત્પાદકં તત્ત્વદષ્ટ્યા
નાન્યદ્દ્રવ્યં ધીક્ષ્યતે કિંવનાપિ ।
સમદ્રવ્યોત્પત્તિરન્નયકાસ્તિ
ત્વનાર્થનં મમ્મમાત્રેન યમ્માન્ ॥ ૨૧૯ ॥

ઉત્પાદ જોવામાં આવે છે. આમ હોવાથી, માટી પોતાના સ્વભાવને નહિ ઉલ્લંઘન
હોવાને ક્ષીધે, કુંભાર ઘડાને ઉત્પાદક ॥ જ નહિ; માટી જ, કુંભારના સ્વભાવને
સ્પર્શતી થકી, પોતાના સ્વભાવથી કુંભારભાવે ઉપજે છે.

એવી રીતે—અર્થાંય દ્રવ્યો સ્વપરિણામપર્યાયે (અર્થાત્ પોતાના પરિણામ
ભાવરૂપે) ઉપજતાં થકાં, નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજે છે કે પોતાના
સ્વભાવથી ઉપજે છે? જો નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજતાં હોય તો
નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના આકારે તેમનાં પરિણામ થવાં જોઈએ. પરંતુ એમ તો કહી
નથી, કારણ કે અન્યદ્રવ્યના સ્વભાવે કોઈ દ્રવ્યના પરિણામનો ઉત્પાદ જોવામાં આવતો
નથી. જો આમ છે તો સર્વ દ્રવ્યો નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજતાં નથી
પરંતુ પોતાના સ્વભાવથી જ ઉપજે છે કારણ કે (દ્રવ્યના) પોતાના સ્વભાવે દ્રવ્યના
પરિણામનો ઉત્પાદ જોવામાં આવે છે. આમ હોવાથી, સર્વ દ્રવ્યોને, નિમિત્તભૂત
અન્યદ્રવ્યો પોતાનાં (અર્થાત્ સર્વ દ્રવ્યોનાં) પરિણામનાં ઉત્પાદક ॥ જ નહિ; સર્વ
દ્રવ્યો જ, નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવને નહિ સ્પર્શતાં થકાં, પોતાના સ્વભાવથી
પોતાના પરિણામભાવે ઉપજે છે.

માટે (આચાર્યદેવ કહે છે કે) ‘જીવને રાગાદિનું’ ઉત્પાદક અમે પરમજ્ઞાન
રૂપના (-માનતા, સમજતા) નથી કે જેના પર કોષ કરીએ.

ભાવાર્થ:—આત્માને રાગાદિક ઉપજે છે તે પોતાનાં જ અશુદ્ધ પરિણામ છે.
નિશ્ચયનયથી વિચારવામાં આવે તો અન્યદ્રવ્ય રાગાદિકનું ઉપજવનાર નથી, અન્યદ્રવ્ય
તેમનું નિમિત્તમાત્ર છે; કારણ કે અન્ય દ્રવ્યને અન્ય દ્રવ્ય ગુણપર્યાય ઉપજવનું નથી
એ નિયમ છે. જેઓ એમ માને છે—એવો એકાંત કરે છે—કે ‘પરદ્રવ્ય જ મને રાગાદિક
ઉપજાવે છે,’ તેઓ નયવિભાગને સમજ્યા નથી, મિથ્યાદષ્ટિ છે. એ રાગાદિક જીવના
સત્ત્વમાં ઉપજે છે, પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર છે—એમ માનવું તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે. માટે
આચાર્યમહારાજ કહે છે કે—અમે રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિમાં અન્ય દ્રવ્ય પર શા મારો નેપ
કરીએ? રાગદ્વેષનું ઉપજવું તે પોતાનો જ અપરાધ છે.

હવે આ અર્થનું કંગાશરૂપ કાવ્ય કરે છે:—

(માલિની)

યદિદ મવનિ રાગદ્વેષદોષમમ્નિ:

કનરદપિ પરેષાં દૂષણં નામ્નિ તપ્ર ।

મયમયમતરાધી તત્ર તર્પન્યવોષો

મવનુ વિદિનમમ્નં યાન્વવોષોઽર્મિય વોષ: ॥ ૨૨૦ ॥

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

અર્થ:—આ આત્મામાં જે રાગદ્વેષરૂપ દોષોની ઉત્પત્તિ થાય છે ત્યાં પર-
ચનો કાંઈ પણ દોષ નથી, ત્યાં તો સ્વયં અપરાધી એવું આ અજ્ઞાન જ દેસાય
;—એ પ્રમાણે વિદિત થાઓ અને અજ્ઞાન અસ્ત થઈ જાઓ; હું તો જ્ઞાન છું.

ભાવાર્થ:—અજ્ઞાની જીવ રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિ પરદ્રવ્યથી થતી માનીને પરદ્રવ્ય
ઉપર દોષ કરે છે કે ‘આ પરદ્રવ્ય અને રાગદ્વેષ ઉપજાવે છે, તેને દૂર કરું.’ એવા
અજ્ઞાની જીવને સમજાવવાને આચાર્ય દેવ ઉપદેશ કરે છે કે—રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિ અજ્ઞાનથી
આત્મામાં જ થાય છે અને તે આત્મામાં જ અશુદ્ધ પરિણામ છે. મારે એ અજ્ઞાનને
નાશ કરે, સમ્યજ્ઞાન પ્રગટ કરે, આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ છે એમ અનુભવ કરે; પરદ્રવ્યને
રાગદ્વેષનું ઉપજાવનારું માનીને તેના પર દોષ ન કરે.

હવે આ જ અર્થ દેહ કરવાને અને આગળના કથનની શ્રુતિના કરવાને
હાથ લે છે:—

(સ્થાવરતા)

રાગજન્મનિ નિમિત્તતાં પર-
દ્રવ્યમેવ કલ્પયંતિ ચે તુ ચે ।
ઉત્તરંતિ ન હિ મોહવાદિનીં
શુદ્ધવોષવિપુરાંપશુદ્ધયા ॥ ૨૨૧ ॥

અર્થ:—જેઓ રાગની ઉત્પત્તિમાં પરદ્રવ્યનું જ નિમિત્તપણું (કારણપણું)
માને છે, (પાતાનું કાંઈ કારણપણું માનતા નથી,) તેઓ—જેમની શુદ્ધિ શુદ્ધજ્ઞાનથી
અંધ છે એવા (અર્થાત્ જેમની શુદ્ધિ શુદ્ધનયના વિષયભૂત શુદ્ધ આ-મરવરણ
જ્ઞાનથી રૂઢિત અંધ છે એવા)—મોહનદીને ઊતરી રાખતા નથી.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયનો વિષય આત્મા અનંત સંજ્ઞિવાળો, સ્વતંત્ર્યશક્તિવાળો
નિત્ય, અબેદ, એક છે. તે પાતાના જ અપરાધથી રાગદ્વેષરૂપ પરિણમ છે. એવું
કે જેમ નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્ય પરિણામે તેમ આત્મા પરિણમ છે અને તેમાં આ-
કાંઈ પુરુષાર્થ જ નથી. આત્મ આત્માના સ્વરૂપનું જ્ઞાન જેમને નથી તેઓ જેમ
છે તે પરદ્રવ્ય આત્માને જેમ પરિણામે તેમ આત્મા પરિણમ છે. આત્મ આ-
મોહરૂપી નદીને ઊતરી શકતા નથી (અથવા મોહની કોનાને દરાવી રાખતા ન-
તેમને રાગદ્વેષ મરતા નથી; કારણ કે રાગદ્વેષ કરવામાં જે પાતાનો પુરુષાર્થ તે
જ તેમને મારાવામાં પણ લોપ, પરંતુ જે પરના કરાવ્યા જ રાગદ્વેષ થતા તે
પર તો રાગદ્વેષ કરાવ્યા જ કરે, ત્યાં આ-આ તેમને ક્યાંથી ખાલી રાંધે? મારે.

પાતાના કયાં થાય છે અને પાતાના મટાગ્યા મટે છે—એમ કથયિત્ માનવું તે સમ્યક્જ્ઞાન છે. ૩૭૨.

સ્પર્શ, રસ, ગંધ, વર્ણ અને રાજદાદિરૂપે પરિણમતા પુદ્ગલો આત્માને કહેતાં નથી કે ‘તું’ અમને જાણુ,’ અને આત્મા પણ પાતાના સ્થાનથી દૂરીને તેમજ જાણવા જતો નથી. બન્ને તદ્દન સ્વતંત્રપણે પાતપાતાના સ્વભાવથી જ પરિણમે છે. આમ આત્મા પર ભ્રમે ઉદાસીન (—સંબંધ વિનાનો, તટસ્થ) છે, તેપણ અજ્ઞાની જ્યે સ્પર્શાદિકને સારાં-નારસાં માનીને રાગીદ્વેષી થાય છે તે તેણે અજ્ઞાન છે.—આમ અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છે:—

ર્નિદિયસંથુયવયનાણિ પોગ્ગલા પરિણમંતિ વહુયાણિ ।
તાણિ સુણિઝ્ઞણ રૂસહ તૂસહ ય પુણો અહં મણિઓ ॥ ૩૭૩ ॥
પોગ્ગલદબ્બં સદ્દત્તપરિણયં તસ્સ જહ્ ગુણો અણ્ણો ।
તહ્મા ણ તુમં મણિઓ કિંચિવિ કિં રૂસસિ અબુદ્ધો ॥ ૩૭૪ ॥
અસુહો સુહો વ સદ્ધો ણ તં મણહ સુણસુ મંતિ સો ચેવ ।
ણ ય એહ વિણિગ્ગહિઠં સોયવિસયમાગયં સદ્ધં ॥ ૩૭૫ ॥
અસુહં સુહં વ રૂવં ણ તં મણહ પિચ્છ મંતિ સો ચેવ ।
ણ ય એહ વિણિગ્ગહિઠં ચક્કુવિસયમાગયં રૂવં ॥ ૩૭૬ ॥

રે! પુદ્ગલો જાહુવિધ નિંદા-સ્તુતિવચનરૂપે પરિણમે, તેને સુણી, ‘મુજને કહ્યું’ ગણી, રોપ તોપ જીવો કરે. ૩૭૩.
પુદ્ગલદેવ રાજદત્તપરિણત, તેહનો ગુણ અન્ય છે, તો નવ કહ્યું કંઈ પણ તને, હે અધુધ! રોપ તું ક્યમ કરે? ૩૭૪.
શુભ કે અશુભ જે રાજદ તે ‘તું’ સુણ મને’ ન તને કહે, ને જીવ પણ પ્રદવા ન જાયે કણ્ઠગોચર રાજદને; ૩૭૫.
શુભ કે અશુભ જે રૂપ તે ‘તું’ જે મને’ ન તને કહે, ને જીવ પણ પ્રદવા ન જાયે ચક્કુગોચર રૂપને; ૩૭૬.

અમુહો મુહો વ ગંધો ન તં ભણ્ઠ જિઘ્ઠ મંતિ સો ચેવ ।
 ન ય દ્વિવિગ્ઘિહિં ઘાણવિસયમાગયં તુ ગંધં ॥ ૩૭૭ ॥
 અમુહો મુહો વ રસો ન તં ભણ્ઠ રસય મંતિ સો ચેવ ।
 ન ય દ્વિવિગ્ઘિહિં રસણવિસયમાગયં તુ રસં ॥ ૩૭૮ ॥
 અમુહો મુહો વ ફાસો ન તં ભણ્ઠ ફુસમુ મંતિ સો ચેવ ।
 ન ય દ્વિવિગ્ઘિહિં કાયવિસયમાગયં ફાસં ॥ ૩૭૯ ॥
 અમુહો મુહો વ ગુણો ન તં ભણ્ઠ વુજ્ઞ મંતિ સો ચેવ ।
 ન ય દ્વિવિગ્ઘિહિં બુદ્ધિવિસયમાગયં તુ ગુણં ॥ ૩૮૦ ॥
 અમુહં મુહં વ દલ્લં ન તં ભણ્ઠ વુજ્ઞ મંતિ સો ચેવ ।
 ન ય દ્વિવિગ્ઘિહિં બુદ્ધિવિસયમાગયં દલ્લં ॥ ૩૮૧ ॥
 એવં તુ જાણિઝ્ઞ ઉવસમં ણેવ ગચ્છઈ મૂઢો ।
 ણિગ્ઘમણા પરસ્સ ય સયં ચ વુદ્ધિ સિવમપત્તો ॥ ૩૮૨ ॥

શુભ કે અશુભ જે ગંધ તે 'તું' સૂંધ મુજને' નવ કહે,
 ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે ધ્યાણગોચર ગંધને; ૩૭૭.
 શુભ કે અશુભ રસ જેહ તે 'તું' ચાખ મુજને' નવ કહે,
 ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે રસનગોચર રસ અરે! ૩૭૮.
 શુભ કે અશુભ જે સ્પર્શ તે 'તું' સ્પર્શ મુજને' નવ કહે,
 ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે કાયગોચર સ્પર્શને; ૩૭૯.
 શુભ કે અશુભ જે ગુણ તે 'તું' જાણ મુજને' નવ કહે,
 ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે બુદ્ધિગોચર ગુણને; ૩૮૦.
 શુભ કે અશુભ જે દ્રવ્ય તે 'તું' જાણ મુજને' નવ કહે,
 ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે બુદ્ધિગોચર દ્રવ્યને. ૩૮૧.
 -આ જાણીને પણ મૂઢ જીવ પામે નહિ ઉપશમ અરે!
 શિવ બુદ્ધિને પામેજ નહિ એ પર ગ્રહણ કરવા ચહે. ૩૮૨.

निर्दिष्टसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमन्ति बहुकानि ।
 तानि श्रुत्वा रूप्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः ॥ ३७३ ॥
 पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः ।
 तस्मान्न त्वं भणितः किञ्चिदपि किं रूप्यस्यबुद्धः ॥ ३७४ ॥
 अशुभः शुभो वा शब्दो न त्वां भणति शृणु मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दम् ॥ ३७५ ॥
 अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपम् ॥ ३७६ ॥
 अशुभः शुभो वा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधम् ॥ ३७७ ॥
 अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं रसनविषयमागतं तु रसम् ॥ ३७८ ॥
 अशुभः शुभो वा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं कायविषयमागतं स्पर्शम् ॥ ३७९ ॥
 अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु गुणम् ॥ ३८० ॥
 अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति कृष्यस्व मामिति स एव ।
 न चेति विनिर्गृहीतुं बुद्धिविषयमागतं द्रव्यम् ॥ ३८१ ॥
 एतन्तु श्रुत्या उपश्रमं नैव गच्छति मूढः ।
 विनिर्गृह्यमानाः परस्म्य च स्वयं च बुद्धि निराशमात्राः ॥ ३८२ ॥

अन्वयार्थः—[बहुकानि] अद्भुतप्रकारानां [निर्दिष्टसंस्तुतवचनानि] निर्दिष्ट
 अने श्रुतिनां वचनानां [पुद्गलाः] पुद्गलाः [परिणमन्ति] परिवर्तयते; [तानि] तानि
 पुनः [तेभ्यो] तेषां श्रुतिनां अज्ञानात् [एव] एव [अहं भणितः] 'अने कथं' अने भणितः
 [रूप्यति तुष्यति च] रूप्यति तुष्यति च [पुनरहं] पुनरहं [भणितः] भणितः
 [तस्मान्न त्वं भणितः] तस्मान्न त्वं भणितः [किञ्चिदपि किं] किञ्चिदपि किं
 [रूप्यस्यबुद्धः] रूप्यस्यबुद्धः [३७३] ३७३ [३७४] ३७४ [३७५] ३७५ [३७६] ३७६ [३७७] ३७७ [३७८] ३७८ [३७९] ३७९ [३८०] ३८० [३८१] ३८१ [३८२] ३८२

[पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्यं [शब्दत्वपरिणतं] शब्दत्वपरिणतं [अशुभः शुभः] अशुभः शुभः [शब्दो] शब्दो
 [न त्वां भणति] न त्वां भणति [शृणु मामिति] शृणु मामिति [स एव] स एव [३७३] ३७३ [३७४] ३७४ [३७५] ३७५ [३७६] ३७६ [३७७] ३७७ [३७८] ३७८ [३७९] ३७९ [३८०] ३८० [३८१] ३८१ [३८२] ३८२

જ ! [ત્વં ન કિંચિત્ અપિ મળિતઃ] તને કાંઈ પણ કહું નથી; [અણુદઃ] તું અજ્ઞાની થોડો [કિં વ્યવસિ] રોપ શા માટે કરે છે ?

[અશુભઃ યા શુભઃ શબ્દઃ] અશુભ અથવા શુભ શબ્દ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતો કે [માં ગૃણુ હતિ] ‘તું’ અને સાંભળ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [ઓત્રવિષયં આગતં શબ્દં] ઓત્રદ્રિષ્ટના વિષયમાં આવેલા શબ્દને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] મદવા (જાણવા) જતો નથી.

[અશુભં યા શુભં રૂપં] અશુભ અથવા શુભ રૂપ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતું કે [માં વદય હતિ] ‘તું’ અને જો’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [અણુવિષયં આગતં] અણુ-દ્રિષ્ટના વિષયમાં આવેલા અર્થાત્ અણુગોચર થયેલા [રૂપં] રૂપને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] મદવા જતો નથી.

[અશુભઃ યા શુભઃ ગંધઃ] અશુભ અથવા શુભ ગંધ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતો કે [માં શિપ્ત હતિ] ‘તું’ અને સૂંઘ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ [માણવિષયં આગતં ગંધે] માણેદ્રિષ્ટના વિષયમાં આવેલી ગંધને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] (પોતાના સ્થાનથી અ્યુત થઈને) મદવા જતો નથી.

[અશુભઃ યા શુભઃ રસઃ] અશુભ અથવા શુભ રસ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતો કે [માં રસય હતિ] ‘તું’ અને ચાખ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ [રસનવિષયં આગતં તુ રસં] રસના-દ્રિષ્ટના વિષયમાં આવેલા રસને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને) મદવા જતો નથી.

[અશુભઃ યા શુભઃ સ્પર્શઃ] અશુભ અથવા શુભ સ્પર્શ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતો કે [માં સ્પૃશ્ય હતિ] ‘તું’ અને સ્પર્શ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [કાયવિષયં આગતં સ્પર્શં] કાયના (-સ્પર્શેન્દ્રિયના) વિષયમાં આવેલા સ્પર્શને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] મદવા જતો નથી.

[અશુભઃ યા શુભઃ શુણઃ] અશુભ અથવા શુભ શુણ [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતો કે [માં શુણ્યસ્ય હતિ] ‘તું’ અને જાણ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [શુદ્ધિવિષયં આગતં શુણં] શુદ્ધિના વિષયમાં આવેલા શુણને [ચિનિર્મદોતું ન વતિ] મદવા જતો નથી.

[અશુભં યા શુભં દ્રવ્યં] અશુભ અથવા શુભ દ્રવ્ય [ત્વાં ન મળતિ] ને એમ નથી કહેતું કે [માં શુણ્યસ્ય હતિ] ‘તું’ અને જાણ’; [સઃ વય ય] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [શુદ્ધિવિષયં આગતં દ્રવ્યં] શુદ્ધિના વિષયમાં

આવેલા દ્રવ્યને [ચિનિર્મદીતું ન પતિ] મહત્વા જતો નથી.

[પતદ તુ માત્વા] આત્મ જાણીને પણ [મૂઢા] મૂઢ [જાગરે
ગચ્છતિ] ઉપરામને પામતો નથી; [ચ] એને [ચિત્તં ચુદ્ધિ અપ્રાપ્તઃ ચ સ્વ
બુદ્ધિને (કલ્યાણકારી બુદ્ધિને, સમ્યક્જ્ઞાનને) નહિ પામેલો પાતે [૧૦૦
પરને મહત્વાત્મ મન કરે છે.

ટીકા:—પ્રથમ દર્શાવે કહે છે: આ જગતમાં બાહ્યપદાર્થ—ઘટપટ્ટાદિ-
દેવદત્ત નામનો પુરુષ યજ્ઞદત્ત નામના પુરુષને હાથ પકડીને કોઈ કાર્યમાં જો
દીવાને સ્વપ્રકાશનમાં (અર્થાત્ બાહ્યપદાર્થને પ્રકાશવાના કાર્યમાં) જોડતો નથી
મને પ્રકાશ', એને દીવો પણ લોહચુબક-પાપાણ્ડી જે આથેલી લોખંડની
જેમ પોતાના સ્થાનથી સ્થિત થઈને તેને (બાહ્યપદાર્થને) પ્રકાશવા જતો નથી;
વસ્તુસ્વભાવ પર વડે ઉત્પન્ન કરી શકતો નહિ હોવાથી તેમ જ વસ્તુસ્વભાવ
ઉત્પન્ન કરી શકતો નહિ હોવાથી, દીવો જેમ બાહ્યપદાર્થની અસમીપતામાં (પોતાના
સ્વરૂપથી જ પ્રકાશે છે) તેમ બાહ્યપદાર્થની સમીપતામાં પણ પોતાના સ્વરૂપ
પ્રકાશે છે. (એમ) પોતાના સ્વરૂપથી જ પ્રકાશતા એવા તેને (દીવાને), વસ્તુસ્વભાવ
જ વિચિત્ર પરિણતિને પામતો એવો મનોહર કે અમનોહર ઘટપટ્ટાદિ બાહ્યપદાર્થ
વિધિયા ઉત્પન્ન કરતો નથી.

એવી રીતે હવે દર્શાવે છે: બાહ્યપદાર્થો—શબ્દ, રૂપ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ
ગુણ ને દ્રવ્ય—, જેમ દેવદત્ત યજ્ઞદત્તને હાથ પકડીને કોઈ કાર્યમાં જોડે તેમ; આ
સ્વજ્ઞાનમાં (બાહ્યપદાર્થોને જાણવાના કાર્યમાં) જોડતા નથી કે 'તું' અને સાંભળ
મને જો, તું' અને સૂંઘ, તું' અને ચાખ, તું' અને સ્પર્શ, તું' અને જાણ', એને
પણ લોહચુબક-પાપાણ્ડી જે આથેલી લોખંડની સોયની જેમ પોતાના સ્થાનથી
થઈને તેમને (બાહ્યપદાર્થોને) જાણવા જતો નથી; પરંતુ, વસ્તુસ્વભાવ પર વડે
કરી શકતો નહિ હોવાથી તેમ જ વસ્તુસ્વભાવ પરને ઉત્પન્ન કરી શકતો નહિ હોવા
આત્મા જેમ બાહ્યપદાર્થોની અસમીપતામાં (પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે)
બાહ્યપદાર્થોની સમીપતામાં પણ પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે. (એમ) પોતાના
સ્વરૂપથી જ જાણતા એવા તેને (આત્માને), વસ્તુસ્વભાવથી જ વિચિત્ર પરિણતિ
પામતા એવા મનોહર કે અમનોહર શબ્દાદિ બાહ્યપદાર્થો જરાય વિધિયા ઉત્પન્ન
કરતા નથી.

આ રીતે આત્મા દીવાની જેમ પર પ્રત્યે સદાય ઉદાસીન ■ (અર્થાત્ સં-
વગરનો, તદસ્થ ■)—એવી વસ્તુસ્થિતિ છે, તોપણ જે રાગદ્વેષ થાય છે તે અજ્ઞાન
ભાવાર્થ:—શબ્દાદિક જડ પ્રગલ્ભદ્રવ્યના ગુણો છે. તેઓ આત્માને

કહેતા નથી, કે 'તું' અમને મહાલુ કર (અર્થાત્ તું' અમને જાણુ);' અને આત્મા પણ પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત થઈને તેમને મહાવા (-જાણવા) તેમના પ્રત્યે જતા નથી. જેમ રાજાદિક સમીપ ન હોય ત્યારે આત્મા પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે, તેમ રાજાદિક સમીપ હોય ત્યારે પણ આત્મા પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે. આમ પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણતા એવા આત્માને પોતપોતાના સ્વભાવથી જ પરિણમતા રાજાદિક કિંચિત્તમાત્ર પણ વિકાર કરતા નથી, જેમ પોતાના સ્વરૂપથી જ પ્રકાશતા એવા દીવાને ઘટપદાદિ પદાર્થો વિકાર કરતા નથી તેમ. આવો વસ્તુસ્વભાવ છે, તેપણુ એવ રાજાને સાંભળી, રૂપને રૂપી, ગંધને સૂંધી, રસને આસ્વાદી, સ્પર્શને સ્પર્શી, ગુણ-દ્રવ્યને જાણી, તેમને જ્ઞાસં-નરસાં માની રાગદ્વેષ કરે છે, તે અજ્ઞાન જ છે.

હવે આ જ અર્થ'તું' કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(રાઈલવિહીનિ)

पूर्णकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं
पायात्कामपि विक्रियां तत् इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्रस्तुस्थितियोषवंध्यपिपणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां भुवंत्युदासीनताम् ॥ २२२ ॥

અર્થ:—પૂર્ણ, એક, અચ્યુત અને શુદ્ધ (-વિકાર રહિત) એવું જ્ઞાન જેને મહિમા છે એવો આ જ્ઞાયક આત્મા જેમ પદાર્થોથી જરા પણ વિક્રિયા પામતો નથી જેમ દીવો પ્રકાશ્ય પદાર્થોથી (-પ્રકાશાધારોગ્ય ઘટપદાદિ પદાર્થોથી) વિક્રિયા પામતો નથી તેમ. તો પછી એવી વસ્તુસ્થિતિના જ્ઞાનથી રહિત જેમની ભુદ્ધિ છે એવા અજ્ઞાની એવો પોતાની સદૃજ ઉદાસીનતાને કેમ છાડે ॥ અને રાગદ્વેષમય કેમ થાય છે? (જેમ આત્માર્થદેવે શોધ્ય કર્યો છે).

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનનો સ્વભાવ જ્ઞેયને જાણવાનો જ છે, જેમ દીપનો સ્વભાવ ઘટપદાદિને પ્રકાશવાનો છે. એવો વસ્તુસ્વભાવ છે. જ્ઞેયને જાણવામાત્રથી જ્ઞાનમાં વિકાર થતો નથી. જ્ઞેયને જાણી, તેમને સારાં-નરસાં માની, આત્મા રાગદ્વેષી—વિહારી થઈ જાય છે તે અજ્ઞાન છે. મારે આત્માર્થદેવે શોધ્ય કર્યો છે કે—'વસ્તુનો સ્વભાવ નો અજ્ઞાન છે, છતાં આ આત્મા અજ્ઞાની થઈને રાગદ્વેષરૂપ કેમ પરિણમી છે? પાતાની સ્વાભાવિક ઉદાસીન-અવસ્થારૂપ કેમ રહેતો નથી?' આ પ્રમાણે આત્માર્થદેવે જે શોધ્ય કર્યો તે યુક્ત છે, કારણ કે બ્યાંબુધી મુખ સગ છે ત્યાંબુધી પ્રાણીએને અજ્ઞાનથી રૂપી કરુણા ઉપજે ॥ અને તેથી શોધ્ય થાય છે.

હવે આગળના કથનની ચચનારૂપ કાન્ય કહે છે:—

(ચાર્દસનિર્મિત)

રાગદ્વેષવિધાનમુક્તમહસો નિત્યં સ્વભાવપૂરઃ

પૂર્વાંગમિતમસ્તકર્મચિત્ત્વા મિત્રાસ્તદાન્યોદયાન્ ।

દૂરાદ્દત્તચરિત્રવૈભવચલાનંચન્નિર્નિર્મયી

ચિંદન્તિ સ્વરસામિપિક્તમુવનાં જ્ઞાનસ્ય સંચેતનામ્ ॥ ૨૨૩ ॥

અર્થ:—જેમનું તેજ રાગદ્વેષરૂપ વિભાવથી સંહિત છે, જેઓ સદા (પોતાના ચૈતન્યચમત્કારમાત્ર) સ્વભાવને સ્પર્શનારા છે, જેઓ ભૂત કાળનાં તેમ જ ભવિષ્યનાં કાળનાં સમસ્ત કર્મથી સંહિત છે અને જેઓ વર્તમાન કાળના કર્મદાયથી સિત્ત થઈને તેઓ (—એવા જ્ઞાનીઓ—) અતિ પ્રમત્ત ચારિત્રના વૈભવના બળથી જ્ઞાનની સંચેતના અનુભવે છે—કે જે જ્ઞાન-ચેતના ચમત્કર્તી ચૈતન્યજ્યોતિમય છે અને જેણે નિજ રસ (પોતાના જ્ઞાનરૂપ રસથી) સમસ્ત લોકને સિંચ્યા છે.

ભાવાર્થ:—જેમને રાગદ્વેષ ગયા, પોતાના ચૈતન્યસ્વભાવને અંગીકાર થઈને અને અતીત, અનાગત તથા વર્તમાન કર્મનું મમત્વ ગયું એવા જ્ઞાનીઓ સર્વ પદ્મધી જુદા થઈને ચારિત્ર અંગીકાર કરે છે. તે ચારિત્રના બળથી, કર્મચેતના અંશકર્મજ્ઞચેતનાથી જુદી જે પોતાની ચૈતન્યના પરિણમનસ્વરૂપ જ્ઞાનચેતના તેનું અનુભવન કરે છે.

અહીં તાત્પર્ય આમ બાલુકું:—જીવ પહેલાં તેા કર્મચેતના અને કર્મજ્ઞ ચેતનાથી સિત્ત પોતાની જ્ઞાનચેતનાનું સ્વરૂપ આગમ-પ્રમાણ, અનુમાન-પ્રમાણ અથવા સ્વસંવેદનપ્રમાણથી બાલે છે અને તેનું શ્રદ્ધાન (પ્રતીતિ) દૃઢ કરે છે; એ તો અવિરત દેશવિરત અને પ્રમત્ત અવસ્થામાં પણ થાય છે. અને બ્યારે અપ્રમત્ત અવસ્થા થાય ત્યારે જીવ પોતાના સ્વરૂપનું જ ધ્યાન કરે છે; તે વખતે, જે જ્ઞાનચેતનાનું તેને પ્રથમ શ્રદ્ધાન કયું હતું તેમાં તે હીન થાય છે અને શ્રેષ્ઠિ ચડી, કેવળજ્ઞાન ઉપજાવી સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતનારૂપ થાય છે. ૩૭૩—૩૮૨.

* કેવળજ્ઞાની જીવને સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતના હોય છે. કેવળજ્ઞાન થયા પહેલાં પણ, નિર્વિકલ્પ અનુભવ વખતે જીવને ઉપયોગાત્મક જ્ઞાનચેતના હોય છે. જ્ઞાનચેતનાના ઉપયોગાત્મકપણાને યુક્ત ન કરીએ તો, સમ્યગ્દષ્ટિને જ્ઞાનચેતના નિરંતર હોય છે, કર્મચેતના અને કર્મજ્ઞચેતના નથી હોતી; કારણ કે તેને નિરંતર જ્ઞાનના સ્વામિત્વભાવે પરિણમન હોય છે, કર્મના અને કર્મજ્ઞના સ્વામિત્વભાવે પરિણમન નથી હોતું.

અતીત કર્મ પ્રત્યે મમત્વ હોય તે આત્મા પ્રતિક્રમણ છે, અનાગત કર્મ ન કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરે (અર્થાત્ જે ભાવોથી આગામી કર્મ બંધાય તે ભાવોનું મમત્વ હોય) તે આત્મા પ્રત્યાખ્યાન છે અને ઉદયમાં આવેલા વર્તમાન કર્મનું મમત્વ હોય તે આત્મા આલોચના છે; સદાય આવાં પ્રતિક્રમણ, પ્રત્યાખ્યાન અને આલોચનાપૂર્વક વર્તતા આત્મા ચારિત્ર છે.—આપું ચારિત્રનું વિધાન હવેની ગાથાઓમાં કહે છે:—

કર્મ જં પુન્નકયં સુહાસુહમણેયવિત્થરવિસેસં ।

તત્તો ણિયત્તણ અપ્પયં તુ જો સો પહિકમણં ॥ ૩૮૩ ॥

કર્મ જં સુહમસુહં જહિં ય ભાવહિં વજ્જહિં ભવિસ્સં ।

તત્તો ણિયત્તણ જો સો પચ્ચક્કણં હવહિં ચેયા ॥ ૩૮૪ ॥

જં સુહમસુહમુદિણં સંપદિં ય અણેયવિત્થરવિસેસં ।

તં દોસં જો ચેયહિં સો સ્વલુ આલોચણં ચેયા ॥ ૩૮૫ ॥

ણિચં પચ્ચક્કણં કુચ્ચહિં ણિચં પહિકમદિં યો ય ।

ણિચં આલોચેયહિં સો હુ ચરિત્તં હવહિં ચેયા ॥ ૩૮૬ ॥

કર્મ યત્પૂર્વકૃતં શુભાશુભમનેકવિસ્તરવિશેષમ્ ।

તસ્માદ્ધિવર્તયત્પ્રાપ્તમાનં તુ યઃ સ પ્રતિક્રમણમ્ ॥ ૩૮૩ ॥

કર્મ યચ્છુભમશુભં યસ્મિંશ્ચ ભાવે વચ્ચતે ભવિષ્યન્ ।

તસ્માદ્ધિવર્તતે યઃ સ પ્રત્યાખ્યાનં યતિ ચેતયિતા ॥ ૩૮૪ ॥

શુભ ને અશુભ અનેકવિધ પૂર્વે કરેલું કર્મ જે, તેથી નિવર્તે આત્મને, તે આત્મા પ્રતિક્રમણ છે; ૩૮૩.
શુભ ને અશુભ ભાવિ કર્મ જે ભાવમાં બંધાય છે, તેથી નિવર્તન જે કરે, તે આત્મા પચ્ચખાણ છે; ૩૮૪.
શુભ ને અશુભ અનેકવિધ છે વર્તમાને ઉદિત જે, તે દોષને જે ચેતનો, તે જીવ આલોચન કરે. ૩૮૫.
પચ્ચખાણ નિત્ય કરે. અને પ્રતિક્રમણ જે નિત્યે કરે, નિત્યે કરે આલોચના, તે આત્મા ચારિત્ર છે. ૩૮૬.

યચ્છુમમશુમમુદીર્ણં સંપતિ ચાનેકવિસ્તરવિશેષમ્ ।

તં દોષં યઃ ચેતયતે સ સ્વલ્પાલોચનં ચેતયિતા ॥ ૩૮૫ ॥

નિત્યં પ્રત્યાખ્યાનં કરોતિ નિત્યં પ્રતિક્રામતિ યથા ।

નિત્યમાલોચયતિ સ સ્વલ્પ ચરિત્રં ભવતિ ચેતયિતા ॥ ૩૮૬ ॥

અન્વયાર્થઃ—[પૂર્વકૃતં] પૂર્વે કરેલું [યદ્] જે [અનેકવિસ્તરવિશેષં] અનેક પ્રકારના વિસ્તારવાળું [શુભાશુભં કર્મ] (જ્ઞાનાવરણીયાદિ) શુભાશુભ કર્મ [તસ્માત્] તેનાથી [યઃ] જે આત્મા [માત્માનં તુ] પોતાને [નિવર્તયતિ] નિવર્તાવે છે, [સઃ] તે આત્મા [પ્રતિક્રમણં] પ્રતિક્રમણુ છે.

[ભવિષ્યત્] ભવિષ્ય કાળનું [યદ્] જે [શુભં અશુભં કર્મ] શુભ-અશુભ કર્મ [યસ્મિન્ માયે ચ] તે જે ભાવમાં [વર્ણયતે] બંધાય છે [તસ્માત્] તે ભાવથી [યઃ] જે આત્મા [નિવર્તતે] નિવર્તે છે, [સઃ ચેતયિતા] તે આત્મા [પ્રત્યાખ્યાનં ભવતિ] પ્રત્યાખ્યાનુ છે.

[સંપતિ ચ] વર્તમાન કાળે [ઉદીર્ણં] ઉદયમાં આવેલું [યદ્] જે [અનેક વિસ્તરવિશેષં] અનેક પ્રકારના વિસ્તારવાળું [શુભં અશુભં] શુભ-અશુભ કર્મ [તં દોષં] તે દોષને, [યઃ] જે આત્મા [ચેતયતે] ચેતે છે—અનુભવે છે—જ્ઞાતાભાવે બળી શકે છે (અર્થાત્ તેનું સ્વાભાવ—કર્તાપિણ્ડં છાડે છે), [સઃ ચેતયિતા] તે આત્મા [સ્વલ્પ] ખરેખર [આલોચનં] આલોચના છે.

[યઃ] જે [નિત્યં] સદા [પ્રત્યાખ્યાનં કરોતિ] પ્રત્યાખ્યાન કરે છે, [નિત્યં પ્રતિક્રામતિ ય] સદા પ્રતિક્રમણુ કરે છે [નિત્યં આલોચયતિ] અને સદા આલોચના કરે છે, [સઃ ચેતયિતા] તે આત્મા [સ્વલ્પ] ખરેખર [ચરિત્રં ભવતિ] ચરિત્ર છે.

ટીકાઃ—જે આત્મા પુરુષલક્ષ્મીના વિપાકથી (ઉદયથી) થતા ભાવોથી પોતાને નિવર્તાવે છે, તે આત્મા તે ભાવોના કારણભૂત પૂર્વકર્મને (ભૂતકાળના કર્મને) પ્રતિક્રમનો થકો પોતે જ પ્રતિક્રમણુ છે; તે જ આત્મા, તે ભાવોના કાર્યભૂત ઉત્તરકર્મને (ભવિષ્ય કાળના કર્મને) પચખનો થકો, પ્રત્યાખ્યાનુ છે; તે જ આત્મા, વર્તમાન કર્મવિપાકને પાનાથી (આત્માથી) અત્યંત બેદપૂર્વક અનુભવનો થકો, આલોચના છે. એ રીતે તે આત્મા સદા પ્રતિક્રમનો (અર્થાત્ પ્રતિક્રમણુ કરેલો) થકો, સદા પચખનો (અર્થાત્ પ્રત્યાખ્યાન કરેલો) થકો અને સદા આલોચનો (અર્થાત્ આલોચના કરેલો) થકો, પૂર્વકર્મના કાર્યરૂપ અને ઉત્તરકર્મના કારણરૂપ ભાવોથી અત્યંત નિરૂપ થકો, વર્તમાન કર્મવિપાકને પાનાથી (આત્માથી) અત્યંત બેદપૂર્વક અનુભવનો થકો,

• નિવર્તનં = ૫. ૪૫ વ. ૧૦; અપ્રકરણં: ૬૨ મ. ૧૦.

જાનામાં જ—જ્ઞાનસ્વભાવમાં જ—નિર્દેશ થયેનો (નિશ્ચયનો, આશરો કરતો) દેવાથી ચારિત્ર્ય જ (અર્થાત્ પાને જ ચારિત્રસ્વરૂપ છે). અને ચારિત્રસ્વરૂપ વર્તેલો થકો જ્ઞાને—જ્ઞાનભાવને—ધેનનો (અનુભવનો) દેવાથી (તે આત્મા) પાને જ જ્ઞાનચેતના, એવો ભાવ (આશય) છે.

બાવાર્થ:—ચારિત્રમાં પ્રતિક્રમણ, પ્રત્યાખ્યાન અને આલોચનાનું વિધાન છે. જ્યાં, પૂર્વે દાખલા દેવાથી આત્માને નિવર્તારવો તે પ્રતિક્રમણ છે, ચારિત્ર્યમાં દોષ દૂરમાણનો ત્યાગ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે અને વર્તમાન દોષથી આત્માને ભુલો કરવો આલોચના છે. અર્થાત્ તો નિશ્ચયચારિત્રને પ્રધાન કરીને કથન છે; મારે નિશ્ચયથી વચારવાં તો, જે આત્મા ત્રણે દાગળાં કર્મોથી ધોળાને ભિન્ન બળે છે, મદે છે અને અનુભવે છે, તે આત્મા પાને જ પ્રતિક્રમણ છે, પાને જ પ્રત્યાખ્યાન છે અને પાતે જ આલોચના છે. એમ પ્રતિક્રમણસ્વરૂપ, પ્રત્યાખ્યાનસ્વરૂપ અને આલોચનાસ્વરૂપ આત્માનું નિર્દેશ અનુભવન તે જ નિશ્ચયચારિત્ર છે. જે આ નિશ્ચયચારિત્ર, તે જ જ્ઞાનચેતના અર્થાત્ જ્ઞાનનું અનુભવન) છે. તે જ જ્ઞાનચેતનાથી (અર્થાત્ જ્ઞાનના અનુભવનથી) જ્ઞાન જ્ઞાનચેતનાસ્વરૂપ કેવળજ્ઞાનમય આત્મા પ્રગટ થાય છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં જ્ઞાનચેતનાનું ફળ અને અજ્ઞાનચેતનાનું (અર્થાત્ કર્મચેતનાનું અને કર્મફળચેતનાનું) ફળ પ્રગટ કરે છે:—

(ઉપભાનિ)

જ્ઞાનસ્ય સંચેતનયૈવ નિત્યં
મકાગ્રતે જ્ઞાનમતીવ શુદ્ધમ્ ।
અજ્ઞાનસંચેતનયા હુ ધાવન્
લોપસ્ય શુદ્ધિં નિરુણદિ પંથઃ ॥ ૨૨૪ ॥

અર્થ:—નિર્દેશ જ્ઞાનની સંચેતનાથી જ જ્ઞાન અત્યંત શુદ્ધ પ્રકાશે છે; અને અજ્ઞાનની સંચેતનાથી બધું દોષતો થકો જ્ઞાનની શુદ્ધતાને રોકે છે—જ્ઞાનની શુદ્ધતા થવા રેતો નથી.

બાવાર્થ:—કેઈ (વસ્તુ) પ્રત્યે એકાગ્ર યદ્દને તેના જ અનુભવરૂપ સ્વાદ લીધા કરવો તે તેનું સંચેતન કહેવાય. જ્ઞાન પ્રત્યે જ એકાગ્ર ઉપયુક્ત યદ્દને તેના તરફ જ ધેન રાખવી તે જ્ઞાનનું સંચેતન અર્થાત્ જ્ઞાનચેતના છે. તેનાથી જ્ઞાન અત્યંત શુદ્ધ થઈને પ્રકાશે છે અર્થાત્ કેવળજ્ઞાન ઉપજે છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજતાં સંપૂર્ણ જ્ઞાનચેતના કહેવાય છે.

હું પરમ નેષ્ટર્થને (-ઉત્કૃષ્ટ નિષ્કર્મ અવસ્થાને) અવલંબુ' છું. (એ પ્રભાવે કર્મનો ત્યાગ કરનાર જ્ઞાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.)

(હવે દીકામાં પ્રથમ, પ્રતિક્રમણ-કલ્પ અર્થાત્ પ્રતિક્રમણનો વિધિ કહે છે:-)

(પ્રતિક્રમણ કરનાર કહે છે કે:-)

જે મેં (પૂર્વે કર્મ) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવ કર્યું, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. (કર્મ કરતું, કરાગ્યું અને અન્ય કરનારને અનુભાવતું તે સંસારતું બીજ છે એમ જાણીને તે કુષ્ટત પ્રત્યે હેયશ્રુદ્ધિ આવી ત્યારે જ્યે તેના પ્રત્યેનું અભત્વ છાડ્યું, તે જ તેનું મિથ્યા કરતું છે.)

જે મેં (પૂર્વે કર્મ) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવ કર્યું, મનથી તથા વચનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૨. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું, મનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું, મનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૫. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું, વચનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૬. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું, કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૭.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાગ્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૮. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૯. જે મેં (પૂર્વે) કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૧૦.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાગ્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૧૧. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૧૨. જે મેં (પૂર્વે) કરાગ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૧૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાગ્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું કુષ્ટત મિથ્યા હો. ૧૪. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુભાવન કર્યું

મિથ્યા હો. ૩૬. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કરું વચન
તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૦.

જે મેં (પૂર્વે) કરું મનથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૧. જે મેં (પૂર્વે)
કરાવ્યું મનથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૨. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તે
અનુમોદન કરું મનથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૩. જે મેં (પૂર્વે) કરું વચનથી
તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૪. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું વચનથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા
હો. ૪૫. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કરું વચનથી, તે મારું
દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૬. જે મેં (પૂર્વે) કરું કાયાથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૭.
જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૮. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય
કરતો હોય તેનું અનુમોદન કરું કાયાથી, તે મારું દુષ્ટત મિથ્યા હો. ૪૯.

(આ ૪૯ બોધની અંદર, પહેલા બોધમાં પૂન, કારિત, અનુમોદના—એ
ત્રણે રીતે અને તેના પર મન, વચન, કાયા—એ ત્રણે સમાવ્યાં. એ રીતે બોધ આ
બેઠા બોધને ૧૩૩ ની સમસ્યાથી—સંજ્ઞાથી—ઓળખી શકાય. ૨ થી ૪ સુધીના બોધોમાં
પૂન, કારિત, અનુમોદના ત્રણે સર્થને તેના પર મન, વચન, કાયામાંથી બળને સમાવ્યાં
એ રીતે બોધ આ ત્રણ બોધને ૧૩૩ ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૫ થી ૭
સુધીના બોધોમાં પૂન, કારિત, અનુમોદના ત્રણે સર્થને તેના પર મન, વચન, કાયામાંથી
બોધે સમાવ્યાં. આ ત્રણ બોધને ૧૩૩ ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૮ થી ૧૩
સુધીના બોધોમાં પૂન, કારિત, અનુમોદનામાંથી બળને સર્થને તેના પર મન, વચન,
કાયા ત્રણે સમાવ્યાં. આ ત્રણ બોધને ૧૩૩ ની સંજ્ઞાવાળા બોધ તરફ ઓળખી
શકાય. ૧૪ થી ૧૯ સુધીના બોધોમાં પૂન, કારિત, અનુમોદનામાંથી બળને સર્થને તેના
પર મન, વચન, કાયામાંથી બળને સમાવ્યાં. આ ત્રણ બોધને ૧૩૩ ની સંજ્ઞાથી
ઓળખી શકાય. ૨૦ થી ૨૯ સુધીના બોધોમાં પૂન, કારિત, અનુમોદનામાંથી બળને સર્થને
તેના પર મન, વચન, કાયામાંથી બળને સમાવ્યાં. આ ત્રણ બોધને ૧૩૩ ની સંજ્ઞાવાળા
બોધ તરફ ઓળખી શકાય. ૩૦ થી ૩૨ સુધીના બોધોમાં પૂન, કારિત, અનુમોદનામાંથી

૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં
૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં
૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં

૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં
૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં
૧૩૩ ની સંજ્ઞા અનુસાર — એ ત્રણ રીતે તેના પર મન, વચન, કાયા — એ ત્રણે બોધોમાં

એકે લઈને તેમના ૫૨ મન, વચન, કાયા ત્રણે લગાવ્યાં. આ ત્રણે ભંગાને '૧૩'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૩૨ થી ૪૦ મુધીના ભંગામાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી એકે લઈને તેમના ૫૨ મન, વચન, કાયામાંથી બન્ને લગાવ્યાં. આ નવ ભંગાને '૧૨'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૪૧ થી ૪૮ મુધીના ભંગામાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી એકે લઈને તેમના ૫૨ મન, વચન, કાયામાંથી એકે લગાવ્યું. આ નવ ભંગાને '૧૧'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. બધા મળીને ૪૮ ભંગ થયા.)

હવે આ કથનના કથારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(આર્ષ)

મોહાયદ્દમકાર્ષે સમસ્તમપિ કર્મ તત્પતિકમ્પ ।

આત્મનિ ચૈતન્યાત્મનિ નિષ્કર્મણિ નિત્યમાત્મના વર્તે ॥ ૨૨૬ ॥

અર્થ:—જે મેં મોહથી અર્થાત્ અજ્ઞાનથી (ભૂત કાળમાં) કર્મ કર્યાં, તે સમસ્ત કર્મને પ્રતિક્રમીને હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ સર્વ કર્મોથી સહિત) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માથી જ (-પાતાથી જ-) નિરંતર વર્તું છું (એમ જ્ઞાની અનુભવ કરે છે).

ભાવાર્થ:—ભૂત કાળમાં કરેલા કર્મને ૪૮ ભંગપૂર્વકે મિથ્યા કરનારું પ્રતિક્રમજ્ઞ કરીને જ્ઞાની જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મામાં લીન થઈને નિરંતર ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને અનુભવ કરે, તેનું આ વિધાન (વિધિ) છે. 'મિથ્યા' કહેવાનું પ્રયોજન આ પ્રમાણે છે:—જેવી રીતે, કોઈએ પહેલાં ધન કમાઈને ઘરમાં રાખ્યું હતું; પછી તેના પ્રત્યે મમત્વ ઊભયું ત્યારે તેને ભોગવવાનો અભિપ્રાય ન રહ્યો; તે વખતે, ભૂત કાળમાં જે ધન કમાયો હતો તે નહિ કમાયા સમાન જ છે; તેવી રીતે, જીવે પહેલાં કર્મ બાંધ્યું હતું; પછી ત્યારે તેને અહિતરૂપ જાળીને તેના પ્રત્યે મમત્વ ઊભયું અને તેના ફળમાં લીન ન થયો, ત્યારે ભૂત કાળમાં જે કર્મ બાંધ્યું હતું તે નહિ બાંધ્યા સમાન મિથ્યા જ છે.

આ રીતે પ્રતિક્રમજ્ઞ-કૃદ્વ (અર્થાત્ પ્રતિક્રમજ્ઞના વિધિ) સમાપ્ત થયો.

(હવે દીકામાં આલોચનાકૃદ્વ કહે છે:—)

હું (વર્તમાનમાં કર્મ) કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદનો નથી, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧.

હું (વર્તમાનમાં કર્મ) કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદનો નથી, મનથી તથા વચનથી. ૨. હું (વર્તમાનમાં) કરતો નથી, કરાવતો

કરતો નથી મનથી તથા કાયાથી. ૩૫. હું કરાવતો નથી મનથી તથા કાયાથી. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદતો નથી મનથી તથા કાયાથી. ૩૭. હું કરતો વચનથી તથા કાયાથી. ૩૮. હું કરાવતો નથી વચનથી તથા કાયાથી. ૩૯. હું કરતો હોય તેને અનુભોદતો નથી વચનથી તથા કાયાથી. ૪૦.

હું કરતો નથી મનથી. ૪૧. હું કરાવતો નથી મનથી. ૪૨. હું અન્ય કરતો તેને અનુભોદતો નથી મનથી. ૪૩. હું કરતો નથી વચનથી. ૪૪. હું કરાવતો વચનથી. ૪૫. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદતો નથી વચનથી. ૪૬. હું કરતો નથી કાયાથી. ૪૭. હું કરાવતો નથી કાયાથી. ૪૮. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદતો નથી કાયાથી. ૪૯. (આ રીતે, પ્રતિક્રમજનના જેવા જ આસોચનામાં પણ ભગે કહ્યા.)

હવે આ કથનનાં કથારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(આપાં)

મોહવિલાસવિમૃંભિતમિદમુદયત્કર્મ સકલ્પમાલોચ્ય ।

આત્મનિં ચૈતન્યાત્મનિ નિષ્કર્મણિ નિત્યમાત્મના વર્તે ॥ ૨૨૭ ॥

અર્થ:—(નિશ્ચયચારિત્રને અંગીકાર કરનાર કહે છે કે—) મોહના વિલાસથી સાવેશું જે આ ઉદયમાન (ઉદયમાં આવતું) કર્મ તે સમસ્તને આસોચીને (ને જે કર્મની આસોચના કરીને-) હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ સર્વ કર્મથી શુદ્ધિ) ચૈતન્ય-વશ આત્મામાં આત્માથી જ (પાતાથી જ) નિરંતર વર્તું છું.

ભાવાર્થ:—વર્તમાન કાળમાં કર્મનો ઉદય આવે તેના વિષે જ્ઞાની ક્રમ વચારે છે કે—પૂર્વે જે કર્મ બાંધ્યું હતું તેવું આ કાર્ય છે, મારું નો આ કાર્ય નથી. હું આનો કર્તા નથી, હું તે શુદ્ધચૈતન્યમાત્ર આત્મા છું. તેની દર્શનજ્ઞાનરૂપ પ્રવૃત્તિ છે. તે દર્શનજ્ઞાનરૂપ પ્રવૃત્તિ વડે હું આ ઉદયમાં આવેલા કર્મનો રૂપનાર-અનુભવરૂપ. મારા સ્વરૂપમાં જ હું વર્તું છું. આવું અનુભવન કરતું તે જ નિશ્ચયચારિત્ર છે.

આ રીતે આસોચનાકલ્પ સમાપ્ત થયો.

(હવે દીકામાં પ્રત્યાખ્યાનકલ્પ અર્થાત્ પ્રત્યાખ્યાનનો વિધિ કહે છે:—)

(પ્રત્યાખ્યાન કરનાર કહે ॥ કે:—)

હું (ભવિષ્યમાં કર્મ) કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧.

હું (અવિધ્યામાં કર્મ) કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તે
અનુભવીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૨. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, ન
કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૩. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ
નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૪.

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ
 ૫. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ
 ૬. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ
 ૭. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૮. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૯. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૦.

૬૦. કુંડરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૧. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૨. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૩. કુંડરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી તથા: કાયાથી. ૧૪. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૧૫. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૧૬. કુંડરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૭. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૮. કુંડરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુભોદીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૯.

૬ કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી. ૨૦. ૬ કરીશ નહિ, અન્ય કરે
 હોય તેને અનુભારીશ નહિ, મનથી. ૨૧. ૬ કરાવીશ નહિ, અન્ય કરેના હોય તે
 અનુભારીશ નહિ, મનથી. ૨૨. ૬ કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, વચનથી. ૨૩. ૬
 કરીશ નહિ, અન્ય કરેના હોય તેને અનુભારીશ નહિ, વચનથી. ૨૪. ૬ કરાવીશ
 નહિ, અન્ય કરેના હોય તેને અનુભારીશ નહિ, વચનથી. ૨૫. ૬ કરીશ નહિ, કરા
 વીશ નહિ, કાયથી. ૨૬. ૬ કરીશ નહિ, અન્ય કરેના હોય તેને અનુભારીશ નહિ,
 કાયથી. ૨૭. ૬ કરાવીશ નહિ, અન્ય કરેના હોય તેને અનુભારીશ નહિ, કાયથી. ૨૮

કુ' કમીંગ જલ્દિ આવશે, વચનથી તથા કાવળથી. ૨૬. કુ' કમીંગ નહીં
આવશે, વચનથી તથા કાવળથી. ૩૦. કુ' અજ્ઞ કરતાં હોવાને તેને અનુભવીમાં નહીં

સર્વવિશુદ્ધિગાન અધિકાર

મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૩૧.

હું કરીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૨. હું કરાવીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૩. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૪. હું કરીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૫. હું કરાવીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૬. હું કરીશ નહિ અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૭. હું કરીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૮. હું કરાવીશ નહિ વચનથી તથા કાયાથી. ૩૯. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ વચનથી તથા કાયાથી. ૪૦.

હું કરીશ નહિ મનથી. ૪૧. હું કરાવીશ નહિ મનથી. ૪૨. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ મનથી. ૪૩. હું કરીશ નહિ વચનથી. ૪૪. હું કરાવીશ નહિ વચનથી. ૪૫. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ વચનથી. ૪૬. હું કરીશ નહિ કાયાથી. ૪૭. હું કરાવીશ નહિ કાયાથી. ૪૮. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુભવીશ નહિ કાયાથી. ૪૯. (આ રીતે, પ્રતિક્રમણના જેવા જ પ્રત્યાખ્યાનમાં પણ ૪૯ ભાગ કર્યા.)

હવે આ અર્થનું કાગરારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(આર્વા)

મત્પાલ્યાય મવિવ્યત્કર્મ સમસ્તં નિરસ્તસંયોદઃ ।

આત્મનિ ચૈતન્યાત્મનિ નિષ્કર્મણિ નિત્યમાન્યના વર્તે ॥ ૨૨૮ ॥

અર્થ:—(પ્રત્યાખ્યાન કરનાર જ્ઞાની કહે છે કે—) બિવિવ્યના સમસ્ત કર્મને પથથીને (ન્યાયીને), જેનો મોહ નષ્ટ થયો છે એવો હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ મર્મ કર્મથી રહિત) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માથી જ (-પાતાથી જ-) નિરસ્તર વર્તું છું.

વાક્યાર્થ:—નિઃકર્મચારિત્રમાં પ્રત્યાખ્યાનનું વિધાન એવું છે કે—સમસ્ત આગામી કર્મોથી રહિત, ચૈતન્યની પ્રવૃત્તિરૂપ (પાતાના) મુદોપધોગમાં વર્તવું તે પ્રત્યાખ્યાન. તેથી જ્ઞાની આગામી સમસ્ત કર્મોનું પ્રત્યાખ્યાન કરીને પાતાના ચૈતન્ય સ્વરૂપમાં વર્તે છે.

અર્થો તાત્પર્ય આ પ્રમાણે જાણવું:—વ્યવહારચારિત્રમાં તે પ્રતિજ્ઞામાં જે દોષ લાગે તેનું પ્રતિક્રમણ, આલોચના તથા પ્રત્યાખ્યાન દોષ છે. અર્થો નિમગ્નચારિત્રનું પ્રમાણપણે કથન દોષથી મુદોપધોગથી વિપરીત સર્વ કર્મો આત્માના દોષસ્વરૂપ છે. તે સર્વ કર્મચિત્તાસ્વરૂપ પરિણામોનું—ત્રણ કાળનાં કર્મોનું—પ્રતિક્રમણ, આલોચના તથા પ્રત્યાખ્યાન કરીને જ્ઞાની સર્વ કર્મચિત્તાથી જુદા પાતાના મુદોપધોગરૂપ આત્માના જ્ઞાનમહાન વડે અને તેમાં સ્થિર થવાના વિધાન વડે નિષ્પ્રમાદ રહીને પ્રાપ્ત

થઈ, શ્રેષ્ઠિ ચડી, કેવળજ્ઞાન ઉપભવવાની સન્મુખ થાય છે. આ, જ્ઞાનીનું કાર્ય છે. આ રીતે પ્રત્યાખ્યાનકરણ સમાપ્ત થયો.

હવે સકળ કર્મના સંન્યાસની ભાવનાને નવાવવા વિષેનું કથન પૂર્ણ કરી કલ્યાણરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપનતિ)

સમસ્તમિત્યેવમપાસ્ય કર્મ
ત્રૈકાલિકં શુદ્ધનયાવલંબી ।
વિલીનમોહો રહિતં વિકારૈ-
ચિન્માત્રમાત્માનમયાવલંબે ॥ ૨૨૯ ॥

અર્થ:—(શુદ્ધનયનું આલંબન કરનાર કહે છે કે—) પૂર્વોક્તિ રીતે મોહ કાળનાં સમસ્ત કર્મોને દૂર કરીને—છાડીને, શુદ્ધનયાવલંબી (અર્થાત્ શુદ્ધનયન અવલંબનાર) અને વિલીનમોહ (અર્થાત્ જેનું મિથ્યાત્વ નષ્ટ થયું છે) એવો હવે (સર્વ) વિકારોથી રહિત ચૈતન્યમાત્ર આત્માને અવલંબુ' છું.

હવે સકળ કર્મક્રિયાના સંન્યાસની ભાવનાને નવાવે છે:—

(ત્યાં પ્રથમ, તે કથનના સમુચ્ચય-અર્થનું કાવ્ય કહે છે:—)

(આર્યા)

વિગલંતુ કર્મવિપતરુફલાનિ મમ શુક્તિમન્તરેણૈવ ।
સંચેતયેઽહમચલં ચૈતન્યાત્માનમાત્માનમ્ ॥ ૨૩૦ ॥

અર્થ:—(સમસ્ત કર્મક્રિયાની સંન્યાસભાવના કરનાર કહે છે કે—) કર્મથી વિપટ્તિનાં દેશ ભારા ભોગવ્યા વિના જ ખરી જાગ્યો; હું (મારા) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને નિશ્ચયપણે સંચેતુ' છું—અનુભવુ' છું.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાની કહે છે કે—જે કર્મ ઉદયમાં આવે છે તેના દેશને જ જ્ઞાના-દ્રશ્યપણે દેખુ' છું, તેના ભોજના થતો નથી, માટે ભારા ભોગવ્યા વિના જ તે કર્મ ખરી જાગ્યો; હું મારા ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં લીન થયો થકો તેના દેખનાર-અનુભવ જ દોઉં.

અર્થી એકલું વિશેષ જાનુવું કે—અવિરત, દેશવિરત તથા પ્રમતસંયત દશામાં નો આત્મ જ્ઞાન-અદાન જ પ્રધાન છે, અને જ્યારે જીવ અપ્રમત દશાને પામીને મોહી થતો છે ત્યારે આ અનુભવ સાદ્યત્વ દોાય છે.

(હવે દીકામાં સકળ કર્મફળના સંન્યાસની જાવનાને ન્યાયે છે:—)

હું (જ્ઞાની હોવાથી) અતિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્ય-
સ્વરૂપ આત્માને જ સંચિતું છું અર્થાત્ એકાગ્રપણે અનુભવું છું. (અહીં 'ચિત્તવૃત્ત'
રૂપે અનુભવવું, વેદવૃત્ત, ભોગવવું. 'સ' ઉપસર્ગ લાગવાથી, 'સંચિત્તવૃત્ત' એટલે
એકાગ્રપણે અનુભવવું' એવો અર્થ અહીં જ્યાં પાઠોમાં સમજવો.) ૧. હું જુગત્તાના-
રણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચિતું છું—અનુભવું
૨. હું અવધિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ
સંચિતું છું. ૩. હું મનઃપર્થકજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ
આત્માને જ સંચિતું છું. ૪. હું કેવળજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્ય-
સ્વરૂપ આત્માને જ સંચિતું છું. ૫.

હું અશુદ્ધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને
જ સંચિતું છું. ૬. હું અઅશુદ્ધિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૭. હું અવધિજ્ઞાના-
વરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૮. હું કેવળજ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૯. હું નિદ્રા-
જ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૦. હું નિદ્રાનિદ્રાજ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૧.
હું પ્રથક્જ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૨. હું પ્રથક્પ્રથક્જ્ઞાનાવરણીય-
કર્મના, ચૈતન્ય. ૧૩. હું રત્યાનવૃદ્ધિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૪.

હું શાતાવેદનીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ
સંચિતું છું. ૧૫. હું અશાતાવેદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૬.

હું સમ્યક્વિદ્યાદનીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને
જ સંચિતું છું. ૧૭. હું વિધ્યાત્વમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૮. હું અધ્યાત્મવિધ્યા-
ત્વમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૧૯. હું અનંતાનુષંગિકોપકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના,
ચૈતન્ય. ૨૦. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયકોપકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૧.
હું પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયકોપકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૨. હું સંબંધન-
કોપકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૩. હું અનંતાનુષંગિકાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના,
ચૈતન્ય. ૨૪. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૫.
હું સંબંધનમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૬. હું અનંતાનુષંગિકા-
નકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૭. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના,
ચૈતન્ય. ૨૮. હું પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૨૯.
હું સંબંધનમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૩૦. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકાપચેદનીયમિદ્યાદનીયકર્મના, ચૈતન્ય. ૩૧.

३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

સ્થાનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૨. હું વામનસંસ્થાનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૦.
 હું દુઃકસંસ્થાનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૧. હું વજ્રલિનારાચરસંહનનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૮૨. હું વજ્રનારાચરસંહનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૩. હું નારાયણસંહન-
 નામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૪. હું અર્ધનારાચરસંહનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૫. હું
 ત્રિલોકસંહનનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૬. હું અસપ્રાપ્તારૂપાદિકસંહનનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૮૭. હું સ્તિમ્બરૂપરિનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૮૮. હું રૂપરૂપરિનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૮૯. હું રૂપરૂપરિનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૦. હું ઉપરૂપરિનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૯૧. હું ગુરૂરૂપરિનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૨. હું લઘુરૂપરિનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૯૩. હું મૂલરૂપરિનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૪. હું કર્કશરૂપરિનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૯૫. હું મધુરરસનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૬. હું આમ્લરસનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૯૭. હું તિષ્ઠરસનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૯૮. હું કટુરસનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૯૯. હું કપાચરસનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૦. હું સુરભિગંધનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૧૦૧. હું અસુરભિગંધનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૨. હું શુકલવર્ણનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૧૦૩. હું રક્તવર્ણનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૪. હું પીતલવર્ણનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૧૦૫. હું હરિતવર્ણનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૬. હું કૃષ્ણવર્ણનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૧૦૭. હું નરકગત્યાનુપૂર્વનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૮. હું તિર્યગત્યાનુપૂર્વનામ-
 કર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૦૯. હું મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૦. હું દેવગત્યાનુ-
 પૂર્વનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૧. હું નિર્માણનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૨. હું અગુરુ-
 લઘુનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૩. હું ઉપઘાતનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૪. હું પરઘાત-
 નામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૫. હું આતપનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૬. હું ઉદ્યોતનામ-
 કર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૭. હું ઉચ્છ્વાસનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૮. હું પ્રસસ્તવિહા-
 યોગનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૧૯. હું અપ્રસસ્તવિહાયોગનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦.
 ૧૨૦. હું સાધારણશરીરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૧. હું પ્રત્યેકશરીરનામકર્મનાં,
 ચૈતન્ય૦. ૧૨૨. હું સ્થાવરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૩. હું વ્રસનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦.
 ૧૨૪. હું મુખગનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૫. હું દુર્લભનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૬.
 હું મુરુવરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૭. હું કુઃસ્વરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૮. હું
 મુખનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૨૯. હું અશુભનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૦. હું સુક્રમ-
 શરીરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૧. હું બાદરશરીરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૨. હું
 પર્ણાપ્તનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૩. હું અપર્ણાપ્તનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૪. હું
 સ્થિરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૫. હું અસ્થિરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૬. હું આદિય-
 નામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૭. હું અનાદિયનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૮. હું યશઃકીર્તિ-
 નામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૩૯. હું અયશઃકીર્તિનામકર્મનાં, ચૈતન્ય૦. ૧૪૦. હું

તીર્થકરનામકર્મનાં, ચૈતન્ય. ૧૪૧.

હું ઉચ્ચગોત્રકર્મના કૃત્તે નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૨. હું નીચગોત્રકર્મનાં, ચૈતન્ય. ૧૪૩.

હું દાનાંતરાયકર્મના કૃત્તે નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૪. હું લાભાંતરાયકર્મનાં, ચૈતન્ય. ૧૪૫. હું ભોગાંતરાયકર્મનાં, ચૈતન્ય. ૧૪૬. હું ઉપભોગાંતરાયકર્મનાં, ચૈતન્ય. ૧૪૭. હું વીર્યાંતરાયકર્મના કૃત્તે નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૮. (આ પ્રમાણે જ્ઞાની જ્ઞાનકર્મોના કૃત્તેના સંન્યાસની ભાવના કરે છે).

(અંહી ભાવના એટલે વારંવાર ચિંતવન કરીને ઉપયોગનો અભ્યાસ કરે છે. જ્યારે જીવ સમ્યક્દષ્ટિ-જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને જ્ઞાન-અદ્વાન તો થયું જ કે 'હું શુદ્ધનયે સમસ્ત કર્મથી અને કર્મના કૃત્તેથી રહિત છું.' પરંતુ પૂર્વે આદિમાં કર્મ ઉદયમાં આવે તેમનાથી થતા ભાવોનું કર્તાપણું છાડીને, ત્રણે કાળ સંજ્ઞાથી ઓગળી પચાસ ઓગળીપચાસ ભગો વડે કર્મચેતનાના ત્યાગની ભાવના કરીને તથા સર્વ કર્મનું કૃત્તે ભોગવવાના ત્યાગની ભાવના કરીને, એક ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ 'ભોગવવાનું' બાકી રહ્યું. અવિરત, દશવિરત અને પ્રમત્ત અવસ્થાવાળા જીવને જ્ઞાન-અદ્વાનમાં નિરંતર એ ભાવના તો જ; અને જ્યારે જીવ અપ્રમત્ત દશા પ્રાપ્ત કરીને એકાગ્ર ચિત્તથી ધ્યાન કરે, કેવળ ચૈતન્યમાત્ર આત્મામાં ઉપયોગ લગાવે અને શુદ્ધોપયોગરૂપ થાય, ત્યારે નિશ્ચયચારિત્રરૂપ શુદ્ધોપયોગભાવથી શ્રેણી ચડીને કેવળજ્ઞાન ઉપજાય છે. તે વખતે એ ભાવનાનું કૃત્તે જે કર્મચેતનાથી અને કર્મકૃત્તેચેતનાથી રહિત સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતનારૂપ પરિણમન તે થાય છે. પછી આત્મા અનંત કાળ સુધી જ્ઞાન-ચેતનારૂપ જ રહેતો થકો પરમાનંદમાં ભક્ત રહે છે.)

હવે આ જ અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિથક્ષા)

નિ:શેષકર્મફલસંન્યસનાન્મયૈવં

સર્વક્રિયાંતરવિહારનિવૃત્તવૃત્તે: ।

ચૈતન્યલક્ષ્મ ભજતો મૃશમાત્મતત્ત્વં

કાલાવલીયમચલસ્ય વહત્વનંતા ॥ ૨૩૧ ॥

અર્થ:—(સકળ કર્મોના કૃત્તેના ત્યાગ કરીને જ્ઞાનચેતનાની ભાવના કરનાર જ્ઞાની કહે છે કે:) પૂર્વોક્ત રીતે સમસ્ત કર્મના કૃત્તેના સંન્યાસ કરવાથી હું ચૈતન્ય ભજું

પણ છે એવા આત્મતત્ત્વને અતિશયપણે ભોગવું છું અને તે સિવાય અન્ય ક્રિયામાં હારથી મારી વૃત્તિ નિવૃત્ત છે (અર્થાત્ આત્મતત્ત્વના ભોગવરા સિવાયની અન્ય બે પ્રયોગની ક્રિયા—વિભાવરૂપ ક્રિયા—તેમાં મારી પરિભ્રુતિ વિહાર કરતી નથી—પ્રવર્તતી નથી); એમ આત્મતત્ત્વના ભોગવરામાં અચળ એવા અને, આ કાળની આવડી કે પ્રવાહરૂપે અનંત છે તે, આત્મતત્ત્વના ભોગવરામાં જ વહે—જાઓ; (ઉપયોગની વૃત્તિ અન્યમાં કદી પણ ન જાઓ).

ભાવાર્થ:—આવી ભાવના કરનાર જ્ઞાની એવો વૃમ્મ થયો છે કે જાણે ભાવના કરનાં સાક્ષાત્ કેવળી જ થયો હોય; તેથી તે અનંત કાળ મુખી એવો જ શરૂવાત્ થયો છે. અને તે યોગ્ય જ છે; કારણ કે આ જ ભાવનાથી કેવળી થવાય છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજવાનો પરમાર્થ ઉપાય આ જ છે. બાહ્ય વ્યવહારચાલિત છે તે આના જ માનનરૂપ છે; અને આના વિના વ્યવહારચાલિત શુભકર્મને બાધે છે, પ્રાપ્તિના ઉપાય નથી.

ફરી કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિથ્યા)

યઃ પૂર્વમાયકૃતકર્મવિપદુમાળાં

મુંક્તે પાળાનિ ન સ્વલ્પ સ્વત્ત્વં એવમ્ ॥

આપાનકાલરમણીયમુદર્કરમ્યં

નિષ્કર્મશર્મમયમેતિ દશાંતરં સઃ ॥ ૨૩૨ ॥

અર્થ:—પૂર્વે અજ્ઞાનભાવથી કરેલાં બે કર્મ તે કર્મરૂપી વિપદુમાળાં ફળને બે પુરુષ (તેનો સ્વામી થઈને) ભોગવતો નથી અને અદેખર પાનાથી જ (આત્મ-સ્વરૂપથી જ) વૃમ્મ છે, તે પુરુષ, બે વર્તમાન કાળે સમગ્રીય છે અને અવિચ્છેદમાં જ રહેવા ફળ સમગ્રીય છે એવી નિષ્કર્મ-મુખ્યમય દશાંતરને પામે છે (અર્થાત્ બે પૂર્વે થેસાર-અવસ્થામાં કદી થઈ નહોતી એવી જુદા પ્રકારની કર્મરહિત સ્વાધીન મુખ્યમય દશાને પામે છે).

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનચિંતનાની ભાવનાનું આ ફળ છે. તે ભાવનાથી હવે અચંત વૃમ્મ શરૂ છે—અન્ય વૃષ્ટિ શરૂતી નથી, અને અવિચ્છેદમાં કેવળજ્ઞાન ઉપજાવી શકે કર્મથી રહિત પ્રાપ્તિ-અવસ્થાને પામે છે.

‘પૂર્વોક્ત રીતે કર્મચિંતના અને કર્મફળચિંતનાના ત્યાગની ભાવના કરીને અજ્ઞાનચિંતનાના પ્રસવને પ્રગટ રીતે નચાવીને, પાનાના સ્વભાવને મુક્ત કરીને, જ્ઞાન

ચેતનાને નચાવતા થકા જ્ઞાની જનો સદાકાળ આનંદરૂપ રહેા'—એવા ઉ. કાવ્ય હવે કહે છે:—

(સન્ધરા)

અત્યંતં ભાવયિત્વા ચિરતિમચિરતં કર્મણસ્તત્ફલાચ
પ્રસ્પૃષ્ઠં નાટયિત્વા પ્રલયનમસ્તિલાજ્ઞાનસંચેતનાયાઃ ।
પૂર્ણં કૃત્વા સ્વભાવં સ્વરસપરિગતં જ્ઞાનસંચેતનાં સ્વાં
સાનંદં નાટયંતઃ પ્રશમરસમિતઃ સર્વકાલં પિવંતુ ॥ ૨૩૩ ॥

અર્થ:—જ્ઞાની જનો, અચિરતપણે કર્મથી અને કર્મના ફળથી તિમિ
અત્યંત ભાવીને (અર્થાત્ કર્મ અને કર્મફળ પ્રત્યે અત્યંત ચિરકાલાવને નિરં
ભાવીને), (એ રીતે) સમસ્ત અજ્ઞાનચેતનાના નાશને સ્પર્શપણે નચાવીને, નિજરસ
પ્રાપ્ત પોતાના સ્વભાવને પૂર્ણ કરીને, પોતાની જ્ઞાનચેતનાને આનંદપૂર્વક નચાવ
થકા હવેથી સદાકાળ પ્રશમરસને પીએ (અર્થાત્ કર્મના અભાવરૂપ આપ્તિમિત રસને—
અમૃતરસને—અત્યારથી આંડીને અનંત કાળ પર્યંત પીએ. આમ જ્ઞાનીજનોને
પ્રેરણા છે).

ભાવાર્થ:—પહેલાં તે ત્રણે કાળ સંબંધી કર્મના કર્તાપણારૂપ કર્મચેતનાના
ત્યાગની ભાવના (૪૬ ભગવદ્વચ્ચ) કરાવી. પછી ૧૪૮ કર્મપ્રકૃતિના ઉદયરૂપ કર્મફળના
ત્યાગની ભાવના કરાવી. એ રીતે અજ્ઞાનચેતનાનો પ્રલય કરાવીને જ્ઞાનચેતનાના
પ્રવર્ધવાનો ઉપદેશ કર્યો છે. એ જ્ઞાનચેતના સદા આનંદરૂપ—પોતાના સ્વભાવ
અનુભવરૂપ—છે. તેને જ્ઞાનીજનો સદા ભોગવેા—એમ શ્રીગુરુએનો ઉપદેશ છે.

આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર છે, તેથી જ્ઞાનને કર્તાભોગપ્રાપ્તધી વિષ
ભગવદ્વચ્ચ; હવેની ગાથાઓમાં અન્ય દ્રવ્યો અને અન્ય દ્રવ્યોના ભાવોથી જ્ઞાનને વિષ
ભગવદ્વચ્ચ તે ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(૧૯:૫)

ઇતઃ પદાર્થમયનાવમુંડનાદ-
ચિના કૃતેરેકમનાદૃયં યજ્યત્ ।
ગમગ્નરમ્નુષ્યનિરંકનિશ્વપાદ-
ચિત્તેતિનં જ્ઞાનમિદશરતિષ્ઠતે ॥ ૨૩૪ ॥

અર્થ:—અપાર્થી દહે (આ મર્ચવિમુદ્ધજ્ઞાન અભિષારમાં દહેની ગાથાઓમાં દહે છે કે—) શમસ્ત વસ્તુઓથી બિન્નપણના નિશ્ચય વડે જુદું કરવામાં આવેલું, પાર્થના પિરનાર સાથે બુધાવાથી (અનેક પદાર્થ સાથે, જ્ઞેયજ્ઞાનસંબંધને એક લેટું રખાવાથી) દૃષ્ટાન્ત થતી (અનેક પ્રકારની) ક્રિયા તેનાથી સ્થિત જ્ઞાનક્રિયામાત્ર, અનાદિ (સર્વ આદિગતથી સ્થિત) અને દેહીપ્રમાણ વર્તીત નિશ્ચય કરે છે.

બાવાર્થ:—દહેની ગાથાઓમાં જ્ઞાનને રૂપ રીતે સર્વ વસ્તુઓથી વિભાજિત છે. ૩૮૭—૩૮૯.

એ જ અર્થની ગાથાઓ દહે કરે છે:—

સત્યં ણાણં ન હવદ્ જત્થા સત્યં ન યાણં કિંચિ ।
તત્થા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં સત્યં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૦ ॥
સદ્દો ણાણં ન હવદ્ જત્થા સદ્દો ન યાણં કિંચિ ।
તત્થા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં સદ્દં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૧ ॥
રૂવં ણાણં ન હવદ્ જત્થા રૂવં ન યાણં કિંચિ ।
તત્થા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં રૂવં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૨ ॥
વણ્ણો ણાણં ન હવદ્ જત્થા વણ્ણો ન યાણં કિંચિ ।
તત્થા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં વણ્ણં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૩ ॥

રે! શાસ્ત્ર તે નથી જ્ઞાન, જેથી શાસ્ત્ર કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, શાસ્ત્ર જુદું—જિન કહે; ૩૯૦.
રે! શાસ્ત્ર તે નથી જ્ઞાન, જેથી શાસ્ત્ર કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, શાસ્ત્ર જુદું—જિન કહે; ૩૯૧.
રે! રૂપ તે નથી જ્ઞાન, જેથી રૂપ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, રૂપ જુદું—જિન કહે; ૩૯૨.
રે! વર્ણ તે નથી જ્ઞાન, જેથી વર્ણ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, વર્ણ જુદું—જિન કહે; ૩૯૩.

ગંધો ણાણં ણ હવહ જહ્વા ગંધો ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં ગંધં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૪ ॥
 ણ રસો દુ હવહ ણાણં જહ્વા દુ રસો ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં રસં ય અણ્ણં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૫ ॥
 ફાસો ણ હવહ ણાણં જહ્વા ફાસો ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં ફાસં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૬ ॥
 કમ્મં ણાણં ણ હવહ જહ્વા કમ્મં ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં કમ્મં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૭ ॥
 ધમ્મો ણાણં ણ હવહ જહ્વા ધમ્મો ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં અણ્ણં ધમ્મં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૮ ॥
 ણાણમધમ્મો ણ હવહ જહ્વાધમ્મો ણ યાણે કિંચિ ।
 તહ્વા અણ્ણં ણાણં અણ્ણમધમ્મં જિણા વિત્તિ ॥ ૩૯૯ ॥

રે! ગંધ તે નથી જ્ઞાન, જેથી ગંધ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, ગંધ જુદી—જિન કહે; ૩૬૪.
 રે! રસ નથી કંઈ જ્ઞાન, જેથી રસ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, રસ જુદો—જિનવર કહે; ૩૬૫.
 રે! સ્પર્શ તે નથી જ્ઞાન, જેથી સ્પર્શ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, સ્પર્શ જુદો—જિન કહે; ૩૬૬.
 રે! કર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી કર્મ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, કર્મ જુદું—જિન કહે; ૩૬૭.
 રે! ધર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી ધર્મ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, ધર્મ જુદો—જિન કહે; ૩૬૮.
 અધર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી અધર્મ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, અધર્મ જુદો—જિન કહે; ૩૬૯.

કાલો જાણે ન ત્યજે જાણે કાલો ન યાણે કિંચિ ।
 તત્ત્વા અણ્ણં જાણે અણ્ણં કાલં જિણા વિત્તિ ॥ ૪૦૦ ॥
 આયાસં પિ ન જાણે જાણે આયાસં ન યાણે કિંચિ ।
 તત્ત્વાયાસં અણ્ણં અણ્ણં જાણે જિણા વિત્તિ ॥ ૪૦૧ ॥
 જજ્ઞવન્નાણં જાણે અજ્ઞવન્નાણં અજ્ઞેદણં જાણે ।
 તત્ત્વા અણ્ણં જાણે અજ્ઞવન્નાણં તત્ત્વા અણ્ણં ॥ ૪૦૨ ॥
 જાણે જાણે જિણં તત્ત્વા જીવો દુ જાણો જાણો ।
 જાણં ચ જાણયાદો અવ્યદિરિત્તં મુણેયવ્વં ॥ ૪૦૩ ॥
 જાણં સમ્માદિટ્ઠં દુ સંજમં મુત્તમંગપુલ્લગયં ।
 ધમ્માધમ્મં ચ તત્ત્વા પલ્લવં અમુવંતિ વુહા ॥ ૪૦૪ ॥

જ્ઞાનં જ્ઞાનં ન ભવતિ યસ્માન્જ્ઞાનો ન જાનાતિ કિંચિન્ ।
 તસ્માદન્યગ્જ્ઞાનમન્યગ્જ્ઞાનો વિના વિદતિ ॥ ૩૯૦ ॥
 જ્ઞાનો જ્ઞાનં ન ભવતિ યસ્માન્જ્ઞાનો ન જાનાતિ કિંચિન્ ।
 તસ્માદન્યગ્જ્ઞાનમન્યં જ્ઞાનં વિના વિદતિ ॥ ૩૯૧ ॥

૩૯૦. કાળ ને નથી જ્ઞાન, જેથી કાળ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કાળને છે જ્ઞાન જુદું, કાળ જુદો—જિન કહે. ૪૦૦.
 આકાશ ને નથી જ્ઞાન, એ આકાશ કંઈ જાણે નહિ,
 તે કાળને આકાશ જુદું, જ્ઞાન જુદું—જિન કહે. ૪૦૧.
 નહિ જ્ઞાન અધ્યવસાન છે, જેથી અધ્યવસાન તેડ છે,
 તે કાળને છે જ્ઞાન જુદું, જુદું અધ્યવસાન છે. ૪૦૨.
 ૩૯૧. સર્વજ્ઞ જાણે ન નથી જીવ જાણે
 ને જ્ઞાન છે જાણથી અવ્યવસ્થિત એમ ૪૦૩.
 સમ્યક્ત્વ, ને સંયમ, તથા પૂર્વજ્ઞાન ૪૦૪.
 ધર્મ, દીક્ષા વગી, બુદ્ધ

रूपं ज्ञानं न भवति यस्माद्रूपं न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना विदंति ॥ ३९२ ॥
 वर्णो ज्ञानं न भवति यस्माद्वर्णो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना विदंति ॥ ३९३ ॥
 गंधो ज्ञानं न भवति यस्माद्गंधो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं गंधं जिना विदंति ॥ ३९४ ॥
 रसस्तु भवति ज्ञानं यस्मात्तु रसो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानं रसं चान्यं जिना विदंति ॥ ३९५ ॥
 स्पर्शो न भवति ज्ञानं यस्मात्स्पर्शो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना विदंति ॥ ३९६ ॥
 कर्म ज्ञानं न भवति यस्मात्कर्म न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत्कर्म जिना विदंति ॥ ३९७ ॥
 धर्मो ज्ञानं न भवति यस्माद्धर्मो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना विदंति ॥ ३९८ ॥
 ज्ञानमधर्मो न भवति यस्मादधर्मो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यमधर्मं जिना विदंति ॥ ३९९ ॥
 कालो ज्ञानं न भवति यस्मात्कालो न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं कालं जिना विदंति ॥ ४०० ॥
 आकाशमपि न ज्ञानं यस्मादाकाशं न जानाति किञ्चित् ।
 तस्मादाकाशमन्यदन्यज्ज्ञानं जिना विदंति ॥ ४०१ ॥
 नाध्यवसानं ज्ञानमध्यवसानमचेतनं यस्मात् ।
 तस्मादन्यज्ज्ञानमध्यवसानं तथान्यत् ॥ ४०२ ॥
 यस्माज्जानाति नित्यं तस्माज्जीवस्तु ज्ञायको ज्ञानी ।
 ज्ञानं च ज्ञायकादव्यतिरिक्तं ॥ ४०३ ॥
 ज्ञानं संप्रगृष्टिं तु संयमं
 धर्माधर्मं च ॥ ४०४ ॥

અન્યથાર્થઃ—[શાસ્ત્રં] શાસ્ત્રં [જ્ઞાનં ન ભવતિ] જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] જ્ઞાન છે [શાસ્ત્રં કિંચિત્ ન જાનાતિ] શાસ્ત્ર કાંઈ જાણતું નથી (—જડ છે), [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [શાસ્ત્રં અન્યત્] શાસ્ત્ર અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો જાણે છે—કહે છે. [શબ્દઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] શબ્દ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] શબ્દ છે [શબ્દઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] શબ્દ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [શબ્દઃ અન્યત્] શબ્દ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો જાણે છે—કહે છે. [રૂપં જ્ઞાનં ન ભવતિ] રૂપ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] રૂપ છે [રૂપં કિંચિત્ ન જાનાતિ] રૂપ કાંઈ જાણતું નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [રૂપં અન્યત્] રૂપ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [વર્ણઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] વર્ણ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] વર્ણ છે [વર્ણઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] વર્ણ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [વર્ણઃ અન્યત્] વર્ણ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [ગંધઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] ગંધ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] ગંધ છે [ગંધઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] ગંધ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [ગંધઃ અન્યત્] ગંધ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [રસઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] રસ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] રસ છે [રસઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] રસ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [રસઃ અન્યત્] રસ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [સ્પર્શઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] સ્પર્શ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] સ્પર્શ છે [સ્પર્શઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] સ્પર્શ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [સ્પર્શઃ અન્યત્] સ્પર્શ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [કર્મ જ્ઞાનં ન ભવતિ] કર્મ જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] કર્મ છે [કર્મ કિંચિત્ ન જાનાતિ] કર્મ કાંઈ જાણતું નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [કર્મ અન્યત્] કર્મ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [ધર્મઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] ધર્મ (અર્થાત્ અર્થશિલ્પ) જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] ધર્મ છે [ધર્મઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] ધર્મ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [ધર્મ અન્યત્] ધર્મ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [અધર્મઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] અધર્મ (અર્થશિલ્પ) જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] અધર્મ છે [અધર્મઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] અધર્મ કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે, [અધર્મ અન્યત્] અધર્મ અન્ય છે—[જિનાઃ વિદંતિ] એમ જિનદેવો કહે છે. [બાહ્યઃ જ્ઞાનં ન ભવતિ] બાહ્ય જ્ઞાન નથી [યસ્માન્] બાહ્ય છે [બાહ્યઃ કિંચિત્ ન જાનાતિ] બાહ્ય કાંઈ જાણતો નથી, [તસ્માન્] તરફ [જ્ઞાનં અન્યત્] જ્ઞાન અન્ય છે,

પ્રાકાશ અચેતન છે; મારે જ્ઞાનને અને પ્રાકાશને વ્યતિરેક છે. અધ્યવસાન જ્ઞાન નથી, કારણ કે અધ્યવસાન અચેતન છે; મારે જ્ઞાનને અને (કર્મના ઉદયની પ્રવૃત્તિરૂપ) અધ્યવસાનને વ્યતિરેક છે. આમ આ રીતે જ્ઞાનનો સમસ્ત પરદ્રવ્યો સાથે વ્યતિરેક નિશ્ચયસાધિત રહેવો (અર્થાત્ નિશ્ચય વડે સિદ્ધ થયેલો સમજવો—અનુભવવો).

હવે, જીવ જ એક જ્ઞાન છે, કારણ કે જીવ ચેતન છે; મારે જ્ઞાનને અને જીવને અવ્યતિરેક (અભિન્નતા) છે. વળી જ્ઞાનનો જીવની સાથે વ્યતિરેક જરા પણ નથી (અર્થાત્ જ્ઞાનની જીવથી ભિન્નતા હોય એમ જરાય સંકા કરવાયોગ્ય નથી), કારણ કે જીવ પોતે જ જ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે (જ્ઞાન જીવથી અભિન્ન) દોઢાથી, જ્ઞાન જ સમ્યક્ષિ છે, જ્ઞાન જ સંયમ છે, જ્ઞાન જ અંગપૂર્વરૂપ મૂલ છે, જ્ઞાન જ અર્ધ-અધર્મ (અર્થાત્ પુણ્ય-પાપ) છે, જ્ઞાન જ પ્રમલ્યા (—દીક્ષા, નિશ્ચયચરિત્ર) —એમ જ્ઞાનનો જીવપર્યાયીની સાથે પણ અવ્યતિરેક નિશ્ચયસાધિત રહેવો (અર્થાત્ નિશ્ચય વડે સિદ્ધ થયેલો સમજવો—અનુભવવો).

હવે, એ પ્રમાણે સર્વ પરદ્રવ્યો સાથે વ્યતિરેક વડે અને સર્વ દર્શનાદિ સ્વસ્વભાવો સાથે અવ્યતિરેક વડે અતિવ્યાપ્તિને અને અવ્યપ્તિને ફર ફરતું થકું, આદિ વિશ્વમ જેવું મૂળ છે એવા ધર્મ-અધર્મરૂપ (પુણ્ય-પાપરૂપ, શુભ-અશુભરૂપ) સમયને જા કરીને, પોતે જ પ્રમલ્યારૂપને પામીને (અર્થાત્ પોતે જ નિશ્ચયચરિત્રરૂપ ક્ષાપણને પામીને), દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં સ્થિતિરૂપ સ્વસમયને પ્રાપ્ત કરીને, પ્રાપ્તિને પોતામાં જ પરિણત કરીને, જેણે સંપૂર્ણ વિજ્ઞાનયનસ્વભાવને પ્રાપ્ત કર્યો છે તેણે, ત્યાગ-મદુલ્લથી શુદ્ધિત, સાક્ષાત્ સમયસારમૂલ, પરમાર્થરૂપ શુદ્ધજ્ઞાન આ સ્વસ્થિત (નિશ્ચય શહેલું) રહેતું (અર્થાત્ પ્રત્યક્ષ સ્વસ્થવેદનથી અનુભવતું).

ભાવાર્થ:—આદર્શ જ્ઞાનને સર્વ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન અને પોતાના પર્વાપારી અભિન્ન બનાવું, તેથી અતિવ્યાપ્તિ અને અવ્યપ્તિ નામના જે લક્ષણના રાગો તે ફરવા આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને ઉપયોગમાં જ્ઞાન પ્રધાન છે; તે (જ્ઞાન) અન્ય ચેતન દ્રવ્યોમાં નથી તેથી તે અતિવ્યાપ્તિવાળું નથી, અને પોતાની સર્વ અવસ્થામાં છે તેથી અવ્યપ્તિવાળું નથી. આ રીતે જ્ઞાનલક્ષણ કહેવાથી અતિવ્યાપ્તિ અને અવ્યપ્તિ રાગો આવતા નથી.

આદર્શ જ્ઞાનને જ પ્રધાન કરીને આત્માનો અધિકાર છે, કારણ કે જ્ઞાનલક્ષણથી આત્મા સર્વ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન અનુભવગ્રાસ્તર થાય છે. જોકે આત્મામાં અનન્યતા છે, તોપણ તેમાંના કેટલાક તો હ્રસ્વરથને અનુભવગ્રાસ્તર જ નથી; તે ધર્મના રેવાથી હ્રસ્વરથ જ્ઞાની આત્માને દર્શ રીતે ઝોગખે? વળી કેટલાક ધર્મો અનુભવગ્રાસ્તર

છે, પરંતુ તેમાંના કેટલાક તો—અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રમેયત્વ આદિ તો—અન્ય કંઈ સાથે સાધારણ અર્થાત્ સમાન જ માટે તેમને કહેવાથી બુદ્ધિ આત્મા જાણી શકે નહિ, અને કેટલાક (ધર્મો) પરદ્રવ્યના નિમિત્તથી થયેલા તેમને કહેવાથી પરમાત્મા ભૂત આત્માનું શુદ્ધ સ્વરૂપ કેવી રીતે જણાય? માટે જ્ઞાનને કહેવાથી જ જ્ઞાની આત્માને ઓળખી શકે છે.

અહીં જ્ઞાનને આત્માનું લક્ષણ કહ્યું છે એટલું જ નહિ, પણ જ્ઞાનને આત્મા જ કહ્યો છે; કારણ કે અભેદવિવક્ષામાં ગુણગુણીનો અભેદ હોવાથી, જ્ઞાન તે જ આત્મા છે. અભેદવિવક્ષામાં જ્ઞાન કહ્યું કે આત્મા કહ્યું—કાંઈ વિશેષ નથી; અહીં જ્ઞાન કહેવાથી આત્મા જ સમજાવે.

ટીકામાં છેવટે એમ કહેવામાં આવ્યું કે—જે, પાતામાં અનાદિ અજ્ઞાનથી થતી શુભાશુભ ઉપયોગરૂપ પરસમયની પ્રવૃત્તિને દૂર કરીને, સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-આશ્રિત પ્રવૃત્તિરૂપ સ્વસમયને પ્રાપ્ત કરીને, એવા સ્વસમયરૂપ પરિણમનસ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગને પાતાને પરિણમાવીને, સંપૂર્ણવિજ્ઞાનઘનસ્વભાવને પામ્યું છે, અને જેમાં કાંઈ ત્યાગ પ્રહણ નથી, એવા સાક્ષાત્ સમયસારસ્વરૂપ, પરમાર્થભૂત, નિશ્ચળ રહેલા, શુદ્ધ, પૂર્ણ જ્ઞાનને (પૂર્ણ આત્મદ્રવ્યને) દેખવું. ત્યાં ‘દેખવું’ વચ્ચે પ્રકારે સમજવું. શુદ્ધનયન જ્ઞાન કરીને પૂર્ણ જ્ઞાનનું અદ્વાન કરવું તે પહેલા પ્રકારનું દેખવું છે. તે અવિરત અભિવ્યક્તિમાં પણ હોય છે. જ્ઞાન-અદ્વાન થયા પછી બાહ્ય સર્વ પરિબ્રહ્મને ત્યાગ કરી તેનો (પૂર્ણ જ્ઞાનનો) અવ્યાસ કરવો, ઉપયોગને જ્ઞાનમાં જ થંભાવવો, જેનું શુદ્ધ નયથી પાતાના સ્વરૂપને સિદ્ધ સમાન જાણ્યું-અદ્વયું હતું તેનું જ ધ્યાનમાં લઈને ચિત્તને એકાગ્ર—સ્થિર કરવું, ફેરી ફેરી તેનો જ અવ્યાસ કરવો, તે બીજા પ્રકારનું દેખવું છે. આ દેખવું અપ્રમત્ત દશામાં હોય છે. જ્યાંમુઘી એવા અવ્યાસથી કેવળજ્ઞાન ન ઉપજે ત્યાંમુઘી તે અવ્યાસ નિરંતર રહે. આ, દેખવાનો બીજો પ્રકાર થયેલ અહીં મુઘી તો પૂર્ણ જ્ઞાનનું શુદ્ધનયના આશ્રયે પરોક્ષ દેખવું છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજે ત્યારે સાક્ષાત્ દેખવું થાય છે તે ત્રીજા પ્રકારનું દેખવું છે. તે સ્થિતિમાં જ્ઞાન સર્વ વિભાવોથી સ્થિત થયું થકું સર્વનું દેખનાર-અજ્ઞનાર છે, તેથી આ ત્રીજા પ્રકારનું દેખવું તે પૂર્ણ જ્ઞાનનું પ્રત્યક્ષ દેખવું છે.

હવે આં અર્થનું કળારૂપ કાન્ય કહે છે:—

(સાદ્ભવિઠીનિ)

अन्येष्वो व्यतिरिक्तमात्मनियर्न विभ्रनृथग्वस्तुता-
मादानोज्ञनगूयमेतदमलं ज्ञानं तयावम्यिनम् ।

તમ્માતુ યો વિશુદ્ધચેતયિતા ન નૈવ સૃજાતિ કિંચિત્ ।
નૈવ વિમુંચતિ કિંચિદપિ જીવાજીવયોર્દ્રવ્યયોઃ ॥ ૪૦૭ ॥

અન્યથાર્થ:—[યયં] એ રીતે [યસ્ય આત્મા] જેનો આત્મા [અમૂર્તઃ]
તિક છે [સઃ જ્ઞાતુ] તે અરેખર [આદારકઃ ન મયતિ] આદારક નથી; [આદારઃ]
[આદાર તો [મૂર્તઃ] મૂર્તિક છે [યસ્માત્] કારણ કે [સઃ ॥ પુદ્ગલમયઃ] તે
સમય છે.

[યન્ પરદ્રવ્ય] જે પરદ્રવ્ય છે [ન અપિ શક્યતે પ્રદોતું યત્] તે પ્રદો
નથી [ન વિમોતું યન્ ચ] તથા છાડી શકાતું નથી, [સઃ કોડપિ] એવો જ
[તસ્ય] તેનો (આત્માનો) [પ્રાયોગિકઃ યાદપિ પૈછસઃ ગુણઃ] પ્રાયોગિક તેમ
વૈશ્વસિક ગુણ છે.

[તમ્માતુ તુ] આટલે [યઃ વિશુદ્ધઃ ચેતયિતા] જે વિશુદ્ધ આત્મા છે [સઃ]
[જીવાજીવયોઃ દ્રવ્યયોઃ] જીવ અને અજીવ દ્રવ્યોમાં (-પરદ્રવ્યોમાં) [કિંચિત્
સૃજાતિ] કંઈ પણ પ્રદોતો નથી [કિંચિત્ અપિ નૈવ વિમુંચતિ] તથા કંઈ પણ
પ્રદોતો નથી.

ટીકા:—જ્ઞાન પરદ્રવ્યને કંઈ પણ (જરા પણ) પ્રદોતું નથી તથા છાડતું
નથી, કારણ કે પ્રાયોગિક (અર્થાત્ પર નિમિત્તથી ધરેલા) ગુણના સામર્થ્યથી તેમ
જ વૈશ્વસિક (અર્થાત્ સ્વાભાવિક) ગુણના સામર્થ્યથી જ્ઞાન વડે પરદ્રવ્યનું પ્રદોતું
પ્રત્યક્ષ છે. વળી, (કર્મ-નોકર્મદ્વિષ) પરદ્રવ્ય જ્ઞાનનો—અમૂર્તિક
તથા છાડતું અશક્ય છે. વળી, (કર્મ-નોકર્મદ્વિષ) પરદ્રવ્ય જ્ઞાનનો—અમૂર્તિક
પરદ્રવ્યનો—આદાર નથી, કારણ કે તે મૂર્તિક પુદ્ગલદ્રવ્ય છે; (અમૂર્તિકને મૂર્તિક
આદાર હોય નહિ). તેથી જ્ઞાન આદારક નથી. આટલે જ્ઞાનને દેહની શંકા ન કરવી.

(અહીં 'જ્ઞાન' કહેવાથી 'આત્મા' સમજવો; કારણ કે, અલેક વિવક્ષાથી
સંજ્ઞામાં જ લક્ષ્યનો વ્યવહાર કરાય છે. આ ન્યાયે ટીકાકાર આચાર્યદેવ આત્માને
જ્ઞાન જ કહેતા આવ્યા છે.)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા અમૂર્તિક છે અને આદાર તો કર્મ-નોકર્મદ્વિષ
પુદ્ગલમય મૂર્તિક છે; તેથી પરમાર્થ આત્માને પુદ્ગલમય આદાર નથી. વળી આત્માનો
એવો જ સ્વભાવ છે કે તે પરદ્રવ્યને તો પ્રદોતો જ નથી;—સ્વભાવરૂપ પરિણામો કે
વિભાવરૂપ પરિણામો, ધોનાંનાં જ પરિણામોનાં પ્રદોત્યાગ છે, પરદ્રવ્યનાં પ્રદોત્યાગ
તો જરા પણ નથી.

આ રીતે આત્માને આદાર નહિ હોવાથી તેને દેહ જ નથી.

આત્માને દેહ જ નહિ હોવાથી, પુદ્ગલમય દેહરૂપ સિંગ (વેપ, બે બાહ્ય ચિહ્ન) મોક્ષપુત્ર કારણ નથી—એવા અર્થનું, આગળની ગાથાઓની મૂલ્ય કાવ્ય હવે કહે છે:—

(અનુક્ર. ૫)

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।

ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिङ्गं मोक्षकारणम् ॥ ૪૭૮ ॥

અર્થ:—આમ શુદ્ધ જ્ઞાનને દેહ જ નથી; તેથી જ્ઞાતાને દેહમય સિંગ મોક્ષ કારણ નથી. ૪૦૫-૪૦૭.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છે:—

पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।

धिजुं वदन्ति मूढा लिंगमिदं मोक्षमग्गोत्ति ॥ ૪૦૮ ॥

ण दु होइ मोक्षमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।

लिंगं मुचिजु दंसणणाणचरित्ताणि सेयन्ति ॥ ૪૦૯ ॥

पापंडिलिंगानि वा गृहिलिंगानि वा बहुप्रकाराणि ।

गृहीत्वा वदन्ति मूढा लिंगमिदं मोक्षमार्ग इति ॥ ૪૦૮ ॥

न तु भवति मोक्षमार्गो लिंगं यदेहनिर्ममा अर्हतः ।

लिंगं सुप्त्वा दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवन्ते ॥ ૪૦૯ ॥

અન્યથાર્થ:—[બહુપ્રકારાણિ] બહુ પ્રકારનાં [પાપંડિલિંગાણિ વા] મુનિ સિંગને [ગૃહિલિંગાણિ વા] અથવા ગૃહીસિંગને [ગૃહીત્વા] પ્રહણ કરીને [મૂઢાં] મૂઢ (અજ્ઞાની) જનો [વદન્તિ] એમ કહે છે કે '[દેહ લિંગ] આ (બાહ્ય) સિંગ [મોક્ષમાર્ગ: इति] મોક્ષમાર્ગ છે.'

બહુવિધનાં મુનિસિંગને અથવા ગૃહસ્થીસિંગને મહીને કહે છે મૂઢજન 'આ સિંગ મુક્તિમાર્ગ છે.' ૪૦૮.
પણ સિંગ મુક્તિમાર્ગ નહિ, અર્હત નિર્ભમ દેહમાં બસ સિંગ છોડી જ્ઞાન ને ચારિત્ર, દર્શન સેવતા. ૪૦૯.

[જુ] પાત્ર [નિર્મ] વિગ [મોક્ષમાર્ગઃ જ મર્ચ] આશ્ચર્ય નથી; [ચુ]
[૧૩૫] કે [જીવન] અર્થ નોંધો [દર્શનમાર્ગ] ૧૬ મને નિર્મલ વર્તતા થઈ [નિર્મ]
[૧૩૫] વિગને ઠીકીને [દર્શનજ્ઞાનચારિણી સેવ્યને] દર્શન-જ્ઞાન-આદિને જ રહે છે.

ટીકા:—દેવતા દેવો અજ્ઞાનથી દ્રવ્યલિંગને આશ્ચર્ય માનતા થઈ આદ્યથી
સંસ્કારને જ અદ્ય કહે છે. તે (દ્રવ્યલિંગને આશ્ચર્ય માનીને અદ્ય કહેતું તે)
અનુપપન્ન અર્થાત્ અપૂર્ણ છે; કારણ કે અર્થ અવગણ્ય અર્થ નોંધેને, મુદ્ધાનમયપૂર્ણ
દેવાને દીધે દ્રવ્યલિંગને આશ્ચર્યજનુ કારીબના અમરકેનો તથા દેવાથી, શરીરલિંગ
દ્રવ્યલિંગના ન્યામ થઈ દર્શનજ્ઞાનચારિણી આશ્ચર્યજનુ દેવાના લેવામાં આવે છે
અર્થાત્ નેત્રો કારીરલિંગ દ્રવ્યલિંગના ન્યામ કરીને દર્શનજ્ઞાનચારિણને આશ્ચર્ય
નરિ કેવળા નેત્રમાં આવે છે).

આશ્ચર્ય:—તે ૧૬મથ દ્રવ્યલિંગ આશ્ચર્ય કારણ તે અર્થતરેવ વગર
દેવનું અર્થ દર્શન દર્શનજ્ઞાનચારિણને જા આરે મેવન? દ્રવ્યલિંગથી જ આશ્ચર્ય પામત!
મો એ નહીં થયું કે—૧૬મથ લિંગ આશ્ચર્ય નથી, પરંપરે દર્શનજ્ઞાનચારિણ
આશ્ચર્ય આશ્ચર્ય આશ્ચર્ય છે. ૪૮૮—૪૮૯.

હવે એ જ સિદ્ધ કરે છે (અર્થાત્ દ્રવ્યલિંગ આશ્ચર્ય નથી, દર્શન-જ્ઞાન-
ચારિણ જ આશ્ચર્ય છે—એમ સિદ્ધ કરે છે):—

ન ચિ એસ મોક્ષમર્ગો પાસંડોગિહિમયાણિ લિંગાણિ ।
દંસળણાણચરિતાણિ મોક્ષમર્ગાં જિજ્ઞાસિતિ ॥ ૪૧૦ ॥

માર્ગેષ મોક્ષમાર્ગઃ પાસંડિગિહિમયાણિ લિંગાણિ ।

દર્શનજ્ઞાનચારિણાણિ મોક્ષમાર્ગ જિજ્ઞાસિતિ ॥ ૪૧૦ ॥

અન્યથાર્થ:—[પાસંડિગિહિમયાણિ લિંગાણિ] મુનિનાં અને મુદ્ધાનનાં લિંગો
[ચુ] એ [મોક્ષમાર્ગઃ જ મર્ચ] આશ્ચર્ય નથી; [દર્શનજ્ઞાનચારિણાણિ] દર્શન-
જ્ઞાન-આદિને [જિજ્ઞાસ] જિજ્ઞાસે [મોક્ષમાર્ગ વિદિતિ] આશ્ચર્ય કહે છે.

ટીકા:—દ્રવ્યલિંગ અર્થે આશ્ચર્ય નથી, કારણ કે તે (દ્રવ્યલિંગ)
શરીરલિંગ દેવાથી પરદ્રવ્ય છે. દર્શન-જ્ઞાન-આદિ જ આશ્ચર્ય છે, કારણ કે તેઓ
આશ્ચર્ય દેવાથી પરદ્રવ્ય છે.

મુનિલિંગ ને મુદ્ધાલિંગ—એ લિંગો ન મુક્તિમાર્ગ છે,
ચારિણ-દર્શન-જ્ઞાનને જ આશ્ચર્ય જિજ્ઞાસે કહે. ૪૧૦.

[illegible][illegible]

2. 1940-41 3. 1941-42 4. 1942-43 5. 1943-44 6. 1944-45 7. 1945-46 8. 1946-47 9. 1947-48 10. 1948-49 11. 1949-50 12. 1950-51 13. 1951-52 14. 1952-53 15. 1953-54 16. 1954-55 17. 1955-56 18. 1956-57 19. 1957-58 20. 1958-59 21. 1959-60 22. 1960-61 23. 1961-62 24. 1962-63 25. 1963-64 26. 1964-65 27. 1965-66 28. 1966-67 29. 1967-68 30. 1968-69 31. 1969-70 32. 1970-71 33. 1971-72 34. 1972-73 35. 1973-74 36. 1974-75 37. 1975-76 38. 1976-77 39. 1977-78 40. 1978-79 41. 1979-80 42. 1980-81 43. 1981-82 44. 1982-83 45. 1983-84 46. 1984-85 47. 1985-86 48. 1986-87 49. 1987-88 50. 1988-89 51. 1989-90 52. 1990-91 53. 1991-92 54. 1992-93 55. 1993-94 56. 1994-95 57. 1995-96 58. 1996-97 59. 1997-98 60. 1998-99 61. 1999-00 62. 2000-01 63. 2001-02 64. 2002-03 65. 2003-04 66. 2004-05 67. 2005-06 68. 2006-07 69. 2007-08 70. 2008-09 71. 2009-10 72. 2010-11 73. 2011-12 74. 2012-13 75. 2013-14 76. 2014-15 77. 2015-16 78. 2016-17 79. 2017-18 80. 2018-19 81. 2019-20 82. 2020-21 83. 2021-22 84. 2022-23 85. 2023-24 86. 2024-25 87. 2025-26 88. 2026-27 89. 2027-28 90. 2028-29 91. 2029-30 92. 2030-31 93. 2031-32 94. 2032-33 95. 2033-34 96. 2034-35 97. 2035-36 98. 2036-37 99. 2037-38 100. 2038-39 101. 2039-40 102. 2040-41 103. 2041-42 104. 2042-43 105. 2043-44 106. 2044-45 107. 2045-46 108. 2046-47 109. 2047-48 110. 2048-49 111. 2049-50 112. 2050-51 113. 2051-52 114. 2052-53 115. 2053-54 116. 2054-55 117. 2055-56 118. 2056-57 119. 2057-58 120. 2058-59 121. 2059-60 122. 2060-61 123. 2061-62 124. 2062-63 125. 2063-64 126. 2064-65 127. 2065-66 128. 2066-67 129. 2067-68 130. 2068-69 131. 2069-70 132. 2070-71 133. 2071-72 134. 2072-73 135. 2073-74 136. 2074-75 137. 2075-76 138. 2076-77 139. 2077-78 140. 2078-79 141. 2079-80 142. 2080-81 143. 2081-82 144. 2082-83 145. 2083-84 146. 2084-85 147. 2085-86 148. 2086-87 149. 2087-88 150. 2088-89 151. 2089-90 152. 2090-91 153. 2091-92 154. 2092-93 155. 2093-94 156. 2094-95 157. 2095-96 158. 2096-97 159. 2097-98 160. 2098-99 161. 2099-00 162. 2100-01 163. 2101-02 164. 2102-03 165. 2103-04 166. 2104-05 167. 2105-06 168. 2106-07 169. 2107-08 170. 2108-09 171. 2109-10 172. 2110-11 173. 2111-12 174. 2112-13 175. 2113-14 176. 2114-15 177. 2115-16 178. 2116-17 179. 2117-18 180. 2118-19 181. 2119-20 182. 2120-21 183. 2121-22 184. 2122-23 185. 2123-24 186. 2124-25 187. 2125-26 188. 2126-27 189. 2127-28 190. 2128-29 191. 2129-30 192. 2130-31 193. 2131-32 194. 2132-33 195. 2133-34 196. 2134-35 197. 2135-36 198. 2136-37 199. 2137-38 200. 2138-39 201. 2139-40 202. 2140-41 203. 2141-42 204. 2142-43 205. 2143-44 206. 2144-45 207. 2145-46 208. 2146-47 209. 2147-48 210. 2148-49 211. 2149-50 212. 2150-51 213. 2151-52 214. 2152-53 215. 2153-54 216. 2154-55 217. 2155-56 218. 2156-57 219. 2157-58 220. 2158-59 221. 2159-60 222. 2160-61 223. 2161-62 224. 2162-63 225. 2163-64 226. 2164-65 227. 2165-66 228. 2166-67 229. 2167-68 230. 2168-69 231. 2169-70 232. 2170-71 233. 2171-72 234. 2172-73 235. 2173-74 236. 2174-75 237. 2175-76 238. 2176-77 239. 2177-78 240. 2178-79 241. 2179-80 242. 2180-81 243. 2181-82 244. 2182-83 245. 2183-84 246. 2184-85 247. 2185-86 248. 2186-87 249. 2187-88 250. 2188-89 251. 2189-90 252. 2190-91 253. 2191-92 254. 2192-93 255. 2193-94 256. 2194-95 257. 2195-96 258. 2196-97 259. 2197-98 260. 2198-99 261. 2199-00 262. 2200-01 263. 2201-02 264. 2202-03 265. 2203-04 266. 2204-05 267. 2205-06 268. 2206-07 269. 2207-08 270. 2208-09 271. 2209-10 272. 2210-11 273. 2211-12 274. 2212-13 275. 2213-14 276. 2214-15 277. 2215-16 278. 2216-17 279. 2217-18 280. 2218-19 281. 2219-20 282. 2220-21 283. 2221-22 284. 2222-23 285. 2223-24 286. 2224-25 287. 2225-26 288. 2226-27 289. 2227-28 290. 2228-29 291. 2229-30 292. 2230-31 293. 2231-32 294. 2232-33 295. 2233-34 296. 2234-35 297. 2235-36 298. 2236-37 299. 2237-38 300. 2238-39 301. 2239-40 302. 2240-41 303. 2241-42 304. 2242-43 305. 2243-44 306. 2244-45 307. 2245-46 308. 2246-47 309. 2247-48 310. 2248-49 311. 2249-50 312. 2250-51 313. 2251-52 314. 2252-53 315. 2253-54 316. 2254-55 317. 2255-56 318. 2256-57 319. 2257-58 320. 2258-59 321. 2259-60 322. 2260-61 323. 2261-62 324. 2262-6

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ४११ ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

• • • • •

1. செயல்பாட்டு விவரம்
 2. பொருள்
 3. பொருள்
 4. பொருள்
 5. பொருள்
 6. பொருள்
 7. பொருள்
 8. பொருள்
 9. பொருள்
 10. பொருள்
 11. பொருள்
 12. பொருள்
 13. பொருள்
 14. பொருள்
 15. பொருள்
 16. பொருள்
 17. பொருள்
 18. பொருள்
 19. பொருள்
 20. பொருள்
 21. பொருள்
 22. பொருள்
 23. பொருள்
 24. பொருள்
 25. பொருள்
 26. பொருள்
 27. பொருள்
 28. பொருள்
 29. பொருள்
 30. பொருள்
 31. பொருள்
 32. பொருள்
 33. பொருள்
 34. பொருள்
 35. பொருள்
 36. பொருள்
 37. பொருள்
 38. பொருள்
 39. பொருள்
 40. பொருள்
 41. பொருள்
 42. பொருள்
 43. பொருள்
 44. பொருள்
 45. பொருள்
 46. பொருள்
 47. பொருள்
 48. பொருள்
 49. பொருள்
 50. பொருள்
 51. பொருள்
 52. பொருள்
 53. பொருள்
 54. பொருள்
 55. பொருள்
 56. பொருள்
 57. பொருள்
 58. பொருள்
 59. பொருள்
 60. பொருள்
 61. பொருள்
 62. பொருள்
 63. பொருள்
 64. பொருள்
 65. பொருள்
 66. பொருள்
 67. பொருள்
 68. பொருள்
 69. பொருள்
 70. பொருள்
 71. பொருள்
 72. பொருள்
 73. பொருள்
 74. பொருள்
 75. பொருள்
 76. பொருள்
 77. பொருள்
 78. பொருள்
 79. பொருள்
 80. பொருள்
 81. பொருள்
 82. பொருள்
 83. பொருள்
 84. பொருள்
 85. பொருள்
 86. பொருள்
 87. பொருள்
 88. பொருள்
 89. பொருள்
 90. பொருள்
 91. பொருள்
 92. பொருள்
 93. பொருள்
 94. பொருள்
 95. பொருள்
 96. பொருள்
 97. பொருள்
 98. பொருள்
 99. பொருள்
 100. பொருள்

$$x^2 + y^2 + z^2 = 1 \quad x^2 + y^2 + z^2 = 1 \quad x^2 + y^2 + z^2 = 1$$

$\frac{d}{dt} \left(\frac{1}{r^2} \right) = -\frac{2}{r^3} \frac{dr}{dt}$

... ..
... ..
... ..

... ..

... ..

... ..

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$

નથી, પણ એમ કહ્યું છે કે ને જ્ઞાનનું પણ અભવ પાડી પરમાર્થ શ્રોતાશ્રોત્રમાં
એવાવાદી માત્ર થાય છે, જેવા બેઅભાવથી—અભાવથી માત્ર નથી.

દશે આ જ અર્થને દશ કૃત્તી આશાની આધાની મૂલનારૂપે સ્તોત્ર કરે છે:—

(અનુ. ૬૫)

દર્શનજ્ઞાનચારિત્રવ્યાપ્ત્યા નિવૃત્તિમયમનઃ ।

દુઃખ એવ મદા મેત્યો મોક્ષમાર્ગો મુમુક્ષુણા ॥ ૨૩૭ ॥

અર્થ:—આશાનું નવ દર્શનજ્ઞાનચારિત્રવ્યાપ્ત્ય છે (અર્થાત્ આશાનું
વ્યાપ્ત્ય ૨૫ દર્શન, જ્ઞાન ને ચારિત્રના ત્રિવિધ ૩ છે); તેથી શ્રોતાના હૃદયે
(આ દર્શનજ્ઞાનચારિત્રવ્યાપ્ત્ય) શ્રોતાશ્રોત્ર એક જ સદા સેવચરિત્ર છે. ૪૧૧.

દશે આ જ ઉપરના આશાદાતા કરે છે:—

મોક્ષવપદે અપ્યાણં ટવેહિ તં ચેવ જ્ઞાહિ તં ચેવ ।

તત્યેવ વિહર ણિચં મા વિહરમુ અણદબ્ધેસુ ॥ ૪૧૨ ॥

મોક્ષવપદે અપ્યાણં સ્થાપય તં ચેવ ધ્યાપય તં ચેતયસ્વ ।

તમૈવ વિહર નિગ્યં મા વિદાર્પીરન્વદ્યેષુ ॥ ૪૧૨ ॥

અન્યથાર્થ:—(તે બલ્ય!) [મોક્ષવપદે] તું શ્રોતાશ્રોત્રમાં [આત્માને સ્થાપય]
પાનાના આશાને સ્થાપ, [તં જ દ્યુ ધ્યાપય] તેનું જ ધ્યાન કર, [તં ચેતયસ્વ]
તેને જ ચેત—અનુભવ [તત્ત્વ દ્યુ નિગ્યં વિહર] અને તેમાં જ નિરંતર વિહાર કર;
[અન્યદ્રવ્યેષુ મા વિદાર્પી:] અન્ય દ્રવ્યોમાં વિહાર ન કર.

ટીકા:—(તે બલ્ય!) પાને અર્થાત્ પાનાને આત્મા અનાદિ સંસારથી
મીનીને પાનાની પ્રજ્ઞાના (ન્યુદિના) રાષ્ટ્રથી પરદ્રવ્યમાં—સાગ્રેયપદિમાં નિરંતર સ્થિત
કરેલા દોરા છતાં, પાનાની પ્રજ્ઞાના ગુણ વડે જ તેમાંથી પાછા વાળીને તેને અતિ
નિશ્ચયપૂર્વે દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં નિરંતર સ્થાપ; તથા સમસ્ત અન્ય ચિંતાના નિરોધ
વડે અત્યંત એકાગ્ર ધ્યેને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને જ ધ્યા; તથા સમસ્ત કર્મચિત્તાના અને

તું સ્થાપ નિગ્યને શ્રોતાશ્રોત્રે, ધ્યા, અનુભવ તેહને,
તેમાં જ નિત્ય વિહાર કર, નહિ વિહર પરદ્રવ્યો વિષે. ૪૧૨.

કર્મદેશનનાના ત્યાગ વડે શુદ્ધજ્ઞાનગેનનામય થઈને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને પ્રાપ્ત
અનુભવ; તથા દ્રવ્યના સ્વભાવના વશે (પાત્રાને) જે શબ્દો શબ્દો પરિણામો
તે-પદ્મા વડે (અર્થાત્ પરિણામીપદ્મા વડે) તત્ત્વમય પરિણામવાળો (-દર્શન
પરિણામવાળો) થઈને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં જ નિદર; તથા જ્ઞાનરૂપને એ
અવગણપણે અવલંબનો થકો, જેઓ જેવરૂપ દેવાથી ઉપાગિસ્વરૂપ છે એવાં સર્વ
દેસાતાં સમસ્ત પરદર્યોમાં જરા પણ ન નિદર.

સાંવાર્થ:—પરમાર્થરૂપ આત્માનાં પરિણામ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર છે; તે
મોક્ષમાર્ગ છે. તેમાં જ (-દર્શનજ્ઞાનચારિત્રમાં જ) આત્માને સ્થાપવો, તેનું જ
કરવું; તેનો જ અનુભવ કરવો: અને તેમાં જ નિદરવું—પ્રવર્તવું, અન્ય દ્રવ્યોમાં
પ્રવર્તવું. આહી પરમાર્થ એ જ ઉપદેશ છે કે—નિશ્ચય મોક્ષમાર્ગનું સેવન કરે
કેવળ વ્યવહારમાં જ મૂક ન રહેવું.

હવે આ જ અર્થનું કંગરારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાંદલવિદીકૃત)

एको मोक्षपथो य एष नियतो ह्यज्ञप्तिद्वयस्यात्मक-
स्तत्रैवस्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।

तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यांतराप्यસ્પृશન્

સોઝ્વશ્યં સમયસ્ય સારમચિરાન્નિત્યોદયં વિદતિ ॥ ૨૪૦ ॥

અર્થ:—દર્શનજ્ઞાનચારિત્રસ્વરૂપ જે આ એક નિયત મોક્ષમાર્ગ છે, તેમાં
જ જે પુરુષ સ્થિતિ પામે ■ અર્થાત્ સ્થિત રહે છે, તેને જ નિરંતર ધ્યાવે છે, તેને
જ ચેતે—અનુભવે છે, અને અન્ય દ્રવ્યોને નહિ સ્પર્શિતો થકો તેમાં જ નિરંતર વિહાર
કરે છે, તે પુરુષ, જેનો ઉદય નિત્ય રહે છે એવા સમયના સારને (અર્થાત્ પરમાત્માના
રૂપને) થોડા કાળમાં જ અવશ્ય પામે છે—અનુભવે છે.

સાવાર્થ:—નિશ્ચયમોક્ષમાર્ગના સેવનથી થોડા જ કાળમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ
ધાય એ નિયમ છે.

‘જેઓ દ્રવ્યલિંગને જ મોક્ષમાર્ગ માની તેમાં મમત્વ રાખે છે, તેમણે
સમયસારને અર્થાત્ શુદ્ધ આત્માને જાણ્યો નથી’—એમ હવેની ગાથામાં કહેશે; તેની
સૂચનાનું કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(अर्थविवरण)

ये त्वेन परिहृत्य संतुष्टिपथमस्यापिनेनात्मना

मित्रे द्रव्यमये सन्ति ममतां नृणाञ्चोषण्युताः ।

नित्योद्योगमन्तरमेकमनुज्यायोक्तं स्वभावमभा-

साम्यारं समयस्य सारममन् नानापि पश्यन्ति ते ॥ २४१ ॥

अर्थः—ये पुरुषा आ पुत्रादि परमार्थस्वरूप भासभागेन छादिते व्यवहार-
भासभागां रथापेक्षा पानाना आभाषे द्रव्यमय लिङ्गभां भभता करे छ (अर्थात्
अमे भाने ॥ हे आ द्रव्यलिङ्ग न आभने भास पभासरे), ते पुरुषा तत्त्वना यथार्थ
ज्ञानधी रहित वर्तता यदा दत्त शुधी सभयना सारने (अर्थात् शुद्ध आत्माने)
भभता—अनुभवना नधी. हेवे छ ते सभयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा ? नित्य प्रकाशमान
छ (अर्थात् हेतु प्रतिपक्षी यद्धि केना उदयने नारा करी साक्षु नधी), अभाउ छ
(अर्थात् केभा अन्य मेव आदिना निमित्त भाउ यना नधी), अमे छ (अर्थात्
पर्यायी अनेक अवरथाइय यवा छां के अेकस्वपभाते छाते नधी), अतुल
(-उपभारहित) केना प्रकाश छ (कारण हे ज्ञानप्रकाशने स्यादिकता प्रकाशनी उपभा
आपी साक्षी नधी), स्वभावप्रभाने पुन छ (अर्थात् नैन्यप्रकाशना समुद्रइय
छ), अभाउ छ (अर्थात् साक्षाद्वि-विकारधी भजधी रहित छ).

(आ दीते, केमे द्रव्यलिङ्गभां भभत करे छ तेभने निश्चय-कारणसभयसारने
अनुभव नधी; ते पछी तेभने कार्यसभयसारनी प्राप्ति क्याधी थाय ?) ४१२.

द्वे आ अर्थनी गाथा हरे छः—

पासंडील्लिगेसु व गिहिल्लिगेसु व बहुष्णयारेसु ।

कुर्वन्ति जे ममत्तं तेहि न णायं समयसारं ॥ ४१३ ॥

पार्वटिल्लिगेसु वा रुद्रिल्लिगेसु वा बहुप्रकारेषु ।

कुर्वन्ति ये ममत्वं तेन ज्ञानः समयसारः ॥ ४१३ ॥

अन्वयार्थः—[ये] केमे [बहुप्रकारेषु] अद्भु प्रकाशनां [पार्वटिल्लिगेसु वा]
भुनिल्लिगेभां [रुद्रिल्लिगेसु वा] अथवा शृङ्गस्थलिङ्गभां [ममत्वं कुर्वन्ति] भभता

अद्भुविधनां भुनिल्लिङ्गभां अथवा शृङ्गस्थलिङ्ग विषे

भभता करे, तेमे नधी नृण्यो 'सभयनाः सारने. ४१३.

કરે છે (અર્થાત્ આ દ્રવ્ય સિંગ જ મોક્ષનું દેનાર છે એમ માને છે), [તે સમયમાં જ જ્ઞાત:] તેમણે સમયસારને નથી જાણ્યો.

ટીકા:—જેઓ ખરેખર 'હું' અમલ છું; અમલોપાસક (-આવક) છું એ દ્રવ્યસિંગમાં મમકાર વડે મિથ્યા અહંકાર કરે છે, તેઓ અનાદિરૂઢ (અનાદિ કાળ આલ્યા આવેલા) વ્યવહારમાં મૂઢ (મોહી) વર્તતા થકા, પ્રૌઢ વિવેકવાળા નિશ્ચય (-નિશ્ચયનય) પર અનાદિરૂઢ વર્તતા થકા, પરમાર્થસત્ય (-જે પરમાર્થ સત્યાર્થ એવા) સગવાળ સમયસારને દેખતા—અનુભવતા નથી.

સાવાર્થ:—અનાદિ કાળનો પરદ્રવ્યના સયોગથી થયેલો જે વ્યવહાર તે જ જે પુરુષો મૂઢ અર્થાત્ મોહિત છે, તેઓ એમ માને છે કે 'આ બાહ્ય મહાવ્રતપિ ભોખ છે તે જ અમને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવશે,' પરંતુ જેનાથી ભેદજ્ઞાન થાય છે એ નિશ્ચયને તેઓ જાણતા નથી. આવા પુરુષો સત્યાર્થ, પરમાત્મરૂપ, શુદ્ધજ્ઞાન સમયસારને દેખતા નથી.

હવે આ જ અર્થનું ઠળરારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વિયોગિની)

વ્યવહારવિમૂઢદષ્ટયઃ પરમાર્થ કલયંતિ નો જનાઃ ।

તુષ્ણોષવિમુષ્ણુદયઃ કલયંતીહ તુષં ન તંદુલમ્ ॥ ૨૪૨ ॥

અર્થ:—વ્યવહારમાં જ જેમની દષ્ટિ (-ચુદ્ધિ) મોહિત છે એવા પુરુષો પરમાર્થને જાણતા નથી, જેમ જગતમાં 'તુષ્ણ' જ્ઞાનમાં જ જેમની ચુદ્ધિ મોહિત છે (-મોહ પામી છે) એવા પુરુષો તુષને જ જાણે છે, 'તંદુલને જાણતા નથી.

સાવાર્થ:—જેઓ જ્ઞાતરાંમાં મુખ્ય થઈ રહ્યા છે, જ્ઞાતરાંને જ કૂલ્યા કરે છે તેમણે તંદુલને જાણ્યા જ નથી; તેવી રીતે જેઓ દ્રવ્યસિંગ આદિ વ્યવહારમાં મુખ્ય થઈ રહ્યા છે (અર્થાત્ શરીરરૂઢિની ક્રિયામાં મમત્વ કર્યા કરે છે), તેમણે શુદ્ધાત્મ-અનુભવરૂપ પરમાર્થને જાણ્યો જ નથી; અર્થાત્ એવા જીવો શરીરરૂઢિ પરદ્રવ્યને જ આદર્યા જાણે છે, પરમાર્થ આત્માનું સ્વરૂપ તેઓ જાણતા જ નથી.

હવે આગળની ગાથાની સ્વચ્છારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

* અનાદિ = નદિ આદિ; નદિ ચરેલા.

૧. તુષ = કંચરનાં ફોનરાં; અનાજનાં ફોનરાં.

૨. તંદુલ = ફોનરાં સિવાય એવા; ફોનરાં પિનાનું અનાજ.

(૧૫૫૧)

દ્રવ્યનિગમયકારમીન્નિતે-

ઈદ્યતે ગમયગાર એવ ન ।

દ્રવ્યનિગમિદ યત્કિમાન્યતો

જ્ઞાનમેકમિદમેવ દિ સ્વતઃ ॥ ૨૪૩ ॥

અર્થ:—એઓ દ્રવ્યલિંગમાં મમકાર વડે અપ—વિવેકરહિત છે, તેઓ
વ્યવહારને જ દેખતા નથી; કારણ કે આ જગતમાં દ્રવ્યલિંગ તો ખરેખર અન્યદ્રવ્યથી
જ છે, આ જ્ઞાન જ એક પાનાથી (આત્મદ્રવ્યથી) થાય છે.

આશ્ચર્ય:—એઓ દ્રવ્યલિંગમાં મમત્વ વડે અપ ॥ તેમને શુદ્ધાત્મદ્રવ્યનો
અવ જ નથી, કારણ કે તેઓ વ્યવહારને જ પરમાર્થ માનતા હોવાથી પરદ્રવ્યને
આત્મદ્રવ્ય માને છે. ૪૧૩.

‘વ્યવહારનય જ મુનિલિંગને અને આયકલિંગને—એ બન્ને લિંગને મોક્ષમાર્ગ
છે, નિશ્ચયનય કેઈ લિંગને મોક્ષમાર્ગ કહેતો નથી’—એમ હવે ગાથામાં કહે છે:—

વ્યવહારિઓ પુનઃ પુનઃ દોષિણિ વિ લિંગાણિ મળદ મોક્ષપદે ।

નિચ્છયણઓ ન દિચ્છદ મોક્ષપદે સર્વલિંગાણિ ॥ ૪૧૪ ॥

વ્યવહારિક: પુનર્નયો દે અપિ ત્રિમે ધનતિ મોક્ષપદે ।

નિશ્ચયનયો નેચ્છતિ મોક્ષપદે મર્તલિંગાણિ ॥ ૪૧૪ ॥

અન્યવાર્થ:—[વ્યવહારિક: મયા પુનઃ] વ્યવહારનય [દે લિંગે અપિ]
લિંગાણે [મોક્ષપદે ધનતિ] મોક્ષમાર્ગમાં કહે છે (અર્થાત્ વ્યવહારનય મુનિલિંગ
જ શુદ્ધિલિંગને મોક્ષમાર્ગ કહે છે); [નિશ્ચયનય] નિશ્ચયનય [સર્વલિંગાણિ]
લિંગાણે (અર્થાત્ કેઈ પણ લિંગને) [મોક્ષપદે ન દિચ્છતિ] મોક્ષમાર્ગમાં
તો નથી.

ટીકા:—મમજ્ઞ અને મમજ્ઞાપાસકના બેદ બે પ્રકારનાં દ્રવ્યલિંગો મોક્ષમાર્ગ
એવો બે પ્રકારનો પ્રકાર (અર્થાત્ એવા પ્રકારની બે પ્રકારના) તે કેવળ વ્યવહાર

વ્યવહારનય એ ઉભય લિંગો મોક્ષપથ વિષે કહે,
નિશ્ચય નહીં માને કદી કે લિંગ મુક્તિપથ વિષે. ૪૧૪.

જ છે, પરમાર્થ નથી, કારણ કે તે (પ્રકૃતિ) પોતે અશુદ્ધ દ્રવ્યના અનુભવનથી
હોવાથી તેને પરમાર્થપણનો અભાવ છે; અમલ અને અમલોપાસકના ભેદથી અનિ-
ર્દશિનજ્ઞાનમાં પ્રવૃત્ત પરિણતિભાવ (-માનં દર્શન-જ્ઞાનમાં પ્રવર્તેલી પરિણતિ)
જ્ઞાન જ એક છે—એવું જે નિસ્તુષ્ઠ (-નિર્મળ) અનુભવન તે પરમાર્થ છે, કારણ
તે (અનુભવન) પોતે શુદ્ધ દ્રવ્યના અનુભવનરૂપ હોવાથી તેને જ પરમાર્થપણ
મોઢે જેઓ અવદારને જ પરમાર્થબુદ્ધિથી (-પરમાર્થ માનીને) અનુભવે છે. તે
સમયસારને જ નથી અનુભવના; જેઓ પરમાર્થને પરમાર્થબુદ્ધિથી અનુભવે છે, તે
જ સમયસારને અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—અવદારનયનો વિષય તો ભેદરૂપ અશુદ્ધદ્રવ્ય છે, તેથી તે પરમાર્થ
નથી; નિશ્ચયનયનો વિષય અભેદરૂપ શુદ્ધદ્રવ્ય છે, તેથી તે જ પરમાર્થ છે. મોઢે
અવદારને જ નિશ્ચય માનીને પ્રવર્તે છે તેઓ સમયસારને અનુભવના નથી; એ
પરમાર્થને પરમાર્થ માનીને પ્રવર્તે છે તેઓ જ સમયસારને અનુભવે છે (તેથી તે
જ માન્યને પામે છે).

‘અનુ કથનથી બમ પાડો, એક પરમાર્થનો જ અનુભવ કરો’—એવા ભર્ત-
શાસ્ત્ર દેવે કહે છે:—

(મામિની)

અત્યજ્યપ્રતિજ્ઞાતૈર્દુર્લભીભૂતભૂત-
તત્ત્વિદ પરમાર્થભેદ્યતાં નિરૂપયેત્તઃ ।

સ્વાર્થાભિપ્રાયજ્ઞાનરિદ્ધિર્નિર્માણ-
ય તત્ત્વ તત્ત્વગતારૂપરં વિવિદ્યન્તિ ॥ ૨૪૪ ॥

અર્થ:—અનુ કહેવાથી અને અનુ દુર્લભીભૂતથી બમ પાડો, બમ પાડો
અર્થ એવું જ કહેવાયું છે કે આ પરમાર્થને એકને જ નિશ્ચય અનુભવો. મોઢે
કે એવું જ્ઞાન કે કહેવાથી જેનું જે જ્ઞાન તેના કેવળાવમાન પરામાર્થ જે સમયસાર
(અનુભવ) તેનાથી પ્રાપ્ત થાય નહીં કારણ કે તે જ નથી (-સમયસાર નિશ્ચય
અનુભવ છે. જે અનુભવ નથી).

અનુભવ:—જેનું જ્ઞાન અનુભવના અનુભવ કરેલો; આ કે જ્ઞાન અનુભવ
અનુભવ છે. જે અનુભવ નથી.

જે કારણે સમયસાર અનુભવના અનુભવ કરેલો જે અનુભવ નથી
અનુભવના અનુભવ અનુભવ કરેલો જે અનુભવ નથી અનુભવ નથી.

(અનુક્ર. ૧)

ઇદમેકં જગદ્ગુરુત્તમં યાતિ પૂર્ણતામ્ ।

વિજ્ઞાનઘનમાનંદમયમધ્યક્ષતાં મયન્ ॥ ૨૪૫ ॥

અર્થ:—આનંદમય વિજ્ઞાનઘનને (-ગુરુ પરમાત્માને, સમયસારને) પ્રત્યક્ષ કરું આ એક (-અદ્વિતીય) અણય જગત્-ચક્ષુ (-સમયપ્રાપ્ત) પૂર્ણતાને પામે છે.

ભાવાર્થ:—આ સમયપ્રાપ્ત અંધ વચનરૂપે તેમ જ જ્ઞાનરૂપે—બન્ને પ્રકારે જગતને અણય (અર્થાત્ જેનો વિનાશ ન થાય એવું) અદ્વિતીય નેત્ર સમાન છે, પરંતુ જે જેમ નેત્ર ઘરપરાદિકને પ્રત્યક્ષ દેખાડે છે તેમ સમયપ્રાપ્ત આત્માના શુદ્ધ ચક્ષુને પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર દેખાડે છે. ૪૧૪.

ફલે ભગવાન કુંઠકુંઠાચાર્ય આ મંથને પૂર્ણ કરે છે તેથી તેના મહિમારૂપે ના અવધારા વગરેનું ફળ આપામાં કહે છે:—

જો સમયપાહુદમિણં પડિહ્ણં અત્યત્તચઓ ણાતં ।

અત્યે ટાહી ચેયા સો હોહી ઉત્તમં સૌલ્યમ્ ॥ ૪૧૫ ॥

ય: સમયપ્રાપ્તમિદં પડિત્વા ભર્થતત્ત્વતો જ્ઞાત્વા ।

ભર્થે ય્યામ્યતિ ચેતયિતા મ ભવિષ્યત્યુત્તમં સૌલ્યમ્ ॥ ૪૧૫ ॥

અર્થ:—[ય: ચેતયિતા] જે આત્મા (-ભવ્ય જીવ) [જદું સમયપ્રાપ્ત] આ સમયપ્રાપ્તને ભણીને, [મર્થતત્ત્વત: જ્ઞાત્વા] અર્થ અને તત્ત્વથી ભણીને, ભર્થે ચ્યામ્યતિ] તેના અર્થમાં સ્થિત થશે, [સ:] તે [ઉત્તમં સૌલ્યમ્ ભવિષ્યતિ] મ સૌખ્યસ્વરૂપ થશે.

ટીકા:—સમયસારપ્રાપ્ત ભગવાન પરમાત્માનું—કે જે વિધિના પ્રકારક હોવાથી સમય છે તેનું—પ્રતિપાદન કરતું હોવાથી જે પોતે સજ્જલ સમાન ॥ એવા આ જ્ઞાને જે આત્મા પરંપર ભણીને, વિધિને પ્રકારાવામાં સમર્થ એવા પરમાર્થભૂત, અન્ય-પ્રકારરૂપ આત્માનો નિશ્ચય કરેલા થકો (આ સામ્રાજ્ય) અર્થથી અને તત્ત્વથી ભણીને, તેના જ અર્થભૂત ભગવાન એક પૂર્ણવિજ્ઞાનઘન પરમશક્તિમાં સર્વ ઉપમયી થશે, તે આત્મા, તત્ત્વજ્ઞ પ્રગટ થતા એક ચેતન્યરસધી ભરેલા સ્વભાવમાં સુરિપત

આ સમયપ્રાપ્ત પડન કરીને, અર્થ-તત્ત્વથી ભણીને, જશે અર્થમાં આત્મા જે, સૌખ્ય ઉત્તમ તે થશે. ૪૧૫.

અને નિરાકુળ (અકુળના વિનાશ) હોવાને સીધે જ (સૌખ્ય) 'પરમાનંદ' વાચ્ય છે, ઉત્તમ છે અને અનાકુળતા-લક્ષણવાળું છે એવા સૌખ્યસ્વરૂપ પિતે થઈ જશે.

બાવાર્થ:—આ શાસ્ત્રનું નામ સમયપ્રાભૂત છે. સમય એટલે પદાર્થ, સમય એટલે આત્મા તેનું કહેનારું આ શાસ્ત્ર છે. વળી આત્મા તો સમસ્ત પદાર્થ પ્રકારાક છે. આવા વિધિપ્રકારાક આત્માને કહેતું હોવાથી આ સમયપ્રાભૂત શાસ્ત્ર સમાન છે; કારણ કે જે સમસ્ત પદાર્થનું કહેનાર હોય તેને શાસ્ત્રવ્યક્ત કહેવામાં આવે છે. હાશાંભશાસ્ત્ર શાસ્ત્રવ્યક્ત છે અને આ સમયપ્રાભૂતશાસ્ત્રને પણ શાસ્ત્રવ્યક્તની કીર્તિ છે. આ શાસ્ત્રવ્યક્ત (અર્થાત્ સમયપ્રાભૂતશાસ્ત્ર) પરવ્યક્તને (અર્થાત્ શુદ્ધ પરમાત્મા સાક્ષાત્ દેખાડે છે. જે આ શાસ્ત્રને ભળીને તેના યથાર્થ અર્થમાં કરે, તે પરમાત્મા પામશે; અને તેથી, જેને 'પરમાનંદ' કહેવામાં આવે છે એવા ઉત્તમ સ્થાનિ સ્વામીન, બાહ્યરહિત, અવિનાશી શુભને પામશે. મારે હે ભવ્ય હવો! તમે પિતૃ કથાનું અર્થ આનો અભ્યાસ કરો, આનું અવળું કરો, નિરંતર આનું જ સમસ્ત જ્ઞાન શાખો, કે જેથી અવિનાશી શુભની પ્રાપ્તિ થાય. આવો મીઠુરુઆનો ઉપોસ

દને આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાનના અધિકારની પૂર્ણતાનો કળશરૂપ સાક્ષી હોય છે.

(અનુક્રમ)

ઈતિદયામનસ્તત્ત્વ જ્ઞાનમાત્રમવસ્થિતમ્ ।

માનંદમેકમગ્ન્યં સ્વસંતોયમવાપિતમ્ ॥ ૨૪૬ ॥

અર્થ:—આ રીતે આ આત્માનું તત્ત્વ (અર્થાત્ પરમાર્થભૂત શાસ્ત્ર જ્ઞાનમાત્ર નહીં થતું—કે જે (આત્માનું) જ્ઞાનમાત્ર તત્ત્વ અર્થમાં છે (અર્થાત્ અનિવર્યજેડું અને પ્રતિવર્તી કર્મોથી જતકે ખંડ ખંડ દેખાય છે તોપણ જ્ઞાનમાત્રમાં અનિવર્ય), એટલે કે (અર્થાત્ અર્થમાં દેવાથી એકરૂપ છે), અવગણ્ય (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર અવગણ્ય નથી—અવગણ્ય થતું નથી). સ્વસંતોય ॥ (અર્થાત્ પાતાથી જ પિતે ભળે છે). અને અવગણ્ય છે (અર્થાત્ કેટલે ખાલી જુલિથી બાહ્ય પામતું નથી).

બાવાર્થ:—આ રીતે આત્માનું નિજ સ્વરૂપ જ્ઞાન જ કશું છે તેનું જ્ઞાન જ સ્વરૂપ છે—અર્થાત્ અર્થમાં અર્થમાં પડે છે; પડતું તેમાં કેટલાક તો સાક્ષાત્ છે, તેને જ્ઞાન જ્ઞાન જ્ઞાન જ્ઞાન છે, તેનવાથી આત્માને આત્માથી શાક્ય નહિ; પાતી કેટલાક (સ્વ) જ્ઞાનજ્ઞાન જ્ઞાન—કેટલે અર્થમાં દેવા છે અને કેટલે અવગણ્ય નથી તત્ત્વ તે જ્ઞાન જ્ઞાન જ્ઞાન જ્ઞાન છે, તેનવાથી જ્ઞાન આત્મા આત્માથી શાક્ય નહિ. એટલે જ્ઞાન—આત્મા (અર્થાત્ અર્થમાં અર્થમાં પડે છે) જ્ઞાન જ્ઞાન છે, તો જ્ઞાન તે જ્ઞાનજ્ઞાન

અદૃષ્ટ છે; તેની વ્યક્તિ દર્શન અને જ્ઞાન છે. તે દર્શન અને જ્ઞાનમાં પણ જ્ઞાન
 ર છે, પ્રગટ અનુભવગોચર છે; તેથી તેના દ્વારા જ આત્મા ઝોગખી શકાય છે.
 અહીં આ જ્ઞાનને જ પ્રધાન કરીને આત્માનું તત્ત્વ કહ્યું છે.

અહીં એમ ન સમજવું કે ‘આત્માને જ્ઞાનમાત્ર તત્ત્વવાનો કહ્યો છે તેથી
 જો જ પરમાર્થ છે અને અન્ય ધર્મો જુદા છે, આત્મામાં નથી’; આવો સર્વધા
 ાન કરવાથી તો મિથ્યાદૃષ્ટિપણું થાય છે, વિજ્ઞાનાદ્વૈતવાદી બીજનો અને વેદાંતનો
 આવે છે; મારે આવો એકાંત બાધાસહિત છે. આવા એકાંત અભિપ્રાયથી કેઈ
 ાન પણ પામે અને આત્માનું—જ્ઞાનમાત્રનું—ધ્યાન પણ કરે, તો પણ મિથ્યાત્વ
 નહિ; મંદ ક્ષયોને હીધે સ્વર્ગ પામે તો પામે, મોક્ષનું સાધન તો થતું નથી.
 સ્વાદવાદથી યથાર્થ સમજવું. ૪૧૫.

❁

❁

(અહીં મુખીમાં ભગવાન કુંહકુંદાચાર્યની ૪૧૫ ગાથાઓનું વ્યાખ્યાન
 ાકાર મી અમૃતચંદ્રાચાર્યદેવે કહ્યું અને તે વ્યાખ્યાનમાં કળશરૂપ તથા મૃચનિકારૂપ
 ાભ્યો કહ્યાં. હવે ટીકાકાર આચાર્યદેવે વિચાર્યું કે—આ પ્રશ્નમાં જ્ઞાનને પ્રધાન
 ને જ્ઞાનમાત્ર આત્મા કહેતા આવ્યા હીએ; તેથી કેઈ તર્ક કરે કે ‘દર્શનમત્ર તો
 ાદવાદ છે; તો પછી આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કહેવાથી શું એકાંત આવી જતો નથી ?
 ધર્મ સ્વાદવાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી ? વળી એક જ જ્ઞાનમાં ઉપાધતત્ત્વ અને
 યતત્ત્વ—એ બન્ને કઈ રીતે ઘટે છે ?’ આમ તર્ક કોઈને થશે. મારે આવા તર્કનું
 ાકરણ કરવાને ટીકાકાર આચાર્યદેવ અહીં સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકારના અંતમાં
 રેશિશરૂપે ઘાટું કહે છે. તેમાં પ્રથમ શ્લોક કહે છે:—)

(અનુક્ર. ૫)

અત્ર સ્વાદાદશુદ્ધયર્થં વસ્તુતત્ત્વવ્યવસ્થિતિઃ ।

ઉપાધોપેયમાવશ્ય મનામ્બૂયોઽપિ ચિત્તયતે ॥ ૨૪૭ ॥

અર્થ:—અહીં સ્વાદવાદની શુદ્ધિને અર્થ વસ્તુતત્ત્વની વ્યવસ્થા અને (એ
 જ જ્ઞાનમાં ઉપાધપણું અને ઉપેયપણું કઈ રીતે ઘટે છે તે બતાવવા) ઉપાધ ઉપેયબ
 ા દર્શને પણ વિચારવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્યચિરંજીવનામક અનેક-વર્મસ્વરૂપ દેતાં તે સ્યાદવાદથી જ સાધી શકાય છે. એ રીતે સ્યાદવાદની મુદતા (પ્રમાણિકતા સ્વરૂપ નિર્દેશના, નિર્મળતા, અદ્વિતીયતા) સિદ્ધ કરવા માટે આ અધિકારમાં વસ્તુનું સ્વરૂપ વિચારવામાં આવે છે. (તેમાં એમ પણ જગત્તત્ત્વમાં આવશે કે આ પ્રથમમાં અજ્ઞાન જ્ઞાનભાવ કદો હોવા છતાં સ્યાદવાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી.) વળી બીજું, એ જ જ્ઞાનમાં સાધકપણું તથા સાધ્યપણું કઈ રીતે જની શકે તે સમજાવવા જ્ઞાનને ઉપાય-ઉપેયભાવ અર્થાત્ સાધકસાધ્યભાવ પણ આ અધિકારમાં વિચારવામાં આવે છે.

(હવે પ્રથમ આચાર્યદેવ વસ્તુસ્વરૂપના વિચાર દ્વારા સ્યાદવાદને સિદ્ધ કરે છે:—)

સ્યાદવાદ સમસ્ત વસ્તુઓના સ્વરૂપને સાધનાનું, અર્હત સર્વજ્ઞનું એક અસ્ખલિત (-નિર્બાધ) શાસન છે. તે (સ્યાદવાદ) ‘અધુ’ અનેકાંતામક છે’ એમ ઉપદેશ છે, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુ અનેકાંત-સ્વભાવવાળી છે. (‘સર્વ’ વસ્તુઓ અનેકાંતસ્વરૂપ છે’ એમ જે સ્યાદવાદ કહે છે તે અસત્યાર્થ કલ્પનાથી કહેતો નથી, પરંતુ જેવો વસ્તુનો અનેકાંત સ્વભાવ છે તેવો જ કહે છે).

અહીં આત્મા નામની વસ્તુને જ્ઞાનભાવપણે ઉપદેશવામાં આવતાં છતાં પણ સ્યાદવાદનો કોપ નથી; કારણ કે જ્ઞાનભાવ આત્મવસ્તુને સ્વયમેવ અનેકાંતપણું છે. ત્યાં (અનેકાંતનું એકું સ્વરૂપ છે કે), જે (વસ્તુ) તત્ છે તે જ અતત્ છે, જે (વસ્તુ) એક છે તે જ અનેક છે, જે સત્ છે તે જ અસત્ છે, જે નિત્ય છે તે જ અનિત્ય છે—એમ એક વસ્તુમાં વસ્તુપણાની નિષ્કલંકતાની પરસ્પર વિરુદ્ધ બે શક્તિઓનું પ્રકાશનું તે અનેકાંત છે. માટે પૌતાની આત્મવસ્તુને પણ, જ્ઞાનભાવપણું હોવા છતાં, તત્ અતત્પણું, એક-અનેકપણું, સત્-અસત્પણું અને નિત્ય-અનિત્યપણું પ્રકાશી જ છે; કારણ કે—તેને (જ્ઞાનભાવ આત્મવસ્તુને) અંતરંગમાં ચક્રચક્રાટ પ્રકાશતા જ્ઞાનસ્વરૂપ વડે તત્પણું છે, અને બહાર પ્રગટ થતા, અનંત, ક્ષેપણુને પામેલા, સ્વરૂપથી ભિન્ન એવા પર રૂપ વડે (-જ્ઞાનસ્વરૂપથી ભિન્ન એવા પરદ્રવ્યના રૂપ વડે-) અતત્પણું છે (અર્થાત્ તે-રૂપ જ્ઞાન નથી); સહભૂત (-સાથે) પ્રવર્તતા અને ક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ચૈતન્ય-અશોભા સમુદાયરૂપ અવિભાગ દ્રવ્ય વડે એકપણું છે, અને અવિભાગ એક દ્રવ્યમાં વ્યાપેલા, સહભૂત પ્રવર્તતા અને ક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ચૈતન્ય-અશોરૂપ (-ચૈતન્યના અનંત અશોરૂપ) પર્યાયો વડે અનેકપણું છે; પૌતાના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવરૂપ હોવાની શક્તિરૂપ જે સ્વભાવ તે સ્વભાવવાનપણું વડે (અર્થાત્ એવા સ્વ-ભાવવાળી હોવાથી) સત્પણું છે, અને પરના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવરૂપ નહિ હોવાની શક્તિરૂપ જે સ્વભાવ તે સ્વભાવવાનપણું વડે અસત્પણું છે; અનાદિનિવન અવિભાગ

એક જૂનિરૂપે પરિણતપણા વડે નિત્યપણું છે, અને ક્રમે પ્રવર્તતા, એક સમયની મર્યાદાવાળા અનેક જૂનિ-અશોરૂપે પરિણતપણા વડે અનિત્યપણું છે. (આ રીતે જ્ઞાનભાવ આત્મ-વસ્તુને પણ, તત્-અતત્પણું વગેરે બહુએ વિરુદ્ધ શક્તિઓ સ્વયમેવ પ્રકાશતી દોષાથી, અનેકાંત સ્વયમેવ પ્રકાશે જ છે).

(પ્રશ્ન-) જો આત્મવસ્તુને, જ્ઞાનભાવપણું હોવા છતાં, સ્વયમેવ અનેકાંત પ્રકાશે છે, તો પછી અહત ભગવતો તેના સાચન તરીકે અનેકાંતને (-સ્વાદવાદને) શા માટે ઉપદેશે છે? (ઉત્તર-) અજ્ઞાનીઓને જ્ઞાનભાવ આત્મવસ્તુની પ્રશિક્ષિ કરવા માટે ઉપદેશે છે એમ અમે કહીએ છીએ. ખરેખર અનેકાંત (-સ્વાદવાદ) વિના જ્ઞાનભાવ આત્મવસ્તુ જ પ્રસિદ્ધ થઈ શકતી નથી. તે નીચે પ્રમાણે સમજાવવામાં આવે છે:—

સ્વભાવથી જ બહુ ભાવોથી ભરેલા આ વિષયમાં સર્વ ભાવોનું સ્વભાવથી અદ્વૈત હોવા છતાં, દ્વૈતનો નિષેધ કરવો અશક્ય હોવાથી સમસ્ત વસ્તુ સ્વરૂપમાં પ્રત્યક્ષ અને પરરૂપથી વ્યાવૃત્તિ વડે બન્ને ભાવોથી અધ્યક્ષિત છે (અર્થાત્ સમસ્ત વસ્તુ સ્વરૂપમાં પ્રવર્તતી હોવાથી અને પરરૂપથી ભિન્ન રહેતી હોવાથી દેક વસ્તુમાં બન્ને ભાવો રહેલા છે). ત્યાં, જ્યારે આ જ્ઞાનભાવ ભાવ (-આત્મા), મુખ (આત્માના) ભાવો સાથે નિજ રસના ભારથી પ્રવર્તેલા જ્ઞાના-જોષના સંબંધને લીધે અને અનાદિ કાળથી જોષાના પરિણમનને લીધે જ્ઞાનતત્ત્વને પર રૂપે ખાનીને (અર્થાત્ જોષરૂપે અગ્નિનાર કદીને) અજ્ઞાની થયા થકો નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનભાવ ભાવનું) સ્વરૂપથી (-જ્ઞાનરૂપથી) તત્પણું પ્રકાશીને (અર્થાત્ જ્ઞાન જ્ઞાનપણે જ એમ પ્રગટ કરીને). જ્ઞાનપણે પરિણમનને લીધે જ્ઞાની કરતો થકો અનેકાંત જ (-સ્વાદવાદ જ) તેને દેહો છે—નાશ થવા રેતો નથી. ૧. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનભાવ ભાવ 'ખરેખર આ બધું આત્મા છે' એમ અજ્ઞાનતત્ત્વને સ્વરૂપે (જ્ઞાનરૂપે) ખાનીને—અગ્નિનાર કદીને વિધેના મદ્ય વડે પીતાનો નાશ કરે (-સર્વ જગતને પીતારૂપે ખાનીને તેનું મદ્ય કરીને જગતથી ભિન્ન એવા પીતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનભાવ ભાવનું) પરરૂપથી અત્પણું પ્રકાશીને (અર્થાત્ જ્ઞાન પરરૂપે નથી એમ પ્રગટ કરીને) વિધેયો ભિન્ન જ્ઞાનને દેખાડતો થકો અનેકાંત જ તેને પીતાનો (-જ્ઞાનભાવ ભાવનો) નાશ થવા રેતો નથી. ૨. જ્યારે આ જ્ઞાનભાવ ભાવ અનેક જોષાકારો વડે (-જોષાના આત્માના વડે) પીતાનો શક્તિ (-આત્મા, અખંડ) એક જ્ઞાન-આકાર ખડિન (ખ.ખ. ૩૫. ૧૫.) ખાનીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનભાવ ભાવનું) રૂપથી અત્પણું પ્રકાશીને નાશ થવા રેતો નથી. ૩. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનભાવ અનેકાંત જ તેને ત્રિવાડે છે—નાશ પામવા રેતો નથી. ૪. જ્યારે તે જ્ઞાનભાવ ભાવ એક જ્ઞાન-આકારનું મદ્ય કરવા માટે અનેક જોષાકારોના ત્યાગ વડે પીતાનો નાશ કરે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જે અનેક જોષાના આકાર આવે છે તેમના ત્યાગ કરીને પીતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનભાવ ભાવનું) પરરૂપથી

થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૪. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જાણવામાં આવતાં એવાં પરદ્રવ્યોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાનદ્રવ્યને પરદ્રવ્યપણે માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વદ્રવ્યથી સત્પણ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૫. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ ‘સર્વ’ દ્રવ્યો હું જ છું’ (અર્થાત્ સર્વ દ્રવ્યો આત્મા જ છે)’ એમ પરદ્રવ્યને જ્ઞાતદ્રવ્યપણે માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરદ્રવ્યથી અસત્પણ પ્રકાશતો થકો (અર્થાત્ પરદ્રવ્યરૂપે આત્મા નથી એમ પ્રગટ કરતો થકો) અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૬. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પરક્ષેત્રગત (-પરક્ષેત્રે રહેલા) જ્ઞેય પદાર્થોના પરિણમનને લીધે પરક્ષેત્રથી જ્ઞાનને સત્ માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૭. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ સ્વક્ષેત્રે હોવાને (-રહેવાને પરિણમવાને) માટે, પરક્ષેત્રગત જ્ઞેયોના આકારોના ત્યાગ વડે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જે પરક્ષેત્રે રહેલા જ્ઞેયોના આકાર આવે છે તેમનો ત્યાગ કરીને) જ્ઞાનને તુચ્છ કરતો થકો પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે સ્વક્ષેત્રે રહીને જ પરક્ષેત્રગત જ્ઞેયોના આકારોરૂપે પરિણમવાનો જ્ઞાનનો સ્વભાવ હોવાથી (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરક્ષેત્રથી નાસ્તિત્વ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૮. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પૂર્વાર્ણખિત પદાર્થોના વિનાશકાળે (-પૂર્વે જેમનું આસન્ન બન કયું હતું એવા જ્ઞેય પદાર્થોના વિનાશ વખતે) જ્ઞાનનું અસત્પણ માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વકાળથી (-જ્ઞાનના કાળથી) સત્પણ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૯. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પદાર્થોના આસન્નબનકાળે જ (-માત્ર જ્ઞેય પદાર્થોને જાણવા વખતે જ) જ્ઞાનનું સત્પણ માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરકાળથી (-જ્ઞેયના કાળથી) અસત્પણ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૧૦. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ, જાણવામાં આવતા એવા પરભાવોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાયકભાવને પરભાવપણે માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વ-ભાવથી સત્પણ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૧૧. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ ‘સર્વ’ ભાવો હું જ છું’ એમ પરભાવને જ્ઞાયકભાવપણે માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરભાવથી અસત્પણ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૧૨. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ અનિત્ય જ્ઞાન-વિશેષો વડે પોતાનું નિત્ય જ્ઞાનસામાન્ય ખડિત થયું માનીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે

જ્ઞાનભાવ ભાવનું) જ્ઞાનસામાન્યરૂપથી નિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નારા પામવા હેતો નથી. ૧૩. વગ્રી જ્યારે તે જ્ઞાનભાવ ભાવ નિત્ય જ્ઞાનસામાન્યનું મહત્ત્વ કરવા માટે અનિત્ય જ્ઞાનવિશેષોના ત્યાગ વડે પોતાનો નારા કરે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનના વિશેષોના ત્યાગ કરીને પોતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનભાવ ભાવનું) જ્ઞાનવિશેષરૂપથી અનિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નારા કરવા હો નથી. ૧૪.

(અહીં તત્ત્વ-અતત્ત્વના ૨ ભંગ, એક-અનેકના ૨ ભંગ, સત્-અસત્ના દ્વન્દ્વ-ત્રિત્વ-કાળ-સાવધી ૮ ભંગ, અને નિત્ય-અનિત્યના ૨ ભંગ—એમ બધા મળીને ૧૪ ભંગ થયા. આ ચૌદ ભંગોમાં એમ બતાવ્યું કે—એકાંતથી જ્ઞાનભાવ આત્માનો અભાવ થાય છે અને અનેકાંતથી આત્મા જીવતો રહે છે; અર્થાત્, એકાંતથી આ-મા હો સ્વરૂપે છે તે સ્વરૂપે સમજાતો નથી, સ્વરૂપમાં પરિણમતો નથી, અને અનેકાંતથી તે વાસ્તવિક સ્વરૂપે સમજાય છે, સ્વરૂપમાં પરિણમે છે.)

અહીં નીચે પ્રમાણે (૧૪ ભંગોના કળશરૂપે) ૧૪ કાવ્યો પણ કરેવામાં આવે છે:—

(પ્રથમ; પહેલા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કરેવામાં આવે છે:—)

(સાદૃશ્યવિગ્રહિત)

વાચર્થિ: પરિપીતમુજ્જિતનિજમગ્ધત્તિરિક્તીયવદ્-
વિધાન્તં પરરુપ એવ પરિતો જ્ઞાને પશો: સીદતિ ।
યત્તત્તદિદં સ્વરુપતં ઇતિ સ્વાદ્યાદિનસ્તત્પુન-
ર્દુરોન્મગ્ધપનસ્વંભાવમરતઃ પૂર્ણં સમુન્મસ્યતિ ॥ ૨૪૮ ॥

અર્થ:—ગ્રાહ્ય પદાર્થો વડે સમસ્તપણું પી જવામાં આવેલું; પોતાની વ્યક્તિને (પ્રગટતાને) છાત્રી રવાથી ખાલી (-શૂન્ય) થઈ ગયેલું; સમસ્તપણું પશુપદા જ વિધાન્ત (અર્થાત્ પદરૂપ ઉપર જ આધાર રાખતું) એવું પશુનું જ્ઞાન (નિષં અથવા એકાંતવાદીનું જ્ઞાન) નારા પામે છે; અને સ્વાદ્યાવાદીનું જ્ઞાન તો, જે તત્ત્વ છે તે સ્વરૂપથી તત્ત્વ છે (અર્થાત્ ફરક તત્ત્વને—વસ્તુને સ્વરૂપથી તપાય છે) અહીં માન્યતાને લીધે, અત્યંત પ્રગટે થયેલા જ્ઞાનઘનરૂપ સ્વભાવના તારકી. સપ્તમું કાવ્ય (પ્રગટ) થાય છે.

બાવાર્થ:—કેવું સર્વથા એકાંતી તો એમ માને છે—અત્યંત ઘનતા આધારે જ થાય છે માટે જ્ઞાન સર્વ પ્રકારે રેણો પર જ આધાર રાખે છે આપુ માનના

એકાંતવાદીના જ્ઞાનને તો જોયો પી ગયાં, જ્ઞાન પોતે કાંઈ ન રહ્યું. સ્યાદવાદી તો એમ માને છે કે—જ્ઞાન પોતાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ જ (—જ્ઞાનસ્વરૂપ જ) છે, જોયાકર થવા છતાં જ્ઞાનપણાને છાડતું નથી. આવી યથાર્થ અનેકાંત સમજણને લીધે સ્યાદવાદીને જ્ઞાન (અર્થાત્ જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા) પ્રગટ પ્રકાશે છે.

આ પ્રમાણે સ્વરૂપથી તત્પણાનો ભંગ કહ્યો.

(હવે બીજા ભંગના કળારૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાઈલવિકીરિત)

વિશ્વં જ્ઞાનમિતિ પ્રતર્ક્ય સકલં દૃષ્ટ્વા સ્વતત્ત્વાશયા

ભૂત્વા વિશ્વમયઃ પથુઃ પથુરિવ સ્વચ્છંદમાવેષ્ટે ।

યત્તત્ત્વરૂપતો ન તદિતિ સ્યાદ્વાદદર્શી પુન-

ર્વિશ્વાદ્વિષ્મમવિશ્વવિશ્વયટિતં તસ્ય સ્વતત્ત્વં સ્પૃશેત્ ॥ ૨૪૯ ॥

અર્થ:—પથુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, ‘વિશ્વ જ્ઞાન છે (અર્થાત્ સર્વ જોયપદાર્થો આત્મા છે)’ એમ વિચારીને સર્વને (—સમસ્ત વિશ્વને) નિજતત્ત્વની આશાથી રૂપીને વિશ્વમય (—સમસ્ત જોયપદાર્થમય) થઈને, ટોરની માફક સ્વચ્છંદપણે ચેષ્ટા કરે છે—વર્તે છે; અને સ્યાદવાદદર્શી તો (—સ્યાદવાદનો રૂખનાર તો), ‘જે તા છે તે પરૂપથી તત્ નથી (અર્થાત્ દરેક તત્ત્વને સ્વરૂપથી તત્પણું હોવા છતાં પરૂપથી અતત્પણું છે)’ એમ માનતો હોવાથી, વિશ્વથી ભિન્ન એવા અને વિશ્વથી (વિશ્વના નિમિત્તથી) સ્થાયેતુ હોવા છતાં વિશ્વરૂપ નહિ એવા (અર્થાત્ સમસ્ત જોય વસ્તુઓના આકારે થવા છતાં સમસ્ત જોયવસ્તુથી ભિન્ન એવા) પોતાના નિજતત્ત્વને રૂપશે છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—એકાંતવાદી એમ માને છે કે—વિશ્વ (—સમસ્ત વસ્તુઓ) જ્ઞાનરૂપ અર્થાત્ પાનારૂપ છે. આ રીતે પાનાને અને વિશ્વને અભિન્ન માનીને, પાનાને વિશ્વમય માનીને, એકાંતવાદી, ટોરની જેમ હેય-ઉપાદયના વિવેક વિના સર્વત્ર સ્વચ્છંદપણે પ્રવર્તે છે. સ્યાદવાદી તો એમ માને છે કે—જે વસ્તુ પાનાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ છે તે જ વસ્તુ પરના સ્વરૂપથી અતત્સ્વરૂપ છે; માટે જ્ઞાન પાનાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ છે, પરંતુ પર જોવાના સ્વરૂપથી અતત્સ્વરૂપ છે અર્થાત્ પર જોવાના આકારે થવા છતાં નેમનાથી ભિન્ન છે.

આ પ્રમાણે પરૂપથી અતત્પણાનો ભંગ કહ્યો.

(હવે ત્રીજા ભંગના કળારૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

સર્વવિશુદ્ધિજ્ઞાન અધિકાર

(શાર્દૂલવિહીઝિત)

શાંભાર્યપ્રણસ્વભાવમરતો વિપ્રગ્વિચિત્રોદ્ભસ-
જ્ઞેષાકારવિશીર્ણશક્તિરમિતસ્તુચ્યન્યર્થુનેષ્યતિ ।

પ્રકટવ્યતયા સદાપ્યુદિતયા મેદભ્રમં ધ્વંસય-

ક્ષેકં જ્ઞાનમવાપિતાનુભવનં પદ્યત્યનેકાંતવિત્ ॥ ૨૫૦ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, બાહ્ય પદાર્થોને મદબ્ર-
મના (જ્ઞાનનાં) સ્વભાવની અતિશયતાને લીધે, ચારે તરફ (સર્વત્ર) પ્રગટ થતા
અનેક પ્રકારના જોષાકારોથી જેની રક્ષિત વિશીર્ણ થઈ ગઈ છે એવો થઈને (અર્થાત્
અનેક જોષાના આકારો જ્ઞાનમાં જળાતાં જ્ઞાનની રક્ષિતને છિન્નભિન્ન—ખંડખંડીય—
થઈ જતી માનીને) સમસ્તપણે ટૂટી જતો થકો (અર્થાત્ ખંડખંડીય—અનેકીય—
થઈ જતો થકો) નાશ પામે છે; અને અનેકાંતનો જાળનાર તો, સદાચ દૃષ્ટિ
(પ્રકાશમાન) એકદ્રવ્યપંજરાને લીધે બેઠાના જામને નષ્ટ કરતો થકો (અર્થાત્ જોષાના
બિંદુ જ્ઞાનમાં સર્વથા ભેદ પડી જાય છે એવા જામનો નાશ કરતો થકો) જે એક છે
(સર્વથા અનેક નથી) અને જેનું અનુભવન-નિર્ભાષિ છે એવા જ્ઞાનને રમે છે—
અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન છે તે જોષાના આકારને પરિભ્રમવાથી અનેક રૂપાય છે, તેથી
સર્વથા એકાંતવાદી તે જ્ઞાનને સર્વથા અનેક—ખંડખંડીય—રૂપનો થકો જ્ઞાનમય
એવા પાનાનો નાશ કરે છે; અને સ્વાદવાદી તો-જ્ઞાનને, જોષાકાર થતા જ્ઞાન, સદા
દૃષ્ટમાન, દ્રવ્યપંજરા વડે એક રમે છે.

આ પ્રમાણે એકપણાનો ભંગ થયો.

(દ્વે શેષા ભંગના કોશરૂપે કાવ્ય શ્લોકમાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિહીઝિત)

જ્ઞેષાકારક્લંકમેચકચિતિ પ્રસાદનં જલ્પય-
ક્ષેકાકારચિકીર્ષયા સ્ફુટમપિ જ્ઞાનં પર્યુર્નેચ્ચતિ ।

ચેવિષ્ણેજ્ઞ્યવિચિપ્રતામુપગતં જ્ઞાનં સ્વતઃ સાવિતં
પર્યાયેસ્તદનેકતાં પરિવૃન્નનં પદ્યત્યનેકાંતવિત્ ॥ ૨૫૧ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, જોષાકારોથી અનેકીય
(અનેકીય) રક્ષિત એવા જ્ઞાનમાં પ્રકાશન કરતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાનની

વેગ રોકાયેલો છે એવો થયો થકો (અર્થાત્ સ્વક્ષેત્રમાં વર્તેલો થકો); આત્મામાં જ આકારરૂપ થયેલાં ક્ષેત્રોમાં નિશ્ચિત વ્યાપારની શક્તિવાળો થકો, હકે છે—છવે છે (—નષ્ટ થતો નથી).

સાવાર્થ:—એકાંતવાદી ક્ષિત્ર ક્ષેત્રમાં રહેલા ક્ષેપ પદાર્થોને જાણવાના કાર્યમાં પ્રવર્તતાં આત્માને બહાર પડતો જ માનીને, (સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ નહિ માનીને), પાતાને નષ્ટ કરે છે; અને સ્યાદવાદી તો, ‘પરક્ષેત્રમાં રહેલાં ક્ષેત્રોને જાણતાં પાતાના ક્ષેત્રમાં રહેલો આત્મા સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ ધારે છે’ એમ માનતો થકો હકી રહે છે—નાશ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે આત્મા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(ચાર્લ્સવિકીરિત)

સ્વક્ષેત્રસ્થિતયે પૃથગ્વિધપરક્ષેત્રસ્થિતાર્થોઽજ્ઞનાત્

તુચ્છીભૂય પથુઃ પ્રણમ્યતિ ચિદાકારાન્ સર્હર્થિર્વમન્ ।

સ્યાદ્વાદી તુ વસન્ સ્વધામનિ પરક્ષેત્રે વિદમાસ્તિતાં

ત્યક્તાર્થોઽપિ ન તુચ્છતામનુભવત્યાકારકર્ષી પરાન્ ॥ ૨૫૫ ॥

અર્થ:—પથુ. અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, સ્વક્ષેત્રમાં રહેલા માટે છુટા છુટા પરક્ષેત્રમાં રહેલા ક્ષેપ પદાર્થોને છાડવાથી, ક્ષેપ પદાર્થોની સાથે ચૈતન્યના આકારોને પણ વમી નાખતો થકો (અર્થાત્ ક્ષેપ પદાર્થોના નિમિત્તે ચૈતન્યમાં જે આકારો થાય છે તેમને પણ છાડી દેતો થકો) તુચ્છ થકો નાશ પામે છે; અને સ્યાદવાદી તો સ્વક્ષેત્રમાં રહેતો, પરક્ષેત્રમાં પાતાનું નાસ્તિત્વ જાણતો થકો, (પરક્ષેત્રમાં રહેલા) ક્ષેપ પદાર્થોને છાડતાં છતાં તે પર પદાર્થોમાંથી ચૈતન્યના આકારોને ખેંચતો હોવાથી (અર્થાત્ ક્ષેપ પદાર્થોના નિમિત્તે થતા ચૈતન્યના આકારોને છાડતો નહિ હોવાથી) તુચ્છતા પામતો નથી.

સાવાર્થ:—‘પરક્ષેત્રમાં રહેલા ક્ષેપ પદાર્થોના આકારો ચૈતન્યના આકારો થાય છે તેમને એ તું પાતાના કરીશ તો સ્વક્ષેત્રમાં જ રહેવાને બદલે પરક્ષેત્રમાં પણ બાપી જઈશ’ એમ માનીને અજ્ઞાની એકાંતવાદી પરક્ષેત્રમાં રહેલા ક્ષેપ પદાર્થોની સાથે સાથે ચૈતન્યના આકારોને પણ છાડી દે છે; એ રીતે પાતે ચૈતન્યના આકારો સદિન તુચ્છ થાય છે, નાશ પામે છે. સ્યાદવાદી તો સ્વક્ષેત્રમાં રહેતો, પરક્ષેત્રમાં પાતાની નાસ્તિત્વ

સર્વવિશુદ્ધિજ્ઞાન અધિકાર

તો થકો, જેય પદાર્થોને ઊડતાં છતાં ચૈતન્યના આકારને ઊડતો નથી; મોટો તે થતો નથી, નાશ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે પરસ્પરની અપેક્ષાથી નાસ્તિત્વનો ભગ કહ્યો.

(હવે નવમા ભગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(ચાર્દસવિગીઠિ)

પૂર્વાલંબિતપોષ્યનાશસમયે જ્ઞાનસ્ય નાશં વિદન્
સીદત્યેવ ન કિંચનાપિ કલયન્નત્યંતનુચ્છઃ પથુઃ ।
અસ્તિત્વં નિજકાલતોઽસ્ય કલયન્ સ્વાદ્વાદવેદી પુનઃ
પૂર્ણસ્તિષ્ઠતિ યાયવસ્તુપુ મુદુર્મૃત્વા ચિનિયત્સ્વપિ ॥ ૨૫૬ ॥

અર્થ:—પથુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, પૂર્વાલંબિત જેય પદાર્થોના નાશ સમયે જ્ઞાનનો પણ નાશ ભળતો થકો, એ રીતે જ્ઞાનને કાંઈ પણ (વસ્તુ) નહિ ભળતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાનવસ્તુનું અસ્તિત્વ જ નહિ જાનતો થકો), અત્યંત દુષ્કથો થકો નાશ પામે છે; અને સ્વાદ્વાદનો ભળનાર તો આત્માનું નિજ કાળથી અસ્તિત્વ ભળતો થકો, બાદ્ય વસ્તુઓ વારંવાર થઈને નાશ પામ્યાં છતાં પણ, પોતે પૂર્ણ રહે છે.

ભાવાર્થ:—પહેલાં જે જેય પદાર્થો ભણ્યા હતા તે ઉત્તર કાળમાં નાશ પામી ગયા; તેમને રૂખી એકાંતવાદી પોતાના જ્ઞાનનો પણ નાશ માની અજ્ઞાની થયા થકો. આત્માનો નાશ કરે છે. સ્વાદ્વાદી તો, જેય પદાર્થો નષ્ટ થતાં પણ, પોતાનું અસ્તિત્વ પોતાના કાળથી જ જાનતો થકો નષ્ટ થતો નથી.

આ પ્રમાણે સ્વકાળ-અપેક્ષાથી અસ્તિત્વનો ભગ કહ્યો.

(હવે દસમા ભગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(ચાર્દસવિગીઠિ)

અર્પાલંબનકાલ એવ કલયન્ જ્ઞાનસ્ય તત્ત્વં ચરિ-
જ્ઞેયાલંબનનાલસેન યનસા ભ્રામ્યન્ વર્ણનિયતિ ।
નાસ્તિત્વં પરકાલતોઽસ્ય કલયન્ સ્વાદ્વાદવેદી પુનઃ
સ્તિષ્ઠત્યાત્મનિત્યાતનિત્યસાદનજ્ઞાનૈકપુંગવીયન્ ॥ ૨૫૭ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ અજ્ઞાની એકાંતવાદી, જેય પદાર્થોના આલંબન કરી જ્ઞાનનું અસ્તિત્વ જાણતો થકો, બાહ્ય જેયોના આલંબનની લાલસાવાળા ચિત્ત (બહાર) ભ્રમતો થકો નાશ પામે છે; અને સ્વાદુવાદનો જાણનાર તો પરમાત્મા આત્માનું નાસ્તિત્વ જાણતો થકો, આત્મામાં દૃઢપણે રહેલા નિત્ય સહજ જ્ઞાનના એક પુંજરૂપ વર્તતો થકો રહે છે—નષ્ટ થતો નથી.

સાવાર્થ:—એકાંતી જેયોના આલંબનકાળે જ જ્ઞાનનું સરૂપણ જાણે છે તેથી જેયોના આલંબનમાં મનને ભેડી બહાર ભ્રમતો થકો નષ્ટ થાય છે. સ્વાદુવાદી તો પર જેયોના કાગથી પાતાનું નાસ્તિત્વ જાણે છે, પાતાના જ કાગથી પાતાનું અસ્તિત્વ જાણે છે; તેથી જેયોથી જુદા એવા જ્ઞાનના પુંજરૂપ વર્તતો થકો નષ્ટ થતો નથી.

આ પ્રમાણે પરકાળ-અપેક્ષાએ નાસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે અગિયારમા ભાગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાઈલવિકીરિત)

ચિદ્રાન્તઃ પરમાવમાવકલનામિત્યં ચર્હિર્વસ્તુપુ

નગ્યત્યેવ પશુઃ સ્વભાવમહિમન્યેકાંતનિષ્ઠેતનઃ ।

સર્વસ્મામિયતસ્વભાવમવનજ્ઞાનાદિમક્તો મયન્

સ્વાદાદી તુ ન નાન્નમેતિ સહજસ્પટીકૃતમત્યયઃ ॥ ૨૫૮ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, પરમાયોના અવનને જ જાણતો દોષથી, (અંતરિને પરમાયોથી જ પાતાનું અસ્તિત્વ માનતો દોષથી,) સાચા ભાષે વસ્તુઓમાં વિશ્રામ કરતો થકો, (પાતાના) સ્વભાવના અદ્વિતિમાં અત્યંત નિર્મલ (જડ) વર્તતો થકો, નાશ પામે છે; અને સ્વાદુવાદી તો (પાતાના) નિયત સ્વભાવના અવનસ્વરૂપ જ્ઞાનને સીધું સર્વથી (સર્વ પરમાયોથી) વિમલ વર્તતો થકો, જેણે સદૃશ સ્વભાવનું પ્રતીતિરૂપ જાણપણું સ્વપદ—પ્રવક્તા—અનુભવરૂપ કર્યું છે એવો ધર્મો જોઈ નષ્ટ પામતો નથી.

સાવાર્થ:—એકાંતવાદી પરમાયોથી જ પાતાનું સરૂપણ માનતો દોષથી જુદા વસ્તુઓમાં વિશ્રામ કરતો થકો અવનમાં નાશ કરે છે; અને સ્વાદુવાદી તો, અવનસ્વ સ્વભાવને જુદા કર્યાં સ્વભાવનું સ્વભાવથી અસ્તિત્વ જાણતો થકો, અવનમાં નષ્ટ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે સ્વ-ભાવની (પાતાના ભાવની) અપેક્ષાથી અસ્તિત્વનો ભંગ કર્યો.

(હવે ત્રીજા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાસ્ત્રવિહીન)

અધ્યાસ્યાત્મનિ સર્વભાવભવનં શુદ્ધસ્વભાવચ્યુતઃ

સર્વજ્ઞાપ્યનિવારિતો ગતભયઃ સ્વૈરં પથુઃ ક્રીડતિ ।

સ્વાદ્વાદી તુ વિશુદ્ધ એવ લસતિ સ્વસ્ય સ્વભાવં મતા-

દારુદઃ પરભાવભાવચિરદવ્યાલોકનિષ્કંપિતઃ ॥ ૨૫૯ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ અજ્ઞાની એકાંતવાદી, સર્વ ભાવોરૂપ ભવનનો
ભામાં અધ્યાસ કરીને (અર્થાત્ સર્વ જ્ઞેય પદાર્થોના ભાવોરૂપે આત્મા છે એમ
ની) શુદ્ધ સ્વભાવથી ચ્યુત થયો થકો, કેમકે પરભાવને બાકી રાખ્યા વિના સર્વ
ભાવોમાં સ્વચ્છંડતાથી નિર્લેપપણે (નિરાકરપણે) ક્રીડા કરે છે; અને સ્વાદ્વાદી તો
પાતાના સ્વભાવમાં અત્યંત આરુદ્ધ થયો થકો, પરભાવોરૂપ ભવનના અભાવની દૃષ્ટિને
પે (અર્થાત્ આત્મા પરદ્રવ્યોના ભાવોરૂપે નથી—એમ કહેતા હોવાથી) નિષ્કંપ
તો થકો, શુદ્ધોચ્છન્નચેત્સુ છે.

ભાવોર્થ:—એકાંતવાદી સર્વ પરભાવોને પાતારૂપ ભળીને પાતાના શુદ્ધ
ભાવથી ચ્યુત થયો થકો સર્વજ્ઞ (સર્વ પરભાવોમાં) સ્વેચ્છાથીપણે નિરાકર
છે; અને સ્વાદ્વાદી તો, પરભાવોને ભળતાં છતાં, પાતાના શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવને
પરભાવોથી વિત્ત અનુભવતો થકો થોભે છે.

આ પ્રમાણે પરભાવ-અપેક્ષાથી નાસ્તિત્વનો ભંગ કર્યો.

(હવે ત્રીજા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાસ્ત્રવિહીન)

માદુર્ભાવચિરામશુદ્ધિત્વદદ્જ્ઞાનાંશનાનાત્મના

નિર્જ્ઞાનાત્મણમંગસંગપતિતઃ પ્રાયઃ પથુર્નરૂપતિ ।

સ્વાદ્વાદી તુ ચિદાત્મના પરિશુદ્ધિશ્ચિદ્સ્ટુ નિત્યોદિતં

દંકોત્કીર્ણપનસ્વભાવમદિય જ્ઞાનં ધવન્ ઝીર્વતિ ॥ ૨૬૦ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, કૃત્વાદ-અવધથી દક્ષિણ એવા છે

વહેતા (-પરિણમતા) જ્ઞાનના અંશે તે-રૂપ અનેકાત્મકપણા વડે જ (નિર્ગુણ અર્થાત્ જ્ઞાન કરતો થકો, ક્ષણભંગના સંગમાં પડેલો, બાહ્યદેશપલે નારો) છે; અને સ્વાદવાદી તો ચૈતન્યાત્મકપણા વડે ચૈતન્યવસ્તુને નિત્ય-ઉદિત અનુભવે થકો, દંકોત્કીર્ણધનસ્વભાવ (-રંકોત્કીર્ણ પિંડરૂપ સ્વભાવ) જેનો અદિમા છે એ જ્ઞાનરૂપ વર્તેલો, હવે છે.

આવાર્થ:—એકાંતવાદી જેથોના આકાર અનુસાર જ્ઞાનને ઉપજીત-નિર્ગુણ રૂપીને, અનિત્ય પદાર્થો દ્વારા આત્માને સર્વથા અનિત્ય માનતો થકો, પાતાને નારો છે; અને સ્વાદવાદી તો, જોકે જ્ઞાન જેથો અનુસાર ઉપજી-વિજીસે છે તોપણ, ચૈતન્ય ભારનો નિત્ય ઉદય અનુભવતો થકો હવે છે—નારા પામતો નથી.

આ પ્રમાણે નિત્યત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે ચૌકમા ભંગના કગરારૂપે કાબ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(સાદ્ધર્મિકોદિત)

દંકોત્કીર્ણશિશુદ્વષોધવિસારાકારાત્મતસ્તાસયા

ચાંચગુણ્ણદક્ષણવિવરિણતેર્ષિષં વધુઃ કિંચન ।

જ્ઞાને નિગ્ધમનિગ્ધતાપરિગમેડ્વયાગાદયત્પુગ્ગલં

સ્વાદવાદી તદનિગ્ધતાં પરિવૃત્તંધિગ્નુરતિક્રમાન્ ॥ ૨૬૧ ॥

આર્થ:—પરુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, દંકોત્કીર્ણ શિશુ જ્ઞાનના રૂપાવરૂપે આત્માકાર (સર્વથા નિત્ય) આત્મતત્ત્વની આસાપી, ઊજાગતી નિર્ગુણ ચૈતન્યર્થનુવિધી બુદ્ધ કોટિક (આત્મતત્ત્વને) હમ્મ છે (પરંતુ એપુ'કોઈ આત્મતત્ત્વ છે નહિ); અને સ્વાદવાદી તો, ચૈતન્યવસ્તુની ધુનિના (-પરિણનિના, પદાર્થના) રૂપ હવે જેની અનિત્યતાને અનુભવતો થકો, નિત્ય એવા જ્ઞાનને અનિત્યતાથી ભાષે કર્યું નિગ્ધમ (નિર્ગુણ) માને છે—અનુભવે છે.

આ.વ.ર્થ:—એકાંતવાદી જ્ઞાનને સર્વથા આત્માકાર—નિત્ય પ્રાપ્ત કરવાની શંકાથી, ઉપજીત-નિર્ગુણ ચૈતન્યર્થનુવિધી બુદ્ધ કોટિક જ્ઞાનને હમ્મ છે; પરંતુ પરિણમ નિત્ય અનુભવ કર્યું એવાની તો દેડતો નથી. સ્વાદવાદી તો એવન માને છે કે—એકાંતવાદી જ્ઞાન નિત્ય છે તેવું જ્ઞાન ઉપજીત-નિર્ગુણ ચૈતન્યર્થનુવિધી જ્ઞાનને શી. જ્ઞાન અનિત્ય જ્ઞાન છે એવું જ્ઞાન આત્માકાર છે.

આ ૨૬૧ અર્થના અર્થ આન કહ્યો.

4.

પથાર્થ વસ્તુસ્થિતિનો કહીનાર છે. કાંઈ કોઈએ અસત્ કલ્પનાથી વચનમાત્ર કહ્યો નથી. માટે હું નિપુણ પુરુષો! સારી રીતે વિચાર કરી પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જુઓ.

(આચાર્ય દેવ અનેકાંતને હજી વિશેષ ચર્ચા છે:—)

(પ્રશ્ન:-) આત્મા અનેકાંતમય હોવા છતાં પણ તેના જ્ઞાનમાત્રપણે જ્યેષ્ઠ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે? (આત્મા અનંત ધર્મેવાળો હોવા છતાં તેને જ્ઞાનમાત્રપણે કેમ કહેવામાં આવે છે? જ્ઞાનમાત્ર કહેવાથી તો અન્ય ધર્મેનો નિષેધ સમભવ છે.)

(ઉત્તર:-) લક્ષણની પ્રસિદ્ધિ વડે લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ કરવા માટે આત્માને જ્ઞાનમાત્રપણે વ્યવહાર કરવામાં આવે છે. આત્માનું જ્ઞાન લક્ષણ છે, કારણ કે જ્ઞાન આત્માનો અસાધારણ ગુણ છે (અન્ય દ્રવ્યોમાં જ્ઞાનગુણ નથી). માટે જ્ઞાનની પ્રસિદ્ધિ વડે તેના લક્ષ્યની—આત્માની—પ્રસિદ્ધિ થાય છે.

(પ્રશ્ન:-) એ લક્ષણની પ્રસિદ્ધિથી શું પ્રયોજન છે? માત્ર લક્ષ્ય જ પ્રસાધ્ય અર્થાત્ પ્રસિદ્ધ કરવાયોગ્ય છે. (માટે લક્ષણને પ્રસિદ્ધ કર્યા વિના માત્ર લક્ષ્યને જ—આત્માને જ—પ્રસિદ્ધ કેમ કરતા નથી?)

(ઉત્તર:-) જેને લક્ષણ અપ્રસિદ્ધ હોય તેને (અર્થાત્ જે લક્ષણને જાણતો નથી એવા અજ્ઞાની જનને) લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ થતી નથી. જેને લક્ષણ પ્રસિદ્ધ થાય તેને જ લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ થાય છે. (માટે અજ્ઞાનીને પહેલાં લક્ષણ બતાવીએ ત્યારે તે લક્ષ્યને પ્રહણ કરી શકે છે).

(પ્રશ્ન:-) કશું તે લક્ષ્ય છે કે જે જ્ઞાનની પ્રસિદ્ધિ વડે તેનાથી (જ્ઞાનથી) વિજ્ઞ પ્રસિદ્ધ થાય છે?

(ઉત્તર:-) જ્ઞાનથી વિજ્ઞ લક્ષ્ય નથી, કારણ કે જ્ઞાન અને આત્માને દ્રવ્યપણે અભેદ છે.

(પ્રશ્ન:-) તો પછી લક્ષણ અને લક્ષ્યનો વિભાગ શા માટે કરવામાં આવ્યો?

(ઉત્તર:-) પ્રસિદ્ધત્વ અને પ્રસાધ્યમાનત્વને લીધે લક્ષણ અને લક્ષ્યનો વિભાગ કરવામાં આવ્યો છે. જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે, કારણ કે જ્ઞાનમાત્રને સ્વસંચિતનથી

* વ્યવહાર = કથન; નામ.

† પ્રસાધ્યમાન = પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવતું હોય તે. (જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે અને આત્મા પ્રસાધ્યમાન છે)

દષ્ટ છે (અર્થાત્ જ્ઞાન સર્વ પ્રાણીઓને સ્વસ્વેદનરૂપ અનુભવમાં આવે છે); પ્રસિદ્ધ એવા જ્ઞાન વડે પ્રસાધ્યમાન, તદ્-અવિનાભૂત (-જ્ઞાનની સાથે અવિનાભાવી અવવાળા) અનંત ધર્મોના સમુદાયરૂપ મૂર્તિ આત્મા છે. (જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે; અને તે સાથે જેમનો અવિનાભાવી સંબંધ છે એવા અનંત ધર્મોના સમુદાયસ્વરૂપ આત્મા તે જ્ઞાન વડે પ્રસાધ્યમાન છે.) આટે જ્ઞાનમાત્રમાં અચલિતપણે સ્થાપેલી દષ્ટિ, ક્રમરૂપ અને અક્રમરૂપ પ્રવર્તતા, તદ્-અવિનાભૂત (-જ્ઞાનની સાથે અવિનાભાવી અવવાળા) અનંતધર્મસમુદાય જે કાંઈ જેવડો લક્ષિત થાય છે, તે સઘળોય ખરેખર આત્મા છે.

આ દારણે જ આર્દ્રો આત્માનો જ્ઞાનમાત્રપણે વ્યવહાર છે.

(પ્રશ્ન:-) જેમાં ક્રમ અને અક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ધર્મો છે એવા આત્માને જ્ઞાનમાત્રપણે કઈ રીતે છે?

(ઉત્તર:-) પરસ્પર ભિન્ન એવા અનંત ધર્મોના સમુદાયરૂપે પરિબ્રુત એક જ જ્ઞાનમાત્ર ભાવરૂપે પાતે જ હોવાથી (અર્થાત્ પરસ્પર ભિન્ન એવા અનંત ધર્મોના સમુદાયરૂપે પરિબ્રુત એક જ એક જળનુક્રિયા તે જળનુક્રિયામાત્ર ભાવરૂપે પાતે જ હોવાથી) આત્માને જ્ઞાનમાત્રપણે છે. આટે જ તેને જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની અંતઃક્રિયાની (-જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની અંદર પડનારી અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની અંદર આવી જતી-) અનંત શક્તિઓ ઊછળે છે. (આત્માના કેટલા ધર્મો છે તે બધાને, લક્ષણભેદ ભેદ હોવા છતાં, પ્રદેશભેદ નથી; આત્માના એક પરિભ્રામમાં જ ધર્મોનું પરિભ્રમન રહેલું છે. તેથી આત્માના એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવની અંદર અનંત શક્તિઓ રહેલી છે. આટે જ્ઞાનમાત્ર ભાવમાં—જ્ઞાનમાત્ર ભાવસ્વરૂપ આત્મામાં—અનંત શક્તિઓ ઊછળે છે.) તેમાંની કેટલીક શક્તિઓ નીચે પ્રમાણે છે:—આત્માને દારણભૂત એવા ચૈતન્યમાત્ર ભાવનું દારણ જેનું લક્ષણ અર્થાત્ સ્વરૂપ છે એવી સ્વચક્ષુશક્તિ. (આત્મદ્રવ્યને દારણભૂત એવા ચૈતન્યમાત્રભાવરૂપી ભાવપ્રાણનું દારણ જેનું લક્ષણ છે એવી જીવત્ત્વ નામની શક્તિ જ્ઞાનમાત્ર ભાવમાં—આત્મામાં—રહેલી છે). ૧. અજડત્વસ્વરૂપ ચિત્તિશક્તિ. (અજડત્વ અર્થાત્ ચૈતન્ય જેનું સ્વરૂપ એવી ચિત્તિશક્તિ) ૨. અનાકાર ઉપયોગમયી દર્શિશક્તિ. (જેમાં ક્ષેપરૂપ આકાર નથી વિદ્યેય નથી એવા દર્શિપયોગમયી—સંતામાત્ર પદાર્થમાં ઉપયુક્ત ધવામયી—શક્તિ અર્થાત્ દર્શનદ્રિષ્ટિરૂપ શક્તિ). ૩. સાકાર ઉપયોગમયી જ્ઞાનશક્તિ. (જે ક્ષેપરૂપના વિદ્યેયરૂપ આકારોમાં ઉપયુક્ત થાય છે એવી જ્ઞાનોપયોગમયી જ્ઞાનશક્તિ). ૪. પ્રાણજ્ઞાન જેનું લક્ષણ અર્થાત્ સ્વરૂપ છે એવી મુખશક્તિ. ૫. સ્વરૂપની (-આત્મ-સ્વરૂપની) સ્વનાના સામર્થ્યરૂપ વીર્યશક્તિ. ૬. જેનો પ્રતાપ અખડિત છે અર્થાત્

કેઈથી ખાંડિત કરી શકાતો નથી એવા સ્વાતંત્ર્યથી (-સ્વાધીનતાથી) ૯. માનપણ જેવું લક્ષણ છે એવી પ્રભુત્વશક્તિ. ૭. સર્વ ભાવોમાં વ્યાપક એવા ભાવરૂપ વિશુત્ત્વશક્તિ. (જેમકે, જ્ઞાનરૂપી એક ભાવ સર્વ ભાવોમાં વ્યાપે છે). ૮. સમસ્ત વિદ્યાના સામાન્ય ભાવને દેખવારૂપે (અર્થાત્ સર્વ પદાર્થોના સમૂહરૂપે એક) લોકને સત્તામાત્ર ગ્રહવારૂપે) પરિણમેલા એવા આત્મદર્શનમયી સર્વદર્શિત્વશક્તિ. ૯. સમસ્ત વિદ્યાના વિશેષ ભાવોને જાણવારૂપે પરિણમેલા એવા આત્મજ્ઞાનમયી સર્વજ્ઞશક્તિ. ૧૦. અમૃતિક આત્મપ્રદેશોમાં પ્રકાશમાન લોકાલોકના આકારોથી મેચક (અર્થાત્ અનેક-આકારરૂપ) એવો ઉપયોગ જેવું લક્ષણ છે એવી સ્વચ્છત્વશક્તિ. (જેમ દર્પણની સ્વચ્છત્વશક્તિથી તેના પર્યાયમાં ઘટપટ્ટાદિ પ્રકારો છે, તેમ આત્માની સ્વચ્છત્વશક્તિથી તેના ઉપયોગમાં લોકાલોકના આકારો પ્રકારો છે). ૧૧. સ્વયં પ્રકાશમાન વિરાટ (-સ્વ) એવા સ્વસંપ્રેક્ષ્યમયી (-સ્વાનુભવમયી) પ્રકાશશક્તિ. ૧૨. ક્ષેત્ર અને કળિથી અમર્યાદિત એવા ચિદ્વિલાસસ્વરૂપ (-ચૈતન્યના વિલાસસ્વરૂપ) અસંકુચિતવિકાસત્વશક્તિ. ૧૩. જે અન્યથી કરાતું નથી અને અન્યને કરતું નથી એવા એક દ્રવ્યસ્વરૂપ અકાર્યકારણત્વશક્તિ. (જે અન્યનું કાર્ય નથી અને અન્યનું કારણ નથી એવું જે એક દ્રવ્ય તે સ્વરૂપ અકાર્યકારણત્વશક્તિ.) ૧૪. પરં અને પોતે જેમનું નિમિત્ત છે એવા જોયાકારો તથા જ્ઞાનકારોને ગ્રહણ કરવાના અને ગ્રહણ કરાવવાના સ્વભાવરૂપ. પરિણમ્યપરિણામકત્વશક્તિ. (સ્વપરેના જ્ઞાતા થવાનો તેમજ સ્વ-પરંનું જોય થવાનો આત્માનો જે સ્વભાવ તે સ્વભાવરૂપ પરિણમ્યપરિણામકત્વ શક્તિ). ૧૫. જે ઘટતું-વધતું નથી એવા સ્વરૂપમાં નિયતત્વરૂપ (-નિશ્ચિતપણે જેમનું તેમ રહેવારૂપ-) ત્યાગોપાદાનસૂચ્યત્વશક્તિ. ૧૬. ધૃત્સ્થાનપતિત ધૃદ્ધિહૃદિનિરૂપે પરિણમેલા, સ્વરૂપ-પ્રતિષ્ઠત્વના કારણરૂપ (-વસ્તુને સ્વરૂપમાં રહેવાના કારણરૂપ) એવો જે વિરાટ (-ખાસ) ગુણ તે સ્વરૂપ અગુરુસપ્તત્વશક્તિ. (આ ધૃત્સ્થાનપતિત હૃદિનિવૃદ્ધિત્વ સ્વરૂપ 'ગોમઘસાર' પ્રથમાંથી જાણવું. અવિભાગ પ્રતિષ્ઠાની સંખ્યારૂપ પરસ્થાનોમાં પડતી-સમાવેશ પામતી-વસ્તુસ્વભાવની ધૃદ્ધિ-હૃદિનિ જેનાથી (-જે ગુણથી) થાય છે અને જે (ગુણ) વસ્તુને સ્વરૂપમાં રહવાનું કારણ છે એવો કોઈ ગુણ આત્મામાં છે; તેને અગુરુસપ્તત્વગુણ કહેવામાં આવે છે. આવી અગુરુસપ્તત્વશક્તિ પાંજ આત્મામાં છે). ૧૭. કમવૃત્તિરૂપ અને અકમવૃત્તિરૂપ વર્તન જેવું લક્ષણ છે એવી ઉત્પાદવ્યવધૃતત્વશક્તિ. (કમવૃત્તિરૂપ પર્યાય ઉત્પાદવ્યવરૂપ અને અકમવૃત્તિરૂપ ગુણ ધૃતત્વરૂપ છે). ૧૮. દ્રવ્યના સ્વભાવભૂત દ્રીવ્ય-વ્યવ-ઉત્પાદથી અર્જિગિત (-સ્પર્શિત), સદશ અને વિસદશ જેવું રૂપ છે એવા એક અસ્તિત્વ-માત્રમયી પરિણામશક્તિ. ૧૯. કર્મજનના અભાવથી વ્યજ કરાયેલા, સદા, સ્પર્શિ-ગૂન્ય (-સ્પર્શ, રસ, ગંધ અને વર્ણથી રહિત) એવા આત્મપ્રદેશસ્વરૂપ અમૂર્તત્વશક્તિ. ૨૦. સમસ્ત, કર્મથી કરવામાં આવેલાં, જ્ઞાતૃત્વમાત્રથી જુદાં જે પરિણામો તે

અસવનરૂપ (નહિ, વર્તવારૂપ) અભાવાભાવશક્તિ. ૩૮. (કર્તા, કર્મ આદિ) આ
અનુસાર જે ક્રિયા તેનાથી રહિત સવનમાત્રમયી (-હોવામાત્રમયી, થવામાત્રમયી)
ભાવશક્તિ. ૩૯. કારકો અનુસાર થવાપણારૂપ (-પરિણમવાપણારૂપ) જે ભાવ તેમની
ક્રિયાશક્તિ. ૪૦. પ્રાપ્ત કરાવે એવો જે સિદ્ધરૂપ ભાવ તેમની કર્મશક્તિ. ૪૧. થવા
પણારૂપ એવો જે સિદ્ધરૂપ ભાવ તેના ભાવકપણામયી કર્તૃત્વશક્તિ. ૪૨. ભવતા
(-વર્તતા, થતા) ભાવના : સવનના (-થવાના) સાધકતમપણામયી (-ઉત્કૃષ્ટ સાધક-
પણામયી, ઉમ સાધનપણામયી) કરણશક્તિ. ૪૩. પોતાથી દેવામાં આવતો જે ભાવ
તેના ઉપેયપણામય (-તેને મેળવવાના યોગ્યપણામય, તેને લેવાના પાત્રપણામય)
સંપ્રદાનશક્તિ. ૪૪. ઉત્પાદવ્યયથી આલિંગિત ભાવનો અપાય (-હાનિ, નાશ) થવાથી
હાનિ નહિ પામતા એવા દુરવપણામયી અપાદાનશક્તિ. ૪૫. ભાવ્યમાન (અર્થાત્
ભાવવામાં આવતા) ભાવના આધારપણામયી અધિકરણશક્તિ. ૪૬. સ્વભાવમાત્ર સ્વ-
સ્વામિત્વમયી સંબંધશક્તિ. (પોતાનો ભાવ પોતાનું સ્વ અને પોતે તેના સ્વામી-
એવા સંબંધમયી સંબંધશક્તિ). ૪૭.

‘ ઇત્યાદિકં અનેક શક્તિઓથી યુક્ત આત્મા છે તોપણ તે જ્ઞાનમાત્રપણાને
છાડતો નથી ’—એવા અર્થનું કળારૂપ કાવ્ય હવે કહે છે:—

(વસંતનિષ્ઠા)

इत्याद्यनेकनिजशक्तिमुनिर्भरोऽपि

यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।

एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं

तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥ ૨૬૪ ॥

અર્થ:—ઇત્યાદિ (-પૂર્વે કહેલી ૪૭ શક્તિઓ વગરે વગરે) અનેક નિજ
શક્તિઓથી સારી રીતે ભરેલો હોવા છતાં જે ભાવ જ્ઞાનમાત્રમયપણાને છાડતો નથી,
એનું તે, પૂર્વોક્ત પ્રકારે કર્મરૂપ અને અકર્મરૂપ વર્તતા વિવર્તણી (-રૂપાંતરથી, પરિ-
ણમનથી) અનેક પ્રકારનું, દ્રવ્યપર્યાયમય ચૈતન્ય (અર્થાત્ એવો તે ચૈતન્યભાવ-
આત્મા) આ લોકમાં વસતુ છે.

ભાવાર્થ:—કેઈ એમ સમજશે કે આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કદો તેથી તે આ-
સ્વરૂપ જ હશે પરંતુ એમ નથી. વસ્તુનું સ્વરૂપ દ્રવ્યપર્યાયમય છે. ચૈતન્ય પણ વસ્તુ
છે. દ્રવ્યપર્યાયમય છે. તે ચૈતન્ય અર્થાત્ આત્મા અનંત શક્તિઓથી ભરેલો ॥ અને
કર્મરૂપ તથા અકર્મરૂપ અનેક પ્રકારના પરિણામના નિકારના સમુદાય અનેનાશને પણ

તેપણ જ્ઞાનને—કે એ અસાધારણ બાવ છે તેને—છાડો નથી, તેની સર્વ અવસ્થાઓ
—પરિણામો—પર્યાયો જ્ઞાનમય જ છે.

‘આ અનેકરૂપ—અનેકાંતમય—વસ્તુને જેઓ જાણે છે, કહે છે અને
મનુષ્ય છે, તેઓ જ્ઞાનરૂપ થાય છે’—એવા આશયનું, સ્યાદાવાદનું ફળ બતાવતું
જાણ હવે કહે છે:—

(વ્યવસ્થાનિર્વાહ)

નૈકાંતમંગતદશા સ્વયમેવ વસ્તુ-
તત્ત્વજ્યવસ્થિતિમિતિ પ્રવિશ્યોક્ત્યન્તઃ ।
સ્યાદાદશુદ્ધિમધિકામધિગમ્ય સંતો
જ્ઞાનીમવંતિ જિનનીતિમવંત્યન્તઃ ॥ ૨૬૫ ॥

અર્થ:—આવી (અનેકાંતાત્મક) વસ્તુતત્ત્વની વ્યવસ્થિતિને અનેકાંત-સંગત
(અનેકાંત સાથે મુસંગત, અનેકાંત સાથે મેળવાળી) દૃષ્ટિ વડે સ્વયમેવ રૂપતા થકા,
સ્યાદાવાદની અત્યંત શુદ્ધિને જાણીને, જિનનીતિને (જિનેશ્વરરૂપના માર્ગને) નહિ
દેક્ષવતા થકા, સંપુરણ જ્ઞાનરૂપ થાય છે.

ભાવાર્થ:—જે સંપુરણ અનેકાંત સાથે મુસંગત દૃષ્ટિ વડે અનેકાંતમય
વસ્તુસ્થિતિને રૂપે છે, તેઓ એ રીતે સ્યાદાવાદની શુદ્ધિને પામીને—જાણીને, જિન-
રૂપના માર્ગને—સ્યાદાવાદ-વ્યાપન—નહિ દેક્ષવતા થકા, જ્ઞાનરૂપ થાય છે.

(આ રીતે સ્યાદાવાદ વિષે કહીને, હવે આચાર્યજીવ ઉપાય-ઉપેયભાવ વિષે
કહે છે:—)

હવે આનો (જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુનો) ઉપાય-ઉપેયભાવ વિચારવામાં આવે
છે (અર્થાત્ આત્મવસ્તુ જ્ઞાનમાત્ર હોવા છતાં તેને ઉપાયપણું અને ઉપેયપણું બને
કઈ રીતે થયે તે વિચારવામાં આવે છે):—

આત્મવસ્તુને જ્ઞાનમાત્રપણું હોવા છતાં પણ તેને ઉપાય-ઉપેયભાવ (ઉપાય-
ઉપેયપણું) છે જ; કારણ કે તે એક હોવા છતાં સાધક રૂપ અને સિદ્ધ રૂપ એમ બંને
રૂપે પરિણમે છે.^૧ તેમાં જે સાધક રૂપ છે તે ઉપાય છે અને જે સિદ્ધ રૂપ છે તે ઉપેય

* ઉપેય એટલે પામવાયોગ્ય અને ઉપાય એટલે પામવાયોગ્ય બેનાથી પમાય તે. આત્માનું શુદ્ધ
(સર્વ કર્મ રહિત) સ્વરૂપ અથવા મોક્ષ તે ઉપેય છે અને મોક્ષમાર્ગ તે ઉપાય છે.

૧. આત્મા પરિણામી છે અને સાધકપણું તથા સિદ્ધપણું એ બંને પરિણામ છે.

છ. માટે, અનાદિ કાગથી મિથ્યાદર્શનજ્ઞાનચારિત્ર વડે (મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાજ્ઞાન એ મિથ્યાચારિત્ર વડે) સ્વરૂપથી ચ્યુત હોવાને લીધે સંસારમાં જન્મજ કરતાં, મુનિશ્રી... મહુણ કરેલાં વ્યવહારસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રના પાકના પ્રકર્ષની પરંપરા વડે અનુભવે સ્વરૂપમાં આરોહણ કરાવવામાં આવના આત્માને, અંતર્મમ જે નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શન જ્ઞાનચારિત્ર કેદા તે-પણા વડે પાને સારક રૂપે પરિણમતું, તથા પરમ પ્રકર્ષની દ્વંદ્વ પામેલા સતત્રયની અતિશયતાથી પ્રવર્તેલા જે સદગ કર્મને કાય તેનાથી પ્રજ્વલિત (દેહીપ્રમાન) થયેલા જે અસ્ખલિત વિમળ સ્વભાવભાવ તે-પણા વડે પાને મિદ્ધ રૂપે પરિણમતું એવું એક જ જ્ઞાનમાત્ર ઉપાય-ઉપેયભાવ સાધે છે.

(ભાવાર્થ:—આ આત્મા અનાદિ કાગથી મિથ્યાદર્શનજ્ઞાનચારિત્રને લીધે સંસારમાં ભમે છે. તે મુનિશ્રીપણે મહુણ કરેલાં વ્યવહારસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની વૃદ્ધિની પરંપરા વડે અનુભવે સ્વરૂપને અનુભવ જ્યારથી કરે ત્યારથી જ્ઞાન સાધક રૂપે પરિણમે છે, કારણ કે જ્ઞાનમાં નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્ર કેદા અંતર્ભૂત છે. નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની શરૂઆતથી માંડીને, સ્વરૂપ-અનુભવની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં જ્યાંસુધી નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની પૂર્ણતા ન થાય, ત્યાંસુધી જ્ઞાન સાધક રૂપે પરિણમન છે. જ્યારે નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની પૂર્ણતાથી સમસ્ત કર્મને નાશ થાય અર્થાત્ સાક્ષાત્ મોક્ષ થાય ત્યારે જ્ઞાન સિદ્ધ રૂપે પરિણમે છે, કારણ કે તેના અસ્ખલિત નિર્મળ સ્વભાવભાવ પ્રગટ દેહીપ્રમાન થયો છે. આ રીતે સાધક રૂપે અને સિદ્ધ રૂપે—બન્ને રૂપે પરિણમતું એક જ જ્ઞાન આત્મવસ્તુને ઉપાય-ઉપેયપણું સાધે છે).

આ રીતે બન્નેમાં (—ઉપાયમાં તેમ જ ઉપેયમાં—) જ્ઞાનમાત્રનું અનન્યપણું છે અર્થાત્ અન્યપણું નથી; માટે સદાય અસ્ખલિત એક વસ્તુનું (—જ્ઞાનમાત્ર આત્મ-વસ્તુનું—) નિષ્કલ્પ મહુણ કરવાથી, મુમુક્ષુઓને કે જેમને અનાદિ સંસારથી ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ ન થઈ હોય તેમને પણ, તત્કાળ જ ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ થાય છે; પછી તેમાં જ નિત્ય મસ્તી કરતા તે મુમુક્ષુઓ—કે જેઓ પોતાથી જ, કમરૂપ અને અકમરૂપ પ્રવર્તતા અનેક અંતની (અનેક ધર્મની) મૂર્તિઓ છે તેઓ—સાધકભાવથી ઉત્પન્ન થતી પરમ પ્રકર્ષની *કોટિરૂપ સિદ્ધિભાવનું ભાજન થાય છે. પરંતુ જેમાં અનેક અંત અર્થાત્ ધર્મ ગણિત છે એવા એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવરૂપ આ ભૂમિને જેઓ પ્રાપ્ત કરતા નથી, તેઓ સદા અજ્ઞાની વર્તતા થકા, જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું સ્વરૂપથી અભાવન અને પરરૂપથી ભાવન દેખતા (—અદ્વતા) થકા, ભણતા થકા અને આચરતા થકા, મિથ્યાદૃષ્ટિ, મિથ્યા-જ્ઞાની અને મિથ્યાચારિત્રી વર્તતા થકા, ઉપાય-ઉપેયભાવથી અત્યંત ભ્રષ્ટ વર્તતા થકા સંસારમાં પરિવ્રમણ જ કરે છે.

* કોટિ = અનિમતા; ઉત્કૃષ્ટતા; જિંવામાં જિયું નિદુ: ૮૮.

હવે આ અર્થનું ઉપશાસ્ત્ર કાવ્ય કરે છે:—

(વસંતતિલકા)

યે જ્ઞાનમાત્રનિનિભાવમયીમકંપાં
ભૂમિં થયંતિ કયમપ્પપનીતમોદાઃ ।
તે સાધકત્વમધિગમ્ય ભવંતિ સિદ્ધા
મૂઢાસ્ત્રમૂમનુપલભ્ય પરિભ્રમંતિ ॥ ૨૬૬ ॥

અર્થ:—જે પુરુષો, કેહી પણ પ્રકારે લેખનો મોઢાં હર થયો કે એવા થયા થકા, જ્ઞાનમાત્ર નિજભાવમય અકંપ ભૂમિકાનો (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર જે પાતાનો ભાવ લેખન નિશ્ચય ભૂમિકાનો) આશ્રય કરે છે, તેઓ સાધકપણાને પામીને સિદ્ધ થાય છે; પરંતુ જેઓ મૂઢાં (-મોહી, અજ્ઞાની, મિથ્યાદષ્ટિ) છે, તેઓ આ ભૂમિકાને નહિ પામીને સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે.

ભાવાર્થ:—જે ભવ્ય પુરુષો, ચુરુના ઉપશાસ્ત્રી અથવા સ્વયમેવ કાગલકલ્પને પામી મિથ્યાત્વથી રહિત થઈને, જ્ઞાનમાત્ર એવા પાતાના સ્વરૂપને પામે છે, તેઓ આશ્રય કરે છે, તેઓ સાધક થયા થકા સિદ્ધ થાય છે; પરંતુ જેઓ જ્ઞાનમાત્ર એવા પાતાને પામતા નથી, તેઓ સંસારમાં રખડે છે.

આ ભૂમિકાનો આશ્રય કરનાર જીવ કેવો હોય તે હવે કરે છે:—

(વસંતતિલકા)

સ્વાદ્વાદ્યૌતલયુનિશ્ચલસંયમાભ્યાં
યો ભાવયત્યદ્વરહઃ સ્વમિરોપયુત્તઃ ।
જ્ઞાનક્રિયાનયપરસ્પરતીવ્રમૈષી-
પાત્રીકૃતઃ થયતિ ભૂમિમિમાં સ શ્વઃ ॥ ૨૬૭ ॥

અર્થ:—જે પુરુષ સ્વાદ્વાદ્યૌતલયુનિશ્ચલસંયમાભ્યાં (સ્વાદ્યૌતલયુનિશ્ચલસંયમ—જે બન્ને વડે પાતામાં ઉપયુક્ત કરેલો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મામાં ઉપયોગને લેડતો થકો) પ્રતિદિન પાતાને ભાવે છે તેવું જ પાતાના આત્માની ભાવના કરે છે), તે જ એ (૨૬૬) જ્ઞાનનય બને નયની પરસ્પર તીવ્ર મૈત્રીના પાવરૂપ થકેડો, (નિજભાવમય) કાનો આશ્રય કરે છે.

(વસંતતિલકા)

સ્થાદ્વાદદીપિતલસન્મદસિ પ્રકાંર્ગે

શુદ્ધસ્વભાવમદિમન્યુદિતે મયીતિ ।

કિં વેંષમોક્ષપથપાતિભિરન્યમાદૈ-

નિત્યોદયઃ પરમયં સ્ફુરતુ સ્વભાવઃ ॥ ૨૬૯ ॥

અર્થઃ—સ્થાદવાદ વડે પ્રદીપ્ત કરવામાં આવેલું જલસત્ત્વ (-જગજ્ઞાન-
જેનું) જેનું તેજ છે અને જેમાં શુદ્ધસ્વભાવરૂપ અદિમા છે એવો આ પ્રકાશ (જ્ઞાન-
પ્રકાશ) જ્યાં મારામાં ઉદય પામ્યો છે, ત્યાં બીજા-ગ્રાહના માર્ગમાં પડનારા અન્ય
ભાવોથી મારે શું પ્રયોજન છે ? નિત્ય જેનો ઉદય કરે છે એવો કેવળ આ (અનંત
શુદ્ધવસ્તુ) સ્વભાવ જ અને રહસ્યમાન રહે.

ભાવાર્થઃ—સ્થાદવાદથી વધાર્થ આત્મજ્ઞાન થયા પછી એનું ફળ પૂર્ણ
આત્માનું પ્રગટ થવું તે છે. મારે ગ્રાહનો કશુંક પુરૂષ એ જ પ્રાર્થના કરે છે કે—
મારો પૂર્ણસ્વભાવ આત્મા અને પ્રગટ થાઓ; બીજાગ્રાહમાર્ગમાં પડના અન્ય ભાવોનું
મારે શું કામ છે ?

‘જોકે નયો વડે આત્મા સધાય છે તેપણ જો નયો પર જ દષ્ટિ કરે તો નધામાં
તો પરસ્પર વિરોધ પડે છે, મારે હું નયોને અવિરોધ કરીને અર્થાત્ નધાનાં વિરોધ
ખાલીને આત્માને અનુભવું છું’—એવા અર્થનું કાલ્ય રહે કરે છે:—

(વસંતતિલકા)

ચિત્રાત્મગત્તિસમુદાયમયોડ્યમાન્યા

સચઃ પ્રણય્યતિ નયેસણર્વદ્યમાનઃ ।

તસ્માદસંદમનિરાકૃતાવંદમેવ-

મેકાંતજ્ઞાંતમચલં વિદદે મહોડમ્મિ ॥ ૨૭૦ ॥

અર્થઃ—અનેક પ્રકારની નિજ શક્તિઓના સમુદાયમય આ આ મા નધાનાં
દિશી ખંડખંડરૂપ કરવામાં આવતાં તત્કાળ નાશ પામે છે; મારે હું એમ અનુભવ
કરું કે—એમાંથી ખરોતે નિરાકૃત કરવામાં આવ્યા નથી છતાં જે અર્થમાં છે, એનાં
એમાં શાંત છે (અર્થાત્ જેમાં કર્મના ઉદયનો સેશ થયે નથી એવા અ-વ-ત-ર-ન)

* નિરાકૃત = નિરૂપીત; દુઃગઃ ગદ્યાત્મક; નાકાનુષ્ઠન.

ભાવમય છે) અને અવયવ છે (અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી ચળાન્યું ચળતું નથી) ચૈતન્યમાત્ર તેજ હું:પું.

ભાવાર્થ:—આત્મામાં અનેક શક્તિઓ છે અને એક એક શક્તિનો એક એક નય છે; મારે જો નયોની એકાંત દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો આત્માના ખંડ થઈને તેનો નાશ થઈ જાય. આમ હોવાથી સ્યાદવાદી, નયોનો વિરોધ ચૈતન્યમાત્ર વસ્તુને અનેકશક્તિસમૂહરૂપ, સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ, સર્વશક્તિમય એકજ્ઞાન માત્ર અનુભવે છે. એવું જ વસ્તુનું સ્વરૂપ છે, એમાં વિરોધ નથી.

હવે, જ્ઞાની અખંડ આત્માનો આવો અનુભવ કરે છે એમ આચાર્યશ્રી ગદ્યમાં કહે છે:—

(જ્ઞાની શુદ્ધનયનું આકાંક્ષન સર્વ એમ અનુભવે છે કે—) હું અને અર્થાત્ મારા શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને નથી દ્રવ્યથી ખંડતો (-ખડિત કરતો), નથી ક્ષેત્રથી ખંડતો, નથી કાળથી ખંડતો, નથી ભાવથી ખંડતો; સુવિશુદ્ધ એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હું.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયથી જોવામાં આવે તો શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર ભાવમાં ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી કાંઈ પણ ભેદ દેખાતો નથી. મારે જ્ઞાની અભેદજ્ઞાનસ્વરૂપ અનુભવમાં ભેદ કરતો નથી.

જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પાતે જ જ્ઞાન છે, પાતે જ પાતાનું જ્ઞેય છે અને પાતે જ પાતાનો જ્ઞાતા છે—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(શાંતિની)

યોડ્યં ભારો જ્ઞાનમાત્રોડમસ્મિ

જ્ઞેયો જ્ઞેયજ્ઞાનમાત્રઃ મ નૈવ ।

જ્ઞેયો જ્ઞેયજ્ઞાનકલ્હોન્વન્મન

જ્ઞાનજ્ઞેયજ્ઞાતૃમદ્વન્તુમાત્રઃ ॥ ૨૭૧ ॥

અર્થ:—જો આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હું:પું તે જ્ઞેયોના જ્ઞાનમાત્ર જ ન જાનુંવેદ (પરંતુ) જ્ઞેયોના આકાંક્ષે થતા જ્ઞાનના કદસોડોરૂપ પરિભ્રમતો તે, જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતામય વસ્તુભર જાનુંવે (અર્થાત્ પાતે જ જ્ઞાન, પાતે જ જ્ઞેય અને પાતે જ જ્ઞાતા—એમ જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતારૂપ ત્રણે ભાવો અદિત વસ્તુમાત્ર જાનુંવે).

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનમાત્ર ભાવ અનુનિયાસરૂપ દેવાથી જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. વળી તે પાતે જ નીચે પ્રમાણે જિવરૂપ છે. આથી જ્ઞેય જ્ઞાનથી ભ્રૂણ છે, જ્ઞાનમાં પદમય નથી;

જેથીના આકારની ઝગડ જ્ઞાનમાં આવતાં જ્ઞાન જોવાકારરૂપ દેખાય છે પરંતુ એ જ્ઞાનના જ કલ્પોલો (તરંગો) છે. તે જ્ઞાનકલ્પોલો જ જ્ઞાન પડે જણાય છે. આ રીતે પોતે જ પોતાથી જગ્યાવાયોઅ હોવાથી જ્ઞાનમાંત્ર ભાવ જ જોયરૂપ છે વળી પોતે જ પોતાનો જગુનાર હોવાથી જ્ઞાનમાંત્ર ભાવ જ જ્ઞાતા છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનમાંત્ર ભાવ જ્ઞાન, જેષ અને જ્ઞાતા—એ ત્રણે ભાવેણુક સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ તરતુ છે. ‘આવો જ્ઞાનમાંત્ર ભાવ હું કું’ એમ અનુભવ કરનાર પુરુષ અનુભવે છે.

આત્મા મેષક, અમેષક ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારે દેખાય છે તેપણુ યથાર્થ જ્ઞાની નિર્ભજ જ્ઞાનને ભૂડનો નથી—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(૫૨૫)

કંચિદ્દસતિ મેષકં કચિન્મેષકામેષકં

કચિત્પુનરમેષકં સહજમેવ તત્ત્વં મમ ।

તયાપિ ન વિમોહયત્યમલમેષસાં તન્મનઃ

પરસ્પરસુસંહતમવદત્તક્રિક્તિકં સ્ફુરત્ ॥ ૨૭૨ ॥

અર્થ:—(જ્ઞાની કહે છે:) મારો તત્ત્વનો એવો સ્વભાવ જ છે કે કોઈ વાર તે (આત્મતત્ત્વ) મેષક (અનેકાકાર, અશુદ્ધ) દેખાય છે, કોઈ વાર મેષક-અમેષક (એકરૂપ) દેખાય છે અને વળી કોઈ વાર અમેષક (અકાર, શુદ્ધ) દેખાય છે; તેપણુ પરસ્પર સુસંહત (અભિજિત, અમથિત, સારી રીતે મુખાપેલી) પ્રગટ શક્તિઓના સમુદાયરૂપે સ્ફુરણમાન તે આત્મતત્ત્વ નિર્ભજ બુદ્ધિવાળાઓના મનને વિમોહિત કરતું નથી (અમિત કરતું નથી, મુઠવતું નથી).

ભાવાર્થ:—આત્મતત્ત્વ અનેક શક્તિઓવાળું હોવાથી કોઈ અવસ્થામાં કોઈના દેહપના નિમિત્તથી અનેકાકાર અનુભવાય છે, કોઈ અવસ્થામાં શુદ્ધ એકાકાર અનુભવાય છે અને કોઈ અવસ્થામાં શુદ્ધાશુદ્ધ અનુભવાય છે; તેપણુ યથાર્થ જ્ઞાની સ્વાદવાદના બળથી ભ્રમિત થતો નથી, ‘જેવું’ છે તેવું જ માને છે, જ્ઞાનમાંત્રથી મુગ્ધ થતો નથી.

આત્માને: અનેકાંતસ્વરૂપ (અનેક સ્વરૂપસ્વરૂપ) વેલખ અહેબુત (આમર્ષ-શરક) છે—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(૫૨૬)

ઈતો મત્તમનેકતાં દુષદિતઃ સદાપ્યેકતા-

મિતઃ સજવિભંગુરં ધ્રુવમિતઃ સદૈવોદયાન્ ।

સાવાર્થ:—અહીં પણ ૨૭૩મા કાવ્યના સાવાર્થ પ્રમાણે જાણવું. આત્માને કાંતમય સ્વભાવ સાંભળીને અન્યવાદીને ભારે આશ્ચર્ય થાય છે. તેને આ વાતમાં શંકા ભાસે છે. તે આવા અનેકાંતમય સ્વભાવની વાતને પાતાના ચિત્તમાં સમાવી—લી શકતો નથી. જો કદાચિત્ તેને મદદ થાય તો પણ પ્રથમ અવસ્થામાં તેને જાણી શકતો નથી. જો 'આહો આ જિનવચનો મહા ઉપકારી છે, વસ્તુના વધાર્થ સ્વરૂપને જાણનારાં છે; મેં અનાદિ કાળ આવા વધાર્થ સ્વરૂપના જ્ઞાન વિના જોયો!'—આમ આશ્ચર્યપૂર્વક મદદાન કરે છે.

હવે દીક્ષાકાર આચાર્યદેવ આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર પૂર્ણ કરતાં તેનાં (તંત્રમંગલને અર્થે આ ચિત્તચમત્કારને જ સર્વોત્કૃષ્ટ કહે છે:—

(માસિની)

જયતિ સદ્જતેજઃપુંજમજ્જત્તિયોક્તી-
સ્ત્વલદ્વિલ્લિલ્લવોડ્પ્યેક એવ સ્વરૂપઃ ।
સ્વરસવિસરપૂર્ણાચ્છિદ્ધતત્ત્વોપવંચઃ
મસમનિયમિતાર્ચિધિષમત્કાર એવઃ ॥ ૨૭૫ ॥

અર્થ:—સદ્જ (-પાતાના સ્વભાવરૂપ) તેજઃપુંજમાં ત્રણ હોતીના પદાર્થો મળી થતા હોવાથી જેમાં અનેક હોદા થતા દેખાય ॥ તોપણ જેનું એક જ સ્વરૂપ છે (અર્થાત્ દેવજ્ઞાનમાં સર્વ પદાર્થો ઝગકતા હોવાથી જે અનેક રોપાણીરૂપ દેખાય છે તોપણ ચૈતન્યરૂપ જ્ઞાનાકારની દૃષ્ટિમાં જે એકસ્વરૂપ જ છે), જેમાં નિજ રસના દેશવર્થી પૂર્ણ અહિં તત્ત્વ-ઉપસંગિષ્ટ છે (અર્થાત્ પ્રતિપક્ષી હમને અભાવ થયા હોવાથી જેમાં સ્વરૂપ-અનુભવનનો અભાવ થતો નથી) અને અત્યંત નિયમિત જેની ભાવ છે (અર્થાત્ અનંત વીર્યથી જે નિષ્કંપ રહે છે) એવો આ (પ્રત્યક્ષ અનુભવવાચર) ચૈતન્યચમત્કાર જયવંત વર્તે છે (-કોઈથી બાધિત ન કરી શકાય એમ સર્વોત્કૃષ્ટપણે વર્તે છે).

(અહીં 'ચૈતન્યચમત્કાર જયવંત વર્તે છે ' એમ કહેવામાં જે ચૈતન્ય ચમત્કારનું સર્વોત્કૃષ્ટપણે વર્તવું જણાયું; તે જ મંગલ છે.)

હવેના કાવ્યમાં દીક્ષાકાર આચાર્યદેવ અંતમંગલને અર્થે આ આવી છે અને સાથે સાથે પાતાનું નામ પણ પ્રગટ કરે છે:—

(આશિની):

અવિચલિતચિદાત્મન્યાત્મનાત્માનમાત્મ-
ન્યનવરતનિર્મળં ધારયદ્ધ્વસ્તમોહમ્ ।

ઉદિતમમૃતચંદ્રજ્યોતિરેતત્સમંતા-

જ્વલતુ વિમલપૂર્ણં નિઃસપ્તનસ્વભાવમ્ ॥ ૨૭૬ ॥

અર્થ:—જે અચળ-ચેતનાસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માને પોતાથી જ એક
પરતપણે. (નિરંતર) નિમગ્ન રાખે છે (અર્થાત્ પ્રાપ્ત કરેલા સ્વભાવને કદી છોડી
નથી), જેણે મોહનો (અજ્ઞાન-અધિકારનો) નાશ કર્યો છે, જેનો સ્વભાવ નિઃસપ્ત
(અર્થાત્ પ્રતિપક્ષી કર્મો વિનાનો) છે, જે નિર્મળ છે અને જે પૂર્ણ છે એવી આ
ઉદય પામેલી અમૃતચંદ્રજ્યોતિ (અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન જ્યોતિ, જ્ઞાન, આત્મા)
સર્વ તરફથી જાગ્યવ્યમાન રહેલું.

ભાવાર્થ:—જેનું મરણ નથી તથા જેનાથી અન્યનું મરણ નથી તે અમૃત
છે; વળી જે અત્યંત સ્વાદિષ્ટ (સ્મીકુ-) હોય તેને લોકો રૂઢિથી અમૃત કહે છે. અહીં
જ્ઞાનને—આત્માને—અમૃતચંદ્રજ્યોતિ (અર્થાત્ અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન જ્યોતિ)
કહેલ છે, તે હુષોપમા અસંકારથી કંઈ જાણવું; કારણ કે ‘અમૃતચંદ્રજ્યોતિ’ના
સમાસ કરતાં ‘યત્’નો લોપ થઈ ‘અમૃતચંદ્રજ્યોતિઃ’ થાય છે.

(‘યત્’-શબ્દ ન મૂકતાં અમૃતચંદ્રરૂપ જ્યોતિ એવો અર્થ કરીએ તો
એકરૂપ અસંકાર થાય છે. ‘અમૃતચંદ્રજ્યોતિઃ’ એવું જ આત્માનું નામ કહીએ તો
અનેકરૂપ અસંકાર થાય છે.)

આત્માને અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન કહ્યો હોવા છતાં, અહીં કહેલાં વિશેષણો
વડે આત્માને ચંદ્રમા સાથે બ્યવિરેક પડે છે; કારણ કે—‘ધ્વસ્તમોહ’ વિશેષણ અજ્ઞાન-
અધિકારનું ફર થતું જણાવે છે, ‘વિમલપૂર્ણ’ વિશેષણ સાંતનરહિતપણું તથા પૂર્ણપણું
જનાવે છે, ‘નિઃસપ્તનસ્વમાય’ વિશેષણ સદુષ્ણિતથી તથા વાદળો અવરોધી આશ્ચર્ય
ન થવાનું જણાવે છે, ‘સમંતાત્ જ્વલતુ’ કંઈ છે તે સર્વ દેશ તથા સર્વ કાળે પ્રગમ
કરવાનું જણાવે છે; ચંદ્રમા એવો નથી.

આ કાવ્યમાં ટીકાકાર આચાર્યજીવે ‘અમૃતચંદ્ર’ એવું પાનાનું નામ પણ
જણાવ્યું છે. સમાસ પદોની અર્થ કરતાં ‘અમૃતચંદ્ર’ ના અને ‘અમૃતચંદ્રજ્યોતિ’ના
અનેક અર્થો થાય છે તે વ્યાસભવ જાણવા.

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાનરૂપ સદા ચિદાનંદ કરતા ન ભોગતા ન પરદ્રવ્યભાવકે,
મૂરત અમૂરત એ આનંદરૂપ લોકમાંહિ તેલી જ્ઞાનરૂપ નાહી ન્યારે ન અભાવકે,
શ્વેતનિ જ્ઞાની હવ આપકું ભાજે સદીવ જ્ઞાનરૂપ મુખેનૂપ આન ન લગાવકે,
ઈર્ષ્ય કર્મફલરૂપ ચેતનાહૂં દૂરિ દેવરિ જ્ઞાનચેતના અભ્યાસ કરે શુદ્ધ ભાવકે.

આમ આ સમયસારમંથની (શ્રીમદ્ અમૃતચંદ્રસુદિવિરચિત) આશ્રમચારિ
વ્રતની ટીકાની પડિત જયચંદ્રહૃત ભાષાવચનિકામાં નવમે સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન
અધિકાર પૂર્ણ થયેલ.

*

*

*

હવે શ્રીમાન્ અમૃતચંદ્ર આચાર્યદેવ એ કાળે કહીને આ સમયસારમંથની
આશ્રમચારિ નામની ટીકા પૂર્ણ કરે છે.

‘અજ્ઞાનદશામાં આત્મા સ્વરૂપને ભૂલીને સમદ્રેષમાં વર્તેલ દુને, પરદ્રવ્યની
સ્થિતિ જાણે નથી થતે, ક્રિયાના ફળને ભોખા થતો દુને,—‘કંત્યદિ ભાવો કંતે
દુને; પરંતુ હવે જ્ઞાનદશામાં તે ભાવો કાંઈ જ નથી એમ અનુભવાય છે.’—આપ
અર્થનું કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(સાદૃશવિગીન)

યસ્માદ્દેવમમૃતપુરા સ્વપર્યોર્થતં યતોઽજ્ઞાનરૂ
રાગદ્રેષપરિગ્રહે સતિ યતો જાનં ક્રિયાચારકઃ ।
જ્ઞાના વ યતોઽનુભૂતિરવિલંભિયા ક્રિયાપાઃ વચ ।
તદ્વિજ્ઞાનયનોપમમધુના કિંચિન્ન કિંચિન્નિચ ॥ ૨૭૭ ॥

અર્થ:—જેનાથી (અર્થાત્ એ પરસ્પરોગરૂપ બેષપર્યાયજનિત અજ્ઞાનરૂપ) પ્રથમ પાનાનું અને પરનું દેવ થયું (અર્થાત્ પાનાના અને પરના ભેગભેગ, જ્ઞાનરૂપ ભાવ થયા), દેવપક્ષ થતાં જેનાથી સ્વરૂપમાં અંતર પડયું (અર્થાત્ બેષપર્યાય એ પાનારૂપ જખાયા), સ્વરૂપમાં અંતર પડતાં જેનાથી રાગદ્રેષનું મદબ થયું, રાગદ્રેષનું મદબ થતાં જેનાથી ક્રિયાના કારકો ઉત્પન્ન થયા (અર્થાત્ ક્રિયાના અને જ્ઞાનરૂપ અર્થે કારકોનો ભેદ પડ્યો), કારકો ઉત્પન્ન થતાં જેનાથી અનુભૂતિ ક્રિયાના કારકરૂપ ફળને ભોગવતી થકી બિન્ન થઈ (એક પામી), તે અજ્ઞાન હવે વિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષ અપેક્ષા મળ થયું (અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપ પરિબ્રુવ્યું) તેથી હવે તે બધું અંતર શાંત થઈ ગયું.

ભાવાર્થ:—પરસયોગીમાં જ્ઞાન જ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમ્યું હતું, અજ્ઞાન કબુત્રી વસ્તુ નહોતી; માટે હવે જ્યાં તે જ્ઞાનરૂપે પરિણમ્યું ત્યાં તે (અજ્ઞાન) કાંઈ ન રહ્યું. અજ્ઞાનના નિમિત્તે રાગ, દ્વેષ, ક્રિયાનું કર્નાપણ, ક્રિયાના ફળનું (નુષ્ઠાન) ભોજાપણું છત્યાકિ ભાવો થતા હતા તે પણ વિલસ પામ્યા; એક જ્ઞાન જ મૂલી માટે હવે આત્મા સ્વ-પરના ત્રણકાળવર્તી ભાવોને જ્ઞાતા-દ્રશ્ય થકિને કેળ્યા જ કહે.

‘પૂર્વોક્ત રીતે જ્ઞાનવશામાં પરની ક્રિયા પાતાની નહિ ભાસતી હોવાથી આ સમયસારની બ્યાખ્યા કરવાની ક્રિયા પણ મારી નથી, શબ્દોની છે.’—એવ અર્થનું; સમયસારની બ્યાખ્યા કરવાના અભિમાનરૂપ કપાયના ત્યાગને મૂલ્યવાન કાવ્ય હવે કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

સ્વશક્તિસંમૂચિતવસ્તુતત્ત્વૈ-

ન્યાય્યા કૃતેયં સમયસ્ય શબ્દૈઃ ।

સ્વરૂપગુણસ્ય ન કિંચિદસ્તિ

કર્તવ્યમેવામૃતત્ત્વદ્રમૂરેઃ ॥ ૨૭૮ ॥

અર્થ:—પાતાની શક્તિથી જેમણે વસ્તુનું તત્ત્વ (અર્થ સ્વરૂપ) સારી રીતે કહ્યું છે એવા શબ્દોએ આ સમયની બ્યાખ્યા (આત્મવસ્તુનું બ્યાખ્યાન અથવા સમયપ્રાબુતશાસ્ત્રની ટીકા) કરી છે; સ્વરૂપગુણ (અમૂર્તિક જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપમાં ગુણ) અમૃતત્ત્વદ્રમૂરિત્વ (તેમાં) કાંઈ જ કર્તવ્ય નથી.

ભાવાર્થ:—શબ્દો છે તે તો પુદ્ગલ છે. તેઓ પુરુષના નિમિત્તથી વર્ણ-પદ-વાક્યરૂપે પરિણમે છે; તેથી તેમનામાં વસ્તુના સ્વરૂપને કહેવાની શક્તિ સ્વયમેવ છે, કારણ કે શબ્દોને અને અર્થોને વાચ્યવાચક સંબંધ છે. આ રીતે દ્રવ્યશ્રુતની રચના શબ્દોએ કરી છે એ વાત જ અર્થાર્થ છે. આત્મા તો અમૂર્તિક છે, જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, તેથી તે મૂર્તિક પુદ્ગલની રચના કેમ કરી શકે? માટે જ આચાર્યદેવે કહ્યું છે કે ‘આ સમયપ્રાબુતની ટીકા શબ્દોએ કરી છે, હું તો સ્વરૂપમાં હીન છું; મારું કર્તવ્ય તેમાં (ટીકા કરવામાં) કાંઈ જ નથી.’ આ કથન આચાર્યદેવની નિર્માનતા પણ બતાવે છે. હવે જો નિમિત્તનૈમિત્તિક વ્યવહારથી કહીએ તો એમ પણ કહેવાય છે જ કે અમુક કાર્ય અમુક પુરુષે કર્યું. આ ન્યાયે આ આત્મબ્યાતિ નામની ટીકા પણ અમૃત-ચંદ્રાચાર્યકૃત છે જ. તેથી તેને વાંચનારા તથા સાંભળનારાઓએ તેમનો ઉપકાર માનવો પણ યુક્ત છે; કારણ કે તેને વાંચવા તથા સાંભળવાથી પારમર્થિક આત્માનું સ્વરૂપ

જાય છે, તેનું અદ્વાન તથા આચરણ થાય છે, મિથ્યા જ્ઞાન, અદ્વાન તથા આચરણ થાય છે અને પરપરાએ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. મુમુક્ષુઓએ આનો નિરંતર અભ્યાસ કરવાનો છે.

આમ આ સમયસારગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકા સમાપ્ત થઈ.

(હવે ૫૦ જયચંદ્ર ભાષાટીકા પૂર્ણ કરે છે:—)

[illegible]

સમયસાર અવિકારકા, વર્ણન કર્યું મુનંત;

સમયસાર આધિકારીકાં, વડુ ને હજી, આનમનત્વ લખાંત. ર.

આ પ્રમાણે આ સમયપ્રાબૃત (અથવા સમયસાર) નામના ગ્રંથની આશ-
ખ્યાતિ નામની સંદેશ દીકાની દરભાગામય વચનિકા લખી છે. તેમાં સંદેશ દીકાનો
અર્થ લખ્યો છે અને અતિ સંક્ષિપ્ત ભાવાર્થ લખ્યો છે, વિસ્તાર ક્યાં નથી. સંદેશ
દીકામાં ન્યાયથી સિદ્ધ થયેલા પ્રયોગો છે. તેમનો વિસ્તાર કરવામાં આવે તો અનુમાન-
પ્રમાણના પાંચ અગ્રાપૂર્વક—મતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિમગ્નપૂર્વક—
સ્વરૂપનાથી વ્યાખ્યાન લખતાં ગ્રંથ બહુ વધી જાય; તેથી આશુ, શુદ્ધિ, જગ અને
સ્થિતિનાથી અદ્યપનાને સીધી, જેટલું જની સંકષ્ટ તેરલું, સંદેશથી પ્રયાજનભાવ લખ્યું
છે. તે વાંચીને બધું જાણે પદાર્થને સમજાવે. કોઈ અર્થમાં હીનાવિહીન ગ્રંથ
શુદ્ધિમાનો મૂળ ગ્રંથમાંથી જેમ હોય તેમ સંધાર્થ સમજી લેતે. આ ગ્રંથના ગુરુ-
સંપ્રદાયનો (-ગુરુપરંપરાગત ઉપદેશનો) બુદ્ધિ થઈ ગયો છે, મારે જેટલો જની
શકે તેટલો (-વધારાજી) અભ્યાસ થઈ શકે છે. તેપણ જેઓ સ્વાદ્યયરમ્ય વિનમ્રની
આજ્ઞા માને છે, તેમને વિષદીત મદાન થતું નથી. ક્યાંક અર્થનું અનુસંધાન સમજાવતું
પણ થઈ જાય તો વિશેષ શુદ્ધિમાનનું નિમિત્ત મળેલું યથાર્થ થઈ જાય છે. વિનમ્રની
મદાવાગામ્યો હામમતી હોવા નથી.

કરીએ છીએ:—

મંગલ મી અગત્ય લાગ્યા કર્મ નિવારે,
મંગલ શિદ્ધ મદત કર્મ આપેં પરતરે;
આચાર્ય ઉવજાયા મુની મંગલમય સાગે,
દીક્ષા શિક્ષા રૂપ બચ્ચલ્લનિદ્ તારે;
આઠવીસ મુતગુણ પાર જે સર્વસાધુ અજગાર હે,
મેં નમ્ર પંચગુરુગરબૂં મંગલ હેલ કરાર હે. ૧.

જેપુર નગરમાંલિ તેરાપય શેલી બડી
બડે બડે ગુની જહાં પડે મથ સાર હે,
જયચંદ નામ મેં હું વિનિમેં અવ્યાસ કિજૂ
કિયો બુદ્ધિસારુ ધર્મરાગતે વિચારે હે;
સમયસાર મથ તાકી દેરાકે વચનરૂપ
લાયા કરિ પકો મુનૂં કરો નિરધાર હે,
આપાપર બેઠ જાનિ હેય ત્યાગિ ઉપદેય
ગહો શુદ્ધ આતમકૂં, યહી બાત સાર હે. ૨.

સંવત્સર વિક્રમ તણૂં, અષ્ટાદશ રાત ઓર;
ચૌસાઠિ કાલિક વહિ દરો, પૂરજુ મથ સુઠીર. ૩.

આમ શ્રીમદ્ભગવત્કુંદકુંદાચાર્યકૃત સમયપ્રાબુત નામના પ્રાકૃતગાથાબદ્ધ
મથની શ્રીમદ્ અમૃતચંદ્રાચાર્યવિરચિત આત્મઅભ્યાસિ નામની સંસ્કૃત દીક્ષા અનુસાર
પાઠિત જયચંદ્રકૃત સંક્ષેપભાવાર્થમાત્ર-દેશભાષામય વચનિકા સંપૂર્ણ થઈ.



श्रीसमयसारणी वर्णानुक्रम गाथासूची

	भाषा पृष्ठ	भाषा पृष्ठ	भाषा पृष्ठ
अक्षयवसाननिमित्तं	२६७ ३२८	अगुरुं गुरुं य नृवं	३८१ ४३९
अक्षयवतिरेण संघो	२६२ ३०३	अगुरुं गुरुं य नृवं	३७६ ४३८
अक्षयिण्ये कामे	१८९ २४४	अगुहो गुहो य मंधो	३७७ ४३९
अक्षयिर्दं दि य कामं	४९ ७७	अगुहो गुहो य गुणो	३८० ४३९
अक्षयिण्येण	३७२ ४३९	अगुहो गुहो य पालो	३७९ ४३९
अक्षयमममो भाषो	१२७ १६३	अगुहो गुहो य रतो	३७८ ४३९
अक्षयानमया भाषा	१२९ १६९	अगुहो गुहो य सहो	३७९ ४३८
अक्षयानमया भाषा	१३१ १६६	अह जाणमो उ भाषो	३४४ ४०१
अक्षयानमोहिदमदी	२३ ४९	अह जीषो पयडो तह	३३० ३९५
अक्षयानमम न उद्धमो	१३२ १६८	अह ण पयडो ण जीषो	३३१ ३९५
अक्षयानी कामफलं	३१६ ३८४	अह ण पयडो ण जीषो	३१५ ३५५
अक्षयानी पुण रतो	२१९ २७९	अह ण अण्णो कोहो	३८ ६७
अण्णो करेह अण्णो	३४८ ४०९	अहमिणो वतु सुद्धो	७३ १०९
अत्ता जम्भामुत्तो	४०५ ४७४	अहमिणो वतु सुद्धो	२० ४६
अपडिक्कमं दुयिदं	२८३ ३४१	अहमेदं पदमदं	३२९ ३९५
अपडिक्कमं दुयिदं द्ये	२८४ ३४१	अहया पसो जीषो	३४१ ४००
अपरिग्गहो अणिच्छो	२१० २७०	अहया मण्णसि मज्जं	१२४ १६०
अपरिग्गहो अणिच्छो	२११ २७१	अह सयमया परिणमदि	६३ ९२
अपरिग्गहो अणिच्छो	२१२ २७२	अह संसारत्थाणं	११९ १५७
अपरिग्गहो अणिच्छो	२१३ २७३	अह सयमेव हि परिणमदि	
अपरिणमतसि सयं	१२२ १६०		
अयडिक्कमणमग्गडिलरणं	३०७ ३७१	आ	
अयानमण्णया रंधिऊण	१८७ २४०	आउक्कयेण मरणं	२४८ ३१३
अयानमयाणंता	३९ ७१	आउक्कयेण मरणं	२४९ ३१३
अयानमयाणंतो	२०२ २९८	आउक्कयेण जीवदि	२५१ ३१५
अया णिषो अलंछिज्जपदेसो	३४२ ४००	आउक्कयेण जीवदि	२५२ ३१५
अयाणं हायंतो	१८९ २४०	आउक्कयेण जीवदि	२०३ २६०
अरत्तमरुयमगंधं	४९ ८०	आइलि वयमावे	२७७ ३३८
अथरे अज्जवसानेमु	४० ७१	आदा वु मग्ग णाणं	२८७ ३४८
		आधाकम्मं उदेसियं	२८६ ३४७
		आधाकम्माराया	२०४ २६२
		आभिणिषोहियमुद्धोधि	२७६ ३३८
		आयारादी णाणं	

भायासं पि ण णाणं
आसि मम पुच्चमेदं

इ

इणमण्णं जीयादो
इय कम्मबंधणाणं

उ

उद्वो असंजमस्स दु
उदयधियागो विविहो
उप्पण्णोदयभोगो
उप्पादेदि करोदि य
उम्मगं गच्छंतं
उयओगस्स अणाई
उयओगो उयओगो
उयघायं कुब्बंतस्स
उयघायं कुब्बंतस्स
उयभोगमिदियेहिं

ए

एपण कारणेण दु
एप सव्वे भाया
एपसु य उयभोगो
एपहिं य संयधो
एफं य दोण्णि तिण्णि
एकस्स दु परिणामो
एकस्स दु परिणामो
एदस्सि रदो णिअं
एदाणि णत्थि जेसिं
एदे अवेदणा खलु
एदेण कारणेण दु
एदेण दु सो कत्ता
एदेसु हेदुमदेसु
एदेहिं य णियत्ता
एमादिप दु विविहे

गाया पृष्ठ

४०१ ४६७

२१ ४६

२८ ५४

२९० ३५२

१३३ १६८

१९८ २५३

२१५ २७५

१०७ १५१

२३४ २९७

८९ १३०

१८१ २३४

२३९ ३०४

२४४ ३०८

१९३ २४८

८२ १२०

४४ ७४

९० १३१

५७ ८७

६५ ९४

१४० १७२

१३८ १७१

२०६ २६६

२७० ३३१

१११ १५३

१७६ २२४

९७ १३९

१३५ १६८

६६ ९४

२१४ २७३

पमेव कम्मपयडीं

पमेव जीयपुरिसो

पमेव मिच्छादिही

पमेव य वचहारो

पमेव सम्मदिही

एयं तु अवियरीदं

एयं ॥ जाणिऊण

पयत्तणिच्छयगमो

पयत्तु असंभूदं

पयमलिये अदसे

पयमिह ओ दु जीयो

पयस्सि सावराहो

एवं गंधरसफासरूया

एवं जाणदि णाणी

एवं ण कोवि मोफळो

एवं णाणी सुद्धो

एवं तु निच्छयणयस्स

एवं पराणि दव्याणि

एवं पुगलदुब्बं

एवं वंधो उ दुण्हं वि

एवं मिच्छादिही

एवं वचहारणमो

एवं वचहारस्स उ

एवं वचहारस्स दु

एवंविहा यदुचिहा

एवं संखुयएसं

एवं सम्मदिही

एवं सम्मादिही

एवं हि जीवराया

एसा दु जा मई दे

क

कणयमया भायादो
कम्मइययगणासु य

गाया पृष्ठ

१४९ १९३

२२५ २८९

३२६ ३९२

४८ ७९

२२७ २८५

१८३ २३४

३८२ ४३९

३ ९

२२ ४९

२६३ ३२४

११४ १५१

३०३ ३६७

६० ८८

१८५ २३७

३२३ ३९०

२७९ ३४१

३६० ४२०

९६ १३८

६४ ९२

३१३ ३८१

२४१ ३०४

२७२ ३३४

३५३ ४१४

३६५ ४२१

४३ ७२

३४० ४००

२०० २५५

२४६ ३०८

१८ ४२

२५९ ३२१

१३० १६१

११७ १५७

भाषा	पृष्ठ	भाषा	पृष्ठ
मं अं पुनःकर्म	१८३ ४४१	तिरिदि भिरिदि य तदा	२४३ ३०८
मं अं मुदमगुदं	१८४ ४४१	तिरिदु या भिरिदु या	२०९ २६९
मं कानं न हय	१८५ ४४६	ज	
मं पय कला	१८६ ४५०	जह जीवेण नद धिय	१३७ १७०
मं बटमबटं	१८७ १७३	जाया इमेण जीवेण	७१ १०१
ममगुदं कुलीनं	१८८ १००	जाया न पय संरयो	२२२ २८१
ममय अघावेण य	१८९ २४३	अं कुणह भायमादा	९१ १३२
ममय य परिणामं	७९ ११३	अं कुणदि भायमादा	१२९ १६२
मममुदयं जीवं	४१ ७२	अं भावं मुदमगुदं	१०२ १४३
मं लोकात्मनि य	१० ४०	अं मुदमगुदमुदिणं	३८९ ४४९
मं हि दु अण्णाणी	३३२ ३९९	जदि जीयो न सरीरे	२६ ५२
मं हि ममादिज्जर	३३४ ३९९	जदि पुगलकम्मणि	८९ १२४
मं हि मुदायिज्जर	३३६ ३९९	जदि सो परदय्याणि य	९९ १४४
मं ओदण जीया	२९४ ३१७	जदि सो पुगलदय्या	९९ ४९
मं ओदण जीया	२९५ ३१७	जया विमुंचय वेया	३१५ ३८९
मं ओदण जीया	२९६ ३१७	जह कणयमगितयियं	१८४ २३३
मं सो धियर अया	२९६ ३१९	जह कोवि यरो जंय	३२५ ३९२
मं सो कानं न हय	४०० ४६३	जह चिट्टं कुय्यंतो	३२५ ४१५
मं हि दु पञ्चपदि	३४९ ४०९	जह जीयम्म अण्णुपमाणां	११३ १५५
मं हि दु पञ्चपदि	३४९ ४०९	जह यथि कुणह व्हेदं	२८९ ३५९
मं नाम भणिज्ज	२०३ २६८	जह यथि मन्ममणज्जो	८ १३
मं नाम भणिज्ज	३०० ३६५	जह नाम को यि पुणितां	१३ ४५
मं ओहासु बट्टस्स	७० १०४	जह नाम को यि पुणितां	३५ १५
मं ओहासु कोहो	१२९ १६०	जह नाम	१४८ १५५
ग		जह नाम को	२३३ ३५५
मं सो कानं न हय	३०४ ४६६	जह नाम	२८८ ३५५
मं लोकात्मनि य	११२ १५३	जह परदय्य	३१३ ४५५
च		जह	३१३
मं हि दु अण्णुपमाणां	१३० २१९	जह	
मं हि मुदायिज्जर	१६३ २०६	जह	
मं सो धियर अया	३१२ ३८९	जह	
उ			
तिरिदि भिरिदि य तदा	२३१ ३५५		

आयासं पि ण णाणं
आसि मम पुव्वमेदं

इ

इणमण्णं जीवादो
इय कम्मबंधणाणं

उ

उदओ असंजमस्स दु
उदयविषागो विविहो
उप्पण्णोदयभोगो
उप्पादेदि करेदि य
उम्मगं गच्छंतं
उयभोगस्स अणार्हं
उयभोगे उयभोगो
उयघायं कुब्बंतस्स
उयघायं कुब्बंतस्स
उयभोगमिदियेहिं

ए

एपण कारणेण दु
एय सव्वे भावा
एपसु य उयभोगो
एपहि य संयंधो
एकं च दोण्णि तिण्णि
एकस्स दु परिणामो
एकस्स दु परिणामो
एद्वहि रदो णिणं
एद्वणि णत्थि जेसिं
एद्वे अचेदणा खलु
एद्वेण कारणेण दु
एद्वेण दु सो कत्ता
एद्वेसु हेदुमूदेसु
एद्वेहि य णियत्ता
एमादिप दु विविहे

गाथा पृष्ठ

४०१ ४६७

२१ ४६

२८ ५४

२९० ३५२

१३३ १६८

१९८ २५३

२१५ २७५

१०७ १५१

२३४ २९७

८९ १३०

१८१ २३४

२३९ ३०४

२४४ ३०८

१९३ २४८

८२ १२०

४४ ७४

९० १३१

५७ ८७

६५ ९४

१४० १७२

१३८ १७१

२०६ २६६

२७० ३३१

१११ १५३

१७६ २२४

९७ १३९

१३५ १६८

६६ ९४

२१४ २७३

गाथा पृष्ठ

१४९ १९४

२२५ २८५

३२६ ३०२

४८ ७९

२२७ २८५

१८३ २३४

३८२ ४३९

३ ९

२२ ४६

२६३ ३२४

११४ १५५

३०३ ३६७

६० ८८

१८५ २३७

३२३ ३९०

२७९ ३४१

३६० ४२०

९६ १३८

६४ ९२

३१३ ३८१

२४१ ३०४

२७२ ३३४

३५३ ४१४

३६५ ४२१

४३ ७२

३४० ४००

२०० २५५

२४६ ३०८

१८ ४२

२५९ ३२१

क

कणयमया भायानो
कम्मइयवग्गणासु य

१३० १६६

११७ १५७

कम्मं जं पुण्यकार्यं
कम्मं जं सुदमगुरुं
कम्मं पाणं न हय्य
कम्मं पदुष कत्ता
कम्मं बटमयदं
कम्ममगुरुं कुलीनं
कम्मम्म अमावेण थ
कम्मस्य थ परिणामं
कम्मम्मुदयं जीवं
कम्मं लोकात्मणि थ
कम्मोहि दु अण्णाणी
कम्मोहि भमादिज्ज
कम्मोहि सुदापिज्ज
कम्मोदण जीया
कम्मोदण जीया
कम्मोदण जीया
कत्तो धिय्यर अया
कालो पाणं न हय्य
केहिधि दु पञ्चपदि
केहिधि दु पञ्चपदि
को नाम भणिज्ज
को नाम भणिज्ज
गोदासु बट्टनस्स
गोदुयसुतो कोदो

ग

पो पाणं न हय्य
गसण्णिदा दु पदे

ख

विद अणेयमेयं
रिस्सपडिणियदं
उ पयडीमदं

छ

दि मिददि थ तदा

भाषा पृष्ठ

३८३ ४४५
३८४ ४४५
३९७ ४६६
३११ ३७९
१४२ १७३
१४५ १९०
१९२ २४३
७५ ११३
४१ ७२
१९ ४५
३३२ ३९९
३३४ ३९९
३३३ ३९९
२५४ ३१७
२५५ ३१७
२५६ ३१७
२९६ ३५९
४०० ४६७
३४५ ४०९
३४६ ४०९
२०७ २६८
३०० ३६५
७० १०४
१२५ १६०

३९४ ४६६
११२ १५३

१७० २१९
१६३ २०६
३१२ ३८१

२७८ ३०४

छिददि मिददि थ तदा
छिज्जदु था मिज्जदु था
ज

जह जीवेण सह धिय
जहया इमेण जीवेण
जहया ल पय संरयो
जं कुणह भावमादा
जं कुणदि भावमादा
जं भायं सुदमगुरुं
जं सुदमगुरुमुदिणं
जदि जीयो न सरीरं
जदि पुग्गलकम्ममिणं
जदि सो परदव्याणि थ
जदि सो पुग्गलदव्यी
जया विमुंयप चेया
जह कणयमगितवियं
जह कोवि नरो जंपह
जह चिट्टं कुव्यंतो
जह जीयस्स भणणुयभोगो
जह नयि कुणह च्छेदं
जह नयि सक्कमणज्जो
जह नाम को पि पुरिसो
जह नाम कोवि पुरिसो
जह नाम कोवि पुरिसो
जह नाम को वि पुरिसो
जह नाम कोवि पुरिसो
जह परदव्यं सेइदि
जह परदव्यं सेइदि
जह परदव्यं सेइदि
जह परदव्यं सेइदि
जह पुण सो चिय
जह पुण सो चेय नरो
जह पुरिसेणाहारो

भाषा पृष्ठ
२४३ ३०८
२०९ २६९

१३७ १७०

७१ १०९

२२२ २८१

९१ १३२

१२६ १६२

१०२ १४७

३८५ ४४५

२६ ५२

८५ १२४

९९ १४४

२५ ४९

३१५ ३८२

१८४ २३७

३२५ ३९२

३५५ ४१५

११३ १५५

२८९ ३५२

८ १७

१७ ४२

३५ ६२

१४८ १९४

२३७ ३०४

२८८ ३५२

३६१ ४२१

३६२ ४२१

३६३ ४२१

३६४ ४२१

२२६ २८५

२४९ ३०८

१७९ २३०

गाथा पृष्ठ	
जह फलिहमणी सुखो	२७८ ३५०
जह वंधे चित्ततो	२९१ ३५३
जह वंधे छित्तून य	२९२ ३५४
जह मज्जं पियमाणो	२९६ २५१
जह राया चयद्वारा	१०८ १५२
जह विसमुयभुंजंतो	२९५ २५०
जहं सिपि उ कम्मफलं	३५२ ४१४
जहं सिपिओ उ कम्मं	३५९ ४१४
जहं सिपिओ उ करणाणि	३५१ ४१४
जहं सिपिओ उ करणेहिं	४१४ ३५०
जहं सिपिओ उ चिहं	३५४ ४१५
जहं सेडिया दु	३५६ ४२०
जहं सेडिया दु	३५७ ४२०
जहं सेडिया दु	३५८ ४२०
जहं सेडिया दु	३५९ ४२०
जह्मा कम्मं कुब्बह	३६५ ३९९
जह्मा घापइ परं	३३८ ४००
जह्मा जाणइ जिघं	४०३ ४६७
जह्मा दु अत्तभायं	८६ १२५
जह्मा दु जहण्णावो	१७१ २२०
जा पस पयडोमहुं वेया	३१४ ३८२
जायं अपडिक्कमणं	२८५ ३४५
जाय न वेवि यिसेसंतरं	६९ १०४
जिदमोहस्स दु जरया	३३ ५९
जीयणियद्धा पप	७४ १११
जीयपरिणामहेदुं	८० १२०
जीयहि हेतुभूदे	१०५ १४९
जीयस्स जीयरुपं	३४३ ४०१
जीयस्स जे गुणा केइ	३७० ४३१
जीयस्स णत्थि केइ	५३ ८३
जीयस्स णत्थि रागो	५१ ८३
जीयस्स णत्थि यगो	५२ ८३
जीयस्स णत्थि यण्णो	५० ८२
जीयस्स दु कम्मेल य	१३९ १७२

गाथा पृष्ठ	
जीवस्साजीवस्स दु	३०९ ३७१
जीवादीसद्वहणं	१५५ २०१
जीवे कम्मं यद्धं	१४१ १७३
जीवे न सयं यद्धं	११६ १५७
जीवो कम्मं उद्वयं	४२ ७२
जीवो चरित्तदंसण	२ ७
जीवो चेव हि पदे	६२ ९१
जीवो न करेदि घडं	१०० १४५
जीवो परिणामयदे	११८ १५७
जीवो वंधो य तथा	२९४ ३५९
जीवो वंधो य तथा	२९५ ३५९
जे पुमाल्लद्व्याणं	१०१ १४६
जो अप्पणा दु मण्णदि	२५३ ३१६
जो इंदिये जिणत्ता	३१ ५७
जो कुणदि घच्छलसं	२३५ २९८
जो चत्तारि वि पाय	२२९ २९३
जो चेव कुणइ	३४७ ४०९
जो जहि गुणे दग्गे	१०३ १४८
जो न करेदि जुगुप्पं	२३१ २९५
जो न कुणइ अवराहे	३०२ ३६७
जो न मरदि न य दुद्धियो	३५८ ३१९
जो न करेदि कंखं	२३० २९४
जोपेहि कदे जुजे	१०६ १५०
जो पस्सदि अप्पाणं	१४ ३२
जो पस्सदि अप्पाणं	१५ ३७
जो पुण निरवराधो	३०५ ३६८
जो मण्णदि जीवेमि य	२५० ३१४
जो मण्णदि हिंसायि य	२४७ ३१२
जो मरइ जो य दुद्धियो	२५७ ३१९
जो मोहं नु जिणित्ता	३२ ५८
जो वेददि वेदिअदि	२१६ २७३
जो समयपाटुइमिणं	४१५ ४८५
जो सय्यसंगमुणो	१८८ २४०
जो सिद्धमत्तिजुतो	२३३ २९६

ओ सुयत्तां सत्वं
ओ सो दु नेहभायो
ओ सो दु नेहभायो
ओ हयर भागमूलो
ओ दि सुयत्तादिगच्छर

ण

ण कुदोयि वि उज्जणो
णज्जग्गमां णाणं
णयि दु भागवपेधो
णयि मम को वि मोदो
णयि मम धम्मभादी
ण दु होइ मोक्खमग्गो
ण सुणर पवडिममग्गो
णयरम्मि यण्णिदे जह
ण य रायदोसमोहं
ण रसो दु हयर णाणं
ण वि एत मोक्खमग्गो
णयि कुप्पर कम्मगुणे
णयि कुप्पर णयि वेयर
णयि परिणमदि ण गिहदि
णयि परिणमदि ण गिहदि
णयि परिणमदि ण गिहदि
णयि परिणमदि ण गिहदि
ण वि सत्तर पिमुं अं
णयि होदि अप्पमत्तो
ण सत्वं यदो कम्मे
णाणं सम्मादिहं
णाणगुणेण विहीणा
णाणमधम्मो ण हयर
णाणमया भायाभो
णाणस्स दंसणस्स य
णाणस्स पडिणिवसं
णाणावरणादीयस्स

भाषा पृष्ठ

१० १८
२४० ३०४
२४१ ३०८
२३२ २९६
९ १८

३१० ३७९
४०२ ४६७
१६६ २१४
३६ ६४
३७ ६६
४०९ ४७६
३१७ ३८१
३० ५१
२८० ३४३
३९५ ४६६
४१० ४७७
८१ १२०
३१९ ३८७
७६ ११५
७७ ११६
७८ ११७
७९ ११८
४०६ ४७४
६ १३
१२१ १५९
४०४ ४६७
२०५ २६५
३९९ ४६६
१२८ १६५
३६९ ४३१
१६२ २०६
१६५ २१३

णाणी रागज्जदो
णादूण भासयाणं
निदिपसंशुयययणाणि
णिघं पयकराणं
णिच्छयणयस्स
जियमा कम्मपरिणरं
जिच्छेयसमावणो
जेय य जीवहाणा
णो ठिदिपंधहाणा

त

तं पयत्तविहत्तं
तं गत्तु जीवणियसं
तं निच्छये ण शुज्जदि
तं जाण जोगउदयं
तत्थ भये जीयाणं
तह जीये कम्माणं
तह णाणिस्स दु पुण्यं
तह णाणिस्स वि विविहे
तह णाणी वि दु जया
तह वि य सत्थ द्दो
तस्सा उ जो विमुदो
तस्सा जहिनु लिंगे
तस्सा ण कोयि जीयो
तस्सा ण कोयि जीयो
तस्सा ण मेत्ति जिग्घा
तस्सा दु कुसीलेहि य
तिविहो पमुवओगो
तिविहो पमुवओगो
तेसि पुणेवि य ह्मो
तेसि हेउ मणिया

थ

थेवार्ह अवराहो

द

दंसणणाणवरिसं

भाषा पृष्ठ

२१८ २
७२ १
३७३ ४
३८६ ४४
८३ १२
१२० १५
३१८ ३८
५५ ८३
५४ ८३

५ १२

१३६ १६९

२९ ५५

१३४ १६८

६१ ९०

५९ ८८

१८० २३०

२२१ २८१

२२३ २८२

२६४ ३२४

४०७ ४७४

४११ ४७८

३३७ ४००

३३९ ४००

३२७ ३९२

१७७ १९३

९४ १३६

९५ १३७

११० १५३

१९० २४२

३०१ ३६७

१७२ २२१

दंसणणाणचरित्तं किंनि	३६६ ४३०	पुग्गलकम्मं गागां	१९९ २९५
दंसणणाणचरित्तं किंनि	३६७ ४३१	पुट्ठीणिग्गमाणा	१६९ २१८
दंसणणाणचरित्तं किंनि	३६८ ४३१	पुग्गिणिच्छिद्यादिग्गामी	३३१ ३१९
दंसणणाणचरित्ताणि	१६ ३९	पुग्गिम्भो जज्ज कांयि	२२५ २८४
द्वयगुणस्स य आदा	१०४ १४८	पोग्गलदन्वं मइत्तापरिणयं	३७४ ४३८
दयियं जं उण्णज्जइ	३०८ ३७८		फ
द्वये उयभुंजंते	१९४ २४९	फागो ण हयइ णाणं	३०६ ४१६
दिट्ठी जहेय णाणं	३२० ३८८		य
दुक्खिदसुद्धिदे जीवे	२६६ ३२७	यंधाणं च सदायं	२०३ ३५१
दुक्खिदसुद्धिदे सत्ते	२६० ३२१	यंधुयभोगणिमिंते	२१७ २७८
दोण्हयि णयाण भणियं	१४३ १८१	युद्धी ययसाभां वि य	२७१ ३३३
	घ		भ
धम्माधम्मं च तहा	२६९ ३२९	भायो रागादिजुद्धो	१६७ २१५
धम्मो णाणं ण हयइ	३९८ ४६६	भुंजंतस्स वि विचिहे	२२० २८१
	प	भूयत्थेणाभिगदा	१३ २७
पंधे मुस्संतं पस्सिदूण	५८ ८८		म
पक्के फलह्मि पड्डिय	१६८ २१६	मज्झं परिग्गहोजइ	२०८ २६८
पज्जत्तापज्जत्ता	६७ ९६	मारेमि जोधावेमि य	२६१ ३२१
पड्डिकमणं पड्डिसरणं	३०६ ३७१	मिच्छत्तं अचिरमणं	१६४ २१३
पण्णाप धित्तव्यो जो खेदा	२९७ ३६०	मिच्छत्तं जइ पयड्डी	३२८ ३९५
पण्णाप धित्तव्यो जो णादा	२९९ ३६२	मिच्छत्तं पुण हुयिहं	८७ १२९
पण्णाप धित्तव्यो जो दट्ठा	२९८ ३६२	मोक्खं असदहंतो	२७४ ३३६
परमद्वयाहिरा जे	१५४ २००	मोक्खपहे अण्णाणं	४१२ ४७९
परमद्वह्मि दु अठीदो	१५२ १९८	मोत्तुण णिच्छयट्ठं	१५६ २०२
परमद्वो खलु समभो	१५१ १९७	मोहणकम्मस्सुदया	६८ ९७
परमप्पाणं कुत्वं	९२ १३३		र
परमप्पाणमकुत्वं	९३ १३४	रत्तो वंधदि कम्मं	१५० १९५
परमाणुमित्तयपि हु	२०१ २५८	रागो दोसो मोहो जीवरस्सेय	३७१ ४३१
पासंडीलिगाणि य	४०८ ४७६	रागो दोसो मोहो ण	१७७ २२७
पासंडीलिगोसु य	४१३ ४८१	रायहि य दोसहि य	२८१ ३४४
पुग्गलकम्मं कोदो	१२३ १६०	रायहि ण दोसहि य	२८२ ३४४
पुग्गलकम्मं मिच्छं	८८ १३०		

राधा हु निगदो लिय
रुवं पाणं न हयइ

गाथा पृष्ठ

४७ ७८
३९२ ४६५

वेदंतो कम्मफलं मुहिटो

गाथा पृष्ठ

३८९ ४३८

लोयसममाणमेयं
लोयस्स पुणइ विण्ह

ल

३२२ ३९०
३२१ ३९०

संता हु निरुयभोज्ञा

१७५ २२३

संसिद्धिराधसिद्धं

३०४ ३६८

सत्थं पाणं न हयइ

३९० ४६५

सद्धदि य पत्तेदि य

२५० ३३३

सहो पाणं न हयइ

३९१ ४६५

सम्मत्तपडिणियदं

१६१ २०६

सम्मदिही जीया

२०८ २८८

सम्मदंनणणं

१४४ १८३

सन्धण्णुणाणदिहो

२४ ४९

सन्धे करेह जीयो

२६८ ३२०

सन्धे पुण्णियदा

१७३ २०३

सन्धे भायं जप्ता

३४ ६१

सामण्णपद्यया सगु

१०९ १५३

सुदपरिविदाणुभुदा

४ १०

सुदं तु चियाणंतो

१८६ २३०

सुलो सुदादेसो

१२ ६१

सेपंतो वि न मेयइ

१७३ २०३

सोयणियं वि निगदं

१४१ १७३

सो सन्धणाणदिग्गी

१९० २०५

ह

हेउमभायं नियमा

१०१ १५३

हेइ सन्धियणं

१७३ २०३

होदुण निरुयभोज्ञा

१७३ २०३

पंदितु सन्धसिद्धे

१ ५

यणो पाणं न हयइ

३९३ ४६५

यण्णस्स सेदभायो

१५७ २०३

यण्णस्स सेदभायो

१५८ २०३

यण्णस्स सेदभायो

१५९ २०४

यण्णु पडुय जं पुण

२६५ ३२५

यण्णियमाणि धरंता

१५३ १९८

यण्णमिदीगुत्तीभो

२७३ ३३५

यण्णहारणभो भासदि

२७ ५३

यण्णहारमासिण्ण

३२४ ३९२

यण्णहारस्स हरीत्तण

४६ ७७

यण्णहारस्स हु भादा

८४ १२३

यण्णहारिभो पुण णमो

४१४ ४८३

यण्णहारेण हु भादा

९८ १४३

यण्णहारेण हु पदे

५६ ८७

यण्णहारेणुयदिगत्तर

७ १५

यण्णहारोऽभूयधो

११ २०

यिज्जारहमारुढो

२१६ २९९

वेदंतो कम्मफलं भाग्याणं

३८७ ४४८

वेदंतो कम्मफलं मय

३८८ ४४८



कलशकाव्योनी वर्णानुक्रम सूची



गाथा पृष्ठ

अ

अकर्ता जीयोऽयं	१९५ ३८०
आगंढिमनाकुलं	१४ ३८
अचित्यशक्तिः स्वयमेव	१४४ २६७
अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलंति	१४१ २६४
अज्ञानतन्तु मनुष्याभ्यय	५७ १४१
अज्ञानमयभायानामज्ञानी	६८ १६८
अज्ञानमेतदधिगम्य	१६९ ३१९
अज्ञानान्मृगवृष्णिकां जलप्रिया	५८ १४१
अज्ञानं ज्ञानमन्येयं	६१ १४३
अज्ञानी प्रकृतिस्यमाय	१९७ ३८४
अतो हताः प्रमादिनो	१८८ ३७३
अतः शुद्धनयायत्तं	७ २६
अत्यंतं भावयित्वा पिरति	२३३ ४६४
अत्र स्याद्वादशुद्धयर्थ	२४७ ४८७
अथ महामदनिर्भरमंथरं	११३ २१२
अद्वैतापि हि चेतना	१८३ ३६४
अध्यास्य शुद्धनय	१२० २२८
अध्यास्यात्मनि सर्वभायभयनं	२५९ ४९९
अनंतधर्मणस्तत्त्वं	२ ३
अनवरतमनंतं	१८७ ३७०
अनाद्यनंतमचलं	४१ ९८
अनेनाध्यवसायेन	१७१ ३२८
अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं	२३५ ४७२
अयि कथमपि मृत्वा	२३ ५१
अर्थालंबनकाल एव कलयन्	२५७ ४९७
अलमलमतिजल्पे	२४४-४८४
अवतरति न यावद्	२९ ६३
अधिचलितचिदात्म	२७६ ५१६

अस्मिन्ननादिनि

गाथा पृष्ठ

४४ १००

आ

आत्माप्रविकल्पापमयत्वं	९३ १८४
आत्मनश्चिन्तयेयानं	११ ४१
आत्ममायात्करोत्यात्मा	५६ १२८
आत्मस्य भावं परमायमिदं	१० ३१
आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं	६२ १४३
आत्मानं परिशुद्धमीप्सुमि	२०८ ४११
आत्मानुभूतिरिति	१३ ३६
आसंसारत एव धावति	५५ १२७
आसंसारविरोधिसेधर	१२५ २३३
आसंसारान्प्रतिपदममी	१३८ २५९

इ

इति परिचिततत्त्वे	२८ ६१
इति वस्तुस्वभावं स्यं ज्ञानी	१७६ ३४२
इति वस्तुस्वभावं स्यं नाज्ञानी	१७७ ३४३
इति सति सह	३१ ६७
इतीदमात्मनस्तत्त्वं	२४६ ४८६
इतः पदार्थप्रयत्नाचगुंठना	२३४ ४६४
इतो गतमनेकर्ता	२७३ ५१३
इत्थं ज्ञानककचकलना	४५ १०१
इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव	१४५ २७०
इत्यज्ञानविमूढानां	२६२ ५०१
इत्याद्यनेकनिजशक्ति	२६४ ५०६
इत्यालोच्य विवेच्य	१७८ ३४९
इत्येवं विरचय्य संप्रति	४८ ११२
इदमेकं जगच्चक्षु	२४५ ४८५
इदमेवात्र तात्पर्यं	१२२ २३१

इन्द्रात्मिदमेवमुपपन्नम्	११ १८१
उ	
उदयनि न जयधी	१ ३०
उन्मुक्तमुन्मोष्यमदोपनयनम्	२३६ ४७३
उभयनयविरोध	४ २३
ए	
एकत्रायकभावनिर्घट	१४० २६१
एकत्वं व्यपहारगो न तु	२७ ६०
एकत्रे नियतस्य शुद्धनयनो	६ २५
एकमेव हि तन्म्याद्यं	१३९ २६१
एकक्षितक्षिप्रमय एव भाषो	१८४ ३६५
एकं ज्ञानमनाद्यनंतमखलं	१६० २९२
एकः परिणमति सदा	५२ १२६
एकः कर्ता चिदमिदं	४६ १०३
एको दूरतपन्ननि मंदिरां	१०१ १९०
एको भोक्तृपथो य एव	२४० ४८०
एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य	२३८ ४७६
एवं तत्त्वव्यपस्थित्या	२६३ ५०१
एकस्य कर्ता	७४ १७६
एकस्य कार्य	७९ १७८
एकस्य क्षेत्रो	८६ १७९
एकस्य क्षेत्रो	८१ १७८
एकस्य जीवो	७६ १७७
एकस्य दुष्टो	७३ १७६
एकस्य रक्षो	८७ १७९
एकस्य नाना	८५ १७९
एकस्य नित्यो	८३ १७८
एकस्य बद्धो न तथा परस्य	७० १७५
एकस्य भातो	८९ १८०
एकस्य भायो	८० १७८
एकस्य भोक्तृ	७५ १७७
एकस्य भूदो	७१ १७६

गाथा पृष्ठ	
एकस्य रक्तो	७२ १७६
एकस्य वस्तुन इहान्तराण	२०१ ३९४
एकस्य पात्रो	८४ १७९
एकस्य वेद्यो	८८ १८०
एकस्य सांनो	८२ १७८
एकस्य गृह्मो	७७ १७७
एकस्य हेतु	७८ १७७
एव ज्ञानयनो नित्यमात्मा	१५ ३९
एवैक्यं हि वेदानां	१५६ २८९
क	
कथमपि समुपात्त	२० ४४
कथमपि हि समंते	२१ ४६
कर्ता कर्ता भवति न यथा	९९ १८७
कर्ता कर्मणि नास्ति	९८ १८७
कर्तारं स्वपक्षेन यत्किंल	१५२ २८४
कर्तुंयदयितुंय युक्तित्वशतो	२०९ ४१२
कर्तुंय न स्वभाषोऽस्य	१९४ ३७८
कथं सपमपि सर्वयिदो	१०३ १९६
कर्मय प्रयितस्वं कर्तुंहतकैः	२०४ ३९८
कथापकलितेकतः	२७४ ५१४
कार्यय आपयति ये	२४ ५२
कार्यत्यादहतं न कर्म	२०३ ३९७
कृतकारितानुमनने	२२५ ४४९
क्षिप्र्यतां स्वयमेव	१४२ २६४
कचिहसति मेवकं	२७२ ५१३
ख	
खणिकमिदमिदं	२०६ ४०७
घ	
घृतकुंभाभिधानेऽपि	४० ९७
च	
चिच्छित्तिव्याप्तसर्वस्य	३६ ८२

	गाथा पृष्ठ
चित्पिण्डचैद्विमयिलासविकास	२६८ ५२०
चिप्रात्मशक्तिसमुदायमयो	२७० ५११
चिरमिति नयतत्त्व	८ २८
चित्स्वभावमरभावितभावा	२२ १८२
क्षेत्रूप्ये जडरूपतां च	१२६ २३६

ज

जपति सद्व्रजतेजः	२७१ ५१५
जानाति यः स न करोति	१६७ ३११
जोयः करोति यदि पुत्रलकर्म	६३ १५२
जोयाजीवविश्वैकपुरुषलक्षणा	३३ ७१
जोयादजोयमिति	४३ १००

झ

झनिः करोती न हि	९७ १८६
झनमय एव भावः	६६ १६४
झनवान् झनमनोऽपि	१४९ २७९
झनमय मयैतन्मयं निर्य	२२४ ४५७
झनारोह मयननापयो	३० १४२
झनः द्विद्वेषकनया तु	५९ १४२
झनिर कर्म न जानु	१५१ २८३
झनितो न हि नरिपिण्डभावं	१४८ २७८
झनितो झनितपुलाः	९७ १६३
झनी झनेति न	१०८ ३८७
झनी झनयतोयं	५० ११०
झनयन्मयं झनयन्मयं	२५१ ४०३

ञ

ञनयन्मयं झनयन्मयं	२५१ ४००
ञनयन्मयं झनयन्मयं	१५१ २०३

ण

णनयन्मयं झनयन्मयं	१३५ २५०
णनयन्मयं झनयन्मयं	१५३ ३०३
णनयन्मयं झनयन्मयं	१०० १८०

त्यक्तं येन फलं स कर्म
त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि
त्यजतु जगदिदानीं

द

दर्शनज्ञानचारित्र्ययात्मा	२३९ ४५९
दर्शनज्ञानचारित्र्यैस्त्रित्या	१६ ४०
दर्शनज्ञानचारित्र्यैस्त्रिमिः	१७ ४१
दूरं भूरियिकल्पजालगह्वरे	९४ १८४
द्रव्यलिङ्गममकारमीलितै	२४३ ४८३
द्विधाकृत्य प्रज्ञातकथ	१८० ३११

ध

धीरोद्वारमहिम्ननाश्रिनिधने	१२३ २३१
----------------------------	---------

न

न कर्मयुक्तं जगत्त	१५४ ३०७
न जानु रागादि	१७१ ३४२
ननु परिणाम एव किल	२११ ४८७
नमः समयसाराय	१ २
न हि पिबधति बद्ध	११ ३५
नाशुने विषयरोधनेऽपि	१३५ २५१
नास्ति मयोऽपि मयंघा	२०० ३९१
निजमहिमरत्नां	१२८ २४२
निर्यमविकारतुविधन	२९ ५९
निर्यमने येन यत्त किञ्चित्	३८ ९५
निर्दोषकर्मफल	२३१ ४९२
निनिदं नारीमन्	१०४ १९३
नीत्या नमस्तु प्रत्य	११३ ३३३
नैकस्य हि कर्तागो ह्यो	५५ १३३
नैकान्मयनदशा व्यवसेव यत्त	२१० ५०३
नोमो नरिणमनः यत्त	५२ १२३

ण

नरमिदं ननु कर्मयुगलं	१५१ ३११
----------------------	---------

शायी पृष्ठ	
परपश्यप्रदं कुर्यन्	१८६ ३६६
परपरिणतिहेतो	३ ४
परपरिणतिमुग्धात्	४७ १०९
परमायेन तु व्यक्त	१८ ४१
पूर्वकाच्युतशुद्धयोधमहिमा	२२२ ४४३
पूर्वयज्ञनिजकर्म	१४६ २७४
पूर्वालंघितपोष्यनाशसमये	२५६ ४९७
प्रप्युष्य नुदमयतः	१२१ २२९
प्रवाहेशो शितेये	१८१ ३९८
प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिर	२५२ ४९४
प्रत्याख्याय भयिष्यत्कर्म	२२८ ४९७
प्रमादकलितः कथं भयति	१९० ३७४
प्रकारकयलितांवर	२५ ५६
प्रामोच्छेदमुदाहरति मरणे	१५९ २९१
प्रादुर्भावंविराममुद्भित	२६० ४९९
य	
यद्यच्छेदाकलयद्वतुलं	१९२ ३७५
बहिर्बुद्धति यद्यपि	२१२ ४१८
बाह्यार्थमहणम्यमापमरतो	२५० ४९३
बाह्यार्थःपरिपीतमुद्भित	२४८ ४९१
य	
माययेद्मेवविज्ञानं	१३० २४५
मायाप्रपाभायमर्थं प्रपन्नो	११५ २१९
मायो रागद्वेषमोदविना यो	११४ २१७
मित्या सर्वमपि स्वल्क्षण	१८२ ३६१
मित्रदेशनियण्णवोष्य	२५४ ४९५
भूतं मानंभूतमेव	१२ ३६
मेवज्ञानोच्छ्रान्त	१३२ २४६
मेवधिमानतः तिद्धाः	१३१ २४५
मेदोग्माद् धमरत्नमग	११६ २१०
नोदृश्यं न स्वभायोऽव्य	१०३ ३८३

शायी पृष्ठ	
ममः कर्मनयायलंबनपरा	१११ २०९
मज्जंतु निर्मलममी	३२ ६९
माकर्ताऽममी स्पृष्टान्तु	२०५ ४०६
मिथ्यादष्टः स यथास्य	१७० ३२०
मोक्षहेतुतिरोधानान्	१०८ २०३
मोक्षयिलासविजृम्भित	२२७ ४५५
मोक्षापदहमकाय	२२६ ४५३
य	
य यद्य मुक्त्या नयपक्षपानं	६९ १७५
यत्तु यस्तु कुन्ते	२१४ ४१९
यत्तुप्राप्तमुपैति तत्र नियतं	१५७ २९०
यदि कथमपि धारापाहिना	१२७ २३९
यदिह भयति रागद्वेष	२२० ४३६
यदेतद् ज्ञानाभ्यां	१०५ १९९
यत्र प्रतिब्रजणमेव	१८९ ३७३
यस्माद्वैतमभूत्पुरा	२७७ ५१७
यः करोति न करोति कैवल्यं	९६ १८९
यः परिणमति न करोति	५१ १३९
यः पूर्वभाषणकर्म	२३२ ४९३
यादृक् नारागिदाग्नि	१५० ३८०
यादृक्पाकगुपैति कर्मविगति	११० २०८
ये नु कर्तारमाकर्त	१०९ ३९५
ये नु स्वभावनियमं	२०५ ३९
ये त्वेवं परिहृष्य	२४१ ४८
ये ज्ञानप्राप्तनिजमायमयी	११३ २०५
योऽयं भायो ज्ञानमायो	२७१ ५१५
य	
रागत्रयानि विविलनां	२७१ ४१५
रागद्वेषद्वेषगुणन	४१५
रागद्वेषविनाश	४१५

गोधा पृष्ठ

रागद्वेयमोहानां	११९ २२६
रागद्वेयमिह हि भवति	२१८ ४३४
रागद्वेयोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या	२१९ ४३४
रागादयो यंयनिदानमुक्ताः	१७७ ३४०
रागादीनामुदयमदयं	१७९ ३५०
रागादीनां क्षणिति पिगमात्	१२४ २३२
रागायास्त्रयरोधतो	१३३ २४७
रागोद्धारमद्धारसेन सकलं	१६३ ३०३
बंधन् बंधं नयमिति	१६२ ३०१

लं

लोकः कर्म ततोऽस्तु	१६५ ३१०
लोकः शाश्वत एक एव	१५५ २८९

व

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु	३९ ९५
वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा	३७ ८६
वर्णाद्यैः सहितस्तथा	४२ ९९
वस्तु चेकमिह नान्यवस्तुनो	२१३ ४१८
विकल्पकः परं कर्ता	९५ १८५
विगलंतु कर्मविपत्तौ	२३० ४५८
विजहति न हि सत्ता	११८ २२६
विरम किमपरेणाकार्यं	३४ ७६
विधातः परभावभावकलना	२५८ ४९८
विश्वादिभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा	१७२ ३३०
विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य	२४९ ४९२
वृत्तं कर्मस्वभावेन	१०७ २०३
वृत्तं ज्ञानस्वभावेन	१०६ २०२
वृत्त्यंशमेवतोऽत्यंतं	२०७ ४०८
वेद्यवेदकविभायचलत्वाद्	१४७ २७७
व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं	२३७ ४७४
व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि	५९ २४
व्यवहारविमूढदृष्टयः	२४२ ४८२
व्याख्यव्यापकता तदात्मनि	४९ ११४

सम्यग्दृष्टिः

सम्यग्दृष्टेर्भवति

सर्वतः

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां

सर्वं मदीयं नियतं

सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्त

स्थितेति जीवस्य

स्थितेत्यपिग्रा खलु

स्याद्वादकोशलमुनिधल

स्याद्वाददीपितलसमद्वसि

स्वशक्तिसंस्चितवस्तुतत्त्वे

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विध

स्येच्छासमुच्छलदनल्प

स्वं रूपं किल वस्तुनो

हेतुस्वभावानुपपत्त्यध्यापणं

શુદ્ધિપત્રક



પૃષ્ઠ લીટી અશુદ્ધ

૨. ૩૧ પરમેશ્વર
૫ ૨૧ કુંદકુંદાચાર્ય
૧૧ ૧૪ (પાતામાં)...ભૂત
૧૪ ૧૦ કંપન
૧૬ ૬ નિષ્ક્રાન્ત...લાયક છે
૧૮ ૫ (અહીં)...છે તેથી
૨૦ ૧૦ કરે છે (અને...કરે છે).

૨૪ ૧૧ કંપન.
૨૫ ૧૬ આત્મા
૨૮ ૨૬ સતતવિચિત્ત
૩૨ ૨૨ આત્માનો, અનાદિ
૪૬ ૨૨ દિ
૪૭ ૧ અહમેતસ્યાસ્તિ
૪૭ ૧૦ અહમ્
૫૦ ૧૭ અન્ય વસ્તુની
૫૨ ૨૨ તોયંચરાઃ
૭૨ ૬ પરમદુષાર્ણો
૭૭ ૬ હદ
૮૬ ૧૫ (શાંતિની)
૮૮ ૪ કારણ
૯૦ ૧૬ તાદાત્મ્યસંબંધ

શુદ્ધ

પરમેશ્વર, પરબ્રહ્મ,
કુંદકુંદાચાર્ય
એકજ રાજ્યથી વશ કરનાર મોટું મોટું
ભૂત જેની પાસે
નિષ્ક (સુવર્ણ)
નિષ્ક્રાન્ત નથી
જગત એકચક્ષુમાપાના સ્થાને હોવાથી, અને
બ્યવહારનય પણ એકચક્ષુમાપાના સ્થાને
હોવાને લીધે
કરે છે; શુદ્ધનય એક જ ભૂતાર્થ હોવાથી
વિષમાન, સત્ય, ભૂત અર્થને પ્રગટ કરે છે.
કંપના
આત્મા એક
સતતવિચિત્ત
અનાદિ કાળથી બંધાયેલા આત્માનો,
મિદ્
અહમેતસ્યાસ્મિ અસ્તિ
અહમ્ અસ્મિ
અનેક પ્રકારના વર્ણવાળા આત્મવર્ણી
તોયંચરાઃ
પરમદુષાર્થ
હદ
(શાંતિની)
કારણ
તાદાત્મ્યસંબંધ

આશય=જેમાં સ્ફટિકમંત્રિ પ્રવેશો હોય તે વસ્તુ.

પૃષ્ઠ લીટી અશુદ્ધ

શુદ્ધ

૯૫	૪	શરીરના આકાર વગરે	શરીર આદિ
૯૮	૧૦	પુદ્ગલ (કર્મ) પૂર્વક	પુદ્ગલકર્મપૂર્વક
૧૦૩	૧૩	કર્ત	કર્ત
૧૧૨	૩૦	કર્ત	કર્ત
૧૩૬	૧૧	વિરતિથી (પરિણતિથી)	રતિથી
૧૩૭	૧૧	વિરતિથી	રતિથી (લીનતાથી)
૧૩૯	૭	ચૈતન્યવાતુ	શુદ્ધ ચૈતન્યવાતુ
૧૫૧	૧૯	અથવા	અને
૧૬૬	૧૯	ભવંતિ	ભવંતિ
૧૬૭	૨૩	જેકે	જેકે ચારિત્રમોહના ઉદયે
૧૮૨	૧૪	અંતરંગે તથા બાહ્ય (અક્ષરસ્વરૂપ) ઉત્પન્ન થતા	અંતર્દેવરૂપ તથા બહિર્દેવરૂપ
૧૮૩	૧૫	જ્ઞાન	સમ્યક્જ્ઞાન
૧૮૩	૨૦	જ્ઞાનનું	સમ્યક્જ્ઞાનનું
૧૮૩	૨૫	પદ્ધતિના	નયપદ્ધતિના
૧૮૪	૭	જ્ઞાન	સમ્યક્જ્ઞાન
૧૯૧	૧૩	પરંતુ તે તો..... ...નિશ્ચયપક્ષ	પરંતુ તે (પક્ષ) પ્રતિપક્ષ સહિત છે. તે પ્રતિપક્ષ (અર્થાત્ વ્યવહારપક્ષનો નિયમ કરનાર નિશ્ચયપક્ષ)
૧૯૧	૧૫	અજ્ઞાનસ્વરૂપ	અજ્ઞાનમય
૧૯૭	૧૧	કેવળ જુદી જ જાતનો	ચૈતન્યપ્રતિભાવ
૧૯૮	૧૫	તે (જ્ઞાની) ભાક્તસ્વરૂપ જ છે અને	તે
૧૯૮	૧૭	તે (અજ્ઞાની) અપેક્ષસ્વરૂપ જ છે અને	તે
૨૦૧	૨૧	ચારિત્ર છે.	ચારિત્ર છે. તેથી એ રીતે સમ્યક્ચરિત્ર- જ્ઞાન-ચારિત્ર એ ત્રણે એક જ્ઞાનનું જ બવન (-પરિણમન) છે.
૨૦૬	૬	વિરોધ નથી.	વિરોધ નથી. (જેમ મિથ્યાજ્ઞાનને અને સમ્યક્જ્ઞાનને પરસ્પર વિરોધ છે તેમ કર્મ- સામાન્યને અને જ્ઞાનને વિરોધ નથી).

૫૪ લીટી અશુદ્ધ
૨૧૧ ૨ જ્ઞાનજ્યોતિ છે.

શુદ્ધિપત્રક

શુદ્ધ

જ્ઞાનજ્યોતિ છે. (જ્યાંગુધી મમ
ઇન્દ્રિય છે ત્યાંગુધી જ્ઞાનજ્યોતિ કેવ
સાથે શુદ્ધનયના બગધી પહેાડી રીઃ
છે, કેવગજ્ઞાન ધનાં સાક્ષાત્ થાય છે).

કારણ કે...શકે નહિ;
પરિભ્રમન જ

મંતા

૦૧૭

૦૧૭૪

ઉપબોધ થાય છે અને જે રીતે

લેનુના લેનુના

કારણનું જે કારણ તેના

અગાળમગ્ગણાં

લેનિ

૧લીઅંઆને

૨૪આવે

જાય છે, અને બીજાં જેવાં આવે એવાં થા
શુધીમાં વેદ્યભાવ નાના પામી જાય

જ્ઞાપકભાવમયપદ્ધાને

કારણને—નિમિત્તભુત

અન્નને

સા આવ

૫મનિસરણ

અનુદનિશ્ચયનયધી

શુનિને

ધકને

‘પરનાધી તથા પાત્રાન થ.એવા થ ૨ ૨ ૨ ૨

૨૧૫ ૪ (કારણ કે...શકે નહિ);

૨૧૦ ૨ પરિભ્રમન

૨૨૩ ૧૬ સંતી

૨૨૩ ૧૭ ૧૭૪

૨૨૩ ૧૬ ૧૭૪

૨૨૫ ૧ જે રીતે

૨૨૭ ૨૩ લેનુના

૨૨૭ ૨૩ કારણના

૨૪૦ ૧૬ અગાળમગ્ગણા

૨૪૨ ૨૩ લેનિ

૨૧૭ ૭ બીઅંઆને

૨૭૬ ૭ આવે

૨૭૭ ૧૬ જાય છે;

૨૬૫ ૨૨ જ્ઞાપકરૂપભાવમયપદ્ધાને

૩૧૧ ૧૪ કારણને—નિમિત્તભુત

૩૫૭ ૨૧ અન્નને

૩૧૫ ૨૬ સા આવ

૩૬૦ ૨૩ મનિસરણ

૩૬૭ ૧૪ શુદ્ધનયધી

૩૬૮ ૧૮ અનિને

૪૧૮ ૧૭ થવાનું આનીને

૪૧૮ ૧૬ ‘પરનાધીને...જાય છે’

• આવા પ્રમાણે ૭૫૫, દરિયાની તથા અન્ય-વચ્ચેનાં કામો...
૫.૧૧-૧૨ : અનિમિત્તો ન કર.

પૃષ્ઠ સીટી અશુદ્ધ

૪૧૬ ૬ ૩૬૧ નથી.

૪૨૬ ૬ અન્ય કાવના... પુસ્તકો

૪૨૬ ૧૫ 'ગાન... અન્ય ૭'

૪૩૬ ૨૭ રાગગ્રંથ

૫૩૫ ૧૪ રંગપત્ર

૫૧૮ ૧૧ સંસ્કૃતિ

શુદ્ધ

૪૨૫ નથી અને ગાન ૫૨૫ ને માં
૪૨૬ નથી.તેથી ગાનને અન્ય કાવ ગાને રંગ
તેથી ગાનની અન્યનાથી આગળ પુસ્તકો
થવા થવા

'ગાનને ૫૨૫ થી રંગ ૫૨૫' અન્ય ૭'

રાગગ્રંથ

રંગપત્ર

સંસ્કૃતિ



અગાઉથી થયેલા ગ્રાહકોનાં નામ

નામ	પ્રત	નામ	પ્રત
સાજકેદાર			
અવેરી નાનાશાસ કાગિદાસ	૨૦૦	શાહ ડાહ્યાભાઈ જોશાભાઈ	૧૦
વડોદરા રામજીભાઈ માળેકચંદ	૨૦૦	શાહ સુનીલાસ હદીચંદ	૫
લાખાણી દામોદર ચત્રજી	૫૦	શાહ દરખચંદ ઉજ્જવલી	૫
લાખાણી મૂળજી ચત્રજી	૫૦	વેરા પ્રેમચંદ ધરમણી	૫
વડોદરા ભગવાનજી અનોપચંદ	૪૦	પરમુરજી	૧૧
વડોદરા સાકરચંદ દેવજીભાઈ	૧૫	લીંબડી	
સંધર્ષી હદીચંદ ડાહ્યાભાઈ	૧૦	પરમુરજી	૬
પારેખ લીલાધર ડાહ્યાભાઈ	૧૦	રાયપુર	
પારેખ પ્રભુલાલ દેવકરજી	૮	શાહ દિપતલાસ માળેકલાલ	૧૭
દેસાઈ અંકુલાસ વસમજી	૫	કાંચી	
પરમુરજી	૫૦	સુડમર મનનલાલ ત્રિભોવન વડવાખુવાળા	૦
મુઝાઈ		પરમુરજી	૧
શાહ જોશાસ સંધજી જોડાદવાળા	૨૪૦	જમશેદપુર	
બેન દરોહરબેન મુલ-ડવાળા	૧૨	શ્રી નરભેરામ દમરાજ અમરેલીવાળા	૧
બેન જીવંદરબેન ત્રિભોવન જામનગરવાળા	૧૨	મુરેન	
શ્રી સુનીલાસ હદીચંદ જામનગરવાળા	૬	પરમુરજી	
શ્રી જી. શાહ વડવાખુવાળા	૫	ખાંડેજ	
શ્રી વનમાળીલાલ મુલાખચંદ મુડાવાળા	૫	શ્રી કુંવરજી જાદવજી ઉમરાગ:૫.૭.	૫
પરમુરજી	૨૪	અમદાવાદ	
મિંગામી		શાહ જોગીલાલ પે.પરલાલ	૧૦
પરમુરજી	૫	શ્રી પેમાભાઈ મદાસુખરામ	૫
વડવાખુ રાણેર		શ્રી જોડાલાલ અગુરચંદ	૫
શાહ મુઝાભાઈ વેશરી	૨૫	પરમુરજી	૩
બેન સમજીબેન	૨૦		
સાગિવા નામરદાસ વેશરી	૨૦		

નામ	પ્રત	કલેસ
શાહ સોમચંદ અમથાલાલ	૧૧	સોનગઢ
શાહ ખુશાલચંદ મોતીચંદ ઉમરાળાવાળા	૫૪	
બેન મુલાખબેન	૫૦	
મોદી નામરદાસ દેવચંદ	૧૦	
મોતી દરગોવિંદાસ દેવચંદ	૫	
પરચુરભુ	૧૫	
અગાસ		
શ્રી અગાસ શ્રીમદ રાજચંદ આશ્રમ	૫	
પરચુરભુ	૩	
ભાવનગર		
જીવરીઆ ભવવાનભાઈ દેવલાસ	૨૫	
ક.મદ.ર. પુન્યોનમદાસ શિવભાઈ	૧૦	
દ.દ. રતી.પ.૫ ભરખીચંદ	૭	
જી.વ.બી. દરિયાઈ જીવગજભાઈ	૫	
પરચુરભુ	૭	
મિયા		
બેન જીવજીવન રામજી દા. વ.ભ.રાજ મુલાખચંદ	૫૦	
મુડા		
અ.જ.૨ કે.દ.પ.૫ ર.પ.ચ.૬	૧૦	
પરચુરભુ	૨	
ફેડમુખુર		
દ.ક. ન.ન.ન. મ. ક.ન.ન.જી	૨૫	
ફેડ કેવચંદ અમલક.૫	૧૦	
કે.ન.કે.પ. કે.દ.૨.૬ ન.ન.ન.જી	૬	
પરચુરભુ	૧	
અરવિંદ		
બેન ક.મ.૨ બેન	૨૦	

નામ	પ્રત	બોટાદ
ગાંધી રાધચંદ રતનસી	૨૪	
ગાંધી ચત્રજી રતનસી	૧૧	
પરચુરભુ	૪	
અમનગર		
વજીર વીરજીભાઈ તારાચંદ	૭૬	
શેડ નરભેરામ ઝવેરચંદ	૫૧	
કાકારી હેમચંદ દયારામ	૨૫	
પરચુરભુ	૧૨	
અમરેલી		
આરા નાનચંદ અગવાનજી	૪૪	
દેસાઈ પ્રાણભાઈ રામજી	૨૫	
ઝાટકિયા અમૃતલાલ માણેકલાલ	૧૨	
પરચુરભુ	૩	
કુંડલા		
શેડ જમજીવન બાલિચંદ	૬	
સાડી		
શ્રી સાડીના મુમુક્ષુ ભાઈજી	૧૦	
પરચુરભુ	૧	
માંડળ		
પટેલ ચંદુલાલ બેચરાસ વિદ્યપિતારી	૧૦	
કામદાર વ.ગે.રાજ મુલાખચંદ	૮	
અલી વનમળી કમનજી	૫	
પરચુરભુ	૧૧	
ઉના		
દ.ક. લે.મળદા.સ કૃપચંદ મિલનં	૧	
અન્ય ન.નાનાં પરચુરભુ	૧૧	

નામ	પ્રત	નામ	પ્રત
કલોલ		બેઘાડ	
શાદ સોમચંદ અમયાલાલ	૧૬	ગાંધી રાવચંદ રતનસી	૨૫
સોનગઢ		ગાંધી ચતુર્જી રતનસી	૧૫
શાદ ખુશાલચંદ મોતીચંદ ઉમરાળાવાળા	૫૪	પરચુરજી	૪
બેન ગુલામબેન	૫૦	અમનગર	
મોદી નામરદાસ દેવચંદ	૧૦	વકીલ વીરજીભાઈ તારાચંદ	૭૧
મોદી દરમોવિંદાસ દેવચંદ	૫	શેઠ નરબેરામ ઝવેરચંદ	૫૧
પરચુરજી	૧૫	કોકારી હેમચંદ દયારામ	૨૫
અગાસ		પરચુરજી	૧૨
શ્રી અમાસ શ્રીમદ રાજચંદ આમમ	૫	અમરેલી	
પરચુરજી	૩	આરા નાનચંદ ભગવાનજી	૪૪
ભાવનગર		દેસાઈ પ્રાણલાલ રામજી	૨૫
કુનરીઆ ભગવાનલાલ કેવલદાસ	૨૫	ઝાલકિયા અમૃતલાલ માણેકલાલ	૧૨
ક.મદાર પુત્રોત્તમલાલ સિવલાલ	૧૦	પરચુરજી	૩
દ.ક. ગનીલાલ સદમીચંદ	૭	કુંડલા	
જ.વ.બી દરિયાલ જીવરાજભાઈ	૫	શેઠ જમજીવન બાલિચંદ	૬
પરચુરજી	૧૭	સાકી	
મિાગ		શ્રી સાકીના મુમુક્ષુ ભાઈઓ	૧૦
બેન જગદેવરામજી દા. વલગજીપુલાળચંદ ૫૦		પરચુરજી	૧
મુઠા		માંડળ	
બ.પે.કે. કે.વ.જ. કે.વ.ચંદ	૧૦	પટેલ ચંદુલાલ બેગરદાસ રિયાપિતારી	૧૦
પરચુરજી	૨	કામદાર વલગજી પુલાળચંદ	૧
રેણુપુર		બ.વી. વનમાળી કરમનજી	૫
દ.ક. ન.વ.જ. કે.ક.વ.જ.જી	૨૫	પરચુરજી	૧૧
કે.ક. કે.વ.ચંદ ન.વ.જ.જી	૨૦	ઉના	
કે.ક. કે.વ. કે.ક.વ.જ. ન.વ.જ.જી	૬	શાદ ને.વ.જ.ન.ક.મ. કૃપચંદ ઝિજીને	૧
કે.ક.વ.જ.જી	૩	અન્ય ન.વ.જ.માં પરચુરજી	૧૨
અનેલગામ			
બેન ચ.વ.જ.બેન	૨૦		

